# शाक्तानन्दतरङ्गिणी

राम कुमार राय

226.208
गिरि|ब्र|शा

प्राच्य प्रकाशन. वाराणसी

तन्त्र ग्रन्थमाला नं० १७

ब्रह्मानन्दगिरिविरचित

# शाक्तानन्दतरङ्गिणी

( मूल एवं हिन्दी अनुवाद सहित )

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक

**राम कुमार राय**

प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी

संस्करण १९९३

प्रकाशक :

प्राच्य प्रकाशन

पोस्ट बाक्स नं० २०३७

७४-ए, जगतगंज

वाराणसी - २२१००२ ( भारत )

© प्रेमचन्द महताब राय शोध संस्थान

लमही, वाराणसी—२२१००४ ( भारत )

मूल्य १००.०० रुपये

प्रदीप कुमार राय, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित
एवं अनूप प्रिंटिंग वर्क्स, जगतगंज, वाराणसी द्वारा मुद्रित ।

TANTRA GRANTHAMALA No. 17

BRAHMANANDGIRI'S

# SAKATANANDTARANGINI

*Text with Hindi Translation by :*

## Ramkumar Rai

**PRACHYA PRAKASHAN**
Post Box No. 2037, Varanasi-221002
1993

**First Edition 1993**

PRACHYA PRAKASHAN
Post Box No. 2037
74–A, Jagatganj
Varanasi-221002 ( INDIA )

226.208
गिरि।प्र।शा

© Premchand Mahtab Rai Shodha Sansthan
Lamhi, Varanasi–221004 ( INDIA )

No part of this Book may be translated or reproduced in any form, by Print, Photoprint, Microfilm or any other means without written permission from the Publishers

9509

Price Rs. 100.00

Published by Pradeep Kumar Rai, for Prachya Prakashan, Jagatganj, Varanasi and Printed at the Anoop Printing Works, Jagatganj, Varanasi.

# भूमिका

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरि विरचित 'शाक्तानन्द-तरङ्गिणी' नामक यह ग्रन्थ सर्वप्रथम बंगाक्षरों में बंगला अनुवाद के साथ कलकत्ते की आगमानुसन्धान समिति के द्वारा मुद्रित और प्रकाशित हुआ था। इस समिति की स्थापना स्व० सर जान उडरफ तथा स्व० श्री अटल बिहारी घोष महाशय ने अप्रकाशित तन्त्रों के प्रकाशन और प्रचार के उद्देश्य से की थी। दानवीर स्व० द्वारबङ्गेश्वर रामेश्वर सिंह बहादुर इसके प्रधान पृष्ठ-पोषक थे। इसके सम्पादक एवं अनुवादक श्री पञ्चानन शास्त्री जी थे। इसका एक अन्य संस्करण वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से योगतन्त्र ग्रन्थमालान्तर्गत ( एकादश पुष्प ) १९८७ में प्रकाशित हुआ। पाठ की दृष्टि से इन दोनों ही संस्करणों में पर्याप्त असमानता है। इस ग्रन्थ का यह नया संस्करण अब आप पाठकों के सम्मुख स्व० डॉ० राम कुमार राय के हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित हो रहा है। इसमें कलकत्ते के संस्करण का अनुसरण किया गया है।

### ग्रन्थ-परिचय

समस्त तान्त्रिक सम्प्रदायों में उपदेश का प्रथम सोपान दीक्षा है। अन्य शास्त्रों में भी विद्याग्रहण के लिए आवश्यक संस्कारों की अपेक्षा होती है। इस दीक्षा-ग्रहण के उपरान्त शिष्य को परम्परा के अनुरूप नियमों का पालन करना पड़ता है। तान्त्रिक दीक्षा प्राप्त शिष्य स्वगुरु के समक्ष साधना के मर्म एवं तत्सम्बन्धित दार्शनिक पक्षों का अभ्यास करता है। यह प्रक्रिया अनादि काल से चलती आ रही है। काल के प्रभाव से मानव-प्रतिभा का ह्रास होने पर गुरु-परम्परा से प्राप्त साधना के सूक्ष्म रहस्य-सूत्रों के स्मरणार्थ ज्ञान को लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है और यहीं से संग्रह-ग्रन्थों का आविर्भाव होता है। जिस प्रकार श्रौतसूत्र इतस्ततः प्रक्षिप्त वैदिक क्रिया-कलाप को, गृह्यसूत्र स्मार्त कर्म-समूहों को क्रमबद्ध करते हैं, ठीक उसी तरह तान्त्रिक संग्रह-ग्रन्थ भी समस्त अथवा किञ्चिदंश में आगमिक रहस्यों को सुरक्षित करते हैं। यही कारण था कि समय-समय पर साधकों के द्वारा संग्रह-ग्रन्थों का निर्माण होता रहा। मध्ययुग में

शाक्ताचार के सम्बन्ध में अनेक तान्त्रिक निबन्ध लिखे गये, इसका एक उदाहरण प्रकृत ग्रन्थ 'शाक्तानन्दतरङ्गिणी' भी है।

यह ग्रन्थ अन्यतम संग्रह-ग्रन्थ होते हुए भी दार्शनिक मतों की कोई विशेष आलोचना नहीं करता। कहीं कहीं साम्प्रदायिक परम्परानुसार विशिष्ट पदों की व्याख्या अवश्य की गयी है। ग्रन्थकार ब्रह्मानन्द गिरि ने लगभग एक सौ ग्रन्थों की सहायता से शक्ति-साधना के रहस्य-सूत्रों को इस ग्रन्थ में एकत्रित किया है और शाक्त-सम्प्रदायों में इसे लोकप्रिय बनाने का स्तुत्य प्रयास भी किया है। सम्प्रदाय लुप्त होने की दशा में इस प्रकार के ही ग्रन्थ साधकों का दिशा निर्धारण करते हैं। काश्मीरीय शैव-सम्प्रादय का 'तन्त्रालोक' इसका एक उदाहरण बन सकता है।

यह ग्रन्थ आगमानुसन्धान समिति द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ का ही हिन्दी संस्करण है। इसकी सम्पादकीय भूमिका से ज्ञात होता है कि इसके प्रकाशन से पूर्व शाक्तानन्दतरङ्गिणी के पाँच अन्य संस्करण प्रकाशित हो चुके थे तथा इसके पाठ संशोधन में इन चार प्रकाशित-अप्रकाशित पुस्तकों की सहायता ली गयी थी—(१) प्रसन्न कुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित 'शाक्तानन्दतरङ्गिणी' (२) संस्कृत कालेज कलकत्ता की हस्तलिखित पुस्तक, (३) चि. दण्डिस्वामी श्रीमन्निर्मलानन्दतीर्थ महाराज के द्वारा संशोधित पुस्तक, (४) आगमानुसन्धान समिति के द्वारा संगृहीत हस्तलिखित पाण्डुलिपि।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के संस्करण की भूमिका (पृ. १७) से ज्ञात होता है कि यहाँ का संस्करण सरस्वती भवन स्थित बंगलिपि मातृका पर आधारित है, किन्तु यह संस्करण पूर्वोक्त संस्करणों की अपेक्षा अनेक त्रुटियों से परिपूर्ण है। भविष्य में इसके अच्छे संस्करण की आशा की जा सकती है। इस ग्रन्थ की अनेक मातृकायें भारतवर्ष तथा उसके बाहर के पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं, जिनका उपयोग इसके संस्करण को सर्वांगपूर्ण बनाने में किया जा सकता है।

शक्ति-पूजा से सम्बन्धित विधियों का प्रतिपादक यह ग्रन्थ अठारह उल्लासों में पूर्ण है। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण (पृ० ३) में इस उल्लासों में वर्णित विषयों की चर्चा की गयी है। अपने संग्रह को पुष्ट करने के लिए लेखक ने प्राचीन तन्त्रों, पुराणों, उपनिषदों एवं शारदातिलक सरीखे संग्रह-ग्रन्थों की सहायता ली है। इस ग्रन्थ में 'योगिनीहृदय' के नाम से नौ स्थलों पर उद्धरण मिलते हैं। ठीक इसी प्रकार इस ग्रन्थ के लेखक के प्रख्यात

शिष्य श्री पूर्णानन्द परमहंस विरचित 'श्यामारहस्यम्' में भी एक स्थल पर योगिनीहृदय का वचन उद्धृत है। परीक्षण करने पर इन दोनों ही ग्रन्थों में उपलब्ध योगिनीहृदय के वचन वर्तमान में प्रचलित वामकेश्वरतन्त्रागंत 'योगिनीहृदय' में नहीं मिलते। शाक्तानन्दतरङ्गिणी में योगिनीहृदय के उद्धरण के रूप से कहे गये तीन वचन 'योगिनीतन्त्र' के उत्तरार्धखण्ड में मिलते हैं। साथ ही शेष वचनों के भी यहीं पाये जाने की सम्भावना है। इसके लिए योगिनीतन्त्र के पूर्ण एवं परिष्कृत संस्करण की अपेक्षा है। इस आधार पर हम यह सकते हैं कि मध्य युग में कुछ बंगीय साधक-जन योगिनीतन्त्र को योगिनीहृदय के नाम से भी जानते थे।

अपने इस कथन में हम प्रमाण के रूप में नरसिंह ठक्कुर द्वारा रचित 'ताराभक्तिसुधार्णव' को भी उद्धृत कर सकते हैं। इस ग्रन्थ में योगिनी तन्त्र के प्रमाण से कुछ वचन मिलते हैं और ये वही वचन हैं, जो शाक्तानन्द-तरङ्गिणी में 'योगिनीहृदय' के नाम से उद्धृत हैं।

सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालय के संस्करण ( पृ. २२ ) में 'तन्त्रसार' नामक ग्रन्थके प्रमाण से एक वचन मिलता है—

'चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये।
मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः च उच्यते॥'

इसी संस्करण (पृ. २२५) में बनी ग्रन्थों की अनुक्रणिका में भी इस ग्रन्थ के नाम का स्पष्ट उल्लेख है। इस ग्रन्थ के दो कलेवर हम लोगों के सामने है—प्रथम अभिनवगुप्तकृत एवं द्वितीय कृष्णानन्द आगमवागीशकृत। किन्तु प्रस्तुत संस्करण ( पृ. ४२ ) में 'तन्त्रसारे' के स्थान पर 'तत्त्वसारे' पाठ है। जहाँ तक हम लोग समझते हैं यहाँ 'तत्त्वसारे' पाठ ही उचित है, क्योंकि म० म० प० गोपीनाथ कविराज जी ने अपने 'तान्त्रिक साहित्य' (पृ. २३२) में 'तत्त्वसार' ग्रन्थ को 'शाक्तानन्दतरङ्गिणी' में उल्लिखित माना है और वहीं पर इस ग्रन्थ का नामान्तर 'योगसार' भी बतलाया गया है। प्रकाशित तन्त्रसार में उपर्युक्त वचन की अनुपलब्धता भी एक अन्य प्रमाण है। इस सन्दर्भ में डॉ० चिन्ताहरण चक्रवर्ती का भी हम उल्लेख करना चाहेगें। अपने ग्रन्थ **'The tantras Studies on their Religion and Literature** (पृ. ६७) में उन्होंने कहा है—**'It is not known if the** तन्त्रसार **reffered to in his** शाक्तानन्दतरङ्गिणी, **is identical with the celebrated work of the same name by** कृष्णानन्द. उपर्युक्त अनुक्रमणिका

में ही एक अन्य ग्रन्थ 'तार्तीयम्' का भी उल्लेख है, जब कि ग्रन्थ में 'तार्तीयं' का तात्पर्य ग्रन्थ विशेष से न होकर मातृका-यन्त्र में प्रयुक्त बीजमन्त्र से है।

यहाँ एक विचारणीय और ध्यान देने योग्य बात है कि शाक्तानन्दतरङ्गिणी के चतुर्थ उल्लास में एक श्लोकार्ध श्यामारहस्य के प्रमाण से कहा गया है, जो कि ग्रन्थकर्ता के शिष्य पूर्णानन्द द्वारा प्रणीत है। यह श्लोकार्ध तो प्रकाशित श्यामारहस्य में नहीं मिलता, किन्तु उपर्युक्त उल्लास का प्रथम श्लोक श्यामारहस्य के प्रथम पटल में मिलता है, जब कि वहाँ ग्रन्थ-संकेत नहीं है।

## ग्रन्थकार का परिचय

इस ग्रन्थ के प्रत्येक उल्लास की पुष्पिकाओं से ज्ञात होता है कि इसके लेखक ब्रह्मानन्दगिरि हैं। ये बंग देश के निवासी थे और ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। इनके गुरु का नाम त्रिपुरानन्द था। इनके जन्म स्थान एवं काल का निर्धारण अभी तक उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर कठिन है, किन्तु इनके प्रख्यात शिष्य पूर्णानन्दगिरि को आधार मानकर इनके काल-निर्धारण की परिकल्पना की जा सकती है। पूर्णानन्दगिरि के दो ग्रन्थों 'शाक्तक्रम' और 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' का काल स्पष्ट रूप से ज्ञात है। ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इनका समय क्रमशः शक १४९३ ( सन् १५७१ ई० ) और शक १४९९ ( सन् १५७७ ई० ) बतलाया है। इस आधार यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मानन्दगिरि का काल सोलहवीं खिस्ट शती का पूर्वार्ध अवश्य ही रहा होगा।

ब्रह्मानन्द नाम से अनेक साधकों एवं लेखकों का उल्लेख संस्कृत-साहित्य में मिलता है। आधुनिक विद्वानों के समक्ष निश्चित निर्णय के अभाव में अनेक भ्रान्तियाँ पैदा हो गयी हैं। प्रायः लोग एक ही नाम के लेखक को अनेक कृतियों से जोड़ देते हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के संस्करण की भूमिका में भी ऐसा ही हुआ है। जहाँ तक हमारी जानकारी है, ब्रह्मानन्दगिरि के अब तक दो ही ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं और ये दोनों प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनके नाम हैं—शाक्तानन्दतरङ्गिणी और तारारहस्य।

कुछ समय पूर्व 'साधनकल्पलतिका' नामक एक ग्रन्थ बंगीयभाषा में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। श्रीनीलमणिमुखोपाध्याय प्रणीत यह ग्रन्थ श्रीरेन्द्रनाथ राय के सौजन्य से सुधी साधकवृन्द के ज्ञानार्थ प्रकाशित

हुआ था। इसका प्रकाशन काल पहला फाल्गुन बंगीय संवत् १३१८ ( सन् १९१५ ई० ) है। इस ग्रन्थ में ब्रह्मानन्द का आंशिक जीवन वृत्त उद्धृत है। विशेषरूप से यह वृत्तान्त उनके जीवन के साधना काल से ही सम्बन्धित है। संक्षेप में यह वर्णन इस प्रकार से है—

साधक प्रवर ब्रह्मानन्द का जन्म ढाका मण्डलान्तर्गत हुआ था। यद्यपि इनके जन्म स्थान का विवरण ठीक-ठीक नहीं मिलता, किन्तु आज भी उनका आसन ( गद्दी ) 'विक्रमपुर' के सन्निकट 'माउ-ईरसाल' नामक जंगल प्रदेशस्थ 'चाँचुरतला' ( दिगम्बरीतला ) में विद्यमान है। इस स्थान पर उन्होंने सिद्धि प्राप्ति के उद्देश्य से चिरकाल तक उत्कट तपस्या की थी, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्त में ये अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वहाँ से कामाख्या पीठ चले गये।

कामाख्या पहुँच कर ये अन्न-जल छोड़कर तपस्या में संलग्न हो गये। इनकी कठिन तपस्या से उद्वेलित होकर भगवती कामाख्या ने वहाँ के नरेश को स्वप्न में आदेश दिया—'ब्रह्मानन्द तीन दिन से निराहार मेरे नाटच-मन्दिर में उत्कट तपस्या कर रहा है। तुम इसे कामाख्या से दूर कर दो अन्यथा वह मुझे बड़ा कष्ट देगा।' इस स्वप्न को माता का निर्देश मानकर राजा प्रातःकाल भगवती के नाटचमन्दिर में उपस्थित हुआ। वहाँ उसने एक सन्यासी को नेत्र बन्द किये हुए ध्यान मग्न अवस्था में आसन पर बैठा हुआ पाया। राजा उस सन्यासी का ध्यान भग्न करने का साहस नहीं कर सका। कुछ समय की प्रतीक्षा के अनन्तर भगवती की आरती में प्रयुक्त घण्टे की ध्वनि से जब ब्रह्मानन्द का ध्यान भंग हुआ, तब राजा ने उनसे स्थान छोड़कर अन्यत्र चले जाने को कहा और बताया कि माँ का यही आदेश है। ब्रह्मानन्द तत्क्षण वहाँ से हट गये। वह दिन में अन्यत्र जप-तप करते थे, रात्रि में पुनः भगवती के नाटचमन्दिर में आ जाते थे।

एक दो दिन के बाद भगवती ने पुनः राजा को स्वप्न में निर्देश दिया कि तुम ऐसी व्यवस्था करो, जिससे यह ब्रह्मानन्द कामाख्या क्षेत्र में प्रवेश न कर सके। इसके अनुपालन में राजा ने स्थान-स्थान पर प्रहरी नियुक्त कर दिये। अब ब्रह्मानन्द कुछ विचलित हो उठे। फिर भी उन्होंने विचार किया कि जब देवी राजा को इस तरह का निर्देश दे रही है, तो अवश्य ही वह मेरा स्मरण कर रही है। इस अवस्था में तप छोड़ना उचित नहीं है। ऐसा संकल्प करके निरुपाय होकर इतस्ततः भ्रमण करते हुए इन्होंने

कामाख्या स्थित भगाड़ ( मृत पशु के प्रक्षेप-स्थान ) में एक मृत हाथी के क्रोडदेश ( आड़ ) में छिपकर रात्रि में जप-तप करने का निश्चय किया, किन्तु पुनः राजा ने देवी के स्वप्न लब्ध आदेश से वहाँ भी प्रहरी नियुक्त कर दिया।

तत्पश्चात् किंकर्तव्यविमूढ होकर ब्रह्मानन्दगिरि ने अतिशय सोच विचार करने के पश्चात् पर्वत के तलप्रदेश में स्थित 'खट' ( शौचादि हेतु सामूहिक स्थान ) के मध्य में प्रविष्ट होकर जप-तप करने का निर्णय किया। तत्कालीन प्रथा के अनुसार लोग जहाँ-तहाँ शौच न करके खट में ही मल त्याग करते थे। जिस समय इन्होंने खट के मध्य में होकर कामाख्या में प्रवेश का रास्ता बनाया, उस समय खट विष्टा से परिपूर्ण था। रात्रि में ब्रह्मानन्द ने खट के मध्य में स्थित विष्टा में शरीर को डुबोकर जप करना प्रारम्भ किया। मात्र उनका मस्तक ही ऊपर था।

ऐसा करने पर भगवती कामाख्या उनके कष्ट साध्य तप से विचलित होकर तथा उनकी ऐकान्तिक भक्ति से प्रसन्न होकर प्रकट हुईं और बोलीं— 'ब्रह्मानन्द ! उठो, अब तुम्हें और तप की आवश्यकता नहीं है।' ब्रह्मानन्द अनसुना होकर जप में ही निमग्न रहे।

भगवती पुनः बोलीं—'ब्रह्मानन्द ! उठो, वर माँगो।'

ब्रह्मानन्द बोले—'तुम कौन हो ?'

देवी बोलीं—'मैं तुम्हारी इष्ट देवता हूँ। तुम जिसके चिन्तन में लगे हो, वही मैं हूँ।'

ब्रह्मानन्द बोले—'मैं कैसे विश्वास करूँ कि तुम मेरी इष्ट देवता हो। मैंने समझा कि तुम प्रहरी हो और मुझे प्रताड़ित करने आयी हो।'

देवी बोलीं—'मैं तुम्हारे विश्वास के लिए कह रही हूँ कि विष्ठा का यह खट सब चन्दन हो गया है। क्या तुम यह नहीं समझ पा रहे हो ?'

ब्रह्मानन्द कहने लगे—'नहीं, मैं उस तरफ मनक्षेप नहीं कर रहा हूँ। मैं केवल जगन्माता के श्रीचरणों का स्मरण कर रहा हूँ।'

देवी पुनः बोलीं—'मैं आ गयी हूँ। तुम आँख खोलो और मुझे देखो।'

यह सुनकर ब्रह्मानन्द बोले—'यदि तुम मेरी इष्ट देवता हो और मुझे वर देने आयी हो तो मेरी प्रार्थना से मेरी भोग्या बन जाओ।'

देवी बोलीं—'मैं शिव की हूँ। अन्य किसी की मैं भोग्या नहीं हो सकती। मैं स्त्री रूप में समस्त जगत् में व्याप्त रहती हूँ।'

ब्रह्मानन्द बोले—'आपकी कृपा से मैं सब कुछ जान गया, किन्तु मेरी सेवा के लिये अन्य कोई भी नहीं है। इसलिए मुझे एक भोग्या की आवश्यकता है।'

तब जगन्माता बोलीं—'मैं तुम्हें भोगार्थ 'उमा' तथा 'वासा' नाम की दो नायिकाओं को दे रहीं हूँ। इन दोनों को ग्रहण कर भोग करो।'

यह सुनकर दोनों नायिकाएं रोती हुई बोलीं—'माँ! हम दोनों से कितने समय तक इस यन्त्रणा भोग को कराओगी?' उनके ऐसा कहने पर देवी ने कहा—'जब तक तुम दोनों को हटने को न कहा जाय, तब तक ब्रह्मानन्द के आदेश का पालन करो' और यह कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयीं।

इस घटना के पश्चात् दोनों नायिकाओं के साथ ब्रह्मानन्द भ्रमण करने लगे। अपने उपवेशन के निमित्त उन्होंने एक प्रस्तरासन का निर्माण किया जिसका भार बीस मन (आठ कुन्तल) से कम न था। वह जहाँ-जहाँ जाते थे, उनके प्रस्तरासन को दोनों नायिकाएं वहाँ-वहाँ तक पहुँचाती थीं। वे दोनों मात्र ब्रह्मानन्द को ही दिखायी पड़ती थीं, अन्य कोई भी उन्हें देख नहीं पाता था। इस कारण से आसन को आकाश मार्ग में चलता देखकर सब लोग अवाक् और आश्चर्य चकित होते थे और ब्रह्मानन्द को देवरूप में जानने लगे थे। यह प्रस्तर खण्ड आज भी 'दिनाजपुर' के जंगल में विद्यमान है।

ढाका के प्रसिद्ध जमींदार 'चाँद राय' ब्रह्मानन्द के प्रथम शिष्य हुए तथा उनके अनुज 'केदार राय' सुविख्यात गोसाईं भट्टाचार्य महाशय के शिष्य थे। गोसाईं भट्टाचार्य महाशय जमींदार के घर के समीप ही रहते थे। चाँद राय ने जब ब्रह्मानन्द का शिष्यत्व ग्रहण किया, तब स्वप्न योग से देवी ने चाँद राय को निर्देशित किया था कि 'जब ब्रह्मानन्द तुम्हें दीक्षित करके आशीर्वाद देने लगे तब उस समय तुम उनका प्रस्तरासन भिक्षा में माँग लेना।' देवी के आदेशानुसार चाँद राय ने वैसा ही किया। ब्रह्मानन्द भी उस बृहद् आसन को चाँद राय को अर्पित कर दिये तथा उसी समय से नायिका-द्वय को प्रस्तरासन के भार वहन से मुक्ति मिल गयी।

एक समय ब्रह्मानन्द गिरि भ्रमण करते हुए अपने शिष्य 'चाँद राय' के

भवन में उपस्थित हुए। उस समय चाँद राय कर वसूलने घर से बाहर गये हुए थे। उनके अनुज केदार राय ने ब्रह्मानन्द की यथेष्ट सेवा की। ब्रह्मानन्द अपने कपाल-पात्र को हाथ में लेकर केदार राय से कहने लगे—'बाबा! मैं अतिशय प्यासा हूँ। मुझे पात्र भरकर आसव प्रदान करो।' केदार राय अपने ज्येष्ठ भ्राता की पूजा सामग्री जानते थे। आसव लेकर ब्रह्मानन्द के कपाल पात्र में डाल दिये किन्तु उससे पात्र भरा नहीं। ब्रह्मानन्द कहने लगे—'पात्र परिपूर्ण करके दो।' यह सुनकर केदार राय ने घर में रखे समस्त आसव को कपाल पात्र में डाल दिया, किन्तु वह परिपूर्ण नहीं हुआ। तब उन्होंने अपने सहयोगियों की मदद से बाजार से आसव मँगाकर पात्र में डालना शुरू कर दिया, किन्तु उससे भी पात्र परिपूर्ण नहीं हो पा रहा था। यह देखकर केदार राय अतिशय सोच में पड़ गये। अन्ततः निरुपाय होकर उन्होंने अनिष्ट की आशंका से अपने गुरु गोसाईं भट्टाचार्य महाशय के घर जाकर समस्त वृत्तान्त से उन्हें अवगत कराया। भट्टाचार्य महाशय तत्क्षण शिष्य के घर उपस्थित होकर कहने लगे—'मेरे हाथ में थोड़ा आसव दे दो।' केदार राय बोले—'मेरे पास एक बूँद भी नहीं है।' भट्टाचार्य बोले—'समस्त पात्र निचोड़ कर जो थोड़ा भी मिले उसे ही मेरे हाथ में दो।' पुनः भट्टाचार्य कहने लगे—'ब्रह्मानन्द! मेरे शिष्य को इस दाय से मुक्त कीजिए' और यह कहते हुए उन्होंने समस्त रिक्त पात्र के अवशेष से जो थोड़ा भी मिला उसे मन्त्रपूत करके एक बूँद आसव उनके पात्र में डाल दिया। तत्क्षण ही वह कपाल पात्र भर गया और ऊपर से बहने लगा। तब ब्रह्मानन्द कहने लगे—'धन्य! भट्टाचार्य महाशय! आप धन्य हैं। अपने शिष्य की रक्षा आपने करली' और यह कहकर उन्होंने आसव पान कर लिया।

कुछ क्षण बाद ब्रह्मानन्द गिरि ने लघुशंका करने की इच्छा व्यक्त की। केदानाथ ने उपयुक्त स्थल दिखलाया। किन्तु भट्टाचार्य महाशय अपने शिष्य से कहने लगे—'तुम पागल हो गये हो क्या! जो स्थान तुम दिखा रहो हो वह लघुशंका नहीं करनी है।' पुनः वह ब्रह्मानन्द से बोले—'मेरे साथ आइए। मैं स्थान दिखला रहा हूँ।' यह कहकर भट्टाचार्य महाशय ब्रह्मानन्द को साथ लेकर 'त्रिपान्तर' मैदान में गये और वहाँ लघुशंका करने को कहा। ब्रह्मानन्द के मूत्र का अन्त ही नहीं रहा। उनके पेट में मानों वरुणदेव प्रविष्ट कर गये हों। वह एक स्थान में एकाधार मूत्र त्याग न कर भिस्ती में रखे जल की तरह सम्पूर्ण मैदान में छिटकाने लगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि मैदान की समस्त मिट्टी नष्ट हो गयी। तृणादि दग्ध हो गये। इस मैदान में आज तक शस्यादि अंकुरित नहीं होते। इसी से इस मैदान का नाम 'पोछागाड़ा' पड़ गया। ढाका में पोछागाड़ा का मैदान प्रसिद्ध है। इस मैदान की मिट्टी दग्ध होकर इतनी कठिन हो गयी है कि उसकी जुताई इत्यादि नहीं हो सकती।

'साधन कल्पलतिका' से संगृहीत किया गया यह विवरण सरस्वती भवन वाराणसी के कर्मचारी श्रीरमापति चक्रवर्ती के सौजन्य से हमें प्राप्त हुआ है। साधकों के लिए प्रेरणास्पद ब्रह्मानन्द गिरि का यह जीवन वृतान्त आप सब के समक्ष प्रस्तुत है। इसकी उपलब्धि के लिए मैं इनका आभारी हूँ।

अन्त में, हम ग्रन्थ के वैशिष्टच के प्रसंग में अत्यन्त ही संक्षिप्त शब्दों में इसकी उपादेयता पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे—

ग्रन्थकार श्रीब्रह्मानन्द गिरि ने उपनिषदों, पुराणों तथा शारदा तिलक, कुलार्णवतन्त्र प्रभृति प्राचीन पद्धति-तन्त्रों से वचन संगृहीत कर इस ग्रन्थ की सृष्टि की है। यह ग्रन्थ गर्भावस्था से प्रारम्भ कर पुनर्जन्म तक के मानव जीवन की व्यवस्था को नियन्त्रित करता है। संसार की असारता, आवागमन के चक्र के हेतु तथा उसके निराकरण हेतु लेखक ने अपने स्वानुभूत उपायों को तन्त्र-शास्त्र की पद्धति से प्रस्तुत किया है, साथ ही जगन्माता की अर्चा के सूक्ष्म रहस्य-सूत्रों की जयमाला भी बनायी है जिसको धारण कर मनुष्य अपने योनिविशेष को सार्थक बनाता है और परम-पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकता है।

डॉ० शीतला प्रसाद उपाध्याय
प्राध्यापक, सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग,
सं० सं० वि० वि०, वाराणसी

# विषय सूची

भूमिका v

**प्रथम उल्लास : शरीर निर्णय** १-२५

मंगलाचरण १, प्रकृति शब्द का अर्थ १, नित्या शब्द का अर्थ २, परमात्म शब्द का अर्थ २, शरीर उत्पत्ति का क्रम ४, शरीरस्थ-नाड़ी निर्णय ८, भूतगुण ६, शरीरस्थ वायु निर्णय ६, शरीर कोष वर्णन १०, शरीर में सप्त पाताल वर्णन १०, शरीरस्था भूरादिलोक कथन ११, शरीरस्थ सप्तपर्वतों का वर्णन ११, शरीरस्थ सप्तद्वीप वर्णन ११, शरीरस्थ सप्तसागर वर्णन १२, शरीरस्थ ग्रहमण्डल १२, गर्भस्थजीव का पूर्वजन्मस्मरण १३, स्त्रीपुरुषादि भेद कारण १४, जीवावस्था कथन १५, जीवों का कर्म फलप्रकार १५, मनुष्यजन्मोत्कर्ष कथन १७, मोह का प्रभाव १७, मोह का संसारकारणत्व कथन १८, मोक्ष का कारण १६, संसार का दुःखरूपत्व वर्णन २०, महामाया शब्द का अर्थ २२, महामाया के भेद २३, विद्या की प्रशंसा २४।

**द्वितीय उल्लास : दीक्षा निर्णय** २६-६२

दीक्षा माहात्म्य २६, आगम लक्षण २७, दीक्षा शब्दार्थ ३०, अदीक्षितार्चन निन्द्रा ३१, मन्त्र ग्रहण नियम ३१, गुरु शब्दार्थ ३१, गुरुलक्षण ३२, ब्राह्मण गुरुकरण विधि ३२, दीक्षा के फल ३३, शूद्र-दीक्षाधिकार विचार ३३, स्त्रीगुरु दीक्षा ग्रहणफल ३६, मन्त्रोद्धार ३७, मन्त्र लेखन नियम ३७, अर्घद्रव्य ३८, अर्घदान मन्त्र ३६, शक्ति की दीक्षा ३६, उपदेश दीक्षा ४२, काल विशेष में मन्त्र विशेष ग्रहण के नियम ४४, मन्त्रों के दस संस्कार ४५, इष्टदेव का नित्यपूजा तत्त्व कथन ४८, सूतकिन पूजाविधि ४६, गुरु का माहात्म्य ५०।

**तृतीय उल्लास : भेद योग निर्णय** ६३-७६

योग निर्णय ६३, विग्रहसृष्टि का कारण ६३, आराधना लक्षण ६६, द्विविध ध्यान कथन ६७, योग निरूपण ६६, ध्यानयोग प्रशंसा ७१, स्त्रोरूपावतार लक्षण ७२, पुरुषावतार लक्षण ७३,

ईश्वरनिन्दा फल ७४, शक्ति उपासना प्रशंसा ७५।

**चतुर्थ उल्लास : प्रातः कृत्यनिर्णय** ७७-११३

प्रातः कृत्यविधि ७७, श्रीगुरु का ध्यान ७७, गुरु मानस पूजा ७८, गुरु मन्त्र ७८, गुरु स्तुति ७९, श्रीगुरु का प्रणाम मन्त्र ८१, षट्चक्र निरूपण ८१, मूलाधारचक्र कथन ८२, स्वाधिष्ठान-मणिपुरचक्र विवरण ८४, अनाहत-पद्म विवरण ८४, विशुद्धचक्र निरूपण ८४, आज्ञाचक्र विवरण ८५, सहस्रार-चक्र विवरण ८५, कुण्डलिनी योग ८६, गृहस्थ-योग साधन ९३, प्रकारान्तर कुण्डलिनी योग ९४, कुण्डलिनी-प्रत्यावर्त्तन प्रकार ९८, दन्तधावन विधि १०१, स्नान विधि १०२, स्नान मन्त्र १०२, तीर्थ आवाहना मन्त्र १०३, आचमन मन्त्र १०४, शाक्ततिलक विधि १०५, तान्त्रिक-सन्ध्या १०७, तर्पण विधि १०८, सूर्यार्घ दान १०९, कुण्डलिनी ध्यान ११०, गायत्री जप विधि १११।

**पंचम उल्लास : आसन निर्णय** ११४-१२०

आसन निर्णय ११४, पद्मासनादि लक्षण ११७, नित्यनैमित्तिक पूजा कथन ११८।

**षष्ठ उल्लास : अन्तर्याग विधि** १२१-१३०

अन्तर्याग विधि १२१।

**सप्तम उल्लास : नित्यपूजा प्रणाम-निर्णय** १३१-१६४

गुरुतन्त्रोक्त-पूजाविधि १३१, द्रव्यासादन १३३, अथ शान्ति कुण्ड प्रमाण १३४, अर्घ्यस्थापनक्रम १३५, भूत शुद्धि १४१, मातृका षडङ्गन्यास १४४, अन्तर्मातृका न्यास १४४, अथ विद्या न्यास १४६, अङ्गन्यास १५०, षोढान्यास फल १५२, आत्म ध्यान १५२, देवी ध्यान १५३, देवी का आवाहन १५४, द्रव्यदान नियम १५५, षडङ्गादि आवरण पूजा १५५, पूर्वादिदिशाओं का निरूपण १५८, मन्त्र जप प्रकार १६०, आत्म समर्पण १६१।

**अष्टम उल्लास : माला निर्णय** १६५-१७७

माला निर्णय १६५, करमाला जप प्रकार १६६, माला विधान १७०, माला प्रतिष्ठा विधि १७२, माला में जप विधि १७४, वर्ण माला १७६।

**नवम उल्लास : जप लक्षण निर्णय** १७८-२०१

जप विधि १७८, मानसादि जप भेद १७८, मन्त्र जप पद्धति १७६, मन्त्र पुरश्चरण विधि १८२, काली मन्त्रों का तनुक्रम १८३, कामिनी तत्त्व १८५, कामिनी ध्यान १८८, नवतत्त्व निरूपण १६१, मन्त्रार्थ निरूपण १६३, मन्त्र स्थान १६३, मन्त्र चैतन्यादि निरूपण १६४, योनिमुद्रा १६५, मन्त्रशिखा निरूपण १६८, अशौच भङ्ग १६६, स्त्रीशूद्रों का अशौच भङ्ग २००, गणना विधि २०१।

**दशम उल्लास : सेतु महासेतु कुल्लका निर्णय** २०२-२१४

महासेतु निरूपण २०२, महासेतु २०२, सेतु निरूपण २०३, सामान्य सेतु २०४, विशेष सेतु २०४, अथ कवच सेतु २०८, कुल्लुका प्रयोजन २०६, कुल्लुका निरूपण २१०।

**एकादश उल्लास : मुख शोधन निर्णय** २१५-२२३

मुखशोधन २१५, निद्राभङ्ग २२०, निद्राभङ्ग मन्त्र २२१, मन्त्रविद्या लक्षण २२२, दीपनी लक्षण २२२, योनि मन्त्र २२३।

**द्वादश उल्लास : पुरश्चरण निर्णय** २२४-२५२

पुरश्चरण लक्षण २२४, पुरश्चरण प्रयोजनं २२४, पुरश्चरण के पूर्वदिन का कृत्य २२५, दीपस्थान २२६, पुरश्चरण दिन का कृत्य २२८, पुरश्चरण संकल्प २३१, भक्ष्यदि नियम २३३, हविष्यान्न लक्षण २३४, होमादि नियम २३६, तर्पण विधि २३६, तर्पण द्रव्य २३७, अङ्गहीन में जपविधि २३६, वीरकल्प २४२, ग्रहण पुरश्चरण २४५, भोजन काल २४७, जप प्राधान्य २४६, कवच पुरश्चरण २५२,।

**त्रयोदश उल्लास : यन्त्र प्रतिष्ठादि निर्णय** २५३-२६८

यन्त्र संस्कार २५३, यन्त्र संस्कार संकल्प २५४, यन्त्र स्नान २५५, पञ्चगव्य परिमाण २५६, बलिदान २६२, रुधिर मस्तक स्थापन क्रम २६५, बलिमस्तक पतन फल २६५, बलिमस्तक में दीपदान २६६, अवैध हिंसा में दोष २६६।

**चतुर्दश उल्लास : मुपचारादि निर्णय** २६९-२९२

उपचार विधि २६६, पाद्या निरूपण २७०, मधुपर्क निरूपण

२७१, गन्ध कथन २७२, पुष्प प्रकरण २७२, पुष्पों का पर्युषित काल २७५, पुष्पों का चयन २८०, धूप प्रकरण २८१, दीप प्रकरण २८२, नैवेद्य प्रकरण २८३, प्रदक्षिण विधि २८४, प्रणामविधि २८५, उपचार प्रकरण २८७, नैवेद्य आदि को ढकने की अवश्यकता २८८, नैवेद्य दान विधि २८६, प्राणादि मुद्रा २६०, द्रव्यों के निर्माल्यता का काल नियम २६१ ।

**पञ्चदश उल्लास : जपादि फल निर्णय** २९३-३०९

अथ शाक्ताचार २६३, कुलवृक्ष २६४, पीठ निरूपण २६५, पीठस्थान में जपफल २६६, नित्यसंकेत स्तव ३०१, शिवा बलि ३०३, शिवा बलि की नित्यता ३०४, शिवा बलि दान मन्त्र ३०४, शिवा-पूजा का फल ३०५, देवी को प्रणाम का फल ३०७ ।

**षोडश उल्लास : संसर्ग दोषादि निर्णय** ३१०-३२८

जपादिफलाभाव निर्णय ३१०, संसर्ग दोष ३१०, प्रायश्चित्त ३१४, धृतकवच नाश प्रायश्चित्त ३१५, प्रतिष्ठा क्रम ३१६, यत्न-नाश का प्रायश्चित्त ३१६, पूजाकाल के यन्त्रादिपतन का प्रायश्चित्त ३१७, माला विनाश प्रायश्चित्त ३१८, गुरुक्रोध के उपशमन का प्रायश्चित्त ३२०, अनिवेदित भोजन प्रायश्चित्त, ३२० ।

**सप्तदश उल्लास : कुण्ड निर्णय** ३२९-३३८

कुण्डविधि ३२६, मण्डप निर्माण ३२६, मानांगुलि लक्षण ३३०, मण्डपस्थान परिमाण ३३०, दिक्पालवर्ण ३३१, कुण्डशरीर ३३१, चतुरस्र कुण्डलक्षण ३३२, खात परिमाण ( कुण्ड को गहराई परिमाण ) ३३२, मेखला निरूपण ३३४, नाल निरूपण ३३६, कुण्डदोष ३३७, स्थण्डिल लक्षण ३३७ ।

**अष्टादश उल्लास : होमादि निर्णय** ३३९-३५९

होमविधि ३३६, अष्टादश कुण्ड संस्कार ३३६, प्रकारान्तर संस्कार ३४०, पञ्चशुद्धि ३४१, अग्निप्रणयन ३४२, जिह्वमन्त्र ३४४, जिह्वाधिपति देवता ३४५, मूर्त्तिन्यास ३४६, वह्नि प्रज्वालन मन्त्र ३४७, परिधि लक्षण ३४८, वह्निध्यान ३४८, होमविधि ३५१, अग्निमुख निरूपण ३५६, श्रोत्रादि का हवन फल ३५६, सर्वमङ्गलादिनाम ३५७ ।

# शाक्तानन्दतरङ्गिणी

# शाक्तानन्दतरंगिणी

## प्रथमोल्लासः

### मङ्गलाचरणम्

प्रणम्य प्रकृतिं नित्यां परमात्मस्वरूपिणीम् ।
तन्यते भुक्तिमुक्त्यर्थं शाक्तानन्दतरङ्गिणीम् ॥

### प्रकृतिशब्दार्थः

अथ का प्रकृतिः ? तथाहि—गुणत्रयसाम्यावस्था प्रकृतिः । तथा चोक्तं यामले—

सत्वं रजस्तम इति गुणत्रयमुदाहृतम् ।
साम्यावस्थितिरेतेषामव्यक्तं प्रकृतिं विदुः ।
सैव मूलप्रकृतिः स्यात् प्रधानं पुरुषोऽपि च ॥

---

### मङ्गलाचरण

परमात्मस्वरूपा नित्या प्रकृति को प्रणाम कर भोग तथा मोक्ष के निमित्त शाक्तानन्दतरङ्गिणी रचित किया जा रहा है ।

### प्रकृति शब्द का अर्थ

प्रकृति क्या है ? ऐसा है–गुणत्रय ( सत्त्व, रज, तम ) की साम्यावस्था ही प्रकृति है । यामल शास्त्र में कहा गया है—

सत्त्व, रज तथा तम–यह गुणत्रय कहा गया है । इनकी साम्यावस्था को पाण्डितगण अव्यक्त प्रकृति कह कर जानने हैं । वही मूल प्रकृति प्रधान है और पुरुष भी ।

**अन्यत्रापि—**

सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं प्रिये ।
यदा सा परमा शक्तिर्गुणाधिष्ठानमाचरेत् ।
प्रकृतित्वं भवेत्तस्याः पुरुषः स्यात् सदाशिवः ॥

## नित्याशब्दार्थः

नित्याशब्दार्थमाह शक्तियामले—

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवो यस्यां निजेच्छया ।
पुनः प्रलीयते यस्यां नित्या सा परिकीर्तिता ॥

## परमात्मशब्दार्थः

परमश्चासौ आत्मा चेति परमात्मा, उत्कृष्ट आत्मा इत्यर्थः । उत्कृष्टत्वं च स्वेच्छया ब्रह्मविष्णुशिवादिशरीराणामुत्पादकत्वम् । अथवा तत्तदिन्द्रियरहितोऽपि तत्तदिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाश्रयः । तथा च श्रुतिः(श्वेता० ३/१९)—

---

अन्यत्र भी कहा गया है—

हे प्रिये ! सत्त्व, रजः तथा तमः—यह गुणत्रय है । जिस समय परमा शक्ति गुणत्रय में अधिष्ठान करती है, उसी समय उसका प्रकृतित्व होता है एवं पुरुष ( निर्गुण शिव ) सदाशिव होते हैं ॥ ३ ॥

### नित्या शब्द का अर्थ

शक्ति यामल तन्त्र में नित्या शब्द का अर्थ कहा गया है—

जिनमें अपने इच्छा से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवादि की उत्पत्ति होती है एवं पुनः जिनमें लय होता है, वही नित्या नाम से प्रसिद्ध है ।

### परमात्म शब्द का अर्थ

परम जो आत्मा, वही परमात्मा अर्थात् 'परम' शब्द का अर्थ है—'उत्कृष्ट आत्मा' 'यह उत्कर्ष अपने सङ्कल्पमात्र से ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिवादि के शरीर का उत्पादन कर्तृत्व है' अथवा चक्षुरादि इन्द्रिय रहित हो कर भी इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष का आश्रय है । श्रुति उसी प्रकार कहती हैं—

'अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुषं महान्तम्' ॥ इति ।

नित्यज्ञानकृत्याश्रयः परमात्मा । स च लाघवाद् एक एव । स च जन्यज्ञानप्रकृत्याश्रयो जीवात्मा, स चानन्तः, मनुष्यपशुपक्ष्यादि-भेदात् । तथा शिवविष्णुदुर्गादीनां शरीरभेदाद् परमात्मा नाना एवास्तु इति वाच्यम्, घटाद्युपाधिभेदेनाकाशस्य नानात्वभ्रमवत् मनुष्यपशुपक्ष्यादिशरीरभेदेनात्मनो भिन्नत्वभ्रमात् सुषुप्तिप्रलयादौ शरीरनाशे आत्मन एकत्वदर्शनात्, तथा भक्तानुग्रहाय गृहीत-शरीराणां शिवादिदैवतानां नानात्वेन तत्र नानात्वभ्रमात् । नहि भ्रमाद् वस्तुसिद्धिरिति ।

अथ उल्लासविषयनिर्णयः प्रतिपाद्यमाह—

उल्लासे प्रथमे वक्ष्ये शरीरं कर्मसम्भवम् ।
दीक्षा द्वितीये वक्ष्यामि तृतीये योगनिर्णयम् ॥

---

वह हस्त-पद रहित होकर गमन तथा ग्रहण करते हैं, चक्षु रहित होकर भी दर्शन करते हैं, कर्ण रहित होकर भी श्रवण करते हैं, वे ज्ञातव्य विषय जानते हैं, परन्तु उनका कोई ज्ञाता नहीं है, उन्हें आदि तथा महान् पुरुष कहते हैं ।

परमात्मा नित्यज्ञान तथा नित्य कृति का आश्रय है । लाघववशात् वह एक ही है । जीवात्मा जन्य ज्ञान तथा ज्ञान जन्यकृति का आश्रय है । मनुष्य, पशु, पक्षी प्रकृति के भेद से वह जीवात्मा अनन्त ( असंख्य ) है । उसी प्रकार शिव, विष्णु तथा दुर्गादि विग्रहों के भेदवशात् परमात्मा भी अनेक होगा, यह नहीं कहा जा सकता है क्योंकि घट इत्यादि उपाधिभेद से आकाश के अनेक होने के भ्रम की तरह मनुष्य-पशु-पक्षी इत्यादि शरीर भेद से आत्मा के अनेक होने का भ्रम होते हुए भी सुषुप्ति अथवा प्रलय में शरीर विनष्ट होने पर आत्मा का एकत्व बोध होता है और भक्तों के अनुग्रह के निमित्त शिवादि देवताओं के गृहीत शरीर का अर्थात शिवदुर्गादि विग्रहों के भेद से उसी एक मात्र परमात्मा में भेद भ्रम होता है । भ्रम प्रयुक्त वस्तु की सिद्धि नहीं होती है ।

तदनन्तर उल्लास प्रतिपादन में कहा गया है—

प्रातःकृत्यं चतुर्थे तु आसनं पञ्चमे तथा।
अन्तर्यागविधिं षष्ठे नित्यपूजा च सप्तमे॥
वसौ मालाविधानं तु नवमे जपलक्षणम्।
महासेतुं च सेतुं च कुल्लुकां दशमे तथा॥
मुखस्य शोधनं रुद्रे द्वादशे च पुरस्क्रियाम्।
संस्कारं यन्त्रराजस्य बलिदानं त्रयोदशे॥
फलं चतुर्दशे चैव उपचारादिदानजम्।
नामस्मरणपूजादिफलं पञ्चदशे तथा॥
कलौ संसर्गदोषादि प्रायश्चित्तं तु षोडशे।
कुण्डं सप्तदशे चैव होमं चाष्टादशे ततः॥
ततः सर्वमङ्गलादिनाम्नामर्थो निरूपितः।
दुर्गादेव्याश्च माहात्म्यं विशेषेण प्रदर्शितम्।
गुरुपादरजो ध्यात्वा कृत उल्लासनिर्णयः॥

## शरीरोत्पत्तिक्रमः

**ज्ञानभाष्ये देव्युवाच-**

---

प्रथम उल्लास में कर्म ( धर्माधर्म ) जनित शरीर, द्वितीय उल्लास में दीक्षा, तृतीय उल्लास में योग-निर्णय, चतुर्थ उल्लास में प्रातःकृत्य, पञ्चम उल्लास में आसन-नियम, षष्ठ उल्लास में अन्तर्यागविधि, सप्तम उल्लास में नित्य-पूजा, अष्टम उल्लास में मालाविधि, नवम उल्लास में जपविधि, दशम उल्लास में महासेतु, सेतु, एवं कुल्लुका, एकादश उल्लास में मुखशोधन, द्वादश उल्लास में पुरश्चरण, त्रयोदश उल्लास में यन्त्र-संस्कार तथा बलिदान, चतुर्दश उल्लास में उपचार दान का फल, पञ्चदश उल्लास में नाम-स्मरण तथा पूजादि का फल, षोडश उल्लास में संसर्गदोषादि जनित पापों का प्रायश्चित, सप्तदश उल्लास में कुण्डविधान एवं अष्टादश उल्लास में होमविधि तथा सर्वमङ्गलादि नाम का अर्थ तथा विशेषतः दुर्गादेवी का माहात्म्य निरूपित है। गुरुश्री के चरण-रज का ध्यान कर उल्लास निरूपण कर रहा हूँ॥ ६॥

### शरीर उत्पत्ति का क्रम

ज्ञानभाष्य में देवी कह रही है —

शरीरं कीदृशं नाथ मुक्तिर्वा केन कर्मणा ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे शशिशेखर ॥

**ईश्वर उवाच**

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शरीरं कर्मसम्भवम् ।
रजस्वला यदा नारी विशुद्धा पञ्चमे दिने ॥
पीडिता कामबाणेन ततः पुरुषमीहते ।
भगलिङ्गसमायोगान्मैथुनं स्यात्तया तयोः ॥
अन्योन्यस्पर्शनाद् देवि ! जायते च महत्सुखम् ।
क्षरते च तथा रेतः प्राणापानादिसंश्रितम् ॥
क्षितिरापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
सर्वेषां तत्त्वं प्रादुः स्याद् देहस्थरक्तबीजयोः ॥
नाभिरन्ध्रे तदा देवि ! भ्राम्यते च समीरणैः ।
कुम्भकारो यथा चक्रे घटते च घटादिकम् ॥
तथा समीरणो गर्भे घटते प्राणिनां तनुम् ।

---

हे नाथ ! हे शशिशेखर ! शरीर का रूप क्या है ? किस कर्म के द्वारा मुक्ति होती है ? (वह) इस समय सुनने की इच्छा हो रही है । मुझसे कहिये ।

ईश्वर कहने लगे—

हे देवि ! कर्म सम्भूत देह का विषय कह रहा हूँ सुनो । रजस्वला स्त्री जब ऋतु काल के पञ्चम दिन में विशुद्धा होती है, तब वह कामबाण से पीड़ित होकर पुरुष संसर्ग की कामना करती है । हे देवि ! उस समय स्त्री-पुरुष के भग-लिङ्ग के संयोग से मैथुन निष्पन्न होता है ।

एक दूसरे के स्पर्श से दोनों को परम सुख प्राप्त होता है और उसी समय प्राणा पान वायु से संमिश्रित रेत का पात होता है ।

उस समय देह स्थित रक्त तथा शुक्र में क्षिति, जल, तेजः, वायु तथा आकाश समस्त भूतों के तत्त्व प्रादुर्भूत होते हैं ।

हे देवि ! उसी समय वह रक्त और शुक्र वायु के द्वारा स्त्री के नाभिरन्ध्र में सञ्चालित होता है, जैसे कुम्भकार चक्र के उपर घटादि वस्तु का निर्माण करता है, वायु भी तद्रूप गर्भ में जीव देह का निर्माण करता है ।

कललं चैकरात्रेण बुद्बुदं पञ्चमे दिने ॥
शोणितं दशरात्रेण मांसपिण्डं चतुर्दशे ।
मासैकेऽपि च सम्पूर्णे मांसपिण्डोऽङ्कुरायते ॥
आदौ संजायते पिण्डो ब्रह्माण्डः सदृशाङ्कुरः ।
तस्य मध्ये सुमेरुश्च कङ्कालदण्डरूपिणः ॥
चराचराणां सर्वेषां देवादीनां विशेषतः ।
आलयः सर्वभूतानां मेरोरभ्यन्तरेऽपि च ॥
प्रदीपकलिकाकारो जीवो हृदि सदा स्थितम् ।
रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः ॥
प्राणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कृष्यते ।
जीवस्य परमेशानि परिवारगणं शृणु ॥
अक्षिणी नासिके कर्णौ जिह्वा च कमलानने ।
हस्तौ पादौ महेशानि ! गुह्योपस्थौ क्रमात् प्रिये ॥
नाभिश्च परमेशानि ! मनश्च परमेश्वरि ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्याश्चेति देहे संस्थिताः ॥

---

एक ही रात में वह कलल तथा पञ्चम दिन में बुद्बुद् होता है । दशम रात्रि में वह शोणित तथा चतुर्दश दिन में मांसपिण्ड में परिणत होता है । एक मास पूर्ण होने पर मांसपिण्ड का अंकुरण होता है । प्रथमतः वह अंकुरयुक्त मांसपिण्ड सूक्ष्म ब्रह्माण्ड रूप में परिणत होता है ।

उस मांसपिण्ड के बीच कङ्कालदण्डरूप सुमेरु होता है । उस मेरु के बीच विशेषतः चराचर समस्त भूतों के देव इत्यादि का आलय वर्त्तमान रहता है । प्रदीपकलिकाकार जीव हृदय में सर्वदा अवस्थित रहता है । रज्जुबद्ध श्येन पक्षी जिस प्रकार गमन करने पर भी पुनः आकृष्ट हो जाता है । उसी प्रकार प्राणबद्ध जीव प्राण तथा अपान वायु के द्वारा देह में आकृष्ट होता है ।

हे परमेश्वरि ! अब जीवों के परिवार वर्ग का श्रवण करो ।

हे प्रिये ! हे परमेश्वरि ! दो आँख, दो नाक, दो कर्ण और जिह्वा, हस्तद्वय तथा पदद्वय, गुह्य, उपस्थ, नाभि, मन, जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति ये सब प्राणिवर्ग के देह में अवस्थान करते हैं । हे परमेश्वरि ! सभी इन्द्रिय-

इन्द्रियाणां च सर्वेषां मनः परमसारथिः ।
पापैः पुण्यैर्महेशानि बद्धः स्यादात्मनः प्रिये ॥
सङ्गत्या सदसत्कर्म जीवः सर्वं करोति हि ।
विशुद्धसात्त्विको जीवः सदसत्कर्मवर्जितः ॥
मनसा जीवसंयोगात् सत्कार्यं कुरुते सदा ।
मासद्वये तु सम्पूर्णे मेदस्तत्र प्रजायते ॥
मज्जास्थीनि त्रिभिर्मासैः केशास्त्वक् च चतुष्टये ।
कर्णाक्षिनासिका वक्त्रं कण्ठोदरं च पञ्चमे ॥
रक्तादुत्पद्यते शुक्रं शुक्राद् बिन्दुसमुद्भवः ।
प्राणतो वायुरुत्पन्नः कालाग्निः स्यादपानतः ॥
शुक्रतो नाडिकोत्पत्तिः शुक्रादग्निः समुद्भवः ।
मांसतश्च मलोत्पत्तिर्मज्जा चापि ततो भवेत् ॥
वायुना प्राणनिष्पत्तिरपानादग्निसम्भवः ।
शुक्रेणोत्पादिता जिह्वा नासिका सर्वदेहिनाम् ॥
रक्तादुत्पद्यते नेत्रं वामं चैव तु दक्षिणम् ।
प्राणादुत्पद्यते शून्यं प्राणरन्ध्रद्वयं तथा ॥

---

गणों में से मन श्रेष्ठ सारथि अर्थात् सभी इन्द्रियों का परिचालक होता है। हे प्रिये ! पाप तथा पुण्य समूहों के द्वारा जीव बद्ध होता है तथा बुद्धि के संसर्ग से समस्त सत् तथा असत् कर्म करता है। सदसत् कर्म रहित वह जीव शुद्ध सत्त्व-प्रधान बुद्धि के साथ अभिन्न होकर मन के साथ प्राण के सम्बन्धवशात् सत्कार्य-सम्पादन करते हैं।

मासद्वय पूर्ण होने पर उस मांसपिण्ड में मेद उत्पन्न होता है। तीन मास में मज्जा तथा अस्थि, चतुर्थ मास में केशराशि तथा त्वक्, पञ्चम मास में कर्ण, चक्षुः, नासिका, वक्त्र, कण्ठ तथा उदर उत्पन्न होता है।

शोणित से शुक्र, शुक्र से बिन्दु ( ओजो धातु ) उत्पन्न होता है। प्राण से वायु, अपान वायु से कालाग्नि ( उदराग्नि ) उत्पन्न होता है।

शुक्र से नाड़ी तथा अग्नि ( धातवाग्नि ), मांस से मल तथा मज्जा उत्पन्न होता है। वायु से प्राण, अपान से अग्नि एवं शुक्र से समस्त प्राणियों के जिह्वा तथा नासिका, रक्त से वाम तथा दक्षिण नेत्र एवं प्राण से शून्य, घ्राणरन्ध्र द्वय उत्पन्न होता है।

षष्ठे मुखं तथा पादौ सर्वाङ्गानि च सप्तमे ।
सन्धिः सम्पूर्णतां याति अष्टमे मासि वै ततः ॥
अण्डाधारस्तु कङ्काल आरभ्य गुदमूलतः ।
द्वात्रिंशज्ज्ञानविज्ञेय ग्रन्थिको वर्द्धतः सदा ।
तस्य मध्ये सदा सर्वा नाड्यस्तत्र व्यवस्थिताः ॥

## शरीरस्थनाडीनिर्णयः

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयिका ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ॥
अलम्बुषा कुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा ।
अन्याश्च नाडिकाः क्षुद्राः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥
इडा च वामभागे तु दक्षिणे पिङ्गला तथा ।
ब्रह्मरन्ध्रे सुषुम्ना च गान्धारी वामचक्षुषि ॥
दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णेऽथ दक्षिणे ।
वामे यशस्विनी चैव मुखे चालम्बुषा तथा ॥
कुहुश्च लिङ्गमूले च शङ्खिनी शिरसोपरि ।

---

षष्ठ मास पूर्ण होने पर मुख तथा पदद्वय, सप्तम मास में सर्वाङ्ग उत्पन्न होता है । उसके बाद अष्टम मास में सन्धि, अण्डाधार तथा बत्तीस प्रकार के ज्ञानगम्य ( सूक्ष्म ) ग्रन्थियुक्त कङ्काल, मलद्वार के मूलदेश से प्रारम्भ कर वर्द्धित होने लगता है । उसके मध्य में समस्त नाड़ियाँ वर्त्तमान रहती हैं ।

## शरीरस्थ-नाड़ी निर्णय

उसके मध्य में इड़ा, पिङ्गला, तीसरी सुषुम्णा, गन्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहु, तथा शङ्खिनी नाड़ियाँ प्रधान हैं। एवं अन्य क्षुद्र नाड़ियाँ ७२००० हैं । मेरुदण्ड के वाम भाग में इड़ा, दक्षिण में पिङ्गला, ब्रह्मरन्ध्र में सुषुम्णा, वाम चक्षु में गन्धारी, दक्षिण चक्षु में हस्तिजिह्वा, दक्षिण कर्ण में पूषा, वाम कर्ण में यशस्विनी, मुख में अलम्बुषा, लिङ्गमूल में कुहु तथा मस्तक मध्य में शङ्खिनी—ये दश नाड़ियाँ इस प्रकार

एवं द्वारं समावृत्य तिष्ठन्ति दशनाडिकाः ॥
क्षितिश्च वारितेजश्च वायुराकाशमेव च ।
स्थैर्यं गता इमे पञ्च बाह्याभ्यन्तर एव च ॥

## भूतगुणाः

अस्थि चर्म तथा नाडी लोममांसस्तथैव च ।
एते पञ्चगुणाः प्रोक्ताः पृथिव्यां च व्यवस्थिताः ॥
मलमूत्रं तथा शुक्रं श्लेष्मा शोणितमेव च ।
एते पञ्चगुणाः प्रोक्ता आपस्तत्र व्यवस्थिताः ॥
क्षुधा तृष्णा तथा निद्रा प्रमोहः क्षान्तिरेव च ।
एते पञ्चगुणाः प्रोक्तास्तेजस्तत्र व्यवस्थितम् ॥
विरोधाक्षेपणाकुञ्चधारणं तर्पणं तथा ।
एते पञ्चगुणाः प्रोक्ताः मारुते च व्यस्थिताः ॥
रागो द्वेषश्च मोहश्च भयं लज्जा तथैव च ।
एते पञ्चगुणाः प्रोक्ता आकाशे च व्यवस्थिताः ॥

## शरीरस्थवायुनिर्णयः

---

समस्त द्वार आवृत कर (देह मध्य में) रहते हैं। पृथिवी, जल, तेजः, वायु तथा आकाश ये पञ्चभूत बाहर तथा देहाभ्यन्तर में स्थिर होकर विद्यामान हैं।

### भूतगुण

अस्थि, चर्म, नाड़ी, लोम तथा मांस—ये पाँच पृथिवी के प्रसिद्ध गुण (अवस्था अथवा विकार) हैं और यह पृथिवी में ही अवस्थित है। मल, मूत्र, शुक्र, श्लेष्मा तथा शोणित—ये पाँच जल के गुण हैं। जल इसी पाँचों में अवस्थित है, अर्थात् ये पाँच जल प्रधान हैं। क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, मोह तथा क्षान्ति—ये पाँच तेज के गुण हैं। तेज इन्हीं पाँचों में वर्त्तमान है। विरोध, आक्षेपण, आकुञ्चन, धारण तथा तृप्ति—ये पाँच वायु के गुण हैं। ये वायु में ही रहते हैं। राग, द्वेष, मोह, भय तथा लज्जा—ये पाँच आकाश के गुण हैं और आकाश में ही रहते हैं।

### शरीरस्थ वायु निर्णय

प्राणापानसमानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।
नागः कूर्मोऽथा कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥
एते दशगुणाः प्रोक्ताः सर्वे प्राणसमात्मकाः ।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ॥
समानो नाभिदेशे च उदानः कण्ठदेशतः ।
व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः पञ्चवायवः ॥
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
एते नाडीसहस्रेषु वर्तन्ते जीवरूपिणः ॥

## शरीरकोषवर्णनम्

ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे ।
पातालं भूधरा लोका आदित्यादि नवग्रहाः ॥
(भूरादि सप्तस्वर्गाश्च नामाश्च सर्वदेहिनाम्) ।
पिण्डमध्ये स्थिताः सर्वे स्थानं तेषां वदामि ते ॥

## शरीरे सप्तपातालवर्णनम्

पादाधस्त्वतलं विद्यात्तदूर्ध्वं वितलं तथा ।

---

प्राण, अपान, समान, तथा व्यान एवं नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय—ये दस वायु के गुण कहे जाते हैं। ये सभी वायु प्राण के तुल्य रूप हैं, अथात् प्राण वायु के ही अवस्था-विशेष हैं। प्राण वायु सर्वदा हृदय में अवस्थित रहता है। गुह्यदेश में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान एवं सम्पूर्ण शरीर में व्यान वायु वर्त्तमान रहता है। उन में पञ्चवायु ही प्रधान हैं। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय ये जीवरूप से हजारों नाड़ियों में अवस्थित रहते हैं।

### शरीरकोषवर्णन

जो गुण ब्रह्माण्ड में वर्त्तमान है, वे सभी देह में भी स्थित होते हैं। पाताल, पर्वतलोक, आदित्यादि नवग्रह, भूरादि सप्तस्वर्ग तथा नागगण—ये सभी समस्त प्राणियों के देह में अवस्थित हैं, उन सभी का स्थान तुम्हें कह रहा हूँ।

### शरीर में सप्त पाताल वर्णन

पाद के अधोभाग में अतल विद्यमान हैं। उसका ऊर्ध्व भाग वितल है,

जानुनोः सुतलं चैव तलं च सन्धिरन्ध्रके।
तलातलं गुद(ल्फ)मध्ये लिङ्गमूले रसातलम्।
पातालं कटिसन्धौ च पादादौ लक्षयेद् बुधः॥

## शरीरे भूरादिलोककथनम्

भूर्लोको नाभिदेशे तु भुवर्लोकस्तथा हृदि।
स्वर्लोकः कण्ठदेशे तु महर्लोकश्च चक्षुषि॥
जनलोकस्तदूर्ध्वंश्च तपोलोको ललाटके।
सत्यलोको महायोनौ भुवनानि चतुर्दशे॥

## शरीरे सप्ताचलवनर्णनम्

त्रिकोणे च स्थितो मेरूर्ध्वलोके च मन्दरः।
कैलासो दक्षिणे कोणे वामकोणे हिमालयः।
विन्ध्यो विष्णुस्तदूर्ध्वे च सप्तैते कुलपर्वताः॥

## शरीरस्थ सप्तद्वीपवर्णनम्

अस्थि स्थाने महेशानि ! जम्बूद्वीपो व्यवस्थितः।

---

जानुद्वय में सुतल है, सन्धिरन्ध्रों में तल है, गुदमध्य में तलातल, लिङ्गमूल में रसातल है पाद के अग्रभाग तथा कटि के सन्धिस्थलों में पण्डित-गण पाताल दर्शन करते हैं।

### शरीरस्थ भूरादि लोककथन

नाभिदेश में भूर्लोक, हृदय में भुवर्लोक, कण्ठदेश में स्वर्लोक, चक्षुद्वय में महर्लोक, उसके ऊर्ध्वभाग में अर्थात् भ्रूद्वय में जनलोक, ललाट में तपोलोक एवं महायोनि में अर्थात् मस्तकस्थ सहस्रार में सत्यलोक–ये चतुर्दश भुवन ( सप्तपाताल सहित ) समस्त देहमध्य में विद्यमान रहते हैं।

### शरीरस्थ सप्तपर्वतों का वर्णन

देह के मध्य त्रिकोण में मेरु पर्वत, ऊर्ध्व कोण में मन्दर, दक्षिण कोण में कैलास, वाम कोण में हिमालय तथा उसके ऊर्ध्वभाग में विन्ध्य तथा विष्णु–ये सात कुलपर्वत विद्यमान हैं।

### शरीरस्थ सप्तद्वीप वर्णन

प्राणियों के अस्थिस्थान में जम्बुद्वीप, मांस के मध्य में कुशद्वीप, शिरा-

मांसेषु च कुशद्वीपः क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च ॥
शाकद्वीपः स्थितोरक्ते प्राणिनां सर्वसन्धिषु ।
तदूर्ध्वं शाल्मलिद्वीपः प्लक्षश्च लोमसञ्चये ।
नाभौ च पुष्करद्वीपः सागरस्तदनन्तरम् ॥

## शरीरस्थसप्तसागरवर्णनम्

लवणोदस्तथा मूत्रे शुक्रे क्षीरोदसागरः ।
मज्जा दधिसमुद्रश्च तदूर्ध्वं घृतसागरः ॥
रसोदके रसः प्रोक्त इति पुस्तकान्तरे पाठः ।
वसापः सागरः प्रोक्त इक्षुः स्यात् कटिशोणितम् ।
शोणितेषु सुरासिन्धुः कथिताः सप्तसागराः ॥

## शरीरस्थग्रहमण्डलम्

ग्रहाणां मण्डलं चैव श्रृणु वक्ष्यामि पार्वति ! ।
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः ॥
लोचने मङ्गलः प्रोक्तो हृदि सोमसुतस्तथा ।
उदरे च गुरुश्चैव शुक्रे शुक्रस्तथैव च ॥
नाभिचक्रे स्थितो मन्दो मुखे राहुः स्थितः सदा ।
पादे नाभौ च केतुश्च शरीरे ग्रहमण्डलम् ॥

---

समूह में क्रौञ्चद्वीप, रक्त में शाकद्वीप, उसके ऊर्ध्व भाग में प्राणियों के समस्त सन्धियों में शाल्मली द्वीप, लोम स्थान में प्लक्ष द्वीप एवं नाभि में पुष्कर द्वीप विद्यमान रहता है।

### शरीरस्थ सप्तसागर वर्णन

इसके बाद सागर अवस्थित है। मूत्र में लवण समुद्र, शुक्र में क्षीरोद-सागर, मज्जा में दधिसागर, उसके ऊर्ध्वभाग में अर्थात् चर्म में घृतसागर, वसा में जलसागर, कटिरक्त में इक्षुसागर एवं शोणित में सुरासागर—इन सप्तसागरों की अवस्थिति इस प्रकार से कथित है।

### शरीरस्थ ग्रहमण्डल

हे पार्वति ! देह के मध्य में ग्रहगणों की अवस्थिति कह रहा हूँ—श्रवण करो। नादचक्र में सूर्य अवस्थित हैं, बिन्दुचक्र में चन्द्र, चक्षुओं में मङ्गल, हृदय में बुध, उदर में वृहस्पति, शुक्र में शुक्र, नाभिचक्र में शनि, मुख में राहु एवं पाद तथा नाभि में केतु—शरीर में ग्रहमण्डल इस प्रकार हैं।

## गर्भस्थजीवस्य पूर्वजन्मस्मरणम्

नवमे मासि गर्भस्थः सर्वान् संस्मरते मनः ।
नवद्वारे पुरे देहि समयांश्च विकारकान् ॥
सुखं दुःखं समं कृत्वा भुक्तं च हृदये नृणाम् ।
सुकृतं दुष्कृतं चैव यत्कृतं पूर्वजन्मनि ॥
तत्सर्वं सफलं ज्ञात्वा ऊर्ध्वपादस्त्वधोमुखः ।
गर्भस्तु संप्रविष्टाऽसौ स्तिमिते घोरदर्शने ॥
यदि माता सुखं भुङ्क्ते अन्नपानादिकं ततः ।
जनन्या नाभिदेशे तु मुखं दत्त्वा पिवत्यसौ ॥
ततो जीवति गर्भेऽसौ अन्यथा मरणं भवेत् ।
अभ्यस्यामि शिवं ज्ञानं संसारार्णवतारणम् ॥
(देवद्विजगुरूणां हि पूजनं शङ्कयान्वितम्) ।
करिष्यामि यथा भाग्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥
चिरयोगी ततो भूत्वा मुक्तो यास्यामि तत्पदम् ।
एवं गर्भस्थितो जीवो गर्भयातनयार्दितः ।

---

### गर्भस्थजीवका पूर्वजन्मस्मरण

नवममास पूर्ण होने पर गर्भस्थ जीव मन ही मन समस्त विषय स्मरण करता है, एवं नवद्वार विशिष्ट शरीर के मध्य में रहकर आचार तथा विकार (परिणाम) की चिन्ता करता है। यह जीव मानवगणों के अनुभूत सुख-दुःख को समान मान कर तथा पूर्वजन्म में अर्जित समस्त पापपुण्य से ही ऊर्ध्वपाद तथा अधोमुख होकर घोरदर्शन अन्धकाराच्छन्न गर्भ में प्रवेश किया है—ऐसी मान्यता है। माता यदि उस समय सुख से अन्न पानादि भोजन करती है, तो गर्भस्थजीव माता के नाभिदेश में मुख लगाकर पान करता रहता है। इस प्रकार वह गर्भ में जीवित रहता है। यह न होने पर उसकी मृत्यु हो जायगी।

योनि द्वार अति संङ्कीर्ण है। यदि मैं निर्गत हो सकूँ, तो संसार-सागरतारक कल्याणजनक ज्ञान का अभ्यास करूँगा एवं शङ्कित होकर भाग्यानुसार देव द्विज तथा गुरुओं की पूजा करूँगा, यह मेरा निश्चय है, इसमें संशय नहीं है, इसके बाद चिरकाल योगी होकर रहूँगा एवं संसार से मुक्त होकर उस परम पद मोक्ष को प्राप्त करूँगा—गर्भस्थजीव अपने चैतन्य

नित्यं भावयते चित्ते लब्धचैतन्यलक्षणः ।
एतस्मिन्नन्तरे देवि विश्वेषां गर्भसङ्कटे ॥
नवमे दशमे मासि प्रबलैः सूतिमारुतैः ।
निःसार्यते बाण इव जन्तुश्छिद्रेण सज्वरः ।
पतितोऽपि न जानाति मूर्च्छितोऽपि ततश्च्युतः ॥
सूतिवातस्यवेगेन योनिरन्ध्रस्य पीडनात् ।
विस्मृतं सकलं ज्ञानं गर्भे यच्चिन्तितं हृदि ॥
यथा भवति तत्त्वेषु सूतिभूतेषु पीडनात् ।
मातरं स्मरते नित्यं बुभुक्षा दृढवेदनम् ॥

## स्त्री-पुरुषादि भेदकारणम्

रक्ताधिका भवेन्नारो भवेच्छुक्राधिकः पुमान् ।
नपुंसकं ततो जातं साम्ये च रजबीजयोः ॥
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ।
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ॥

---

स्वरूप की उपलब्धि करके गर्भ यातना में पीड़ित होकर भी सर्वदा ही मन ही मन में इसी प्रकार चिन्ता करते हैं।

हे देवी ! उसी समय सभी को ही गर्भ पीड़ा होती है। तब वह बालक नवम अथवा दशम मास में यन्त्रणा से व्याकुल होकर प्रबल सूतिवायु द्वारा तीर के समान योनिद्वार से गर्भ से विःसृत होता है। उसके बाद भूमिष्ट होकर ही मूर्च्छित हो जाने से गर्भच्युति भी नहीं जान पाता।

जीव गर्भ में रहकर तत्त्व विषय में जो भी कुछ भी सोचता रहा वह सूति वायु के वेग से तथा योनिद्वार के पीड़ा से भूल जाता है। उस सूति वायु रूप बाण से पीड़ित होकर बुभुक्षा में रोदन करते हुए सर्वदा ही माता का स्मरण करता रहता है।

### स्त्रीपुरुषादि भेद कारण

रक्तांश अधिक होने पर नारी, शुक्रांश अधिक होने पर पुरुष एवं रक्त तथा शुक्र के साम्य में (समानता में) नपुंसक उत्पन्न होता है। जीव के गर्भावस्था में ही आयु, शुभाशुभ कर्म, सम्पद, विद्या, तथा मरण—ये पाँच

## जीवावस्थाकथनम्

बालः शिशुश्च पोगण्डः किशोरकस्तथैव च ।
अतः परं तु युवकः प्रौढश्चैव ततः परम् ॥
अतिप्रौढस्तथा वृद्धश्चातिवृद्धस्ततः परम् ।
पलितं मरणं चैव अवस्थाः परिकीर्त्तिताः ॥
तत्क्षणादेव गृह्णाति शरीरमातिवाहिकम् ।
केवलं तन्मनुष्याणां नान्येषां प्राणिनां क्वचित् ॥
प्रेतदेहमिति प्रोक्तं क्रमादेव न संशयः ।
ततः सपिण्डीकरणे बान्धवैः सत्कृते नरैः ॥
पूर्णसंवत्सरे देहमतोऽन्यं सम्प्रपद्यते ।
ततः स नरके याति स्वर्गे वा स्वेन कर्मणा ॥

तत्क्षणात् मृत्युक्षणादिति ।

## जीवानां कर्मफलप्रकारः

देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षितां तथा ।
कृमित्वं स्थावरत्वं च याति जन्तुः स्वकर्मभिः ॥

---

सृष्ट होते हैं अर्थात् अदृष्टानुसार आयु आदि कौन किस प्रकार प्राप्त करेगा, वह गर्भ में ही निरूपित हो जाता है।

### जीवावस्था कथन

बाल्य, शैशव, पोगण्ड, कैशोर, यौवन, प्रौढ़, अतिप्रौढ़, वृद्ध, अतिवृद्ध, पलित, मरण—ये सभी जीवों की अवस्थायें कहीं गयी हैं। जीव मृत्यु के क्षण में ही अतिवाहिक देह धारण करता है। यह देह केवल मानव मात्र को ही मिलता है। अन्य प्राणियों को नहीं मिलता। क्रमशः जीव प्रेतदेह धारण करता है। ऐसा कहा गया है, इसमें संशय नहीं है। उसके बाद बन्धुगणों द्वारा किये गये एक वर्ष में सपिण्डीकरण के द्वारा सत्कृत होने से जीव भोग-देह धारण करता है। उसके बाद वह निज कर्म के अनुसार स्वर्ग में अथवा नरक में गमन करता है। श्लोकोक्त 'तत्क्षणात्' पद का अर्थ है-मृत्युक्षण से।

### जीवों का कर्म फल प्रकार

जीव निज कर्म के द्वारा देवत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व, पक्षित्व, कृमित्व

स्थावरा जङ्गमाद्याश्च पक्षिणः पशवो नराः।
जायन्ते वा म्रियन्ते वा संसारे दुःखसागरे॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
देहे विनष्टे तत्कर्म पुनर्देहं प्रपद्यते॥
तथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा शुभाशुभं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति॥
प्राक्तनं बलवत्कर्म कोऽन्यथा तत्करिष्यति।
देहः कर्मात्मकः प्रोक्तस्तत्तद् देवि ! प्रतिष्ठितम्॥
कर्मयोगानुरूपेण निर्माणं विधिरादिशेत्।
चराचरमिदं देवि ! सर्वं कर्मात्मकं प्रिये॥
माता कर्म पिता कर्म कर्मैव परमो गुरुः।
स्वर्गं वा नरकं वापि कर्मणैव लभेन्नरः॥
सुखदुःखमयैः स्वीयैः पुण्यपापैर्नियन्त्रितः।
तत्तज्जातियुतं देहं सम्भोगं च स्वकर्मजम्॥

---

अथवा स्थावरत्व को प्राप्त होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, जङ्गमादि सभी इस दुःखमय संसार में पुनः पुनः जन्मग्रहण करते हैं तथा विनाश को प्राप्त करते हैं। कर्म के द्वारा ही जीव देहान्तर ग्रहण करता है एवं कर्म के द्वारा ही विनष्ट होता है। देह विनष्ट होने पर भोगदानोन्मुख वह जीव कर्म पुनराय और अन्य एक भोगदेह लाभ प्राप्त करके सहस्र धेनु के बीच वत्स जिस प्रकार अपने माता का अन्वेषण करके अनुगमन करता है, तद्रूप शुभाशुभ कर्म कर्मानुष्ठाता का अनुगमन करते हैं। बलवत् वह प्राक्तन ( प्रारब्ध ) कर्म को कौन अन्यथा कर सकता है।

हे देवि ! देह कर्मात्मक कहा गया है एवं वे कर्म समूह देह में ही सुप्रतिष्ठित है। विधाता कर्मानुसार देह निर्माण का आदेश देते हैं। हे प्रिये ! चराचर सभी प्राणी कर्मात्मक हैं। माता कर्म, पिता कर्म एवं परमगुरु भी कर्म है, अर्थात् जीव ही जीव के कर्मानुसार माता, पिता अथवा गुरुरूप में जन्मग्रहण करते हैं। मनुष्य स्वकर्म के द्वारा ही स्वर्ग अथवा नरक को लाभ प्राप्त करता है। सुख-दुःखात्मक जीव निज पाप-पुण्य के द्वारा प्रेरित होकर ही अपने कर्मानुरूप उन उन जातिविशिष्ट देह तथा कर्मानुरूप भोग लाभ करता है।

## मनुष्यजन्मोत्कर्षकथनम्

अत्र जन्मसहस्रैस्तु सहस्रैरपि पार्वति ! ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥
निद्रा च मैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः ।
ज्ञानवान्मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः प्रिये ॥
सम्पदः स्वप्नसङ्काशा यौवनं कुसुमोपमम् ।
तडिद्वत् परमायुश्च यस्य ज्ञानवतो धृतिः ॥
चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिभिः ।
न मानुष्यं विनान्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवताभूतजातयः ।
नाशमेवानुधावन्ति तस्माच्छ्रेयः समाचरेत् ॥

## मोहप्रभावः

स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः ।
जायन्ते च म्रियन्ते च हा हताऽज्ञानमोहिताः ॥

---

### मनुष्यजन्मोत्कर्ष कथन

हे पार्वति ! इस संसार में जीवगण हजारों हजार जन्म के बीच पुण्य-सञ्चय से कभी काल मनुष्य देह लाभ करते हैं। निद्रा, मैथुन तथा आहार—ये सभी प्राणियों में समान है, किन्तु हे प्रिये ! मनुष्य ज्ञानवान और पशु ज्ञानहीन होते हैं। जिस ज्ञानवान पुरुष को चित्तस्थैर्य लाभ हुआ है, उनके निकट सम्पद् स्वप्न के तुल्य अलीक, यौवन पुष्प के समान क्षणभंगुर तथा परमायु विद्युत् के समान क्षणभंगुर है। चौरासी लक्ष देह के बीच जीव मनुष्य देह के अतिरिक्त अन्य किसी भी देह में तत्त्वज्ञान लाभ नहीं करता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि देवता भी भूतवर्ग विनाश का ही अनुधावन करते हैं, अर्थात् विनाश को प्राप्त होते हैं, अतः श्रेय आचरण ही कर्त्तव्य है।

### मोह का प्रभाव

अज्ञानाच्छन्न मृतप्राय प्राणी समूह स्व स्व देह, मन तथा स्त्री पुत्रादि में आसक्त होकर बार-बार जन्मग्रहण करता है, एवं विनाश को प्राप्त होता है।

प्रभवं सर्वदुःखानामाश्रयं सकलापदाम् ।
आलयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् प्रिये ॥
प्रतिक्षणमयं कायः क्षीयमाणो न लक्ष्यते ।
आमकुम्भ इवाम्भस्थो विशीर्णा नैव भाव्यते ॥
अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे ।
लपन्तमिति मर्त्यं तमत्ति कालवृको बलात् ॥
पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विदार्यते ।
शोष्यते सागरजलं शरीरेष्वपि का कथा ॥

## मोहस्य संसारकारणत्वकथनम्

लोहपाशमयैः पाशैर्नरो बद्धोऽपि मुच्यते ।
स्त्रीधनादिषु संसक्तो मुच्यते न कदाचन ॥
असकृद् देहकर्माणि सुखदुःखानि भुञ्जते ।
परत्राऽज्ञानिनो देवि ! यान्त्यायान्ति पुनः पुनः ॥
अरज्जुबन्धनं सङ्गो दुष्टसङ्गो महाविषः ।

---

हे प्रिये ! समस्त दुःखों का कारण और समस्त आपदों का आश्रय तथा समस्त पापों का आलय इस संसार का परित्याग करना चाहिये । जलमध्यवर्ती अपक्व कुम्भ ( घट ) के समान यह देह प्रतिक्षण विनष्ट हो रहा है और प्रतिक्षण ही विशीर्ण हो रहा है । मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा धन, मेरा बान्धव—इस प्रकार के प्रलापकारी मनुष्य को काल-वृक बलपूर्वक भक्षण कर रहा है । जिस काल से पृथिवी दग्ध हो रही है, जिससे सुमेरु पर्वत विदीर्ण हो रहा है तथा समुद्र शुष्क हो रहा है उससे इस शरीर के सम्बन्ध में और क्या कहना है ? अर्थात् वह शरीर का भी विनाश कर देगा ।

### मोह का संसारकारणत्व कथन

जीव लौहनिर्मित अथवा रज्जुनिर्मित पाश में आवद्ध होकर भी मुक्त हो सकता है, किन्तु स्त्री पुत्रादि ऐश्वर्य में आसक्त होकर कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है । वह बार-बार देहकृत कर्म तथा सुख दुःखादि का भोग करता है ।

हे देवि ! अज्ञानी जीव इस प्रकार इहलोक तथा परलोक में पुनः पुनः गमनागमन करते रहते हैं । विषयासक्ति रज्जु न होने पर भी रज्जु के

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम् ।
यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः ॥

## मोक्षकारणम्

द्वे पदे मोक्षबन्धाय निर्ममेति ममेति च ।
ममेति बध्यते जन्तुर्निममेति च मुच्यते ॥
ममेत्यध्यासनाद् बन्धो विमुक्तिर्निर्ममेति च ।
मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लौहशङ्कुं न पश्यति ॥
सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति ।
कृत्वा पापविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा ॥
रागद्वेषानलैः पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम् ।
स्वदेहमपि जीवोऽयं त्यक्त्वा याति कुलेश्वरि ॥
स्त्रीमातृधनपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना ।

---

समान बन्धन जनक, दुष्ट संसर्ग महाविषस्वरूप अर्थात् महाविष के समान संहारक है। सत्सङ्ग तथा विवेक रूप निर्मल नयनद्वय जिसके पास नहीं है, वह व्यक्ति अन्धा है, वह कुमार्गगामी क्यों नहीं होगा ? ।

### मोक्ष का कारण

ममताराहित्य तथा ममता—ये दोनों ही मोक्ष और बन्ध के कारण हैं। जीव 'ममत्व' बुद्धि द्वारा बद्ध होता है, एवं ममत्वरहित होकर मुक्त होता है क्योंकि ममत्व-निश्चय के द्वारा बन्ध एवं निर्ममता के द्वारा मुक्ति कहा गया है। मांसलुब्ध मत्स्य जिस प्रकार लौहशंकु ( वंशी का काँटा ) को देख नहीं सकता है, उसी प्रकार सुखलुब्ध जीव यमबाधा अर्थात् मृत्यु को नहीं देखता।

हे कुलेश्वरि ! मृत्यु मानव को पापरूप शूल में गूंथ कर, विषयरूप घृत में भिगो कर तथा रागद्वेषरूप अग्नि में पका कर सदा ही भक्षण करता रहता है।

हे कुलेश्वरि ! यह जीव जब अपने शरीर का परित्याग करके चला जाता है, तब उसका कौन कारण शेष रहता है कि स्त्री, माता, पुत्र तथा धन के साथ उसका कोई सम्बन्ध क्या रहेगा ? ।

## संसारस्य दुःखरूपत्ववर्णनम्

शतं जीवनमत्यल्पं निद्रा तस्यार्धहारिणी ।
बाल्यरोगजरादुःखैरर्द्धं तदपि निष्फलम् ॥
दुःखमूलो हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः ।
तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः प्रिये ॥
प्रभाते मलमूत्राभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपासया ।
रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मानवाः सदा ॥
दिव्यौषधं न सेवन्ते महाव्याधिविनाशनम् ।
तद् व्याधिवर्द्धनापथ्यं कुर्वन्ति बहुशो जनाः ॥
सुकर्मफलदं हित्वा दुष्कर्माणि करोति यः ।
कामधेनुं समाक्रम्य ह्यर्कक्षीरं स मार्गतिः ॥
अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसञ्चयः ॥
अध्रुवेण शरीरेण प्रतिक्षणविनाशिना ।
यो ध्रुवं नार्जयेद् धर्मं स मर्त्यो मूढचेतनः ॥

---

## संसार का दुःखरूपत्व वर्णन

शतवर्ष का जीवन अति अल्प होता है, निद्रा उसका आधा आयु हरण करती है। अवशिष्ट का आधा भी बाल्य, रोग, जरा तथा दुःख के द्वारा निष्फल हो जाता है। संसार ही दुःख का मूल है; जिसका यह संसार है, वही दुःखी है।

हे प्रिये ! जिसने इस संसार को त्याग दिया है, वही सुखी है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई सुखी नहीं है। मानव प्रातःकाल में मलमूत्र के द्वारा, मध्याह्न में क्षुधा-तृष्णा के द्वारा एवं रात्रि में काम तथा निद्रा के द्वारा सर्वदा ही पीड़ित हो रहा है, तथापि महाव्याधि ( संसार ) नाशक दिव्यौषध का पान नहीं करता। प्रायः सभी लोग संसार व्याधि के वृद्धि-कारक बहु कुपथ्य सेवन करते हैं। जो व्यक्ति शुभफलप्रद सुकर्म का परित्याग कर दुष्कर्म करता है, वह व्यक्ति निश्चय ही कामधेनु को प्राप्त करके भी अर्कवृक्ष के क्षीर का अनुसन्धान करता है।

शरीर समूह अनित्य, सम्पद् तथा चिरन्तन नहीं है, एवं मृत्यु भी सर्वदा ही निकटवर्ती है। अतएव धर्मसञ्चय अवश्य ही कर्त्तव्य है। जो मानव

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च गच्छति ।
नापि पुत्रो न वा जाति धर्मस्तिष्ठति केवलम् ॥
पुत्रदारमयैः पाशैः पुमान् बद्धो न मुच्यते ।
पण्डिते चैव मूर्खे च बलिन्यप्यथ दुर्बले ॥
ईश्वरे च दरिद्रे च मृत्योः सर्वत्र तुल्यता ।
राजतः सलिलादग्नेश्चौरतः स्वजनादपि ॥
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः पापभृतामिव ।
श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ॥
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ।
कर्मणा मनसा वाचा यः स कर्मनिरतः सदा ॥
अफलाकाङ्क्षि चित्तो यः स मोक्षमधिगच्छति ।
अफलाकाङ्क्षि स्वकीयभोगजनकांक्षारहितमित्यर्थः ।
अहो मोहस्य माहात्म्यं तन्मायाजनितस्य च ।
किमन्यमपि देवेशि मोहयेदमरानपि ॥

इति यामलवचनात् ।

---

अनित्य शरीर के द्वारा नित्य धर्म का उपार्जन नहीं करता, वह मानव मूढ़ है। परलोक में सहायता करने के लिये माता अथवा पिता, पुत्र अथवा जाति—कोई भी गमन नहीं करता, केवल मात्र धर्म ही साथ रहता है। स्त्री-पुत्ररूप पाशों में आवद्ध होकर मानव मुक्तिलाभ कर नहीं सकता। पण्डित-मूर्ख, बलवान्—दुर्बल; सम्राट् तथा दरिद्र—सभी के लिए मृत्यु समान है। धनी व्यक्ति की जिस प्रकार राजा, जल, अग्नि, चोर एवं स्वजन के समीप से सर्वदा भयभीत होता है, उसी प्रकार प्राणिमात्र सर्वदा मृत्यु भय से ग्रस्त रहता है।

आगामी दिनों का कर्म आज ही करना उचित है, अपराह्ण कृत्य पूर्वाह्ण में ही कर्त्तव्य है, क्योंकि मृत्यु मानव का कृताकृत प्रतीक्षा नहीं करती। जो व्यक्ति शरीर मन तथा वाक्य के द्वारा सर्वदा कर्मानुष्ठान करता है एवं जिनका चित्त भोगजनक आकांक्षा से रहित है, वे ही मुक्तिलाभ करते हैं। श्लोकोक्त 'अफलाकाङ्क्षि' शब्द का अर्थ—भोगजनक आकांक्षा रहित है।

यामल तन्त्र में कहा गया है कि हे देवेशि ! उस माया जनित मोह के विषय में अन्य क्या कहा जाय वह तो देवताओं को भी मुग्ध करता है।

मार्कण्डेये—

महामाया हरेश्चैतत्तया सम्मोह्यते जगत्।

तया महामायया जगत् संसारः मोह्यते। न केवलं जगत् सम्मोह्यते, देवानामपि चेतांसि।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

ज्ञानिनामिति प्रशंसायामिन्, नित्यज्ञानिनामित्यर्थः॥

## महामायाशब्दार्थः

महती चासौ माया चेति महामाया, ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मोहजनकत्वात् महामाया। तथा चोक्तं यामले—

सैव माया प्रकृतिर्या सम्मोहयति शङ्करम्।
हरिं तथा विरञ्चिं च तथैवान्यांश्च निर्जरान्॥

कालिकापुराणे (६, ६१-६३)—

---

मार्कण्डेय पुराण में कथित हुआ है—

भगवान की शक्ति महामाया से यह जगत् मोहित हो रहा है। उक्त श्लोक का तात्पर्य है यह जो, वह महामाया कर्तृक जिससे जगत् संसार मुग्ध हो रहा है, वही नहीं देवताओं का भी चित्त मुग्ध हो रहा है। वह अघटनघटनापटीयसी ऐश्वर्यमयी महामाया नित्यज्ञान-विशिष्ट ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि के चित्त को भी बलपूर्वक आकर्षण करके मोह में निक्षेप करती है। श्लोकोक्त 'ज्ञानिनां' पद 'प्रशंसार्थे इन्' प्रत्यय में निष्पन्न होने से उसका अर्थहै—नित्यज्ञान विशिष्ट व्यक्तियों के।

### महामाया शब्द का अर्थ

महती जो माया—वही महामाया है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि का भी मोहजनक है इसलिये उन्हें महामाया कहते हैं। यामल तन्त्र में कहा गया है। यथा—

जो प्रकृति ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्यान्य देवताओं को मोहित करती है, वही महामाया हैं।

कालिका पुराण में कहा गया है—

गर्भान्तिर्ज्ञानसम्पन्नं प्रेरितं सूतिमारुतैः ।
उत्पन्नं ज्ञानरहितं कुरुते या निरन्तरम् ॥
पूर्वातिपूर्वसंस्कारसम्मोहं संनियोज्य च ।
आहारादौ ततो मोहं ममत्वं ज्ञानसंशयम् ॥
क्रोधोपरोधनादिषु क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुनः पुनः ।
पश्चात् कामे नियोज्याशु चिन्तायुक्तमहर्न्निशम् ॥

## महामायाभेदः

सा महामाया द्विविधा-विद्याऽविद्या च । या महामाया मुक्तेर्हेतुभूता सा विद्या । या महामाया संसारबन्धनहेतुभूता साऽविद्या । मार्कण्डेये—

सा विद्या परमामुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

अन्यत्रापि—

विद्या वाप्यथवाऽविद्या द्वे एते माययावृते ।
तत्कर्म यच्च बन्धाय साऽविद्या परिकीर्त्तिता ॥

---

गर्भ में जीव का ज्ञान निरन्तर रहता है, सूति वायु द्वारा प्रेरित होकर जीव जब भूमिष्ठ होता है, तब जो उन्हें ज्ञानरहित करते हैं एवं निरन्तर पूर्व-पूर्व भ्रम संस्काररूप मोह में भी आहारादि में नियोग करके मोह, ममता तथा ज्ञान संशय उत्पादन पूर्वक पुनः पुनः ( बार-बार ) क्रोध तथा उपरोधादि में निक्षेप करके कामों में नियोग करके सर्वदा ही चिन्तायुक्त करते हैं, वह ही महामाया है ।

### महामाया के भेद

वह महामाया दो प्रकार की है—विद्या तथा अविद्या । जो महामाया मुक्ति की जननी है, वही विद्या है और जो महामाया संसार—बन्ध का कारणस्वरूपा है, वही अविद्या है, मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि—

जो मुक्ति की जननी, वे ही सनातनी परमा विद्या हैं । वे ही संसार—बन्ध के कारणस्वरूपा एवं वही ब्रह्मादि की नियन्त्री हैं ।

अन्यत्र भी कहा गया है—

विद्या और अविद्या ये दोनों ही माया से आक्रुत है । जो कर्म बन्ध का हेतु है, वह अविद्या नाम से कीर्तित है और जो कर्म बन्धन का जनक नहीं है;

यन्न बन्धाय तत्कर्म सा विद्या परिकीर्त्तिता ॥
विद्या तु सर्वदा सेव्या नाप्यविद्या कथञ्चन ।
अविद्या कर्मबन्धः स्याद् तया ज्ञानं प्रणश्यति ॥
ज्ञाननाशाद् भवेद्धानिर्हानात् संसरणं पुनः ।
संसारात्तु भवेद् घोराद् घोरं नरकमेव च ।
तस्मादविद्या कुत्रापि न सेव्यापि कदाचन ॥

## विद्याप्रशंसा

या विद्या सा महामाया सा तु सेव्या सदा बुधैः ।
'अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते' ( ईश. ९ ) इति श्रुतेः ।
अन्यत्रापि 'संसारैकनियतिरूपाऽविद्या' इति । रुद्रयामले—
सुखदा मोक्षदा नित्या सर्वभूतेषु संस्थिता ।
यदा तुष्टा भवेन्माया तदा सिद्धिमुपालभेत् ॥
बन्दनीया सदा स्तुत्या पूजनीया च सर्वदा ।
श्रोतव्या कीर्त्तितव्या च माया नित्या नगात्मजा ॥

---

वह विद्या नाम से कथित है। विद्या मनुष्यों के लिये सर्वदा ही सेव्य है। किसी भी प्रकार से अविद्या का सेवन कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि अविद्या कर्मबन्ध स्वरूप है। उस अविद्या से ज्ञान का नाश अर्थात् आत्मविस्मृति होती है। ज्ञान के नाश से हानि अर्थात् स्वरूपानुभूति का विलोप होता है। उसके हानि से ही संसार प्राप्त होता है एवं घोर संसार से ही भीषण नरक की प्राप्ति होती है। अतएव किसी भी अवस्था में अविद्या का सेवन नहीं करना चाहिए।

### विद्या की प्रशंसा

जो विद्या है, वही महामाया है। पण्डितगणों के लिए सर्वदा वही विद्या ही सेव्य है क्योंकि श्रुति में उक्त है—

जो लोग अविद्या की उपासना करते हैं, वे लोग 'अन्धतमः' नरक में प्रवेश करते हैं। अन्यत्र भी कहा गया है—केवल संसार मात्र ही जिसका उत्तर फल है, वही अविद्या है। रुद्रयामल तन्त्र में उक्त है—

सुखमोक्षदायिनी सनातनी महामाया समस्त भूतों में अवस्थित हैं। वह माया जब सन्तुष्ट होती हैं, तभी जीव सिद्धिलाभ करते हैं। वह पर्वतनन्दिनी सनातनी महामाया सर्वदा सभी के लिये वन्दनीया तथा पूजनीया है। सभी समय में ही उनकी महिमा का श्रवण तथा कीर्त्तन करना चाहिए।

वृथा न कालं गमयेद् द्यूतक्रीडादिना सुधीः ।
गमयेद् देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥
किमन्यैरसदालापैर्यदायुर्व्ययतामियात् ।
तस्मान्मन्त्रादिकं सर्वं विज्ञाय श्रीगुरोर्मुखात् ।
सुखेन मुच्यते देवि घोरसंसारबन्धनात् ॥

॥ इति श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां शरीरनिर्णयो नाम प्रथमोल्लासः ॥

---

पण्डित जनों को द्यूतक्रीडादि के द्वारा वृथा समय को नष्ट नहीं करना चाहिये। देवता की पूजा, जप, योग एवं स्तवादि के द्वारा काल ( समय ) को अतिवाहित करना चाहिए।

हे देवि ! अन्य प्रकार असत् आलाप का और फल क्या कहना है, इसके द्वारा आयु नष्ट हो जाती है। साधकगुरु के मुख से समस्त मन्त्रादि विषय जान कर घोर संसार बन्धन से अनायास मुक्त हुआ जा सकता है।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी के प्रथम उल्लास का अनुवाद-समाप्त ॥

# द्वितीयोल्लासः

**ईश्वर उवाच—**

## दीक्षामाहात्म्यम्

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
विना दीक्षां न मोक्षः स्यात् प्राणिनां शिवशासने ॥
न योगेन विना यन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः ।
द्वयोरभ्यासयोगश्च ब्रह्मसंसिद्धिकारकः ॥
तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥
सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे दीक्षां कुर्यात् समाहितः ।
रसैर्मन्त्रैर्यथा विद्धमयः सुवर्णतां व्रजेत् ॥
दीक्षाविद्धस्तथा ह्यात्मा शिवत्वं लभते ध्रुवम् ।

इति कुलार्णवात् । मन्त्रमुक्तावल्याम्—

जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः ॥
नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं च यतात्मनाम् ।

---

### दीक्षामाहात्म्य

हे देवि ! तुम मुझसे जो पूछ रही हो, वह सुनो ! आगम मत से—दीक्षा के बिना मुक्ति नहीं हो सकती । यम नियमादि के क्रियायोग के बिना मन्त्र फलप्रद नहीं होता है, एवं मन्त्र के बिना योग भी सिद्ध नहीं होता है । इन दोनों के अभ्यास से ही ब्रह्मसाक्षात्कार होता है । अन्धकाराच्छन्न गृह में प्रदीप के द्वारा जिस प्रकार घट दृष्ट होता है; 'तद्रूप' उसी प्रकार मायावृत आत्मा मन्त्रों के द्वारा प्रकटीकृत होता है । षोडशवर्ष पूर्ण होने पर समाहित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहिए । कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि—लोहा जिस प्रकार रस ( पारद ) तथा मन्त्रों के द्वारा संस्कृत होकर सुवर्णत्व को प्राप्त होता है, तद्रूप उसी प्रकार आत्मा दीक्षा के द्वारा संस्कृत होने पर निश्चय ही शिवत्व लाभ करता है ।

**मन्त्रमुक्तावली** में कहा गया है—'जप तथा देवपूजा दीक्षित व्यक्ति का

**रुद्रयामले—**

आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः ॥
नहि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः ॥

## आगमलक्षणम्

आगमशब्दव्युत्पत्तिमाह रुद्रयामले—

आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजामुखे ।
मतः श्रीवासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते ॥

वक्त्रेभ्य इति बहुवचनं पञ्चाम्नायलाभार्थम् । तथा च कुलार्णवे—

मम पञ्चमुखेभ्यश्च पञ्चाम्नायाः समुद्गताः ।
पूर्वपश्चिमतश्चैव दक्षिणोत्तरतस्तथा ।
ऊर्ध्वं नयत्यधःसंस्थमूर्ध्वाम्नाय इतीरितः ॥
यावन्तः पांशवो भूमेस्तावन्तः समुदीरिताः ।
एकैकाम्नायजा मन्त्रा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां देवता तत्फलप्रदा ।

---

कर्त्तव्य है क्योंकि उन लोगों के चित्त संयत होने पर पाप तथा सूतक ( अशौच ) नहीं होता है ।

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है–सुधी व्यक्ति कलिकाल में आगमोक्त विधान से देवताओं की अर्चना करेगें क्योंकि कलिकाल में अन्य विधान से देवताओं की अर्चना करने पर देवता प्रसन्न नहीं होते ।

### आगमलक्षण

रुद्रयामल तन्त्र में आगमशब्द की व्युत्पत्ति दी गयी है–शिव के मुखसमूह से निर्गत, पार्वती के मुखविवर में प्रविष्ट एवं वासुदेव के मत अर्थात् सम्मत; इस लिये यह आगम नाम से प्रसिद्ध हुये हैं ।

श्लोकोक्त 'वक्त्रेभ्यः' इस पद में बहुवचन 'पञ्चाम्नाय' लाभ के लिये प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि कुलार्णव तन्त्र के बचनों के द्वारा उसी प्रकार ही उक्त हुआ है । यथा–"मेरे पञ्चमुख से पाँच प्रकार के आम्नाय आविर्भूत हुये हैं । पूर्व तथा पश्चिम मुख से पूर्वाम्नाय तथा पश्चिमाम्नाय; दक्षिण तथा उत्तर मुख से दक्षिणाम्नाय तथा उत्तराम्नाय प्रकाशित हुये हैं । जो अधःपतित व्यक्ति को ऊर्ध्व में ले जाता है; वह 'ऊर्ध्वाम्नाय' नाम से कथित हुआ है । पृथ्वी पर जितने संख्यक धूलकण हैं, एक-एक आम्नाय के उतने

इति वचनेभ्यो वासुदेवस्य मतः सम्मत इत्यर्थः। तेन वेदाविरुद्धत्वाल्लाभान्नागमव्युदासः। सदागम एवागमशब्दस्य मुख्यत्वात्। अत एवागस्त्यसंहितायामसदागमस्य निन्दामाह शिवः—

कलौ प्रायेण देवेशि ! राजसास्तामसास्तथा ॥
निषिद्धाचरणाः सन्तो मोहयन्त्यपरान् बहून्।
आवाभ्यां पिशितं रक्तं सुरां चैव सुरेश्वरि ॥
वर्णाश्रमोचितं धर्ममविचार्यार्पयन्ति ये।
भूतप्रेतपिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ॥

इति वचनात्। श्रीक्रमेऽपि—

न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्(दा)चन।
ब्राह्मणो वामकामोऽपि मद्यं मासं न भक्षयेत् ॥
देव्याश्च पश्चिमे भागे चक्रपार्श्वे निवेदयेत्।

---

संख्यक मन्त्र भी है तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं। सभी मन्त्र के देवता ही उस मन्त्र के फलदाता हैं।''

'वासुदेवस्य मतः' इसका अर्थ यह है—वासुदेव का सम्मत। इसके द्वारा वेद का अविरुद्धत्व लाभ होने से अर्थात् वेद के साथ 'सत्' आगम का विरोध न रहने पर 'सत्' आगम वर्जनीय नहीं है, क्योंकि सत् आगम ही आगम शब्द का मुख्य ( प्रधान ) अर्थ है। इसीलिये ही भगवान् शिव 'अगस्त्यसंहिता' में असत् आगम की निन्दा किये है।

हे देवेशि ! कलिकाल में प्रायः सभी मनुष्य राजस तथा तामस भावापन्न होकर निषिद्ध कर्मों का अनुष्ठान करके अन्य लोगों को मोहित करते हैं।

हे सुरेश्वरि ! जो लोग वर्णाश्रमोचित धर्म का विचार न करके हम दोनों के उद्देश्य से मांस, रक्त ( खून ) तथा मद्य अर्पण करते हैं, वे सभी भूत, प्रेत, पिशाच अथवा ब्रह्म राक्षस होते हैं। इन सभी वचनों से असत् आगम की निन्दा समझा गया है।

श्रीक्रम में भी उक्त हुआ है कि—'ब्राह्मण' कभी भी महादेवी को मद्य निवेदन न करें। ब्राह्मण वामाचारी होने पर भी मद्य तथा मांस भक्षण न करें। देवी के पश्चिम तरफ चक्र ( यन्त्र ) के पार्श्व में मद्य निवेदन करें।

तत्तद्द्रव्यं तु शूद्रस्य नान्येषां च कदाचन ॥
वैश्यस्य माक्षिकं शुद्धं क्षत्रियस्य तु साज्यकम् ।
ब्राह्मणश्च गवां क्षीरं ताम्रे वा विसृजेन्मधु ॥
नारिकेलोदकं कांस्ये सर्वेषां द्रव्यशोधनम् ॥ इति ॥

अन्यत्रापि—

गोक्षीरं ब्राह्मणो दद्याद् गव्यमाज्यं च बाहुजः ।
वैश्यैश्च माक्षिकं देयं शूद्रः पैष्ट्यादिकं चरेत् ।

पैष्ट्यादिकमित्यत्र पौष्णादिकमिति पाठो दृश्यते, तथात्वे शूद्रस्याप्यनुकल्पः । तथा च पूर्वत्र—

नारिकेलोदकं कांस्ये सर्वेषां द्रव्यशोधनम् । इत्युक्तेः ॥
देव्याश्च पश्चिमे भागे चक्रपार्श्वे निवेदयेत् ।
तत्तद्द्रव्यं तु शूद्रस्य नान्येषां तु कदाचन ॥

इति वचनात् तथा चान्यत्र बहुषु तन्त्रवचनेषु शूद्रस्य मुख्यद्रव्या-दिदानस्य विहितत्वात् परस्पर विरोधे विकल्पाश्रयणम्, अतस्तेषां

---

मद्य मांसादि उन उन द्रव्य शूद्रों के लिये विहित है। अन्य किसी के द्वारा कभी भी दातव्य नहीं है। मद्य के स्थान पर वैश्यगणों के लिये मधु तथा क्षत्रिय के लिये सघृत जल ( घृत मिला हुआ जल ) शुद्ध एवं प्रशस्त है। ब्राह्मण मद्य के स्थान पर गोदुग्ध अथवा ताम्रपात्र ( ताँबे के बर्तन ) में मधु निवेदन करें। कांस्यपात्र में नारिकेलोदक ( नारियल का जल, सभी लोगों के लिये प्रशस्त है–अर्थात् उत्तम है। द्रव्य शोधन सभी के लिये कर्त्तव्य है। अन्यत्र भी कहा गया है–'ब्राह्मण ( मद्य के स्थान पर ) महादेवी को गोदुग्ध, क्षत्रिय गव्य ( गाय के दूध से बना हुआ घृत ), वैश्य मधु तथा शूद्र पैष्टी प्रभृति सुरा निवेदन करें। पैष्टयादि के स्थान पर पौष्पादि ( फूल आदि ) पाठ भी मिलता है। यह पाठ यदि सही मान लिया जाय तो शूद्रों को भी मद्य के स्थान पर अनुकल्प ( विकल्प व्यवस्था ) निर्दिष्ट हुआ है। इसी लिये ही प्रारम्भिक काल में कांस्यपात्र में नारिकेलोदक निवेदन सभी के लिये प्रचलित रहा है। सभी के लिये द्रव्य शोधन कर्त्तव्य है–इस प्रकार निर्देश दिया गया है।

देवी के पश्चिम तरफ चक्र ( यन्त्र ) के पार्श्व में ( बगल में ) मद्य निवेदन करें। मद्य–मांसादि उन उन द्रव्य समूह शूद्रों के लिये विहित है, अन्य किसी को कभी भी दातव्य नहीं है। यह वचन ( निर्देश ) रहने से

( शूद्राणां ) सुरादानस्य ऐच्छिकत्वमायातम् । न केवलं द्रव्याभाव एव शूद्रस्यानुकल्पो विधीयते । अपितु द्रव्यादिसत्त्वेऽपि स्वेच्छया शूद्रोऽनुकल्पेनापि पूजां कर्त्तुमर्हतीति सर्वमनवद्यमिति ॥

तथा गुरुणा दीक्षितः शिवशक्तिभ्यां प्रोक्तमन्त्रयोगसमाश्रयेण साधकः कृतार्थो भवत्येव । तथा चागमसारे—

शिवेन परया शक्त्या द्वाभ्यां कृत्स्नं समुद्धृतम् ।
वाच्यवाचकभावेन द्वाभ्यां ब्रह्म प्रकाशितम् ॥ इति

## दीक्षाशब्दार्थः

दीक्षाशब्दार्थमाह यामले—

दीप्तज्ञानं तु या दद्यात् कुर्यात् पापक्षयं तथा ।
तेन दीक्षेति लोकेऽस्मिन् कीर्त्तितं तन्त्रपारगैः ॥

## अदीक्षितार्चननिन्दा

उपचारसहस्रैस्तु पूजिता भक्तिसंयुतैः ।
अदीक्षितार्चनं देवा न गृह्णन्ति कदाचन ॥

---

दूसरे स्थलों में बहु तन्त्र बचनों में शूद्रों का मुख्यद्रव्य ( मद्य ) दान ही विहित निर्देशित होने पर परस्पर विरोध प्रयुक्त विकल्प का ( मुख्य अथवा अनुकल्प जिस किसी एक का ) आश्रय करना होगा। अतएव शूद्रों का सुरादान ऐच्छिक है, इस प्रकार प्रतीत हो रहा है। द्रव्य के अभाव से ही जो शूद्रों को अनुकल्प विहित हुआ है, यह नहीं है। परन्तु द्रव्यादि रहने पर भी शूद्र अपने इच्छानुसार से अनुकल्प के द्वारा भी पूजा कर सकते हैं। सुतरां समस्त प्रकार ही सुसङ्गत है।

अतएव गुरु के द्वारा दीक्षित साधक गुरुप्रदत्त मन्त्र तथा योगों की सहायता से शिव एवं शक्ति की कृपा से निश्चय ही कृतार्थ होगा। 'आगमसार तन्त्र' में उसी प्रकार उक्त हुआ है, यथा–शिव एवं पराशक्ति इन्हें उभय कर्तृक समग्र शास्त्र कहा गया है, एवं वाच्य वाचक रूपों में इन दोनों के द्वारा ब्रह्म प्रकाशित हुआ है।

### दीक्षाशब्दार्थ

यामल तन्त्र में दीक्षाशब्द का अर्थ कह रहे है–'जो दीप्त ( दिव्य ) ज्ञान को दान करते हैं, एवं पापक्षय करते हैं, इस लिये वह इस लोक में 'दीक्षा' कहकर तन्त्रविद्गणों द्वारा अभिहित हुये हैं।

तस्य कर्माखिलं व्यर्थं तस्माददीक्षितः पशुः।

## मन्त्रग्रहणनियमः

क्रियासारे—

कल्पे दृष्ट्वा तु यो मन्त्रं जपेद् गुरुमनाश्रितः॥
सुतनाशो भवेत्तस्य फल किञ्चिन्न विद्यते।

यामले—

गुरोर्मुखान्महाविद्यां गृह्णीयात् पापनाशिनीम्॥
तस्माद्यत्नाद् गुरुं कृत्वा मन्त्रसाधनमाचरेत्॥

## गुरुशब्दार्थः

गुरुशब्दार्थमाह यामले—

गुकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः।
उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः स्मृतः॥

---

### अदीक्षितार्चननिन्दा

भक्तिमान् साधक के द्वारा सहस्र उपचारों के द्वारा अर्चित होने पर भी देवतागण अदीक्षित व्यक्तियों की अर्चना कभी भी ग्रहण नहीं करते। अदीक्षित व्यक्ति के सभी कर्म व्यर्थ हैं, इसलिये अदीक्षित व्यक्ति पशु कहकर कथित हुआ है।

### मन्त्रग्रहणनियम

क्रियासार तन्त्र में उक्त हुआ है—जो व्यक्ति गुरु को आश्रय न करके ग्रन्थ देख कर मन्त्र जप करता है, उसका पुत्रनाश होता है एवं उसका कोई फल नहीं होता है। यामल तन्त्र में उक्त हुआ है—गुरु के मुख से पापध्वंसकारी विद्या (शक्तिदेवता का मन्त्र) ग्रहण करना होता है। अतएव यत्नपूर्वक गुरु ग्रहण करके मन्त्रसाधन का अनुष्ठान करना चाहिए।

### गुरुशब्दार्थ

यामल तन्त्र में गुरुशब्द का अर्थ कह रहे है—गुरुशब्द का गुकार सिद्धि-प्रद कहकर उक्त हुआ है। रकार पाप का नाशक, उकार शम्भुस्वरूद है—इसलिये गुरु इस तीनों का स्वरूप कहकर कथित हुये हैं।

## गुरुलक्षणम्

सारसंग्रहे—

विशुद्धमातापितृको जितेन्द्रियः
सर्वागमज्ञः परदुःखकातरः ।
यथार्थवाग्वेदविदङ्गपारगः
शान्तः कुलीनो गुरुरीरितो द्विजः ॥

## ब्राह्मणगुरुकरणविधिः

द्विज इत्युपादानाद् ब्राह्मणेभ्यो मन्त्रग्रहणम् । तन्त्रे—

सदाचारो द्विजो यस्तु वर्णानां गुरुरेव सः ।

अन्यत्रापि—

स्वधर्मनिरतो भूत्वा कृत्वा द्विजगुरोर्मुखात् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति शीघ्रं देवत्वमाप्नुयात् ॥
शूद्रः शूद्रमुखाच्छ्रुत्वा विद्यां वा मन्त्रमेव वा ।
गृहीत्वा नरकं याति दुःखमाप्नोति निश्चितम् ॥

## दीक्षाफलम्

नवरत्नेश्वरे—

सर्वेषामेव दीक्षाणां मुक्तिः फलमखण्डितम् ।
अविशेषाद् भवत्येषा प्रासङ्गिकास्तु भुक्तयः ॥

---

### गुरुलक्षण

सारसंग्रह तन्त्र में उक्त हुआ है—विशुद्ध माता-पिता से उत्पन्न, जितेन्द्रिय, समस्त आगमों के ज्ञाता परदुःखकातर, सत्यवादी, वेदज्ञ, वेदाङ्ग-वित्, शान्त एवं कुलीन द्विज गुरु कहकर अभिहित हुआ हैं।

### ब्राह्मणगुरुकरणविधि

इस वचन में 'द्विजः' इस पद का उल्लेख होने से ब्राह्मणों से ही मन्त्र-ग्रहण कर्त्तव्य है। तन्त्रों में कहा गया है—जो द्विज (ब्राह्मण) सदाचार परायण है, वे ही समस्त वर्णों के गुरु होगें। अन्यत्र भी कहा गया है—'मानव स्वधर्मपरायण होकर द्विज गुरु के मुख से मन्त्र ग्रहण कर सब प्रकार से सिद्धि को प्राप्त होता है एवं शीघ्र ही देवत्व को भी प्राप्त होता है। शूद्र गुरु के मुख से विद्या अथवा मन्त्र ग्रहण करके शूद्र नरक में ही गमन करता है एवं दुःख प्राप्त करता है।

यामले—

दीक्षितो ब्राह्मणो याति ब्रह्मलोकमनामयम् ।
ऐन्द्रलोकं क्षत्रियस्तु प्राजापत्यं तथा विशः ॥
याति गन्धर्वनगरं शूद्रो दीक्षाप्रभावतः ॥

## शूद्रदीक्षाविचारः

अत्र शूद्रदीक्षाधिकार श्रुतेः "न शूद्राय मनुं दद्यात्" इति वचनं वेदमन्त्रपरं देवताविशेषपरं मन्त्रविशेषपरं च । वाराहीतन्त्रे—

गोपालस्य मनुर्देयो महेशस्यापि पादजे ।
तत्पत्न्याश्चापि सूर्यस्य गणेशस्य मनुस्तथा ।
एष दीक्षाधिकारी स्यादन्यथा पापभाग् भवेत् ॥

इति वचनात् देवतान्तरस्य मन्त्रे शूद्रानामधिकारः । नृसिंहतापनीये श्रुतिः—'सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति"

---

दीक्षा के फल

नवरत्नेश्वर में उक्त हुआ है—सभी प्रकार के दीक्षाओं का पूर्णफल है—मुक्ति; अविशेष में सभी का ही यह हो सकता है। परन्तु अवान्तर रूप में भोग भी होता है। यामल तन्त्र में उक्त हुआ है—ब्राह्मण दीक्षित होकर दुःखशून्य आनन्दमय ब्रह्मलोक में गमन करते है, क्षत्रिय दीक्षित होकर इन्द्रलोक में तथा वैश्य प्रजापति लोक में गमन करते है। शूद्र दीक्षा के प्रभाव से गन्धर्व नगर को प्राप्त होते हैं।

शूद्र-दीक्षाधिकार विचार

इस वचन में शूद्र का दीक्षा में अधिकार उक्त होने से 'न शूद्राय मनुं दद्यात्' अर्थात् शूद्र को मन्त्र दान मत करो—शूद्र का दीक्षा निषेध प्रतिपादक यह वाक्य वेदमन्त्र विषयक, देवता विशेष-विषयक तथा मन्त्रविशेष-विषयक समझना होगा, क्योंकि शूद्र को गोपाल मन्त्र दिया जा सकता है; महेश्वर का भी मन्त्र दिया जाता है तथा महेश्वर पत्नी पार्वती, सूर्य तथा गणेश का मन्त्र दिया जा सकता है। इन सभी मन्त्रों की दीक्षा में इन लोगों का अधिकार है। अन्य मन्त्र ग्रहण करने से शूद्र पापभागी होगा—वाराही तन्त्र के इस वचन के अनुसार जाना जाता है कि देवतान्तर में मन्त्र ग्रहण में शूद्र का अधिकार नहीं है। नृसिंहतापनीय श्रुति में उक्त हुआ है कि सावित्री

इति । 'सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः स मृतोऽधो गच्छति' ( १.३ ) इति च । लक्ष्मीं श्रीबीजं लक्ष्मीमन्त्र-मित्यपि कश्चित् । गोपालस्य दशाक्षरः, श्यामाया द्वाविंशत्यक्षरश्च मन्त्रः स्वाहागर्भोऽपि शूद्राय देयः, 'सर्वेषु वर्णेषु तथाश्रमेषु' (१.४) इति क्रमदीपिकायां अभिधानात् ।

नात्र सिध्यपेक्षास्ति न चाऽमित्रादिदूषणम् ।
न चाऽधिकारचिन्ताऽत्र ग्रहणे कालिकामनोः ॥

इति कालीकुलसर्वस्ववचनाच्च । तस्माद् गोपालदशाक्षर-श्यामाद्वाविंशत्यक्षरमन्त्रग्रहणे शूद्रस्याधिकारः ।

ननु स्वाहा-प्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददद् द्विजः ।
शूद्रो निरयगामी स्याद् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥

इति देवीयामलवचनात् स्वाहा प्रणवान्वितमन्त्रेषु शूद्रस्यानधि-कारप्रतीतेः प्रणवान्वित-गोपालमन्त्रे स्वाहागर्भित-द्वाविंशत्यक्षर

---

( वेदोक्त गायत्री ), प्रणव ( ॐ कार ), यजुः ( वैदिक मन्त्र विशेष ) तथा श्रीबीज के उच्चारण में स्त्री तथा शूद्र का अधिकार नहीं है । स्त्री शूद्र यदि सावित्री, प्रणव, यजुः तथा लक्ष्मी मन्त्र ग्रहण करते है, तब वह मरणान्तर में अधोगति को प्राप्त होते है । नृसिंहतापनीय श्रुति वाक्योक्त 'लक्ष्मी' शब्द का अर्थ है—श्री बीज । कोई-कोई कहते हैं—लक्ष्मीमन्त्र ।

गोपाल के दशाक्षर, श्यामा का द्वाविंशति ( बाइस ) अक्षर मन्त्र स्वाहा-गर्भित ( युक्त ) होने पर भी शूद्र को दिया जाता है यह क्रमदीपिका में उक्त हुआ है, अर्थात् क्रमदीपिका में गोपाल का दश अक्षर मन्त्र तथा सभी वर्णों का भी, सभी आश्रमों को अधिकार दिया गया है । 'कालिका के मन्त्र ग्रहण में—सिद्धादि विचारों की अपेक्षा नहीं है; अमित्रादि दोष भी नहीं है; तथा मन्त्र ग्रहण के अधिकार की चिन्ता भी कर्त्तव्य नहीं है'—काली कुल सर्वस्व तन्त्र के इस वचन में भी यह प्रतिपादित हुआ है । अतः गोपाल का दस अक्षर तथा श्यामा का बाइस अक्षर मन्त्र ग्रहण में शूद्र का भी अधिकार है ।

[ प्रश्न ] जो ब्राह्मण शूद्र को स्वाहा तथा प्रणव युक्त मन्त्र दान करते हैं, वह अधोगति को प्राप्त होता है तथा शूद्र भी नरकगारी होता है,—देवी-यामल तन्त्र के इस वचन के द्वारा स्वाहा तथा प्रणव युक्त मन्त्र में शूद्र का

श्यामामन्त्रे च कथं तस्याधिकार इति चेन्न ।

तन्त्रोक्तं प्रणवं देवि ! वह्निजायां च सुन्दरि ।
प्रजपेत् सततं शूद्रो नात्र कार्या विचारणा ॥

इति भूतशुद्धिवचनेन तन्त्रोक्त-प्रणव-वह्निजायायोः शूद्रोच्चार्यता-प्रतिपादनात् तदेकवाक्यतया तन्त्रोक्त स्वाहाप्रणवान्वितेष्वेव मन्त्रे तस्याधिकारकल्पनात् । एवं यत्र यत्र स्वाहा प्रणवालीढे मन्त्रे शूद्रस्याधिकारोक्ति दृश्यते, तत्र न स्वरूपतः, अपितु वह्निजायादिस्थले मायाबीजादिप्रक्षेपेण । तथा चोक्तम्—

श्रीविष्णोः कोटिमन्त्रे च कोटिमन्त्रे शिवस्य च ।
शूद्राणामधिकारोऽस्ति स्वाहा-प्रणववर्जिते ॥
वह्निजायास्थले मायां दत्त्वा शूद्रो जपेद्यदि ।
जपात् सिद्धीश्वरो भूत्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

तस्मात् तन्त्रोक्त-प्रणवाद्यन्वितेष्वेव गोपालादिमन्त्रेषु शूद्राणा-

---

अनधिकार प्रतीत होने से स्वाहा युक्त मन्त्र में शूद्र का अधिकार किस प्रकार हो सकता है ? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है—यदि नहीं-यह कहा नहीं जा सकता है क्योंकि हे देवि ! हे सुन्दरि ! शूद्र सर्वदा ही तन्त्रोक्त प्रणव तथा तन्त्रोक्त वह्निजाया का जप कर सकता है, इसमें विचार कर्त्तव्य नहीं है—भूतशुद्धि तन्त्र के इस वचन के द्वारा तन्त्रोक्त प्रणव तथा वह्निजाया शूद्र के लिए उच्चार्य है यह प्रतिपादित होने से उक्त वचन के साथ एक वाक्यता-युक्त तन्त्रोक्त प्रणव तथा तन्त्रोक्त वह्निजाया युक्त मन्त्र में ही शूद्र के अधिकार की कल्पना करना होगा ।

इस प्रकार जहाँ-जहाँ स्वाहा तथा प्रणवयुक्त मन्त्र में शूद्र का अधिकार कहा गया है । वहाँ स्वरूपतः अर्थात्-वैदिक प्रणव तथा स्वाहायुक्त मन्त्र में अधिकार नहीं है । परन्तु वहि्नजाया स्थलों में मायाबीज ( ह्रीं ), प्रणव स्थल में 'नमः' अथवा औं योग में अधिकार समझना होगा । तन्त्रों में उसी प्रकार उक्त हुआ है ।

यथा—'स्वाहा तथा प्रणव रहित शिव का कोटि मन्त्रों में तथा विष्णु के कोटि मन्त्रों में शूद्रों का अधिकार है । यदि शूद्र वह्निजाया के स्थान में मायाबीज योग करके जप करते हैं' तब उस जप के द्वारा सिद्धिपति होकर पर ब्रह्म को प्राप्त होता है । अतः तन्त्रोक्त प्रणवादियुक्त गोपालादि मन्त्र

मधिकार इति सर्वमवदातम् ।

### स्त्रीगुरोर्दीक्षाग्रहणफलम्

स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता मातुश्चाष्टगुणा स्मृता ।
स्वप्नलब्धा च या दीक्षा तत्र नास्ति विचारणा ॥

स्त्रिय इति पदं न सर्वस्त्रीपरम् । बिधवाया न गुरुत्वम् । तदुक्तं तत्त्वसारे—

साध्वी चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया ।
सर्वतन्त्रार्थसारज्ञा सधवा पूजनेरता ।
गुरुयोग्या भवेत्सा हि विधवां परिवर्जयेत् ॥

यत्तु—

विधवायाः सुतादेशात् कन्यायाः पितुराज्ञया ।
नाधिकारो विना नार्या भार्याया भर्त्तुराज्ञया ॥

इति विधावाया गुरुत्वबोधकं वचनम्, तदमूलम् । समूलत्वेऽपि—

सिद्धमन्त्रो नरः सर्वमयोग्यं योग्यतां नयेत् ।

इति वचनैकवाक्यतया साधितमन्त्रविषयम् ।

---

ही शूद्रों का अधिकार है । (वैदिक प्रणवादि युक्त मन्त्र में अधिकार नहीं है) सुतरां समस्त सुसंगत है ।

### स्त्रीगुरु दीक्षा ग्रहणफल

स्त्री गुरु के पास से दीक्षा ग्रहण शुभ कहा गया है । माता के पास से दीक्षा ग्रहण तदपेक्षा आठगुण अधिक शुभ यह कहा गया है । स्वप्नलब्ध मन्त्र के दीक्षा में कोई विचार नहीं है । 'स्त्रियों दीक्षा' इस वचन में 'स्त्रियः' यह पद स्त्री मात्र का ही बोधक नहीं है, क्योंकि विधवा स्त्रियों का गुरुता अर्थात् गुरुकार्य में अधिकार नहीं है । तत्त्वसार तन्त्र में यही उक्त हुआ है । यथा—'ये सधवा स्त्री साध्वी, सदाचार परायणा, जितेन्द्रिया, समस्त तन्त्रार्थ में अभिज्ञा, पूजाकार्य में निरत, वे ही गुरु के योग्या है । विधवा को गुरुकार्य में परित्याग करना ।

जिस प्रकार स्त्रियों का दीक्षादान में अधिकार नहीं है । उसी तरह पुत्र के आदेश से विधवा स्त्री का, पिता के आदेश से कन्या का तथा पति के आदेश से स्त्री का दीक्षादान में अधिकार होता है । विधवा के लिए गुरुत्व बोधक यह जो वचन है, वह अमूलक है, अर्थात् निष्प्रमाण है । समूलक

## मन्त्रोद्धारः

गुरुदीक्षातन्त्रे—

मृतमप्यनुगच्छेत्तु विद्यामन्त्रो विशेषतः।
मन एव मनुष्यस्य पूर्वकर्माणि शंसति॥
यदि न स्यान्महेशानि मनुष्यत्वं कथं भवेत्।
दीक्षायां च कथं तस्य मनो भवति पार्वति॥
तस्मात्तु यत्नतो देवि पूर्वविद्यां समुद्धरेत्।

## मन्त्रलिखननियमः

गुरुदीक्षातन्त्रे—

बकुलाश्वत्थवटकं पत्ररत्नं शृणु प्रिये!।
वटपत्रे महेशानि शक्तिमन्त्रं लिखेत् प्रिये॥
अश्वत्थे विष्णुमन्त्रं च बकुले शिवमन्त्रकम्।
रक्तगन्धेन देवेशि काश्मीरैर्वा महेश्वरि॥

---

( सप्रमाण ) होने पर भी वह सभी सिद्धमन्त्र अयोग्य व्यक्ति को योग्यता प्रदान करते हैं। इस वाक्य के साथ एक वाक्यता प्रयुक्त साधित मन्त्र-विषयक समझना होगा, अर्थात् सिद्धमन्त्र विधवा के उस मन्त्र में दीक्षामन्त्र में अधिकार है, अन्य विधवा का दीक्षादान में अधिकार नहीं है।

### मन्त्रोद्धार

गुप्तदीक्षा तन्त्र में उक्त हुआ है—'विशेषतः विद्या तथा मन्त्र मृत व्यक्ति का भी अनुगमन करता है। मन ही मनुष्य को पूर्वकर्म का अर्थात् पूर्व-जन्मार्जित ज्ञानकर्मादि का स्मरण करता है। यदि उसका पूर्वजन्मार्जित ज्ञानादि का स्मरण न होता, तब कह किस प्रकार मनुष्यत्व लाभ करता अथवा दीक्षा में ही क्यों उसका चित्त आकृष्ट होता ? अतएव हे देवि ! सबसे पहले यत्नपूर्वक पूर्वजन्म में गृहीत विद्या का उद्धार करना चाहिए।

### मन्त्र लेखन नियम

गुप्तदीक्षा तन्त्र उक्त हुआ है—हे प्रिये ! वकुल, अश्वत्थ ( पीपल ) तथा वट (बरगद) के पत्र को 'पत्ररत्न' (श्रेष्ठ पत्र) कहा गया है। हे महेशानि ! वटपत्र में शक्तिमन्त्र, पीपल के पत्र में विष्णुमन्त्र तथा वकुल के पत्र में शिवमन्त्र लिखना है। हे महेश्वरि ! रक्तचन्दन ( लालचन्दन ) अथवा

शक्तिमन्त्रं लिखेत् देवि चन्दनैर्विष्णुमन्त्रकम् ।
भस्मना शिवमन्त्रं च विलिखेत् परमेश्वरि ॥

विलिखेदिति सप्तसप्तसु पत्रेषु तत्तद्देवतायाः मन्त्रं लिखेदित्यर्थः ।

प्राणप्रतिष्ठां तन्मन्त्रे कारयेद्यत्नतः सुधीः ।

तत्तद् देवतायाः प्राणप्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः ।

यथाशक्त्युपचारेण सम्पूज्य परमेश्वरि ॥
ततः शिष्यश्चार्घ्यपात्रं हस्ते कृत्वा महेश्वरि ।
अनेन मनुना मन्त्री भास्कराय निवेदयेत् ॥

## अर्घ्यद्रव्यम्

अर्घ्यद्रव्यमाह—

आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि तथा मधु ।
रक्तानि करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥
अष्टाङ्ग एषकोऽर्घ्यो वै भानवे परिकीर्त्तितः ।

गान्धर्वे—

न दद्याद् भास्करायार्घ्यं शङ्खतोयैर्महेश्वरि ।

---

कुङ्कुम के द्वारा शक्तिमन्त्र, श्वेत चन्दन द्वारा विष्णु मन्त्र एवं भस्म द्वारा शिवमन्त्र लिखना चाहिए।

श्लोकोक्त 'विलिखेत्' पद का अर्थ—उन उन इष्ट देवता का प्रत्येक मन्त्र सात सात पत्रों में लिखना है। सुधी शिष्य उस मन्त्र में यत्न पूर्वक प्राण प्रतिष्ठा करेगा। इसका अर्थ है—उन उन देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करना।

हे देवि ! उसके बाद शिष्य स्वसामर्थ्यानुरूप उपचार से उन उन देवताओं की पूजा करके अर्घ्यपात्र हाथ में लेकर यह मन्त्र पढ़कर सूर्य को अर्घ्यदान करना चाहिए।

### अर्घद्रव्य

अर्घद्रव्य कह रहे है—जल, दुग्ध, कुशाग्र, घृत, दधि तथा मधु तथा रक्त-करवी तथा रक्तचन्दन यह आठ—सूर्य के अर्घ्यद्रव्य कहकर कथित हुये हैं। गन्धर्व तन्त्र में कहा गया है—'हे महेश्वरि ! शंख जल के द्वारा सूर्य को अर्घ्यदान मत करना।

## अर्घ्यदानमन्त्रः

ॐ भो देव पृथिवीपाल सर्वशक्तिसमन्वित ।
ममार्घ्यं च गृहाण त्वं पूर्वविद्यां प्रकाशय ॥
अर्घ्यं दत्त्वा नमस्कृत्य कृताञ्जलिः पठेत्ततः ।
ॐ सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च वै ।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः ॥
सर्वे देवा शरीरस्था मम मन्त्रस्य साक्षिणः ।
पूर्वजन्मार्जितं विद्यां मम हस्ते प्रदापय ॥

## शाक्तिकीदीक्षा

पठित्वेदं महेशानि सत्वरं पत्रमुद्धरेत् ।
उद्धृत्य पत्रमेकं तु गुरोर्हस्ते प्रदापयेत् ॥
गुरुस्तु अक्षरश्रेणीमधीत्य परमेश्वरि ।
सेतुं दत्त्वा महेशानि तन्मन्त्राष्टशतं जपेत् ॥
शिष्यस्य मस्तके हस्तं दत्त्वा चाष्टशतं जपेत् ।
( अन्यत्र–गुरुस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शिष्यः प्रत्यङ्मुखस्थितः । )

---

### अर्घदानमन्त्र

अर्घ्यदान का मन्त्र है–'भो देव ।' इत्यादि, भो देव ! अर्थात् हे देव ! हे सर्वशक्तिमान् ! हे पृथिवीपालक ! तम मेरा यह अर्घ्य ग्रहण करो तथा पूर्वजन्म गृहीत विद्या को मुझमें प्रकाशित करो । उसके बाद अर्घदान तथा नमस्कार करके कृताञ्जलि होकर ( हाथ जोड़कर ) ॐ सूर्यः 'सोम' इत्यादि मन्त्र का पाठ करना चाहिए । इस मन्त्र का अर्थ है–सूर्य, चन्द्र, यम, काल, पञ्चमहाभूत–यह नौ मिलाकर इस लोक में शुभाशुभ कर्मों के साक्षी है । शरीरस्थ सभी देवतागण मेरे मन्त्र के साक्षी है । ( हे देव ! ) पूर्वजन्मार्जित विद्या को मेरे हाथ में प्रदान करो ।

### शाक्तिकी-दीक्षा

इस मन्त्र का पाठ करके तत्काल एक पत्र उठाना तथा एक पत्र उठाकर गुरु के हाथ में दान करना । हे परमेश्वरि ! गुरु के अक्षर समुदय अर्थात् उस पत्रों में लिखित मन्त्र का पाठ करके सेतुयोग से १०८ बार वह मन्त्र जप करना तथा शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर १०८ बार जप करना है ।

त्रिवारं दक्षिणे कर्णे वामकर्णे तथा सकृत् ।
स्त्रीशूद्रविषये कुर्याद् वैपरीत्येन चिन्तनम् ॥

एतच्च विष्णवादिविषयम् । शक्तौ च—

आचम्य संयतो भूत्वा प्राणायामं विधाय च ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ऋष्यादिकसमन्वितम् ।
अष्टकृत्वा वदेन्मन्त्रं वामकर्णे सुरेश्वरि ॥
इयं दीक्षा सर्वतन्त्रे शाक्तिकी परिकीर्त्तिता ।
गुरोर्लब्ध्वा महाविद्यां अष्टोत्तरशतं जपेत् ॥
गुरवे दक्षिणां दद्याद् वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा प्रदापयेत् ॥

कुलार्णवे—

श्रीगुरौ प्रीतिमापन्ने देवताप्रीतिमाप्नुयात् ।
देवे च प्रीतिमापन्ने मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥
पत्ररत्नप्रदानेन दीक्षां कुर्यात् कलौ युगे ।
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥

---

गुरु पूर्वमुख होकर तथा शिष्य पश्चिममुख होकर बैठेंगे । गुरु शिष्य के दक्षिण कर्ण में तीन बार तथा वामकर्ण में एक बार मन्त्र पाठ करेंगे। स्त्री तथा शूद्र के विषय में विपरीत रूप में मन्त्र चिन्ता कर्त्तव्य है अर्थात् वाम कर्ण में तीन बार तथा दक्षिणकर्ण में एक बार पाठ करना है। यह सभी कार्य विष्णु देवताओं के मन्त्र ग्रहण में समझना होगा। परन्तु शक्ति देवता के मन्त्र ग्रहण के समय ( गुरु ) संयत होकर आचमन तथा प्राणायाम करके १०८ बार मन्त्र जप करके ( शिष्य के ) बायें कान में ऋष्यादि सहित आठ बार वह मन्त्र कहेगा । यह दीक्षा समस्त तन्त्रों में शाक्तीदीक्षा नाम से अभिहित हुआ है ।

शिष्य गुरु के पास महाविद्या ग्रहण करके १०८ बार जप करेगा। गुरु को उपयुक्त दक्षिणा देगा, वित्तशाठ्य ( कृपणता ) नहीं करेगा । गुरु, गुरु-पुत्र अथवा गुरुपत्नी को भी दक्षिणा दिया जाता है। कुलार्णव तन्त्र में उक्त हुआ है–गुरु में प्रीति उत्पन्न होने से देवता प्रीत होते हैं। देवता में प्रीति उत्पन्न होने पर अश्वय ही मन्त्रसिद्धि होगा ।

कलियुग में पत्र ( यान वाहन ) तथा रत्न ( मणिमाणिक्यादि )

एतज्ज्ञानं विना देवि दीक्षां कुर्याच्च यो नरः ।
दीक्षा तु विफला तस्य चान्ते हि नरकं व्रजेत् ॥
ततः शिष्यो महेशानि प्रणमेद् दण्डबद् भुवि ।
त्वत् प्रसादादह देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः ।
मायामृत्युमहापाशाद् विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च ॥
एवमाभाष्य देवेशि ! श्रीगुरोश्चरणान्तिके ।
पतितस्तन्मनाः शिष्यस्तिष्ठेद् भूमौ तु वाग्यतः ॥
अनुज्ञां श्रीगुरोर्यावन्न लभेतोत्थितुं प्रिये ! ।
उत्थापयेद् गुरुः शिष्यं मन्त्रमेतं समुच्चरन् ॥
उत्तिष्ठ वत्स ! मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव ।
कीर्त्तिः श्रीः कान्तिमेधायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते ॥

योगिनीहृदये—

मन्त्रं दत्त्वा चोपवासं गुरुर्नैव समाचरेत् ।
महान्धकारनरके कृमिर्भवति चान्यथा ॥

---

प्रदान के द्वारा दीक्षा ग्रहण करना चाहिए। इसी से ही शिष्य का मन्त्रसिद्ध होगा। इसमें विचार करना आवश्यक नहीं है। जो व्यक्ति इस ज्ञान के विना दीक्षा ग्रहण करता है, उसका दीक्षा निष्फल होता है तथा वह मृत्यु के बाद नरक में गमन करते हैं। हे महेशानि ! उसके बाद शिष्य दण्डवत् भूमिष्ठ होकर गुरु को प्रणाम करेगा तथा 'त्वत् प्रसादादहं देव' इत्यादि मन्त्र पाठ करेगा। ( इस मन्त्र का अर्थ है—हे देव ! मैं तुम्हारे कृपा से सभी प्रकार से कृत कृत्य ( धन्य धन्य ) हो गया हूँ, तथा माया एवं मृत्युरूप महापाश से मुक्त होकर शिवत्व लाभ कर लिया है )।

इस प्रकार मन्त्र पाठ करके श्रीगुरु के पास से जबतक उठने का अनुज्ञा (आदेश) नहीं मिलता, तबतक चुप रहकर श्रीगुरु के चरण के समीप (पैर के पास) भूमि पर तद्गतचित्त होकर पड़े रहना चाहिए। गुरु यह (निम्नोक्त) मन्त्र को उच्चारण करके शिष्य को उठायेंगे। (गुरु कहेंगे)— वत्स ! उठो, तुम पापमुक्त हो गये हो; अब यथाविधि आचार का प्रतिपालन करो। तुम्हारी कीर्त्ति, ऐश्वर्य, कान्ति, मेधा, आयु बल तथा आरोग्य सर्वदा वर्धित हो।

योगिनी तन्त्र में कहा गया है—'गुरु मन्त्र करके उपवास (भूखे) नहीं रहेंगें, अन्यथा अर्थात् भूखे रहने पर घोर अन्धकाराच्छन्न नरक में कृमि

दीक्षां लब्ध्वा यदा मन्त्री चोपवासं समाचरेत् ।
तस्य देवः सदा रुष्टः शापं दत्त्वा व्रजेत् पुरम् ॥

## उपदेशदीक्षा

तत्त्वसारे—

चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये ।
मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते ॥

रुद्रयामले—

श्यामायां भैरवी ताराच्छिन्नमस्तासु भैरवे ।
मञ्जुघोषे तथा रौद्रे पञ्चाङ्गं नेष्यते बुधैः ॥

तत्रापि गुह्यकालीविषये पञ्चायतनोदीक्षाऽस्त्येव । यथा विश्वसारे—

भूपुरेषु चतुष्कोणे पूजयेत् क्रमशः सुधीः ।
विष्णुं शिवं गणेशं च सूर्यं शक्तिं यथाक्रमात् ।
पूजयेच्च महेशानि प्रधानं मध्यतो न्यसन् ॥

दीक्षायां चक्रादिविचारस्यानावश्यकत्वम् ॥

---

होकर जन्म लेगें । रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है–शिष्य यदि दीक्षा करके भूखे रहते है, तब देवता उनके प्रति रुष्ट (नाराज) होकर उसे श्राप देकर अपने पुर (स्थान) में चले जाते है ।

उपदेशदीक्षा

तत्त्वसार तन्त्र में कहा गया है—चन्द्र-सूर्य ग्रहण में, तीर्थ में, सिद्ध क्षेत्र में तथा शिवालय में प्राप्त मन्त्र 'उपदेश' नाम से कहा गया है अर्थात् पूर्वोक्त स्थानों में केवल मन्त्रदान से ही दीक्षा सिद्ध होती है । अन्य किसी अनुष्ठान का आवश्यकता नहीं है ।

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—'काली, भैरवी, तारा, छिन्नमस्ता, भैरव, मञ्जुघोष तथा रुद्र के मन्त्रग्रहण में पण्डित लोग पञ्चाङ्ग के अनुष्ठान की इच्छा नहीं करते हैं । इनमें से गुह्यकाली के मन्त्र ग्रहण में पञ्चायतनी दीक्षा है ही ।' जैसे—विश्वसार तन्त्र के गुह्यकाली प्रकरण में कहा गया है—'धीमान साधक को भूपुर के चतुष्कोण में ( चारों कोने में ) यथाक्रम से विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य तथा शक्ति की पूजा करना है तथा मध्यस्थल में प्रधान देवता ( जिस देवता का मन्त्र लेना चाहते है उस देवता का ) की स्थापना करके पूजा करना है ।

य: कुर्याच्चक्रगणनां दीक्षायां पशुपामर: ।
स भ्रष्ट: स च पापिष्ठो विष्ठायां जायते कृमि: ॥
किं ऋणै: किं धनैर्वापि राश्यादिकविचारणै: ।
सिद्धसाध्यसुसिद्धारिविचारं परिवर्जयेत् ॥
नास्ति सत्यं महेशानि नक्षत्र्यादिविचारणा ।
राश्यादिगणना नास्ति शङ्करेणेति भाषितम् ॥

आगमकल्पद्रुमे--

रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।
तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥

यामले--

शरत्काले युगाद्यायां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो: ।
बोधने चैव दुर्गाया: कालाकालं न शोधयेत् ॥

**कालविशेष-मन्त्रविशेषग्रहणनियमः**

मत्स्यसूक्ते--

ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णय: ।
सोमग्रहे विष्णुमन्त्रं सूर्ये शक्ति न चाचरेत् ॥

---

दीक्षा में चक्रादि-विचार अनावश्यक होता है ।

गुप्तदीक्षा तन्त्र में दीक्षा के चक्रविचार का दोष कह रहे हैं—जो पामर दीक्षा में विचार चक्रविचार करते हैं, वह भ्रष्ट तथा पापिष्ठ विष्ठा में कृमि होकर जन्म लेते हैं । ऋणी, धनी चक्र अथवा राश्यादि चक्र के विचार का फल क्या है ? अर्थात् उसके विचार में वह निष्फल है । सिद्ध, साध्य तथा सुसिद्धारि विचार भी परित्याग करना है । हे महेशानि ! नक्षत्रादि विचार भी नहीं हैं, तथा राशिगणना भी नहीं है, यह शङ्कर द्वारा कहा गया है ।

आगम कल्पद्रुम में कहा गया है—रविसंक्रमण ( संक्रान्ति ) तथा सूर्यग्रहण के समय दीक्षा में किसी प्रकार के लग्नादि विचार नहीं करना चाहिए । यामल तन्त्र में कहा गया है—शरद् काल में, युगाद्याय सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण में तथा दुर्गा के बोधन के दिन दीक्षा में कालाकाल विचार नहीं करना ।

यामले--

सूर्यग्रहे शक्तिमन्त्रं न प्रदद्याज्जिजीविषुः।
न गृह्णीयादपि तथा यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥

**तत्र विशेषविधिः**

अत्र शक्तिपदं पञ्चमीपरम्, प्रकरणादित्युदयकरः। अत एव—

श्रीकामकालीबीजानि लोपादौर्गश्च यो मनुः।
सूर्यस्योपग्रहे लब्धो नृणां शीघ्रफलप्रदः ॥

इति यामलवचनमपि सङ्गच्छते। पराश्रीकामबीजानीति कुलमूलावतारे पाठः। पूर्ववचने शक्तिमन्त्रपदं श्रीबीजाद्यतिरिक्तमन्त्रपरमिति तु शिवदीक्षाटीकाकृतः। यामले--

लग्ने वाप्यथवाऽलग्ने यत्र कुत्र तिथावपि।
गुरोराज्ञानुरूपेण दीक्षा कार्या विशेषतः ॥

---

काल विशेष में मन्त्र विशेष ग्रहण के नियम

मत्स्यसूक्त में कहा गया है--'ग्रहण के समय तथा महातीर्थ से काल शुद्धि की आवश्यकता नहीं है। चन्द्र ग्रहण के समय विष्णुमन्त्र तथा सूर्यग्रहण के समय शक्तिमन्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए। यामल तन्त्र में कहा गया है कि जीवन धारणेच्छु गुरु सूर्यग्रहण के समय शिष्य को शक्ति मन्त्र का दान न करें तथा शिष्य यदि अपने मङ्गल का आशा करते है तब वह भी उसे ग्रहण न करें।

इस वचन में 'शक्तिशब्द' पञ्चमी परक अर्थात् ( १ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी ) भैरवी के तात्पर्य में कहा गया है; क्योंकि भैरवी के प्रकरण में ही यह कहा है--ऐसा उदयकर कहते हैं। सुतरां 'श्रीबीज, कामबीज, कालीबीज, लोपादुर्गा के मन्त्र सूर्यग्रहण के समय गृहीत होने से मनुष्य की शीघ्र फलप्रद होते है'--इस प्रकार यामलतन्त्र के वचन भी सङ्गत हैं। कुलमूलावतार ग्रन्थ के अनुसार 'श्रीकामकालीवीनि' के स्थान पर 'पराश्रीकामबीजानि' इस प्रकार पाठ है। परन्तु शिवदीक्षाटीकाकार कहते हैं कि पूर्ववचन में शक्तिमन्त्र पद श्रीबीजादि भिन्न मन्त्र विषयक समझना होगा।

यामल तन्त्र में कहा गया है--शुभ तथा अशुभ लग्न में, जिस किसी तिथि में गुरु के आज्ञानुसार विशेषरूप से दीक्षा ग्रहण कर्त्तव्य है। सिद्धमन्त्र

न तिथिर्न व्रतं पूजा न स्नानं न जपक्रिया।
दीक्षायां कारणं किञ्चित् स्वेच्छाप्राप्ते च सद्गुरौ ॥
सर्वे वारा: ग्रहा: सर्वे नक्षत्राणि च राशय:।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरु: सर्वे शुभावहा:।
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुसारत: ॥

## मन्त्राणां दशसंस्कारम्

अथ दशसंस्कारमाह शारदायाम् ( २.११२ )–

जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा।
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुन: ॥
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रिया:।
मन्त्राणां मातृकामध्यादुद्धारो जननं स्मृतम् ॥

मातृकावर्णास्तु अकारादिक्षकारान्ता:। मातृकावर्णास्तु "अकारादिक्षकरान्ता मातृकार्णा: प्रकीर्तिता:" इति तन्त्रगन्धर्व-वचनात्। मातृकायन्त्रलेखनमाह––

भूमौ गोमयलिप्तायां विलिख्याऽष्टदलान्वितम्।
चन्दनाद्यै: कठिन्या वा तार्त्तीयं कर्णिकागतम् ॥
द्विर्द्वि: स्वरान् केशरेषु वर्गानष्टदलेषु च।

---

गुरु स्वेच्छा से उपस्थित होने पर ही तिथि व्रत, पूजा स्नान अथवा जप, इन किसी का भी दीक्षा का कारण नहीं है, अर्थात् तिथि-वारादि का विचार न करके दीक्षा ग्रहण कर्त्तव्य है। गुरु जिस दिन सन्तुष्ट होते है उस दिन सभी वार, सभी ग्रह नक्षत्रगण तथा सभी राशि शुभफल दान करते हैं। सुतरां जब गुरु की इच्छा होगी तभी उनकी आज्ञानुसार से दीक्षा ग्रहण करना चाहिए।

### मन्त्रों के दशसंस्कार

इसके अनन्तर 'शारदातिलक' में मन्त्रों का दश संस्कार कह रहे हैं–जनन, जीवन, इसके अनन्तर ताड़न तथा बोधन, इसके अनन्तर अभिषेक। विमलीकरण तथा आप्यायन, तर्पण, दीपन तथा गुप्ति–यह दश प्रकार के मन्त्रों के संस्कार हैं। मातृकायन्त्र के मध्य से देय मन्त्र समूहों का एक एक अक्षर के उद्धार का नाम एक एक जनन है। आकार से क्षकार तक वर्णों को मातृकावर्ण कहते हैं। गन्धर्वतन्त्र के उक्ति से ज्ञात होता है–अकार से क्षकार तक के वर्ण समूह मातृका वर्ण कहे गये है। मातृकायन्त्र की लेखन

तार्त्तीये ह्सौः––

कादिमान्ताः पञ्चवर्गा मातृकाः क्रमशोदिताः ।
यादिवान्ताः शादिहान्ता लक्षणे विलिखेत्ततः ॥

इति मातृकायन्त्रम् ।

तस्माच्च गन्धपङ्केन भूर्जादौमन्त्रमुद्धरेत् ।
प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत् सुधीः ।
एतज्जीवनमित्याहुमन्त्रतन्त्रविशारदाः ॥

दशधा शतधा वा जपः । यथा विश्वसारे—

पृथक् शतं वा दशधा मन्त्रवर्णान् जपेत् सुधीः ।
मन्त्रवर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा ॥
प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं तदुदाहृतम् ।

तन्त्रान्तरे—

ताडनं ताडयेद् वर्णानखिलांश्चन्दनाम्भसा ॥
शतं वा दशधा वापि बोधयेत्तु मनुं ततः ।

---

प्रणाली कह रहे है–गोमयलिप्त भूमि पर एक अष्टदल पद्म अङ्कित करके चन्दनादि के द्वारा अथवा कठिनी ( खड़ीमाटी ) द्वारा कर्णिका के मध्य में तार्त्तीय बीज ( ह्सौः ) लिखना है । केशर समूह पर दो दो स्वर तथा अष्टदलों में वर्ण समूह लिखना है । तार्त्तीय शब्द का अर्थ–ह्सौः । उसके बाद यथाक्रम से पूर्वोक्त ककारादि मकारान्त पञ्चवर्ग, यकारादि वकारान्त, राकारादि हकारान्त तथा ल और क्ष रूप मातृकावर्ण समूह लिखना । यही मातृका यन्त्र है । उस मातृका यन्त्र से चन्दन के द्वारा भूर्जादि पत्र में यन्त्र उद्धार करना है । यह मन्त्र का जनन है । सुधी व्यक्ति मन्त्र वर्णों को प्रणव के द्वारा व्यवहित करके अर्थात् मन्त्रवर्ण के आदि में प्रणव लगाकर जप करेंगे ।

मन्त्र-तन्त्रज्ञ पण्डितगण इसे दूसरा जीवन कहते है । उक्त जप दशबार अथवा शतबार कर्त्तव्य है । विश्वसार तन्त्र में कहा गया है––‘सुधी व्यक्ति मन्त्रवर्णों को पृथक पृथक रूप में दशबार जप करेंगे । ( भुर्जं पत्रों कुङ्कुमादि द्वारा ) मन्त्रवर्णों को लिखकर मन्त्रदाता गुरु वायुबीज ( यं ) के द्वारा प्रत्येक मन्त्रवर्णों के चन्दन जल द्वारा ताड़न करता है । यह तीसरा ताड़न कहकर कहा गया है ।

तन्त्रान्तरों में कहा गया है––‘मन्त्रवर्णों को चन्दन जल के द्वारा

विलिख्य मन्त्रं तन्मन्त्री प्रसूनैः करवीरजैः ।
तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हन्याद् यान्तेन बोधनम् ॥

यान्तेन रमिति बीजेन ।

स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया ।
अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद् विशुद्धये ॥

तन्त्रान्तरे—

मन्त्रस्य चामुकं वर्णमभिषिञ्चामि हृद्युतम् ।
अभिषिञ्चेदष्टधा वा प्रत्येकमभिषेचनम् ।
कुशोदकेन दुग्धेनाऽभिषेचनमुदाहृतम् ॥ इति ।
सञ्चिन्त्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् ।
मन्त्रे मलत्रयं मन्त्रो विमलीकरणं त्विदम् ।
तारं व्योमाग्निमनुयुक् दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः ॥

मनुश्चतुर्दशस्वरो दण्डी अनुस्वारः । तेन ॐ ह्रौं इति ।

---

दशबार ताड़न करना है। यही ताड़न है। इसके बाद मन्त्र का बोधन करना है। मन्त्रदाता गुरु उस देय मन्त्र को लिखकर यान्त ( रं ) बीज के द्वारा मन्त्रवर्ण समसंख्यक करबीर के पुष्प के ( एक एक ) द्वारा हनन करना है। यही चौथा बोधन कहा है। 'यान्तेन' इस पद का अर्थ है--'रं' इस बीज के द्वारा मन्त्रदाता गुरु स्वस्वतन्त्रोक्त विधान से अर्थात् शिवमन्त्र में शिवतन्त्रानुसार शक्तिमन्त्र से शक्तितन्त्रानुसार से तथा विष्णुमन्त्र में वैष्णवतन्त्रानुसार से मन्त्र की विशुद्धि के लिये मन्त्रवर्ण के समसंख्यक अश्वत्थ पत्र के द्वारा मन्त्र को अभिषिक्त करेंगे।

तन्त्रान्तर में अभिषेक का प्रयोग कहा गया है--'मन्त्रस्यामुक्तवर्ण-मभिषिञ्चामि नमः' इस मन्त्र के द्वारा प्रत्येक वर्ण को आठ बार अभिषिक्त करेंगे। इसका नाम पाँचवा अभिषेक है। कुशोदक के साथ दुग्ध के द्वारा अभिषेक कर्त्तव्य है। मन्त्रदाता मन ही मन मन्त्र चिन्ता करके ज्योतिर्मन्त्र के द्वारा मन्त्रगत त्रिविध मल सहज आगन्तुक तथा मायीय दग्ध करेंगे। यही है मन्त्र के छठा विमलीकरण।

इसके बाद ( प्रणव ) एवं व्योम। हकार, अग्नि ( रेफ ) तथा मनु (औ) युक्त दण्डी को ( अनुस्वार को ) ज्योतिर्मन्त्र कहते है। मनु शब्द का अर्थ है—चतुर्दशस्वर ( औ ) एवं दण्डी अर्थात् शब्द का अर्थ—अनुस्वार सुतरां

कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः ।
तेन मन्त्रेण विधिवदेतदाप्यापनं मतम् ॥

अन्यत्र—

अमुकमन्त्रं तर्पयामि नम इत्यम्भसा च तम् ।
मधुना शक्तिमन्त्रे वैष्णवे चेन्दुमज्जलैः ॥
शैवे घृतेन दुग्धेन तर्पणं समुदीरितम् ।

दशधा तर्पयेत्तावदिति तर्पणम् ।

तारमायारमायोगे मनोर्दीपनमुच्यते ।
शतमष्टोत्तरं चैव दीपयेत् साधकोत्तमः ॥ इति ।

तन्त्रान्तरे सप्तधा दीपनमिति ।

जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम् ॥

इति मन्त्राणां दशसंस्काराः ।

## इष्टदेवस्य नित्यपूज्यत्वकथनम्

विश्वसारे—

ग्रहीत्वा च महाविद्यां जपेज्जीवावधि प्रिये ।

---

मन्त्र है–ॐ ह्रौं । देय मन्त्रोच्चारण करके मूलमन्त्र जप्त कुशोदक के द्वारा यथाविधि मन्त्र के प्रत्येक वर्णों के प्रोक्षण, यही सातवाँ आप्यायन है। अन्यत्र भी कहा गया है। 'अमुकमन्त्रं तर्पयामि नमः' कह कर जल के द्वारा मूलमन्त्र का तर्पण कर्त्तव्य है। शक्तिमन्त्र में मधुद्वारा वैष्णवमन्त्र में कर्पूर-मिश्रित जल के द्वारा, शैवमन्त्र में दुग्ध तथा घृत के द्वारा तर्पण करना कहा गया है। दश बार तर्पण कर्त्तव्य है। यही है आठवाँ तर्पण विधि मन्त्र में उसको ( प्रणव ), माया ( ह्रीं ) तथा रमा ( श्रीं ) योग होने से मन्त्र का दीपन अर्थात् मन्त्र के पहले यह तीन बीज के योग से मन्त्र को सात बार जप करने से ६ दीपन होता है।

विश्वसार तन्त्र के अनुसार—'साधक श्रेष्ट उसके माया तथा रमा–यह तीन बीज मन्त्र के द्वारा पुटित करके १०८ बार देय मन्त्र का जप करते करते मन्त्र का दीपन चिन्तन करेंगे। तन्त्रान्तरों में सात बार दीपन करने को कहा गया है। जो मन्त्र जप किया जाता है। उसके गोपन रखने को दसवाँ अप्रकाश कहते है। यही मन्त्रों का संस्कार हैं।

### इष्ट देव का नित्यपूजा तत्त्व कथन

विश्वसारतन्त्र में कहा गया है––हे प्रिये ! महाविद्या ग्रहण करके

महागुरुनिपातादौ न पूजायां विकल्पना ॥
मोहाद्वा यदि वा दैवात् पूजयेन्न च साधकः ।
तस्य सर्वविनाशः स्यान्मारयेत्तं सदाशिवः ॥
अशुचौ वा शुचौ वापि सर्वदेशेऽपि सर्वदा ।
पूजयेत् परया भक्त्या नात्र कार्या विचारणा ॥

रुद्रयामले—

पूजयेन्मृतके वाऽपि जनने सरुजोऽपि वा ।
सर्वत्रैष विधिः प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः ॥

## सूतकिनः पूजाविधिः

अथ सूतकिनः पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् ।
स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै ।
बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् ॥

देवीविषये बाह्यपूजा कर्त्तव्या विशेषविधानात् । तथा चोक्तं वाराहीतन्त्रे—

तारायाश्चैव काल्याश्च त्रिपुरायाश्च सुव्रते ।

---

जीवन के शेष तक अन्तिम समय तक जप करते रहे । महागुरु निपातादि में अर्थात् पिता, माता, गुरु आदि के मरणादिजन्य अशौच में भी पूजा में विचार नहीं है, अर्थात पूजा नित्य कर्त्तव्य है । साधक दैवात् अथवा मोहवशतः यदि पूजा नहीं करता है, तब उसका समस्त ही विनष्ट होता है, शिव उसका विनाश करते हैं । अशुचि वा शुचि अवस्था में समस्त देशों में तथा सभी काल में भक्ति के साथ देवी की पूजा करना । इसमें विचार कर्त्तव्य नहीं है । रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—जननाशौच अथवा मरणाशौच में भी पूजा करना है तथा रोगी व्यक्ति भी पूजा करेंगे । सभी स्थलों में ही समस्त काम्य फलप्रद है, यह विधि द्वारा कहा गया है ।

### सूतकिन पूजाविधि

अनन्तर आगम विहित जननाशौच पूजा को कह रहा हूँ । जननाशौची व्यक्ति स्नान करके तथा नित्यकर्म पूरा करके मानस क्रिया के द्वारा अर्थात् मन ही मन बाह्यपूजा क्रमानुसार ही इष्ट देव के ध्यान द्वारा पूजा करेगा । देवी विषय में बाह्यपूजा को भी करना है क्योंकि इस विषय में विषेश विधान है । वाराही तन्त्र में यही कहा गया है—हे सुव्रते ! जननाशौच

सूतके मृतके चैव न त्यजेयुर्जपार्चनम् ॥

यामले—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि ।
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा ॥

विश्वसारे—

जाग्रत्शयान उत्तिष्ठन् गच्छन् भुञ्जान एव वा ।
सिद्धमन्त्रे न दोषः स्यादशौचेऽपि जपेत् सदा ।
न कल्पना दिवा रात्रौ न च सन्ध्यावसानके ॥

## अथ गुरुमाहात्म्यम्

गुरुः सर्वसुराधीशो गुरुः साक्षी कृताकृते ।
सम्पूज्य सकलं कर्म कुर्यात्तस्याज्ञया सदा ॥
गमनं पूजनं जापं भोजनं मननं तथा ।
गृहीत्वाज्ञां गुरोः कुर्यात्तस्य सिद्धिर्विना जपात् ॥

---

तथा मरणाशौच में काली, तारा तथा त्रिपुरा के जप पूजा का त्याग मत करना ।

यामल तन्त्र में कहा गया है—अशुचि अथवा शुचि व्यक्ति गमन के समय, अवस्थान काल में अथवा शयन के समय सर्वदा सर्वदेश में जप करेगें क्योंकि मानस जप में किसी प्रकार के दोष नहीं है। विश्वसार तन्त्र में कहा गया है—जाग्रत अवस्था में, शायित ( सोये हुए ) अथवा अपविष्ट होकर, चलते समय, खाते समय तथा अशौच में भी सर्वदा जप जरें । सिद्ध मन्त्र के जप में दोष नहीं है। उसमें दिनः रात अथवा सन्ध्या के अवसान काल का कोई विचार नहीं है।

### गुरु का माहात्म्य

गुरु समस्त देवताओं के अधिपति हैं। गुरु सभी कृत्य तथा अकृत्य, कृत तथा अकृत कर्मों के साक्षी हैं। गुरु की पूजा करके उनके आज्ञानुसार ही सर्वदा कर्म करना। जो व्यक्ति गुरु की आज्ञा लेकर गमन, पूजा, जप, भोजन तथा मनन ( चिन्ता ) करते हैं, उनका विना जप से ही सिद्धिलाभ होता है।

तन्त्रे—

त्रिसन्ध्यं श्रीगुरोर्ध्यानं त्रिसन्ध्यं पूजनं गुरोः ।
त्रिसन्ध्यं भावयेन्नित्यं गुरुं परमकारणम् ॥
स्वगुरुं हि विना देवि ! नान्यं च गुरुमर्चयेत् ।
प्रत्यक्षो वा परोक्षो वा प्रत्यहं प्रणमेद् गुरुम् ॥
एकग्रामे स्थितो नित्यं त्रिसन्ध्यं प्रणमेद् गुरुम् ।
क्रोशमात्रं स्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत् ॥
अर्द्धयोजनतः शिष्यः प्रणमेत् पञ्चपर्वसु ।
एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधिः ॥
तत्तत्संख्यागतैर्मासैः प्रणमेत् श्रीगुरुं प्रिये ।
यदि दूरे च चार्वङ्गि श्रीगुरुर्नगनन्दिनि ।
संवत्सरस्य मध्ये तु द्विवारं पूजयेद् गुरुम् ॥

द्विवारमिति एकधोत्तरायणे एकधा दक्षिणायने इत्यर्थः ।

एवं यो नाचरेद् देवि ! स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ।

---

तन्त्र में कहा गया है—त्रिसन्ध्या (प्रातः, मध्याह्न तथा सायाह्न) श्रीगुरु का ध्यान तथा त्रिसन्ध्याय श्रीगुरु की पूजा करना चाहिये। त्रिसन्ध्या में गुरु परम कारण हैं इसलिये भावना करना है। हे देवि ! स्व गुरु—अपने गुरु को छोड़कर अन्य गुरु की अर्चना मत करना। शिष्य प्रत्यक्ष हो अथवा परोक्ष हो—गुरु को नित्य प्रणाम करेगा। शिष्य गुरु के साथ एक ही गाँव में रहने पर प्रतिदिन त्रिसन्ध्याय गुरु को प्रणाम करेगा। गुरु के घर से एक कोस दूर में वास (आवास) करने पर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एकबार गुरु को प्रणाम करेगा। शिष्य अर्द्धयोजन मध्य में रहने पर पञ्चपर्वों में अर्थात् अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा तक संक्रान्ति में गुरुदेव को प्रणाम करेगा। एक योजन से द्वादश योजन के बीच रहने पर योजन संख्यक मासों में प्रतिमास गुरु के पास जा कर उन्हें प्रणाम करना है।

हे चार्वङ्गि नगनन्दिनि ! यदि इससे भी अधिक दूरी पर गुरुदेव अवस्थान करते हैं तो साल भर में दो बार गुरुदेव को प्रणाम करना। श्लोकोक्त 'द्विवार' शब्द का अर्थ है—एक बार उत्तरायण में तथा एक बार दक्षिणायन में।

हे देवि ! जो व्यक्ति गुरु के साथ इस प्रकार आचरण नहीं करता, वह

एकत्र गुरुणा सार्द्धं स्वपित्युपविशेच्च यः ॥
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश: ।

तन्त्रे—

गुरुमालोकयन् शिष्य उत्तिष्ठन्नासनं त्यजेत् ॥
जातिविद्याधनाढ्योऽपि दूरे दृष्ट्वा गुरुं मुदा ।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमौ प्रदक्षिणमथाचरेत् ॥
आयान्तमग्रतो गच्छेद् गच्छन्तं तमनुव्रजेत् ।
प्रणम्य प्रवसेत् पार्श्वे तदा गच्छेदनुज्ञया ॥
मुखावलोकी सेवेत् कुर्यादाज्ञादिमादरात् ।
असत्यं न वदेदग्रे न बहुप्रलपेदपि ॥
ऋणदानं तथादानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ।
न कुर्याद् गुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूत्वा कथञ्चन ॥
गुरुर्माता पिता स्वामी बान्धवाश्च सुहृद् गुरुः ।
इत्याधाय मनो नित्यं यजेत् सर्वात्मा गुरुम् ॥

---

ब्रह्मराक्षस होता है। जो व्यक्ति गुरु के साथ एकत्र शयन तथा उपवेशन करता है, वह चतुर्दश इन्द्रों की स्थितिकाल तक घोर नरक में गमन करते हैं। तन्त्र में कहा गया है—शिष्य गुरु को देखते ही उठकर अपना आसन छोड़ देगा। वंश, विद्या एवं ऐश्वर्य में श्रेष्ठ होने पर भी शिष्य गुरुदेव को दूर से देखकर आनन्द के साथ दण्डवत् भूमि पर प्रणाम करेगा तथा उसके बाद प्रदक्षिण करेगा। गुरु जब आगमन करेंगे तब आगे बढ़कर रहेगा; जब गमन करेंगे चलेंगे, तब उसके अनुवर्त्तन करेंगे। गुरुदेव को प्रणाम कर उनके बगल में उपवेशन करें तथा उनके आज्ञानुसार ही अन्य कहीं गमन करें। उनके मुख की तरफ दृष्टि रखकर अर्थात् उनके अभिप्रायानुसार सेवा करना तथा आदर के साथ उनकी आज्ञा का प्रतिपालन करना। गुरु के सामने कदापि मिथ्या कथा नहीं करना तथा बहुकथा (अधिक बात) भी मत करना।

हे देवि ! शिष्य होकर गुरु के साथ कभी भी ऋणदान तथा ऋणग्रहण तथा वस्तुयों क्रय-विक्रय मत करना। गुरु माता, गुरु पिता, गुरु स्वामी गुरु बान्धव एवं गुरु सुहृत्—इस प्रकार मन को सर्वदा एकाग्र करके सर्वरूप में प्रत्यह प्रतिदिन गुरु की पूजा करना।

9569

गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यं च विवर्जयेत् ।
दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वं च गुरोरग्रे परित्यजेत् ॥
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादुकां तथा ।
छायां कलत्रमन्यद् वा यद् दृष्टं तत् सुपूजयेत् ॥
यथा देवे मन्त्रे यथा मन्त्रे तथा गुरौ ।
यथा गुरौ तथा स्वात्मन्येवं भक्तिक्रमः स्मृतः ॥
गुरुशय्यासनं यानं पादुकोपानहौ तथा ।
स्नानोदकं तथाच्छायां लङ्घयेन्न कदाचन ॥

अन्यत्रापि—

देवच्छायां गुरुच्छायां शक्तिच्छायां न लङ्घयेत् ।
प्रमादतोऽपि चेद् देवि ! गुरोरग्रे प्रपूजयेत् ॥
स याति नरकं घोरं सा पूजा निष्फला भवेत् ।
रिक्तहस्तेन नोपेयाद् राजानं देवतां गुरुम् ॥
फलपुष्पान् वरीदनि यथाशक्त्या समर्पयेत् ।
भक्त्या शक्त्यनुसारेण गुरुमुद्दिश्य यत्कृतम् ॥

---

गुरु के सामने अन्य किसी की पूजा अर्थात् गुरु पूजा छोड़कर अन्य किसी की पूजा तथा औद्धत्य अर्थात् अन्य किसी की आलोचना बिलकुल वर्जन करना। गुरु के सामने दीक्षा की व्याख्या तथा प्रभुत्व दिखाना या सुनाना का परित्याग करना। गुरु का आसन, शय्या, वस्त्र, भूषण, पादुका प्रतिकृत, पत्नी तथा अन्य जो भी कुछ देखो उसकी पूजा करना। देवताओं में जिस प्रकार भक्ति, मन्त्र में भी उसी प्रकार भक्ति कर्त्तव्य है और मन्त्र में जिस प्रकार भक्ति, गुरु में भी उसी प्रकार भक्ति करना। गुरु में जिस प्रकार भक्ति, अपने आत्मा में भी उसी प्रकार भक्ति कर्त्तव्य है। भक्ति का इस प्रकार क्रम कहा गया है। कभी भी गुरु की शय्या विछौना, आसन, यान, पादुका, चर्मपादुका, स्नानीय जल तथा छाया का लङ्घन मत करना।

अन्यत्र भी कहा गया है—देवताओं की छाया, गुरु की छाया तथा शक्ति का अर्थात् गुरु पत्नी की छाया का लङ्घन मत करना।

हे देवि ! यदि प्रमादवशतः कोई गुरु के सामने पूजा करता है, तो वह नरक को गमन करते हैं तथा पूजा निष्फल होता है। रिक्त हाथ राजा, देवता तथा गुरु के पास मत जाना। सामर्थ्यानुसार फल, पुष्प, तथा वस्त्रादि प्रदान करना। गुरु के उद्देश्य से सामर्थ्यानुसार भक्तिपूर्वक थोड़ा अथवा

स्वल्पं वा बहुलं तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ।
गुर्वर्थे कृपणो देवि ! रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
गुरुवाक्यं मृषा कृत्वा आत्मवाक्यं तु स्थापयेत् ।
गुरुं जेतुमना यः सः पच्यते नरकार्णवे ॥
गुरोर्नाम न भाषेत जपकालादृते क्वचित् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नगनन्दिनि ॥
भुञ्जते विबुधा भक्त्या गुरोरुच्छिष्टमुत्तमम् ।
आगच्छेद् यदि चार्वङ्गि ! गुरुः शिष्यस्य मन्दिरे ॥
शिष्यस्य मन्दिरं देवि कोटिसूर्यग्रहैः समम् ।
चन्द्रग्रहणकालो हि तद्दिनं वरवर्णिनि ॥
गुरोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
गुरुं वा गुरुपुत्रं वा पत्नीं वा वरवर्णिनि ॥
विलङ्घ्य यदि चार्वङ्गि गच्छेत् साधकसत्तमः ।
तत्क्षणाच्चञ्चलापाङ्गि नरकं चोत्तरोत्तरम् ॥

---

अधिक जो भी किया जाय; धनी तथा दरिद्र दोनों ही तुल्य अर्थात् धनी व्यक्ति भक्तिपूर्वक प्रचुर धन देकर जो फल पायेगा, दरिद्र भी भक्तिपूर्वक थोड़ा देकर ही वही फल ही पायेगा ।

हे देवि ! गुरु के उद्देश्य से जो लोग कृपण अर्थात् गुरु को देने में जो लोग कृपणता करते हैं; वे लोग 'रौरव' नामक नरक में प्रवेश करते हैं । जो जो व्यक्ति गुरु वाक्य को मिथ्या समझ कर ( प्रतिपादन कर ) अपने बात को यथार्थ प्रतिपादन करते है तथा जो गुरु के जय करने की आशा करता है, वह नरक समुद्र में पचता रहता है । जपकाल को छोड़कर अन्य किसी समय में गुरु के नाम का उच्चारण मत करना ।

हे नगनन्दिनि ! ज्ञानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रगण भी भक्ति के साथ गुरु का उच्छिष्ट ( जूठा ) भोजन करता है । हे चार्वङ्गि ! यदि गुरुदेव शिष्य के घर आ जाते हैं; हे देवि हे वरवर्णिनि ! शिष्य का वह घर कोटि सूर्यग्रहण तुल्य पवित्र क्षेत्र तथा उस दिन चन्द्रग्रहण तुल्य पुण्य होता है । गुरु के दर्शन मात्र से ही सर्वपाप से मुक्त होता है । हे वरवर्णिनि ! हे चार्वङ्गि ! गुरु, गुरुपुत्र अथवा गुरुपत्नी को लांघकर ( नमस्कार आदि न करके ) यदि कोई चला जाता है; हे चञ्चलापाङ्गि चार्वङ्गि ! तब वह तत्काल साधक श्रेष्ठ होने पर भी उत्तरोत्तर नरक को गमन करते हैं ।

उत्तरकल्पे—

साक्षाद्वापि परोक्षे वा गुरोराज्ञां समाचरेत् ।
( परोक्षे तदनुज्ञानं विधानं शृणु शङ्करि ) ॥
पूजाकाले च चार्वङ्गि आगच्छेच्छिष्यमन्दिरम् ।
गुरुर्वा तत्सुतो वाऽपि तत्पत्नी वा महेश्वरी ॥
तदा पूजां परित्यज्य पूजयेत् स्वगुरुं प्रिये ।
यद्यल्पं हि गुरोर्द्रव्यमदत्तं स्वीकरोत्यपि ॥
तिरश्चां योनिमागच्छेत् क्रव्यादैर्भक्ष्यते सदा ।
सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च ॥
स्तुत्वा करपुटं कृत्वा मनसा ध्यानतत्परः ।
विहितं विदधे नाथ ! विधेयं यत्कृपां कुरु ॥
अविरुद्धं भवत्वत्र त्वदीयप्रसादतः ।
इति मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य तदादिष्टं समाचरेत् ॥

महिषमर्दिनीतन्त्रे—

**श्रीदेव्युवाच**

**देवदेव महादेव कृपया परमेश्वर ।**
**गुरुपूजाविधानं मे विस्तराद् वद शङ्कर ! ॥**

---

उत्तर कल्प में कहा गया है—'साक्षात् में अथवा असाक्षात् में गुरु के आज्ञा का प्रतिपालन करना । हे शङ्करि ! असाक्षात् में—गुरु के आज्ञा प्रतिपालन की विधि कह रहा हूँ, सुनो । हे चार्वङ्गि ! हे महेश्वरि ! यदि पूजाकाल में शिष्य गृह में गुरु, गुरुपुत्र अथवा गुरुपत्नी आगमन करते हैं, तब उस समय छोड़ कर अपने गुरु को ( गुरुपुत्र तथा गुरुपत्नी की ) पूजा करना । गुरु के द्वारा अदत्त थोड़ा सा द्रव्य भी यदि शिष्य ग्रहण करते हैं, तब वह पशुओं की योनि प्राप्त होता है, तथा राक्षसों द्वारा सर्वदा भक्षित होता है । सहस्रार पद्म में गुरु के पादपद्म का दर्शन करके तथा पूजा करके, स्तव करके एवं हाथ जोड़कर मन के द्वारा ध्यान तत्पर होकर 'विहितं विदधे नाथ' इत्यादि 'त्वदीयप्रसादतः' इत्यन्त मन्त्र के द्वारा प्रार्थना करके उनके द्वारा आदेशित कर्म का अनुष्ठान करना ।

महिषमर्द्दिनी तन्त्र में श्रीदेवी कह रही है—हे देवदेव महादेव ! हे परमेश्वर ! कृपा करके मुझे गुरु पूजा की विधि विस्तृत रूप से बताइये ।

### ईश्वर उवाच

दिव्यं वीरं च चार्वङ्गि पूर्वोक्तं बहुशः प्रिये ।
मानवस्य क्रमं देवि संक्षेपान्निगदामि ते ॥
गुरुः परगुरुश्चैव परापरगुरुस्तथा ।
स्वगुरुः परमेशानि साक्षाद् ब्रह्म न संशयः ॥
तद् गुरुः स्यात् परगुरुः स्वयं विष्णुः क्षितौ सदा ।
परापरगुरुस्तस्य गुरुः साक्षात्महेश्वरः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
अतएव महेशानि साक्षाद् ब्रह्ममयो गुरुः ॥
अखण्डमण्डलाकारं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
सर्वेशं सर्वदं देवं प्रणमामि पुनः पुनः ॥
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्तुभ्यं नमोनमः ।
त्रिसन्ध्यं श्रीगुरोर्ध्यानं त्रिसन्ध्यं पूजनं गुरोः ॥
त्रिसन्ध्यं भावयेन्नित्यं गुरुं परमकारणम् ।
गुरुं विना वरारोहे ! नास्ति सिद्धिः कदाचन ॥

---

### ईश्वर बोलो

हे चार्वङ्गि ! हे प्रिये ! पूर्व में अति विस्तृतरूप से दिव्य तथा वीरक्रम कहा गया है। हे देवि ! संक्षेप में मानवक्रम का कथा तुम्हें कह रहा हूँ। मानवक्रम से गुरु, परमगुरु तथा परापर गुरु ये तीन प्रकार के हैं।

हे परमेश्वरि ! अपने गुरु साक्षात् ब्रह्म है, इसमें सन्देह नहीं है। उनके गुरु परमगुरु होते हैं, जो पृथ्वी पर सर्वदा स्वयं विष्णु स्वरूप हैं। उनका गुरु परापरगुरु, जो साक्षात् महेश्वर है, गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु तथा गुरु ही महेश्वर है। अतएव हे महेश्वरि ! गुरुदेव साक्षात् ब्रह्म स्वरूप है। अखण्डमण्डलाकार, सर्वव्यापी, षडैश्वर्यशाली, सर्वेश्वर, सर्वदाता गुरुदेव को बार बार प्रणाम करता हूँ। सम्मुख में, पार्श्वद्वय में तथा पृष्ठ में नमस्कार है। तुम्हें नमस्कार नमस्कार—इस प्रकार शिष्य प्रतिदिन त्रिसन्ध्या में श्रीगुरु का ध्यान तथा त्रिसन्ध्या में श्रीगुरु की पूजा करें तथा त्रिसन्ध्या में गुरु को परम कारण कहकर चिन्ता करें। हे वरारोहे ! गुरु को छोड़कर कभी भी सिद्धि नहीं है।

गुरुं स्मृत्वा महेशानि दिवसे दिवसे प्रिये ।
पूजयेद् मानसैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैस्तथोत्तमैः ॥
भक्ष्यैर्भोज्यैस्तथा पेयैर्दधिदुग्धैरनेकधा ।
पनसैर्नारिकेलैश्च तथा रम्भाफलैः प्रिये ॥
अन्नैर्नानाविधैर्देवि पूजयेत् स्वगुरुं प्रिये ।
स्वगुरुं हि विना देवि नान्यं च गुरुमर्चयेत् ॥
( मत्स्यैर्मांसैर्महेशानि पूजयेद् भक्तितः प्रिये । )
गन्धैर्माल्यैश्च चार्वङ्गि पूजयेद् भक्तितः सदा ॥
स्वर्णैश्च पट्टवस्त्रैश्च तथा कार्पाससम्भवैः ।
अविचित्रैर्विचित्रैश्च अतिसूक्ष्मैर्मनोहरैः ॥
आसनैर्विविधैर्देवि रक्तकम्बलसंयुतैः ।
तथा नानाविधैर्द्रव्यैः पूजयेत् स्वगुरुं सदा ॥
अलङ्कारैस्तथा देवि विविधैः स्वर्णनिर्मितैः ।
राजतैश्चैव चार्वङ्गि स्वगुरुं पूजयेत् सदा ॥
गुरोर्मन्त्रं महेशानि प्रजपेत् सुरवन्दिते ।
गुरोः पत्नीं महेशानि पूजयेद् विधिनाऽमुना ॥

---

हे प्रिये ! हे महेशानि ! प्रतिदिन गुरु का स्मरण करके मानस गन्ध समूहों से तथा मानस उत्तम धूपसमूह तथा दीपसमूह के द्वारा पूजा करना । हे प्रिये ! हे देवि ! उसी प्रकार अर्थात् मानस अनेक प्रकार के भक्ष्य ( भोजन ) भोज्य द्वारा तथा पेय ( पीने वाला ) दधि दुग्ध के द्वारा तथा पनस ( कटहल ), नारियल तथा केला फल के द्वारा तथा विभिन्न प्रकार के अन्न के द्वारा अपने गुरु की पूजा करना । हें देवि ! अपने गुरु को छोड़कर अन्य गुरु की अर्चना मत करना । हे चार्वङ्गि ! गन्ध तथा माल्य द्वारा भक्तिपूर्वक सर्वदा गुरु की पूजा करना । हे देवि ! स्वर्ण के द्वारा पट्टवस्त्र के द्वारा विचित्र अथवा अविचित्र तथा अतिसूक्ष्म मनोहर कपास वस्त्र के द्वारा रक्तकम्बल संयुक्त विविध आसन के द्वारा तथा और अनेक प्रकार के द्रव्य से सर्वदा अपने गुरु की पूजा करना । हे चार्वङ्गि ! स्वर्णनिर्मित तथा रजत निर्मित विविध अलङ्कार के द्वारा अपने गुरु की पूजा करना । हे महेश्वरि ! हे सुरवन्दिते ! गुरुमन्त्र का जप करना तथा इस विधि के द्वारा गुरुपत्नी की पूजा करना ।

गुरुवद् गुरुपुत्रेषु गुरुवत् तत्सुतादिषु ।
प्रत्यहं पूजनं कार्यं चामुना विधिना प्रिये ॥
गुरोरभावे चार्वङ्गि गुरुपत्नीं च पूजयेत् ।
तदभावे वरारोहे गुरुकन्यां च पूजयेत् ॥
तदभावे महेशानि गुरुस्नुषां प्रपूजयेत् ।
एषामभावे चार्वङ्गि गुरोर्गोत्रं प्रपूजयेत् ॥
गोत्राभावे वरारोहे तथा मातामहं गुरोः ।
मातुलं मातुलानीं वा पूजयेद् विधिनाऽमुना ॥
यदि नो पूजयेद् देवि अनेन विधिना प्रिये ।
प्रायश्चित्ती भवेद् देवि तत्क्षणात् स च साधकः ॥
संवत्सरस्य मध्ये तु न गच्छेत् यदि साधकः ।
मन्दिरं गुरुदेवस्य सदा काशीपुरीसमम् ॥
काशी समं महेशानि यः पश्येद् गुरुमन्दिरम् ।
शिवतुल्यो भवेद् देवि तत्क्षणात् स च साधकः ॥

---

हे प्रिये ! इस विधि के अनुसार गुरुपुत्रों को गुरु के समान तथा गुरु के दुहितादि आत्मीय लोगों का भी गुरु के समान प्रतिदिन पूजा करना । हे चार्वङ्गि ! गुरु के अभाव में गुरुपत्नी की पूजा करना । गुरुपत्नी के अभाव में स्वयं शिव स्वरूप गुरुपुत्र की पूजा करना तथा गुरु पुत्र के अभाव मे गुरु कन्या की पूजा करना ।

हे महेश्वरि ! गुरुकन्या के अभाव में गुरु की भगिनी ( वहन ) की पूजा करना । इन लोगों के अभाव गुरु के स्वगोत्र की पूजा करना । हे वरारोहे ! सगोत्र का अभाव होने पर गुरु की मातामह का, मातुल का अथवा मातुलानी का इसी विधान से पूजा करना । हे देवि ! जो साधक इस विधि के अनुसार पूजा नहीं करता है, हे प्रिये ! वह तत्क्षणात् प्रायश्चित्तार्ह होता है तथा जो साधक सर्वदा काशी पुरी तुल्य गुरुदेव के मन्दिर में संवत्सर के बीच नहीं जाता है वह भी प्रायश्चित्तार्ह होता है ।

हे महेशानि ! जो साधक गुरुगृह का काशी तुल्य दर्शन करते हैं, हे देवि ! वह साधक तत्क्षणात् तत्काल शिवतुल्य होता है । गुरुदेव के घर

गुरोर्गेहं समासाद्य उच्छिष्टभक्षणं चरेत् ।
तदैव सहसा सिद्धिः साधकस्य भवेत् प्रिये ॥
अभुक्त्वा गुरुदेवस्य चोच्छिष्टं वरवर्णिनि ।
विद्यां वा परमेशानि मन्त्रं वा नगनन्दिनि ॥
न जपेत्तु कदाचित्तु कुत्रचित् क्वचिदेव हि ।
तन्मुखं चञ्चलापाङ्गि विष्ठाकूपसमं प्रिये ॥
उच्छिष्टभक्षणाद् देवि मुखस्य शोधनं प्रिये ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियो वैश्याः शूद्राश्च नगनन्दिनि ॥
भुञ्जते विविधं भक्त्या गुरोरुच्छिष्टमुत्तमम् ।
गुरोरुच्छिष्टमन्नं च सदानन्दमयं प्रिये ॥
गुरुं वा गुरुपुत्रं वा पत्नीं वा वरवर्णिनि ।
विलङ्घ्य यदि चार्वङ्गि गच्छेत् साधकसत्तमः ॥
तत्क्षणाच्चञ्चलापाङ्गि नरकं चोत्तरोत्तरम् ।
मन्दिरं गुरुदेवस्य कुटीरं यदि पार्वति ।
कैलाशसदृशाकारं तदेव नगनन्दिनि ॥

---

जा कर उच्छिष्ट ( जूठा ) भक्षण करना । हे प्रिये ! साधक को उसी समय अकस्मात् सिद्धिलाभ होगा । हे वरवर्णिनि ! हे परमेश्वरि ! नगनन्दिनि ! गुरुदेव का जूठा भोजन न करके किसी समय, किसी स्थान, में किसी काल में विद्या अथवा मन्त्र जप मत करना क्योंकि हे प्रिये ! हे चञ्चलापाङ्गि उस साधक का मुख विष्ठाकूप के तुल्य ( अपवित्र ) होता है ।

हे देवि ! हे प्रिये ! ( गुरु का ) उच्छिष्ट ( जूठा ) खाने से मुख की शुद्धि होती है । हे नगनन्दिनि ; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र लोग भक्तिपूर्वक गुरु का बहुविधि ( अनेक प्रकार ) उच्छिष्ट ( जूठा ) उत्तमरूप ( भली भाँति ) से भोजन करते हैं । हे प्रिये ! गुरु का जूठा अन्न सभी समय आनन्दमय है । हे वरवर्णिनि ! गुरु पुत्र को अथवा गुरुपत्नी को लांघकर ( नमस्कारादि न करके ) यदि कोई गमन करता है, हे चञ्चलापाङ्गि ! हे चार्वङ्गि ! वह साधक श्रेष्ठ होकर भी तत्क्षणात् उत्तरोत्तर नरक में गमन करते हैं । यदि कुटीर हो तब भी वह कैलास तुल्य समझना ।

यद् यदिष्टतमं लोके साधकस्य शुचिस्मिते ।
तत्सर्वं गुरवे दद्याद् भक्त्या परमयत्नतः ॥
तदैव सहसा देवि मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
गुरोराज्ञां समादाय प्रजपेदनिशं यदि ॥
तदैव सहसा सिद्धिरष्टसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पूजाकाले च चार्वङ्गि आगच्छेच्छिष्यमन्दिरम् ॥
गुरुर्वा गुरुपुत्रो वा पत्नी वा वरवर्णिनि ।
तदा पूजां परित्यज्य पूजयेत् स्वगुरुं प्रिये ॥
देवतापूजनार्थं च गन्धपुष्पादिकं प्रिये ।
तत्सर्वं गुरवे दत्वा पूजयेन्नगनन्दिनि ।
तदैव सहसा देवि देवता प्रीतिमाप्नुयात् ॥
रुद्रयामले—
गुरुर्वा गुरुपत्नी वा पुत्रो वापि समागतः ॥
ज्येष्ठो वाप्यर्चनामध्ये शिष्यः सर्वार्चनां त्यजेत् ।
आज्ञया पूजयेच्छिष्य इति शास्त्रस्य निर्णयः ॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैस्तथा नैवेद्यकैरपि ।

---

हे शुचिस्मिते ! इस लोक में साधक का जो-जो प्रियतम वस्तु है, वह सभी यत्न पूर्वक अति आदर से भक्ति से गुरुदेव को दान करना, हे देवि ! तत्काल ही सहसा ( अकस्मात् ) उसका मन्त्रसिद्धि उत्पन्न होगा। यदि गुरु की आज्ञा लेकर सभी समय मन्त्र जप करता है तब वह तत्काल ही सहसा एकाएक सिद्धि लाभ करता है तथा वह अष्टसिद्धि का अधीश्वर हो सकता है। हे चार्वङ्गि ! हे वरवर्णिनि ! यदि पूजा के समय शिष्य के घर गुरु, गुरुपुत्र अथवा गुरुपत्नी आ जाते हैं; तब पूजा को छोड़कर अपने गुरु का, तत् पुत्र का, उनकी पत्नी की पहले पूजा करना।

हे नगनन्दिनि ! हे प्रिये ! देवता पूजा के लिए जिन सब गन्ध पुष्पादि को लाया गया हो उन सब सामग्री गुरुदेव को प्रदान कर उसी से पूजा करना, उसी समय तत्काल ही देवता प्रतिलाभ करते है।

रुद्रयामलतन्त्र में कहा गया है—गुरु तथा गुरुपत्नी अथवा गुरु का ज्येष्ठ पुत्र पूजा के समय आ जाते हैं, शिष्य तब पूर्वकल्पित समस्त अर्चना का त्याग करें। परन्तु गुरु के आज्ञानुसार शिष्य पुनः पूजा कर सकता है यही है शास्त्रसिद्धान्त। विविध गन्धपुष्प तथा धूप दीप, नैवेद्य के द्वारा अपने गुरु

पूजयेद् विविधैर्भक्त्या स्वगुरुं तत्सुतं च वा ॥
( गुरुदेवो हरः साक्षात्तत्पत्नी हरवल्लभा ।
गुरुपुत्रो गणेशः स्याद्विभाव्य पूजनं चरेत् ) ॥
गुरुपत्नीं महेशानि साक्षाद् देवीस्वरूपिणी ।
गणेशसदृशं देवि गुरुपुत्रं विभावयेत् ॥
शिष्यस्य तद्दिनं देवि कोटिसूर्यग्रहैः समम् ।
चन्द्रग्रहणकालं हितद्दिनं वरवर्णिनि ॥
गुरोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तत्क्षणाच्चञ्चलापाङ्गि दानं दद्याद्विचक्षणः ॥
स्वर्णगोतिलवस्त्राणा रजतस्य विशेषतः ।
गुरोः प्रीतिं समुद्दिश्य दानं कुर्याद् विचक्षणः ॥
श्रीगुरौ प्रीतिमापन्ने देवताप्रीतिमाप्नुयात् ।
प्रीतायां देवतायां तु मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥
गुरोः समीपे चार्वङ्गि न मिथ्या चोच्चरेत् क्वचित् ।
गुरोरङ्गो महेशानि देवताकारमुत्तमम् ॥
गुरोः कृपा महेशानि पूजामूलं महत् पदम् ।
गुरोर्वाक्यं मन्त्रमूलं परंब्रह्म स्वयं गुरुः ॥

---

का अथवा गुरुपुत्र की पूजा करना। गुरुदेव साक्षात् महेश्वर गुरुपत्नी पार्वती तथा गुरुपुत्र गणेशस्वरूप हैं। यह सोचकर पूजा करना। हे महेशानि ! गुरुपत्नी साक्षात् देवीस्वरूपिणी है। हे देवि ! गुरुपुत्र की गणेशतुल्य चिन्ता करना। हे देवि ! शिष्य का वह दिन ( गुरु की उपस्थित का दिन ) कोटि सूर्यग्रहण के तुल्य है। हे वरवर्णिनि ! उस दिन को चन्द्रग्रहण का काल जानना।

हे चञ्चलापाङ्गि ! गुरु के दर्शन मात्र से ही सर्वपाप से तत्काल मुक्ति होती है। तब विचक्षण बुद्धिमान शिष्य देयवस्तु दान सामग्री देगा। विचक्षण शिष्य गुरु की प्रीति के उद्देश्य से विशेषतः स्वर्ण, गो, तिल तथा वस्त्र का तथा रजत का दान करें। श्रीगुरु के प्रसन्न होने पर देवता प्रसन्न होते हैं और देवता के प्रसन्न पर निश्चय ही मन्त्रसिद्धि होता है। हे चार्वङ्गि ! गुरु से कभी भी मिथ्या भाषण मत करना। हे महेशानि ! गुरु के शरीर पर देवता मनोहर मूर्ति की चिन्ता करना। हे महेश्वरि ! गुरु की कृपा ही पूजा का मूल तथा महापद है। गुरु वाक्य ही मन्त्र का मूल है। गुरु ही

अनेन विधिना देवि प्रत्यहं भावयेद् गुरुम् ।
तदैव सहसा सिद्धिर्जायते कमलानने ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां दीक्षा-
निर्णयो नाम द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

---

स्वयं परब्रह्म है ।

हे देवि ! प्रतिदिन इस विधि के अनुसार गुरु की चिन्ता करना । हे कमलानने ! इसी से ही अकस्मात् सिद्धि लाभ होता है ।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृत शाक्तानन्दतरङ्गिणी का दीक्षानिर्णय
नामक द्वितीय उल्लासः समाप्त ।

# तृतीयोल्लासः

## योगनिर्णयः

विना चोपासनां देवी न ददाति फलं नृणाम् ।

तन्त्रे—

ध्यातः स्मृतः पूजितो वा तुस्तोवा नमितोऽपि वा ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः ॥

इत्यादिषु पूजादिकं विना चतुर्वर्गफलं न सम्भवतीति ज्ञायते ।

## विग्रहसृष्टिकारणम्

निर्गुणस्य ब्रह्मणः केन प्रकारेण पूजादिकं कार्यं, शरीररहितत्वात् । केन प्रकारेण वा तन्मुक्त्यादिकं दातुं शक्यते ? अत एव साधकानां हितार्थाय सगुण-निर्गुणभेदाद् ब्रह्मणो द्वैविध्यमाह—श्रीरामतापनीयश्रुतौ कुलार्णवे च—

चिन्मयस्याऽद्वितीयस्य निष्फलस्याऽशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥

---

### योगनिर्णय

उपासना के विना देवता मनुष्य को अभिलषित फल नहीं देते । ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक साधक द्वारा ध्यान से, स्मरण से, पूजा से, स्तुति से तथा नमस्कार से ही देवता साधकों के लिए मुक्तिप्रद होते हैं । तन्त्र के इन सभी वचनों से जाना जाता है कि—पूजादि के विना चतुर्वर्ग फल ( धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ) को प्राप्त करना सम्भव नहीं है ।

### विग्रहसृष्टि का कारण

निर्गुण ब्रह्म का किस प्रकार पूजादि कर्त्तव्य है ? क्योंकि उनका शरीर नहीं है और किस प्रकार से ही वह मुक्ति आदि फल दे सकते हैं, अर्थात् उनका शरीर शून्य है इस लिये वह वह किसी प्रकार फल नहीं दे सकते । इसी लिये उपासनादि के लिये श्रीरामतापनीय श्रुति में तथा कुलार्णव तन्त्र में साधक के हित के लिये सगुण तथा निर्गुण भेद से ब्रह्म का द्विविध रूप कह रहे हैं——उपासक का उपासना कार्य के लिये चिन्मय, अद्वितीय, मायातीत, अशरीरी ब्रह्म के द्वारा रूप ( विग्रह ) कल्पना किया गया है ।

अस्यार्थः—चिन्मयस्य ज्ञानमयस्य। मार्कण्डेय पुराणे—

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।

अद्वितीयस्य एकस्य। तथा चोक्तं योगिनीहृदये—

एकं हि परमं ब्रह्म नानात्वेन निरूप्यते।
स्थूल-सूक्ष्मविभेदेन परं ब्रह्मस्वरूपिणी॥

गोपालतापनीयश्रुतिरपि—

एकमेव परं ब्रह्म मायया तु चतुष्टयम्॥

तस्माद् ब्रह्मैव पुंरूपेण स्त्रीरूपेण च माययैव नटवद् बहुधा भवति।

"बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया"

इति श्रुतेः। निष्कलस्य कला माया तया रहितस्य। आग्नेय-पुराणे—

सकलो निष्कलो ज्ञेयः सर्वज्ञः परमो हरिः।
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः॥

हरिरित्युपलक्षणम्। यामले—

---

इस श्लोक में 'चिन्मयस्य' पद का अर्थ है--'ज्ञानमयस्य' अर्थात् ज्ञानमय का। मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है--जो चैतन्यरुप में इस परिदृश्यमान समग्र जगत् व्याप्त होकर अवस्थित है। 'अद्वितीयस्य' पद का अर्थ है--एकस्य अर्थात् एक का। योगिनी हृदय तन्त्र में उसी प्रकार कहा गया है। यथा--'एक ही परब्रह्म नाना ( विभिन्न ) रूपों में निरूपित होते हैं तथा परब्रह्मस्वरूपिणी ब्रह्मशक्ति भी स्थूल सूक्ष्म भेद से विभिन्न रूपों में प्रतिभात होते हैं। गोपालतापनीय श्रुति में भी कह रहे हैं--एकही परब्रह्म माया के द्वारा चार भागों में विभक्त होते हैं।

अतः ब्रह्म ही माया द्वारा पुरुषरूप में तथा स्त्री रूप में नट के समान बहुरूपों में होते हैं क्योंकि श्रुति में कहा गया है--"ब्रह्म बहुरूप न होने पर भी ) बहुरूपा माया के द्वारा बहुरूपा के समान प्रतिभात होते हैं।"

'निष्कलस्य' पद के अन्तर्गत कला शब्द का अर्थ शून्य है--माया। अतः 'निष्कलस्य' पद का अर्थ है माया शून्य। आग्नेय पुराण में कहा गया है--'सर्वज्ञ परमेश्वर' को सकल ( सगुण ) तथा निष्कल ( निर्गुण ) समझना। देह मध्य में स्थित परमेश्वर को सकल तथा देह रहित ( शून्य ) परमेश्वर को निष्कल समझना। 'हरि' यह पद उपलक्षण मात्र है अर्थात् हरिपद के

सगुणा निर्गुणा चेति महामाया द्विधा मता ।
सगुणा मायया युक्ता हीना तु निर्गुणा ॥

अशरीरिणः मुखहस्तपादाद्यवयवावच्छिन्न शरीररहितस्य । भूतशुद्धौ—

निष्फलं परमं ब्रह्म कुतः प्रीतिः कुतः सुखम् ।
निराकारं निरीहश्च रहितं त्विन्द्रियेण ।
जन्मकर्माणि सर्वाणि ब्रह्मणो नास्ति भामिनि ॥

प्रकृतेः सन्ति भाविनीति पाठश्च । उपासकानां सभक्तिकज्ञान-कर्मयोगवतामित्यर्थः । लैङ्गे—

सर्वेषामेव मर्त्यानां विभोर्दिव्यवपुः शुभम् ।
सकलं भावनायोग्यं योगिनामपि निष्फलम् ॥

योगिनां कर्मयोगज्ञानयोग भक्तियोगवतामित्यर्थः । आग्नेय पुराणे—

---

द्वारा परमेश्वर भी महामाया उभय ही ( दोनों ही ) सकल-निष्कल रूप में लक्षित ( देखा ) होता है । यामल तन्त्र में कहा गया है—'सगुण तथा निर्गुण—इस रूप में महामाया द्विविधा है ऐसा निश्चित हुआ है । मायायुक्त महामाया सगुणा तथा मायाहीन महामायाही निर्गुणा है ।

अशरीरिणः पद का अर्थ है—मुख हस्त पादादि अवयवविशिष्ट शरीर रहित है । भूतशुद्धि तन्त्र में कहा गया है—'परम ब्रह्म निष्कल ( मायातीत ) निराकार, निरीह ( चेष्टा रहित ) तथा इन्द्रिय शून्य है, सुतरां उनकी प्रीति कहाँ से होगी ? और सुख ही कहाँ से होगा ? हे भामिनि ! ब्रह्म का जन्म कर्म कुछ भी नहीं है । किसी किसी भूतशुद्धि तन्त्र में 'जन्मकर्माणि सर्वाणि प्रकृतेः सन्ति भाविनि' इस प्रकार पाठ मिलता है । इसका अर्थ है—हे भाविनि ! प्रकृति का जन्म कर्म सभी है ।

उपासकानां पद का अर्थ है—भक्तिमान ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी लोग । लिङ्ग पुराण में कहा गया है—परमेश्वर का दिव्य देह सभी मनुष्यों के लिये शुभजनक है । परमेश्वर का सकल देह ( मायाकल्पित विग्रह ) भावना के योग्य और योगियों के लिये निष्कल देह भी भावना के योग्य है ।

योगिनां पद का अर्थ है—कर्मयोगी, ज्ञानयोगी तथा भक्तियोगी के लिये अथात् यह तीन प्रकार के योगविशिष्ट (योगयुक्त) व्यक्ति ही यहाँ 'योगिन'

साधुनामप्रमत्तानां भक्तानां भक्तवत्सलः ।
उपकर्ता निराकारस्तदाकारेण जायते ।
कार्यार्थं साधकानाञ्च चतुर्वर्गफलप्रदः ॥

तथाचोक्तं मार्कण्डेय पुराणे—

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ।

बृहन्नारदीये—

भक्तानां मोक्षदानाय भवतो मूर्तिकल्पना ॥

## आराधना-लक्षणम्

आराधना तु ध्यानं पूजा च । ते च भेदज्ञानपूर्विके भोगस्वर्गप्रदे । अभेदज्ञानपूर्विके तु मुक्तिप्रदे । तदर्थञ्च ब्रह्मकर्तृकरूपकल्पना इत्यर्थः । ध्यानन्तु तत्तद्देवतायास्तत्तन्मन्त्र घटकीभूत तत्तद्वर्णोत्पन्न मुखहस्तपादाद्यवयवाच्छिन्नशरीरविषयकज्ञानमिति तु निष्कर्षार्थः ।

---

शब्द का अर्थ है । आग्नेय पुराण में कहा गया है—'भक्तवत्सल भगवान् अप्रमत्त साधु भक्त साधकों के उपासना कार्य के निमित्त निराकार, होकर भी उन उन आकारों में ( साधकों के इष्ट देव के रूप में ) आविर्भूत होते हैं तथा उन लोगों के उपकारक होकर चतुर्वर्ग फल प्रदान करते हैं । मार्कण्डेय पुराण में भी उसी प्रकार कहा गया है । यथा—वही महामाया ही आराधिता होकर मानवों के भोग, स्वर्ग तथा अपवर्ग ( मुक्ति ) प्रदा होती हैं । बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है—'भक्तों के मोक्षदान के लिये भगवान् द्वारा मूर्त्ति कल्पित हुआ है ।

### आराधना लक्षण

आराधना ध्यान तथा पूजा है । उसी ध्यान तथा पूजा ( पूज्य तथा पूजक का ) भेदज्ञान ( भिन्नज्ञान ) होने से भोग भी स्वर्गप्रद होता है; अभेदज्ञान से होने से मुक्तिप्रद होता है । इसीलिये अर्थात् आराधना के लिये ही ब्रह्म के द्वारा रूप की कल्पना की गयी है । परन्तु ध्यान उन उन देवता का अर्थात् साधकों के अपने अपने इष्ट देवता का उन उन मन्त्र के ( इष्ट मन्त्र के ) स्वरूप निवहिक प्रत्येक वर्ण से उत्पन्न मुख, हस्त तथा पादादि अवयवविशिष्ट जो शरीर, उस शरीर विषयक ज्ञान-यही है 'ध्यान'

तथाचोक्तं गरुडेऽपि—

अमूर्त्तश्चेत् स्थिरो न स्यात् ततो मूर्ति विचिन्तयेत् ॥

## ध्यानद्वैविध्यकथनम्

यामलेऽपि—

स्थूलसूक्ष्मविभेदेनध्यानन्तु द्विविधं भवेत् ।
सूक्ष्मं मन्त्रपपुर्ज्ञानं स्थूलं विग्रहचिन्तनम् ॥
करपादोदरास्यादि रूपं यत्स्थूलविग्रहम् ।
सूक्ष्मश्च प्रकृते रूपं परं ज्ञानमयं स्मृतम् ॥
सूक्ष्मध्यानं महेशानि कदाचिन्न हि जायते ।
स्थूलध्यानं महेशानि कृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥

यामले—

देवतायाः शरीरन्तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम् ।
तत्तद्बीजात्मकं मन्त्रं जप्त्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥
अदिष्टं भावयेद्देवि यथोक्तध्यानयोगतः ।
वर्णरूपेण सा देवी जगदाधाररूपिणी ॥

---

शब्द का निकृष्ट अर्थ है । गरुड़ पुराण में भी यही कहा गया है—यथा 'यदि परमेश्वर मूर्त्ति रहित होते हैं, जब वह स्थित अर्थात् ध्यान का विषय हो सकते हैं । इसीलिये ही परमेश्वर के मूर्त्ति की चिन्ता करना चाहिए ।

## द्विविध ध्यान कथन

यामल यन्त्र में भी कहा गया है—'स्थूलसूक्ष्म भेद से ध्यान दो प्रकार है । मन्त्रात्मक विग्रह की चिन्ता ही सूक्ष्मध्यान है और स्थूलध्यान है—स्थूलविग्रह की चिन्ता । हस्त, पद, उदर, मुख आदि जो रूप है, वही है स्थूलविग्रह तथा प्रकृति के अतीत (अत्रिगुणात्मक) ज्ञानमय रूप ही सूक्ष्मविग्रह कहा गया है ।

हे महेशानि ! स्थूलध्यान के बिना सूक्ष्मध्यान कभी भी उत्पन्न नहीं होता है । हे महेश्वरि ! साधकस्थूल ध्यान करके सालोक्यादि मुक्ति को प्राप्त होता है ।

यामल तन्त्र में कहा गया है—'देवता के बीज से ही देवता का शरीर उत्पन्न होता है । साधक उन उन बीजरूप तन्त्र को जप करके ब्रह्ममय होते हैं । अतएव हे देवि ! यथोक्त ध्यान योग के द्वारा इष्टमन्त्र की चिन्ता

बीजात्वर्णात् बीजपरिभाषामाह कुलचूडामणौ—

एकाक्षरं समुद्धृत्य पूर्वबीजं परं शक्तिरिति।

पूर्वं कमिति। परमीकारः। रेफः कीलकम् गान्धर्वे—

नित्यमेकाक्षरं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम्॥
सकृज्जप्त्वाऽक्षरं मन्त्रं ब्रह्मभूयाय कल्पते।
जप्त्वा तं साधयेत् सर्वं बहुजापेन किं फलम्॥

स्थूलः सूक्ष्म एक एव। तथाचोक्तं यामले—

घृतस्य द्विविधं रूपं काठिन्यं स्वच्छता तथा।
काठिन्ये स्वच्छतायान्तु घृतमेव न संशयः॥

पाद्मेऽपि—दीपादुत्पद्यते दीपो यथा तद्वद् भविष्यति।

इति वचनात्। अथवा पूज्य-पूजकयोरभेदञ्ज्ञानार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना। तथाचोक्तं कौर्मे—

---

करना चाहिए। परमेश्वर-शक्ति महामाया ही वर्णरूप में जगत् की आधार स्वरूपा हैं। 'बीजात्' इस पद का अर्थ है—वर्णात् अर्थात् वर्ण से। कुलचूड़ामणि तन्त्र में बीज शब्द की परिभाषा कह रहे हैं—'पूर्व अर्थात् ककाररूप एकाक्षर बीज उद्धार करके पर अर्थात् ईकाररूप शक्ति का उद्धार करना। पूर्व शब्द का अर्थ है—ककार। पर शब्द का अर्थ है ईकार। रेफ है कीलक। गन्धर्व तन्त्र में कहा गया है—'एकाक्षर मन्त्र नित्य ब्रह्म स्वरूप तथा वह अक्षर ही परमपद ( मोक्ष ) है। साधक उस एकाक्षर मन्त्र को एक बार जप करके ब्रह्मतुल्य होता है। सुतरां वह एकाक्षर मन्त्र जप करके ही ब्रह्मतुल्य हो जाता है तो बहु जप का फल क्या है ?

स्थूल तथा सूक्ष्म एक ही है अर्थात् स्थूल तथा सूक्ष्म का कोई भेद नहीं है। यामल तन्त्र में वही कहा गया है। यथा—घृत ( घी ) का दो प्रकार का रूप है—काठिन्य ( जमा हुआ ) तथा स्वच्छता है, किन्तु काठिन्य तथा स्वच्छता (पिघला हुआ) इन दोनों अवस्था में ही वह घृत ही रहता है इसमें संशय नहीं है। दीप से जिस प्रकार दीप उत्पन्न होता है, तद्रूप उसी प्रकार सूक्ष्म से स्थूल का उत्पत्ति होगा। पद्मपुराण का इस वचन से भी यही ज्ञात होता है, अर्थात् स्थूल तथा सूक्ष्म एक ही है। अथवा पूज्य तथा पूजक का अभेद ज्ञान के लिये ही ब्रह्म (के द्वार) कर्तृक रूप विग्रह कल्पित हुआ है। कूर्मपुराण में भी यही कहा गया है। यथा—जो लोग अपने आत्मा को

मन्यन्ते ये तु चात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथातेषां परिश्रमः ॥

ईश्वर इत्युपलक्षणम् । तथाचोक्तं रुद्रयामले—

सर्वदेवमयीं देवीं सर्वमन्त्रमयीं पराम् ।
आत्मानं चिन्तयेद्देवि परमानन्दरूपिणीम् ॥

## योगनिरूपणम्

अथ प्रसङ्गाद्योगज्ञानं लिख्यते ।
अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि समाधि भवनाशनम् ॥

भवनाशनं जन्मनाशनमित्यर्थः ।

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये ध्यायेत् सिंहं मनोहरम् ।
सिंहोपरि स्थितं पद्मं रक्तं तस्योर्ध्वगं शिवम् ॥
तस्योपरि महादेवी रमते कामरूपिणी ।
सितप्रेतो महादेवो रक्तप्रेतोऽपि पद्मजः ॥

---

परमेश्वर से भिन्न समझते हैं, वे लोग उस परमेश्वर का दर्शन नहीं करते । उन लोगों का आराधना कार्य तथा परिश्रम वृथा है ( बेकार है )। 'ईश्वर' यह शब्द उपलक्षण मात्र है अर्थात्–पूर्वोक्त वचन में ईश्वर शब्द इष्ट देव के तात्पर्य में प्रयुक्त होने से 'परमेश्वरात्' पद का अर्थ होगा–इष्ट देव से ।

रुद्रयामल तन्त्र में भी यही कहा गया है–यथा–हे देवि ! परमानन्द· रूपिणी सर्वमन्त्रमयी तथा सर्वदेवमयी परा देवि को अपनी आत्मा समझ कर भावना करना ।

### योगनिरूपण

अनन्तर प्रसङ्गक्रम से योगज्ञान लिखित हो रहा है । अनन्तर 'भवनाशन' अपर समाधि कह रहा हूँ । 'भवनाशन' अर्थात जनम नाशक । हृत्पद्म के कर्णिका मध्य में मनोहर ( सुन्दर ) सिंह ( शेर ) चिन्ता करना । सिंह के उपरिभाग में अवस्थित रक्तपद्म ( लाल कमल ) तथा उसके ऊपर स्थित शिव का ध्यान करना । उसके उपरि भाग में कामरूपिणी महादेवी विराजमाना है । शुभ्रवर्ण प्रेतरूप महादेव तथा रक्तवर्ण पद्मोद्भव (ब्रह्मा)– हरि तथा हर-ये दोनों महाशक्ति का वाहन है । अथवा ( उक्त श्लोक का

ब्रह्मा लोहितपङ्कज इति वा पाठः ।

हरिर्हरस्तु विज्ञेयो वाहनानि महौजसः ।
ध्यायेच्च परमेशानि यथोक्त ध्यानयोगतः ॥
देव्यात्मकं स्वमात्मानं भावयेद्यतमानसः ।
अस्यान्य(नु)रूपं यद्यत् तत् स्वकीयमिति भावयेत् ॥
ऐवयं संभावयेन्नित्यं स्वगुरुदेवतात्मनाम् ।

श्रीक्रमेऽपि—

आत्मानं चिन्तयेद्देवि शक्ति माद्यास्वरूपिणीम् ॥
मनसा वचसा चैव कायिकेन च चिन्तयेत् ।

अन्यत्रापि—

आत्माऽभेदेन सञ्चिन्त्य याति तन्मयतां नरः ॥
सोऽहमित्यस्य सततं चिन्तनात् तन्मयो भवेत् ।
अहं देवी न चान्योऽस्मि मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥
रुद्रस्य चिन्तनाद् रुद्रो विष्णु स्याद् विष्णु चिन्तनात् ।
दुर्गायाश्चिन्तनाद् दुर्गा भवत्येव न चान्यथा ॥
एवमभ्यस्यमानस्तु अहन्यहनि पार्वति ।
जराभरणदुःखाद्यै र्मुच्यते भवबन्धनात् ॥

---

चतुर्थ चरण में ) 'ब्रह्मालोहित पङ्कजः' इस प्रकार पाठ है । हे महेश्वरि ! यथोक्त ध्यान योग के अनुसार ध्यान करना, संयतचित्र होकर अपने आत्मा को देवीस्वरूप चिन्ता करना, तथा उनके अनुरूप जो जो देवता, उनको भी आत्मीय अर्थात् आत्मस्वरूप चिन्ता करना । हमेशा अपने गुरु, देवता तथा आत्मा का ऐक्य भावना करना ।

श्रीक्रम तन्त्र में कहा गया है—हे देवि ! मन के द्वारा आद्यास्वरूपिणी शक्ति को आत्मा मान कर चिन्ता करना । बातों के द्वारा तथा शरीर के द्वारा शक्ति की उपासना कर्त्तव्य है । अन्यत्र भी कहा गया है—'आत्मा के साथ अभेद में ( इष्टदेव का ) चिन्ता करके साधक नर तत्स्वरूपता को प्राप्त होता है । 'सोऽहं' अर्थात् वही परमेश्वर ही मैं हूँ—सर्वदा इस चिन्तन में साधक तत्स्वरूप हो जाता है ।

मैं देवी-अन्य नहि ( नहीं ) तथा मैं मुक्त—यह चिन्ता करना ( साधक ) रुद्र के भावना में रुद्रस्वरूप तथा विष्णु के भावना में विष्णु स्वरूप होता है । दुर्गा के चिन्ता में दुर्गा होता है; अन्य किसी प्रकार में ( वह ) नहीं होता ।

## ध्यानयोग-प्रशंसा

ध्यानयोगपरस्याऽस्य पूजा नास्ति कथञ्चन ॥
विनान्यासैर्विना पूजां विना जाप्य-पुरष्क्रियाम् ।
ध्यानयोगद्भवेत् सिद्धिर्नान्यथा खलु पार्वति ॥
एतत्ते कथितं देवि ब्रह्मज्ञानमिदं महत् ।
विज्ञाय गुरुतो देवि संसारसागरं तरेत् ॥
अहं ब्रह्मास्मि विज्ञानादज्ञानविलयो भवेत् ।
सोऽहमित्येव सञ्चिन्त्य विहरेत्सर्वदा प्रिये ॥
यथा फेनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं मुने ।
समुद्रे लीयते तद्वद् जगदात्मनि लीयते ॥

इति गन्धर्वतन्त्रोक्तयोगः ॥

तस्मात्साधकानां हितार्थाय ब्रह्म स्त्रीपुंरूपं धत्ते । विष्णुयामले देवीं प्रति विष्णुवचनम्—

मातस्त्वत्परमं रूपं तन्न जानातिकश्चन ।
काल्यादि स्थूलं यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥
स्त्रीरूपां वा स्मरेद्देवीं पुंरूपां वा स्मरेत् प्रिये ।
स्मरेद् वा निष्कलं ब्रह्मसच्चिदानन्दरूपियत् ॥

---

## ध्यानयोग-प्रशंसा

हे पार्वति ! न्यास के बिना, पूजा के बिना जप तथा पुरश्चरण के बिना ध्यानयोग के द्वारा निश्चय ही सिद्धि होगा; अन्य किसी प्रकार से सिद्धि नहीं होगा । हे देवि ! यह तुम्हें कह रहा हूँ । यह महत् ब्रह्मज्ञान गुरु के पास से अवगत होकर शिष्य संसारसागर से उत्तीर्ण ( पास ) होगा । मैं ब्रह्म हूँ—इस प्रकार ज्ञान से अज्ञान को लय होता है । हे प्रिये ! वह परमेश्वर मैं ही हूँ—यह चिन्ता करके हमेशा विचरण करेगा अर्थात् सभी समय में सभी कार्य 'सोऽहं' में चिन्ता करना । हे मुने ! जैसे तरङ्ग बुदबुद जैसे समुद्र से ही उठता है तथा समुद्र में ही लय विलीन हो जाता है, उसी प्रकार इस जगत्-ब्रह्म से उत्पन्न होकर ब्रह्म में ही विलीन ( लय ) होता है । यही है गन्धर्व तन्त्रोक्त योग ।

## स्त्रीरूपावतार-लक्षणम्

स्तनन्योन्याद्यवयवावच्छिन्न शरीराःस्त्रोरूपावताराः। तद्यथा–

कालो नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तका।
वाग्वादिनो चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुनः॥
कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी।
इत्याद्याः सकला विद्या कलौ पूर्णफलप्रदा॥

अन्यत्रापि––

उमेति केचिदाहुस्वां शक्ति लक्ष्मीति चापरे।
भारतीत्यपरे चैनां गिरिजेत्यम्बिकेति च॥
दुर्गेतिभद्रकालीति चण्डीं माहेश्वरीं तथा।
कौमारीं वैष्णवीं वाराहीति चैन्द्रीति चापरे॥
ब्राह्मीति विद्याविद्येति मायेति च तथा परे।
प्रकृतिं चापरां चैव वदन्ति परमार्षयः॥

---

### स्त्रीरूपावतार लक्षण

अतएव साधक के कल्याण के लिये ही ब्रह्म ( स्त्रीरूप स्त्री मूर्त्ति–काली दुर्गा आदि ) तथा पुरुषरूप ( पुरुष मूर्त्ति शिवविष्णु ) आदि धारण करते हैं। विष्णु यामल तन्त्र में देवी के प्रति विष्णु का उक्ति है–हे मातः! तुम्हारा वह परम सूक्ष्मरूप कोई नहीं जानता है। काली, तारा आदि जितने स्थूल-रूप है, देवतागण अर्चना करते हैं। हे प्रिये! उस देवी को स्त्रीरूपा चिन्ता करना अथवा पुरुषरूपा चिन्ता करना। अथवा देवी के सच्चिदानन्द रूप जो निष्फल ब्रह्म, तत्स्वरूपा चिन्ता करना। स्तन योनि आदि अवयवविशिष्ट विग्रह स्त्रीरूप अवतार है। वह इस प्रकार–काली, नीला ( तारा, ) महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता वाग्वादिनी, अन्नपूर्ण, प्रत्यङ्गिरा कामाख्या-वासिनी, वाला ( भैरवी ) मातङ्गी तथा शैलवासिनी ( महिषमर्द्दिनी ) आदि हैं, यह सभी विद्या कलिकाल में पूर्ण फलदात्री है।

अन्यत्र भी कहा गया है 'कोई तुम्हें उमा कहता है, कोई शक्ति कहते हैं दूसरे कोई लक्ष्मी कहते हैं, दूसरे कोई इन्हें भारती कहकर मानते हैं। कोई गिरिजा कोई अम्बिका कोई दुर्गा, कोई भद्रकाली कोई चण्डी, माहेश्वरी और कोई कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, ब्राह्मी, विद्या, अविद्या अथवा माया कहते हैं। परमर्षिगण तुम्हें परा प्रकृति कहते हैं।

## पुरुषावतार-लक्षणम्

शिश्नाद्यवयवावच्छिन्नशरीरावच्छिन्नावतारा: पुंरूपा:। यथा ब्रह्मा-विष्णु-शिवादय:। एवं--

मत्स्य कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो रामश्च रामश्च बुद्ध-कल्की च ते दश॥

इत्यादि। नपुंसकं गृहस्थैरनुपास्यमेव, फलाजनकत्वात्।

गृहस्थानाञ्च सर्वे स्युर्ब्रह्म वै ब्रह्मचारिणाम्।

"गृहस्थानाञ्च सर्वे स्यु" रित्युपादानात् शिव-दुर्गा-विष्णु पुरस्कारेण उपासना कार्या। तथा च विमलानन्दभाष्ये कूर्मपुराणम्--

मनुष्याणामुमा देवी तथा विष्णु: सदाशिव:।
या यास्याऽभिमता पुंस: साहितस्यैव देवता।
किन्तु कार्याऽविशेषेण पूजिता स्वेष्टदा नृणाम्॥

नृणां मनुष्याणामभेदेन पूजाकार्या। शैवे देवीं प्रति

---

पुरुषावतार लक्षण

उपस्थादि अवयव विशिष्ट विग्रहयुक्त अवतार पुरुषरूप है। जैसे–ब्रह्मा, विष्णु शिवादि हैं। इसी प्रकार–मत्स्य, कूर्म, वराह नृसिंह, वामन, राम, परशुराम, बलराम तथा कल्की यह दश अवतार तथा और सभी देवतागण हैं। नपुंसक अवतार गृहस्थों का उपास्य नहीं है, क्योंकि वे अवतार फलदायक नहीं होते हैं। गृहस्थ के सभी उपास्य परन्तु ब्रह्मचारी का ब्रह्म ही उपास्य है। इस वचन में गृहस्थ के सभी लोग उपास्य हैं। इस प्रकार कहे जाने से शिव, दुर्गा विष्णुरूप ही गृहस्थ का परमेश्वर उपासना कर्त्तव्य है।

विमलानन्द भाष्योक्त कूर्मपुराण के वचन से उसी प्रकार कहा गया है। यथा–'मनुष्यगण' के उमादेवी विष्णु तथा सदाशिव उपास्य है। जिस मानव का जो देवता अभिमत है अर्थात् जो जिस देवता के उपासना करने में इच्छुक है। वे ही उनके इष्ट देवता हैं। परन्तु मनुष्यों के अविशेष में ही पूजा कर्त्तव्य है। अभेद में पूजित होने से ही वह स्वाभिमत फल प्रदान करते हैं। उक्त श्लोक का "किन्तु कार्य विशेषेण" इस अंश का अर्थ है–मनुष्य गणों के अविशेष में अर्थात् अभेद में पूजा कर्त्तव्य करणीय है। शिवपुराण में देवी के

ईश्वरवाक्यम्--

एकं प्रशंसति यस्तु सर्वानेव प्रशंसति ।
एकं निन्दति यस्तेषां सर्वानेव विनिन्दति ॥

## ईश्वरनिन्दाफलम्

ईश्वरस्य प्रशंसायां न सुखं निन्दायां वा न दुखं, सुखदुःख रहितत्त्वात् । किन्तु निन्दकस्य नरकमेव । तथोचोक्तं भाष्ये--

देवी-विष्णु-शिवादीनामेकत्त्वं परिचिन्तयेत् ।
भेदकृन्नरकं याति यावदाहूतसंप्लवम् ॥

आहूतसंप्लवं प्रलयकाल-पर्यन्तमित्यर्थः । वाराहे--

यथा दुर्गा तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः ।
एतप्लयमेकमेव न पृथग् भावेयेत् सुधीः ॥
योऽन्यथा भावयेदेतान् पक्षपातेन मूढधीः ।
स याति नरकं घोरं रौखं पापपुरुषः ॥

यामले--

---

प्रति ईश्वर का वाक्य इस प्रकार कहा गया रहा है--जो एक की प्रशंसा करते हैं, वे सभी की ही प्रशंसा करते हैं। जो उन लोगों में एक की भी निन्दा करते हैं, वे सभी की निन्दा करते हैं।

### ईश्वरनिन्दा फल

ईश्वर के प्रशंसा में सुख नहीं होता है तथा निन्दा में दुःख भी नहीं होता है। कारण उनका सुख दुःख नहीं है। परन्तु निन्दाकारी का नरक ही होता है। यही भाष्य में कहा गया है। यथा--देवी, विष्णु तथा शिवादि का ऐक्य एकता ही (अभेद ही) भावना चिन्ता करना, लोग भेद कल्पना करते हैं, वे लोग प्रलय काल तक नरक में गमन करते हैं। 'आहूत संप्लव' शब्द का अर्थ है--प्रलयकाल तक। वराह पुराण में कहा गया है। जिस प्रकार दुर्गा, उसी प्रकार विष्णु उसी प्रकार शिव-को सुखी व्यक्ति इन तीनों की एक ही चिन्ता करना, कभी भी पृथक् चिन्ता मत करना। जो मूढ़ पक्षपात प्रयुक्त इन सभी को पृथक् समझ कर सोचते है, उस पायात्मा रौख नामक घोर नरक में गमन करते हैं।

ध्यानगम्यं प्रपश्यन्तिरुचिभेदात्पृथग् विधम् ।

तन्त्रे--

एकैव हिमहामाया नामभेदं समाश्रिता ।
विमोहनाय लोकानां तस्मात् सममना भवेत् ॥
प्रवृत्तिमार्गसङ्गस्तु दीक्षाभेदेन पूजयेत् ।
निवृत्ति मार्गमाणस्तु भेदवादं विवर्जयेत् ॥

## शक्त्युपासना-प्रशंसा

शिवविष्णोरुपासनां त्यक्त्वा देव्या उपासना कर्त्तव्या, कोमलान्तः करणत्वात् भुक्तिमुक्तिदातृत्वाच्च । शिव-विष्णुरुपासनायां कायक्लेशेन मुक्तिमात्रम् । तथा च शारदायां भुवनेश्वरीं प्रति शिववाक्यम्--

आद्याप्यशेषजगतां नवयौवनासि
शैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि ।

समयातन्त्रे--कदाचित् कस्यमुक्तिः स्यात् कस्यचिद् मुक्तिरेव च ।

---

यामल तन्त्र में भी कहा गया है--'साधक अपने रुचि के अनुसार ध्यानगम्य परमेश्वर को विभिन्न रूपों में देखें ।' तन्त्रों में कहा गया है 'एक ही महामाया साधारण जनगणों के मोह का निमित्त नाम भेद आश्रय करते हैं अर्थात् शिव दुर्गादि नाना विभिन्न मूर्त्तियों में आविर्भूत हुए हैं । अतएव तुल्यमना होना अर्थात् भेद दृष्टि को छोड़ देना । जो लोग प्रकृत्तिमार्ग में अवस्थित हैं वे लोग विविध दीक्षा के द्वारा देवी की अर्चना करेंगे । निवृत्ति आकांक्षा करने पर भेदवाद परित्याग ( छोड़कर ) करना ।

## शक्ति उपासना प्रशंसा

शिव तथा विष्णु के उपासना त्याग कर देवी की उपासना कर्त्तव्य है । क्योंकि उनका अन्तःकरण कोमल है तथा वे भोग तथा मोक्षदात्री है । परन्तु शिव तथा विष्णु की उपासना में अति कष्ट से मुक्तिमात्र होता है । शारदातिलक तन्त्र में भुवनेश्वरी के प्रति शिव का उक्ति से इस प्रकार कहा गया है । यथा--'समस्त जगत् के आद्या (आदि जननी) होकर भी तुम नव यौवना तथा पर्वतराज हिमालय की कन्या होकर भी तुम अति कोमल हो' । समया मन्त्र में कहा गया है--शिव तथा विष्णु के उपासकों के लिये कभी भी किसी को प्राप्त मुक्ति होती है तथा किसी का भोग भी होता है, किन्तु देवी के

एतस्याः साधकस्याथ भुक्तिमुक्तिः करे स्थिता ॥

रुद्रयामले—

यत्रास्ति भोगो नच तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
शिवापदाम्भोजयुगार्चकानां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥
योऽन्येभ्यो दर्शनेभ्यश्च भुक्ति मुक्तिञ्च कांक्षति।
स्वप्नलब्धधनेनैव धनवान् किं भवेन्नरः ॥
शुक्तौ रजतविभ्रान्तिर्यथा जायेत पार्वति।
अथान्यदर्शनेभ्यश्च भुक्ति मुक्तिञ्च कांक्षतः ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूत श्रीमद्ब्रह्मानन्द गिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यामभेदयोगनिर्णयो नाम तृतीयोल्लासः ॥ ३ ॥

---

उपासकों का भुक्ति मुक्ति दोनों ही हस्तगत ( प्राप्त ) होता है। रुद्रयामल तन्त्र में भी कहा गया है—जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं है। जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं है। जो लोग महादेवी के पादपद्म युगल की अर्चना करते हैं, उन लोगों का भोग तथा मोक्ष हाथ में ही रहता है। जो व्यक्ति अन्य देवता के दर्शन ( साक्षात् कार ) से भोग तथा मोक्ष की आकांक्षा करते हैं, वह क्या स्वप्नलब्ध धन के द्वारा भी धनवान हो सकता हैं ? हे पार्वति ! शुक्ति में जिस प्रकार रजतभ्रम उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अन्य देवता के दर्शन से भोग तथा मोक्ष का आकांक्षाकारी व्यक्ति का भ्रान्ति ( भ्रम ) ही जन्माता है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतं शाक्तानन्दतरङ्गिणी के दीक्षानिर्णय
नामक तृतीय उल्लासः समाप्त।

# चतुर्थोल्लासः

## अथ प्रातःकृत्यम्

यामले—

प्रातःकृत्यमकृत्वा तुयो देवीं भक्तितोऽर्चयेत् ।
तस्य पूजा च विफला शौचहीना यथा क्रिया ॥
ब्राह्ये मुहूर्त्ते चोत्थाय चिन्तयेद् गुरुदैवतम् ।
स्वमूर्द्धनि सहस्रारे शिवाख्य-परविन्दुके ॥

ब्राह्यमुहूर्त्तस्तु रात्रेरुपान्त्यो मुहूर्त्तः । तथा च यामले—

द्वौ दण्डौरात्रिशेषे तु ब्राह्यं मुहूर्त्तकं विदुः ॥

## श्रीगुरुध्यानम्

गुरोर्ध्यानं यथा—

शशाङ्क युतसङ्काशं वराभयलसत्करम् ।
शुक्लाम्बरपरीधानं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ॥

---

### प्रातःकृत्यविधि

इसके अनन्तर प्रातःकृत्य, यामल तन्त्र में कहा गया है–जो व्यक्ति प्रातःकृत्य न करके ही देवी को भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं, उनकी वह पूजा शौचहीन क्रिया के समान निष्फल होती है। ब्राह्य मुहूर्त्त में उठकर (विस्तर के ऊपर रह कर ही) अपने मस्तक स्थित सहस्रार पद्म के समीपवर्त्ती द्वादशदल पद्म पर शिव नामक परविन्दु में गुरु देव का ध्यान करना चाहिए। ब्राह्य मुहूर्त्त में किन्तु रात के उपरान्त (रात शेष होने के पूर्व) मुहूर्त्त है। यामल तन्त्र में कहा गया है–रात शेष होने के दो दण्ड समय को ब्राह्य मुहूर्त्त करते हैं।

### श्रीगुरु का ध्यान

गुरुदेव का ध्यान इस प्रकार है–अयुत शशाङ्क सदृश (चन्द्र के समान), वराभय विभूषित हस्त शुक्ल वस्त्र परिधानकारी, शुक्लमाल्यधारी, चन्दनादि अनुलेपन से अनुलिप्त है, वाये ऊरु में रक्त शक्तियुक्त देवनामक

वामोरो रक्तशक्त्या चयुतं देवाख्यमव्ययम् ।
शिवेनैक्यं समुन्नीय ध्यायेत् परगुहं धिया ॥
एवं ध्यात्वा पुरश्चैव पञ्चभूतमयैर्यजेत् ।

**श्रीगुरुमानसपूजा**

गन्धतत्त्वं पार्थिवन्तु कनिष्ठांगुलियोगतः ॥
शब्दमयं महापुष्पं प्रथमांगुलियोगतः ।
वायुरूपं महाधूपं तर्जनीभ्यां नियोजयेत् ॥
तेजोरूपं महादीपं मध्यमाद्वत्य योगताः ।
अमृत भोजनं तद्वदमृतांगुलि योगतः ॥
नमस्कारेणाऽञ्जलिना वाग्भवं ताम्बूलं स्मृतम् ।
स्वस्वबीजेन सर्वन्तु नमस्कारेण योजयत् ।
गुरोर्मन्त्रं प्रयत्नेन प्रजपेत् सुदवन्दिते ॥

**गुरुमन्त्रः**

गुरुमन्त्रो यथा—

वाणी च भुवनेशानो रमा चैव सुरेश्वरि ।

---

अव्यय परगुरु का ( दीक्षा गुरु का ) शिव के साथ अभिन्न है—समझ कर अन्तःकरण के द्वारा ध्यान करना । इस प्रकार ध्यान करके ( गुरु के ) सम्मुख ही ( सामने ही ) पञ्चभूतात्मक उपचार के द्वारा गुरुदेव की पूजा करना ।

गुरु मानस पूजा

कनिष्ठांगुलि के द्वारा पृथिवीरूप गन्धतत्त्व, प्रथमांगुलि ( अंगुष्ठ ) द्वारा शब्दमय ( आकाशात्मक ) महापुष्प तथा तर्जनी के द्वारा वायुरूप महाधूप को निवेदन करना । मध्यमाङ्गुलिद्वय द्वारा तेजोरूप महादीप, अनामिका द्वारा अमृतरूप नैवेद्य तथा अञ्जलिद्वारा 'नमः' शब्द योग से वाग् भवरूप ताम्बूल निवेदन करना उक्त हुआ है । स्व स्व बीज ( पृथिवी आदि के बीज ) तथा नमस्कार के साथ समस्त उपचार योग करना अर्थात् पृथिव्यादि रूप गन्धादि उपचार को पहले पृथिव्यादि के बीज एवं अन्त में 'नमः' योग करके उक्त उपचार करना । हे सुरवन्दिते ! इसके अनन्तर यत्नपूर्वक गुरुमन्त्र का जप करना ।

गुरुमन्त्र

गुरुमन्त्र इस प्रकार है—हे देवि ! हे सुरवन्दिते ! वाणी (ऐं), भुवनेशानी

तारत्रयमिदं देवि गुरुमन्त्रे प्रतिष्ठितम् ॥
ततः स्वगुरु नामान्ते चानन्दनाथमालिखेत् ।
रक्तशक्तिपदान्ते च अम्बा पदमथालिखेत् ॥
श्रीपादुकां समुच्चार्य पूजयामीति संजपेत् ।
तेजोरूपं समर्प्याथ स्तवेन तोषयेद् गुरुम् ॥

श्यामारहस्ये—

मनसा गन्धपुष्पाद्यैः सम्पूज्य वाग्भवं जपेत् ।
अथ कुब्जिका तन्त्रोक्तां स्तुतिं कुर्यात् ॥

## गुरुस्तुतिः

ॐ नमस्तुभ्यं महामन्त्रदायिने शिवरूपिणे ।
ब्रह्मज्ञानप्रकाशाय संसारदुःखतारिणे ॥
अतिसौम्याय दिव्याय वीरायाऽज्ञानहाहिणे ।
नमस्ते कुलनाथाय कुलकौलोन्यदायिने ॥
शिवतत्त्वप्रबोधाय ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिने ।
नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं साधकाभयदायिने ॥

---

( ह्रीं ) तथा रमा ( श्रीं ) यह प्रणवत्रय गुरुमन्त्र में प्रतिष्ठित है। उसके बाद ( इस तारत्रय का ) अपने गुरु के नाम के अन्त में आनन्दनाथ लिखना तथा रक्तशक्तिपद के अन्त में अम्बापद लिखना। अनन्तर 'श्रीपादुकां' यह पद उच्चारण करके 'पूजयामि' लिखना। इस प्रकार 'ऐं ह्रीं श्रीं अमुकानन्दनाथ-रक्तशक्ताम्बा श्रीपादुकां पूजयामि'—इस गुरुमन्त्र का जप करना। गुरु को तेजोरूप चिन्ता करके जप समर्पण करके स्तव के द्वारा गुरु का तुष्टि विधान ( सन्तुष्ट ) करना।

श्यामारहस्य में उक्त हुआ है—'गन्धपुष्पादि' उपचार दान करके मन के द्वारा ( गुरु की ) पूजा करके वाग्भव बीज ( ऐं ) जप करना। अनन्तर कुब्जिका तन्त्रोक्त स्तुति करना।

## गुरुस्तुति

महामन्त्र ( इष्टमन्त्र ) दाता, ब्रह्मज्ञान का प्रकाशक है, संसार दुःख का निवर्त्तक, अति सौम्य है, दिव्य तथा वीररूपी अज्ञान निवर्त्तक शिवरूपी गुरुदेव को नमस्कार है। कुल नाथ कुल कौलीन्मदाता ( शक्तितत्त्व के रहस्य का उपदेष्टा ), शिवतत्त्व ज्ञापक, ब्रह्मतत्त्व के प्रकाशक उस गुरुदेव

अनाचाराचारभाव बोधाय भावहेतवे ।
भावाभाव विनिर्मुक्त-मूर्त्तये गुरवे नमः ॥
भावाभावविनिर्मुक्तशाक्ताय इति वा पाठचयम् ।
नमोऽस्तु शम्भवे तुभ्यं दिव्यभावप्रकाशिने ।
ज्ञानानन्दस्वरूपाय विभवाय नमो नमः ॥
शिवाय शक्तिनाथाय सच्चिदानन्दरूपिणे ।
कामरूपाय कामाय कग्मकेलि कलात्मने ॥
कुलपूजोपदेशाय कुलाचारस्वरूपिणे ।
आरक्तिनिजसच्छक्ति वामभाग विभूतये ॥
नमस्तेऽस्तु महेशाय विद्यानाथाय संविदे ।
सर्वविद्यास्वरूपाय नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥
इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं साधको गुरुदिङ्मुखः ।
प्रातरुत्थाय देवेशि अतोविद्या प्रसीदति ॥
कुलसम्भवपूजायामादौ यो न पठेदिदम् ।
विफला तस्य पूजा स्यादभिचाराय कल्पते ॥

इति कुब्जिका तन्त्रोक्तं श्रीगुरुस्तोत्रं समाप्तम् ।

---

को नमस्कार। साधक के अभयदाता, अनाचार तथा आचार भाव के उपदेष्टा, दिव्यादि भाव के हेतु, भावाभावातीत मूर्त्ति गुरुदेव को नमस्कार। दिव्यभाव का प्रकाशक शम्भूरूपी उस गुरुदेव को नमस्कार। ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप ऐश्वर्यमय गुरुदेव को नमस्कार-नमस्कार। सच्चिदानन्दरूप शक्तिपति शिवस्वरूप, कामरूप काम तथा कामकेलिकलाला अथात् काम-क्रीड़ा के शक्तिस्वरूप, कुलपूजा का उपदेशक, कुलाचार-स्वरूप, वामभाग में रक्तवर्ण सत् स्वरूपा स्वकीय शक्तिविभूषित उस गुरुदेव को नमस्कार। सर्वविद्यात्मक विद्यानाथ ज्ञानरूपी शिव को नमस्कार-नमस्कार-नमस्कार। साधक प्रातःकाल में निद्रा छोड़कर गुरु के सामने होकर प्रत्यह यह स्तोत्र पाठ करें।

हे देवेशि ! उसी से विद्या ( शक्ति ) प्रसन्न होती है। कुलपूजा में जो पहले यह स्तोत्र पाठ नहीं करते हैं, उनकी पूजा निष्फल होती है, वह अभिचार का जनक होता है।

कब्जिका तन्त्रोक्त श्रीगुरु स्तोत्र समाप्त ।

अथ कवचमपि पठेत् । ततस्तु प्रणमेत् ।

**श्रीगुरुप्रणाम मन्त्रः**

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

**षट्चक्र निरूपणम्**

अथ प्रसङ्गात् षट्चक्रव्यवस्था लिख्यते ।
तिस्रः कोटयस्तदर्द्धेन शरीरे नाडयो मताः ।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तित्रस्तासूत्तमा मताः ॥
प्रधाना मेरुदण्डान्तश्चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ॥

---

इसके अनन्तर श्रीगुरु का कवच भी पाठ करना ।

श्रीगुरु का प्रणाम मन्त्र

इसके बाद प्रणाम करना । प्रणाम मन्त्र का अर्थ है–यत् कर्तृक ( जिनके द्वारा ) अखण्डमण्डलाकार चराचर जगत् व्याप्त तथा जिनके द्वारा तत् पद ( ब्रह्मपद मोक्ष ) दर्शित होता है ( देखा जाता है ) उस गुरुदेव को नमस्कार । जिनके द्वारा तत्त्वज्ञानरूप अञ्जन–( काजल ), शलाका ( काठी ) के द्वारा अज्ञानरूप तिमिरान्ध ( अन्धकार से अन्धा ) शिष्य का चक्षु ( आँख ) उन्मीलित होता है, ( खोलता है ) उस श्रीगुरु को नमस्कार ।

षट्चक्र निरूपण

अनन्तर प्रसङ्गतः षट्चक्र व्यवस्था लिखा जा रहा है । शरीर में सार्द्ध तीन कोटि ( साढ़े तीन करोड़ ) नाड़ी निरूपित है । उस नाडी समूहों के मध्य में दस नाड़ी मुख्य कह कर कहा गया है । उन दसों में से तीन नाड़ी श्रेष्ठ कह कर निर्णीत हुआ है । मेरुदण्ड के अभ्यन्तर में चन्द्र, सूर्य, तथा अग्निस्वरूपिणी प्रधान नाड़ी सुषुम्ना अवस्थित है । मेरुदण्ड के बायें तरफ शुक्लवर्णा चन्द्रस्वरूपिणी इड़ा नाड़ी अवस्थित है । वह नाड़ी शक्तिस्वरूपा

पिङ्गलाख्या च या दक्षे पुंरूपा सूर्यविग्रहा।
मेरुमध्यस्थिता या तु मूलादाब्रह्मरन्ध्रगा॥
सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी।
दाडिमीकुसुमप्रख्या शिवाख्या चापरा मता॥
सुषुम्नान्तर्गता चित्रा चन्द्रकोटिसमप्रभा।
सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा।
तस्या मध्ये ब्रह्मनाडी मृणालतन्तुरूपिणी॥

## मूलाधारचक्र कथनम्

सुषुम्नाग्रन्थिसंस्थानि षट्पद्मानि यथाक्रमम्।
आधाराख्यं मूलचक्रमतिरक्तं चतुर्दलम्।
वादिसान्तार्णसंयुक्तं रक्तवर्णं मनोहरम्॥

---

तथा साक्षात् चन्द्र उनके देह हैं, अर्थात् वह चन्द्रस्वरूपा है। पिङ्गला नामक जो नाड़ी ( मेरुदण्ड के ) दक्षिण तरफ अवस्थित है, वह पुरुषरूप तथा सूर्य उनके देहस्वरूप है।

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध तक जो नाड़ी मेरुदण्ड के मध्य में अवस्थित है, वही सर्वतेजोमयी वह्निस्वरूपा सुषुम्ना नाड़ी है। दाड़िमी··· ··· पुष्प के समान रक्तवर्ण शिवानाम्नी दूसरी एक नाड़ी ( योगिगण द्वारा मेरुदण्ड के अभ्यन्तर ) ज्ञात हुआ है। सुषुम्ना के अभ्यन्तर में ( भीतर ) कोटि चन्द्र तुल्य दीप्तिशालिनी चित्रा नाड़ी अवस्थित हैं। वह चित्रा नाड़ी सर्वदेवमयी तथा योगिगणों के ज्ञानवेद्या अर्थात् योगिगण ही उस चित्रा नाड़ी को देख पाते हैं। उस चित्रा नाड़ी के मध्य में मृणालतन्त्र ( कमल के डंठे के भीतर जो धागा ) तुल्य सूक्ष्म ब्रह्मनाड़ी ( मूलाधार स्थित ) स्वयम्भूलिङ्ग का ( हर के ) मुखविवर से (सहस्रदल पद्मस्थित) सदाशिव पर्यन्त अवस्थित है। उस नाड़ी के मध्य में अर्थात् स्वयम्भूलिङ्ग के मुखविवर के समीप ब्रह्मनाड़ी के मुख देश में ब्रह्मरन्ध्र ( कुण्डलिनी के शिवसमीप में गमनागमन के पथरूप ब्रह्मद्वार ) अवस्थित है।

## मूलाधार चक्र कथन

मूलाधारादि छयटि ६ पद्म यथाक्रम से सुषुम्नाग्रन्थि में अवस्थित है। मूलाधार नामक मूलचक्र गाढ़ारक्तवर्ण है तथा चतुर्द्दल विशिष्ट है। ये दल व, श, ष, स इन चार वर्णों के द्वारा संयुक्त, रक्तवर्ण तथा मनोहर है।

कर्णिकायां स्थिता योनिः कामाख्या परमेश्वरी।
तद्योनिः परमेशानि इच्छाज्ञानक्रियात्मिका॥
अपराख्यो हि कन्दर्प आधारे तत्त्रिकोणके।
स्वयम्भूलिङ्ग तन्मध्ये सरन्ध्रं पश्चिमाननम्॥
ध्यायेच्च परमेशानि शिवं श्यामल-सुन्दरम्।
कुण्डली तेन मार्गेण यातायातं करोति हि॥
भित्वा भित्वा पुरीं याति चायाति कुण्डली सदा।
तत्र विद्युल्लतारूपा कुण्डली परदेवता॥
प्रसुप्तभुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता।
वामावर्तक्रमेर्णव वेष्टिता विषतन्तुवत्॥
शिवं वेष्ट्य महेशानि सर्वदा परितिष्ठति।
येन मार्गेण गन्तव्यं परं ब्रह्म निरामयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी॥

---

मूलाधार पद्म के कर्णिका में परमेश्वरि कामाख्या योनिरूप में अवस्थित है। हे परमेश्वरि! वह योनि डाकिनी शक्ति है इच्छा ज्ञान तथा क्रियास्वरूपिणी है। मूलाधार पद्म में कर्णिका के धरा बीज के ऊर्ध्व में उस त्रिकोण के ऊपर कन्दर्प नामक वायु अवस्थित है। हे परमेशानि! उस त्रिकोण के बीच श्यामसुन्दर नीलवर्ण सच्छिद्र अधोमुख स्वयम्भू नामक शिवलिङ्ग का ध्यान करना। कुण्डलिनी उस रास्ते से ब्रह्मनाड़ी के सहायता से यातायात करती हैं। कुण्डलिनी शक्ति बार बार भेद करके अर्थात् स्वयम्भू, बाण तथा इतर नामक लिङ्गत्रय एक एक को भेद करके छः चक्रों के बीच में से सदा-शिवपुर में गमन करते हैं तथा वहाँ से (मूलाधार चक्र में) प्रत्यावर्त्तन करते हैं।

हे महेश्वरि! उस पद्म में तडित् माला तुल्य दीप्तिमयी प्रसुप्त सर्प के समान कुण्डलाकृति सार्द्धत्रिवलययुक्ता (साढ़े तीन बलय युक्ता) परदेवता कुण्डलिनी मृणालतन्तु के समान वामावर्त्त में शिव का वेष्टन किया हुआ है। उन्होंने शिव को वेष्टन करके (बांधकर) सदा सर्वदा अवस्थित हैं। जिस पथ से (कुण्डलिनी) परब्रह्म के निकट गमन करते हैं, परमेश्वरी कुण्डलिनी उस रास्ते को मुख के द्वारा आच्छादित करके सोयी हुई रहती है। यह चक्र ६ आधारों का मूल है, इसलिये इसे मूलाधार कहते हैं।

## स्वाधिष्ठान-मणिपूरचक्र विवरणम्

लिङ्गमूले महापद्मं स्वाधिष्ठानन्तु षड्दलम् ।
यादि-लान्तार्ण-संयुक्तं नाभौ तु मणिपूरकम् ।
डादि-फान्तान्वित-दलैररुणैर्दशभिर्युतम् ॥

## अनाहतपद्म-विवरणम्

हृदये द्वादशदलमनाहतसरोरुहम् ।
कादि-ठान्तदलैर्देवि तप्तहटकसन्निभम् ॥
तन्मध्ये बाणलिङ्गन्तु सूर्यायुतसमप्रभम् ।
शब्दब्रह्ममयो मन्त्रोऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।
तेनाहताख्यं तत्पद्मं योगिभिः परिकीर्तितम् ॥

## विशुद्धचक्र-निरूपणम्

कण्ठदेशे विशुद्धाख्यं धूम्रवर्णं मनोहरम् ।
अकारादि-स्वरोपेतैर्दलैः षोडशभिर्युतम् ॥

---

### स्वाधिष्ठान-मणिपुर-चक्र विवरण

लिङ्ग मूल में स्वाधिष्ठान नामक षड्दल महापद्म अवस्थित हैं। उस पद्म के दल समूह व, भ, म, य, र, ल—इन छः वर्णों के द्वारा संयुक्त है। नाभिदेश में मणिपुर नामक पद्म डकारादि फकारान्त दस वर्ण युक्त अरुणवर्ण दस दल के द्वारा संयुक्त होकर अवस्थान कर रहे हैं।

### अनाहत-पद्म विवरण

हे देवि ! उत्तप्त ( तपा हुआ ) स्वर्ण के समान उज्ज्वल द्वादश दल अनाहत पद्म हृदय में अवस्थान करते हैं। उसका दल समूह क कार से ठ कार तक द्वादश १२ वर्णों के द्वारा संयुक्त है। उस पद्म के मध्य में अयुत (संख्यक) सूर्य के समान उज्ज्वल वाणलिङ्ग अवस्थित है। अनाहत शब्द–ब्रह्ममय मन्त्र ( हंस मन्त्र ) उस पद्म में देखा जाता है, इसलिये योगिगणों के द्वारा वह पद्म अनाहत नाम से कहा गया है।

### विशुद्ध चक्र निरूपण

कण्ठदेश में षोडश १६ दल विशुद्ध नामक धूम्रवर्ण मनोहर पद्म है। उस पद्म के सभी दल अकारादि षोलह १६ वर्णों के द्वारा संयुक्त है। जिस कारण ( वह ) जीव के शब्द ब्रह्ममय हंसबीज के अवलोकन द्वारा विशुद्धि

विशुद्धिस्तन्यते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ।
विशुद्धपद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ॥

## आज्ञाचक्र-विवरणम्

आज्ञानाम भ्रुवोर्मध्ये चक्रञ्च द्विदलं परम् ।
हक्ष-द्वयक्षर-संयुक्तं निर्मलं सुमनोहरम् ॥
इतराख्यं महालिङ्गं तन्मध्ये काञ्चनप्रभम् ।
आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेतिविश्रुतम् ।
कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु बोधिनी तु तदूर्ध्वतः ॥

## सहस्रारचक्र-विवरणम्

सहस्रारं महापद्मं नादविन्दुसमन्वितम् ।
शून्यरूपः शिवः साक्षाद् वृत्तं परमकुण्डली ।
सार्द्धत्रिवलयाकारा कोटिविद्युत्समप्रभा ॥

यामले—

वृत्तं कुण्डलिनी शक्तिर्गुणत्रयसमन्विता ।
शून्यभागो महादेवि शिवरूपो महेश्वरः ॥

---

जन्माता है; उस कारण वह अत्यद्भुत आकाश नामक विशुद्ध पद्म कहकर प्रख्यात हुआ है ।

### आज्ञा चक्र विवरण

दोनों भौंओं के बीच ह–क्ष यह दोनों वर्ण संयुक्त निर्मल सुमनोहर आज्ञा नामक द्विदल एक चक्र में है । उसके मध्य में काञ्चनतुल्य ( सोने के समान ) उज्ज्वल इतर नामक महालिङ्ग वर्त्तमान है । उस चक्र में गुरु की आज्ञा का संक्रमण होता है, इसलिये वह 'आज्ञा' इस नाम से प्रसिद्ध है । उसके ऊपर अर्थात् आज्ञाचक्र के ऊपर कैलास नामक शिव ( द्वितीय विन्दु ) एवं उनके ऊपर अर्द्धमात्राकारा वोधिनी शक्ति अवस्थान करते हैं ।

### सहस्रार चक्र-विवरण

उसके ऊपर शङ्खिनी नाड़ी के मस्तक पर नादविन्दु समन्वित सहस्रार पद्म वर्त्तमान है, उसके मध्य में शून्यभाग साक्षात् शिव स्वरूप है, तथा वृत्त है सार्द्ध त्रिबलयवेष्टिता कोटि विद्युन्माला के समान उज्ज्वल परमकुण्डलिनी है । यामल तन्त्र में कहा गया है–हे महादेवि ! गुणत्रयान्विता कुण्डलिनी शक्ति ही वृत्त है । और सहस्रार पद्म के शून्यभाग शिवरूप महेश्वर

सर्पाकारा शिवं वेष्टय सर्वदा तत्र संस्थिता।
शिवशक्त्यात्मको विन्दुर्मुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
नादरूपेण सा देवी योनिरूपा सनातनी॥

भूतशुद्धौ—

शिवविष्णुब्रह्ममयी विन्दुयोनिः शुचिस्मिते।
सर्वोपरि महेशानि विन्दुर्ब्रह्मस्वरूपकः॥

गन्धर्वमालिकायां—

भवो विन्दुरिति ख्यातो भवनश्च त्रिकोणकम्।
भवनं भवसम्बन्धाज्जायते भुवनत्रयम्॥
पञ्चभूतानि देवेशि षष्ठे मानसमीश्वरि।
षट्चक्रेषु स्थितान्येव क्रमाद्देवि विचिन्तयेत्॥
सहस्रारं शिवपुरं रम्यं दुःखविवर्जितम्।
सर्वतोऽलंकृतैर्दिव्यैर्नित्यपुष्पफलैर्द्रुमैः॥

---

पर्साकारा कुण्डलिनी शिव को वेष्टन करके (बांध) कर सदा उसी स्थान में वर्त्तमान है। शिवशक्ति-स्वरूप विन्दु भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं। उस सनातनी कुण्डलिनी देवी नादरूप शिव के साथ मिलकर प्रकृति बन जाती है, प्रकृति हो जाती है।

भूतशुद्धि तन्त्र में कहा गया है—हे शुचिस्मिते ! विन्दुरूपिणी प्रकृति शिव, विष्णु तथा ब्रह्मस्वरूप है, हे महेशानि ! इन सभी के ऊपर ब्रह्मस्वरूप विन्दु विराजमन है। गन्धर्वमालिका तन्त्र में कहा गया है—भव ( महेश्वर ) विन्दु नाम से प्रख्यात है तथा त्रिकोण भवन के रूप में प्रसिद्ध है। भव का सम्बन्ध ( अवस्थित ) प्रयुक्त वह भवन हुए हैं—तथा उससे ही त्रिभुवन उत्पन्न होता है।

हे ईश्वरि ! हे देवेशि ! ( मूलाधारादि पाँचों चक्र में ) पञ्च महाभूत तथा षष्ठचक्र में ( सहस्रार में ) चित्त ( मन ) अवस्थित है। हे देवि ! यथाक्रम से इन सभी को षट्चक्र में अवस्थित है—ऐसी चिन्ता करना।

सहस्रार पद्म शिवपुर है; वह मनोहर तथा दुःख रहित तथा सर्वदा पुष्प युक्त मनोहर वृक्ष के द्वारा चतुर्दिक शोभित है। वहाँ गन्धर्वमालिका तन्त्र में और भी कहा गया है—सदाशिवपुर परम रमणीय है; उसमें सुशोभित कल्पवृक्ष वर्त्तमान है, वह त्रिगुणात्मक कल्पवृक्ष पञ्चमहाभूत

सदाशिवपुरं रम्यं कल्पवृक्षं सुशोभितम् ।
पञ्चभूतात्मकं तच्च गुणत्रयसमन्वितम् ॥
चतुर्वेदचतुःशाखं नित्यपुष्पफलान्वितम् ।
पीतं कृष्णं तथा श्वेतं रक्तं पुष्पञ्च पार्वति ॥
हरितञ्च विचित्रञ्च नानापुष्पं मनोहरम् ।
एवं कल्पद्रुमं ध्यात्वा तदधो रत्नवेदिकाम् ॥
तत्रोपरि सुपर्यङ्कं नानारत्नो पशोभितम् ।
मन्दारपुष्परचितं नानागन्धानुमोदितम् ॥
तत्रोपरि महादेवः सदा तिष्ठति सुन्दरि ।
ध्यायेत सदाशिवं देवं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥
बहुरत्नसमाकीर्णं दीर्घबाहु मनोहरम् ।
सुखप्रसन्ननयनं स्मेरास्यं सततं प्रिये ॥
श्रवणे कुण्डलोपेतं रत्नहारेण शोभितम् ।
शोण(गले)पद्मसहस्रस्य मालया शोभितं वपुः ॥

---

स्वरूप है । ऋक् यजुः, साम तथा अथर्वरूप चारों वेद उनकी चार शाखाएँ है । सदा सर्वदा उसमें फल पुष्प लगे हैं ।

हे पार्वति ! उस वृक्ष में पीत, कृष्णा ( काला ) पीला, श्वेत ( सफेद ), रक्त ( लाल ) हरित ( हरा ) तथा विचित्र पुष्प—इस प्रकार मनोहर विभिन्न पुष्प लगे हैं । इस प्रकार कल्पवृक्ष का ध्यान करके उसके अधोभाग में रत्नवेदिका का ध्यान करना ।

उस रत्नवेदिका के ऊपर विभिन्न प्रकार के रत्नों से शोभित मन्दार पुष्प युक्त नाना प्रकार के गन्धों से आमोदित एक सुन्दर पर्यङ्क (पलङ्ग) है ।

हे सुन्दरि ! उस (पलङ्ग) के ऊपर महादेव सर्वदा सदा विराजमान हैं । हे प्रिये ! उस पलङ्ग के ऊपर शुद्ध स्फटिक तुल्य शुभ्रवर्ण सदाशिव देव का सतत इसी प्रकार चिन्ता करना—वह सदाशिव बहुरत्नों के द्वारा अलंकृत है; उनका बाहुयुगल दीर्घ तथा मनोहर; नयनद्वय ( दोनों आँख ) आनन्द से उज्ज्वल तथा प्रसन्न है, मुख स्मित हास्य युक्त है, कानों में कुण्डल है; देह ( कण्ठदेश ) रत्नहारों के द्वारा तथा सहस्र रत्नपद्म ( लाल कमल ) युक्त माला के द्वारा शोभित है; उनके आठ बाहु, कमल दल के सदृश प्रशस्त

अष्टबाहुं त्रिनयनं शिवं पद्मदलेक्षणम् ।
पादयोर्नूपुरं रम्यं शब्दब्रह्ममयं वपुः ॥
एवं स्थूलवपुस्तस्य भावयेत् कमलेक्षणे ।
पद्ममध्ये स्थितं देवं निरीहं शब्दरूपिणम् ॥
शब्दरूपे महादेवे कृत्यं नास्ति कदाचन ।
एवं सर्वेषु चक्रेषु शक्तिरूपं विचिन्तयेत् ॥
ब्रह्मा रुद्रश्च विष्णुश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवश्चैव षट् शिवाः परिकीर्त्तिताः ॥

शक्तिमाह—

विशुद्धौ डाकिनी देवि अनाहते तु राकिणी ।
लाकिनी मणिपूरस्था काकिनी लिङ्गगोचरे ॥
आधारे शाकिनी देवी आज्ञायां हाकिनी तथा ।
याकिनी ब्रह्मरन्ध्रस्था सर्वकामफलप्रदा ॥
ध्यायेत् कुण्डलिनी देवीं स्वयम्भूलिङ्गसंस्थिताम् ।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकम् ।
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्वरूपिणीम् ॥

---

तथा आयत तीन नेत्र हैं; दोनों पैर में मनोहर नुपूर; उनका देह शब्दब्रह्मरूप है ( अर्थात् शब्दमय हैं ) ।

हे कमलेक्षणे ! शिव को तथा उनके स्थूल देह की इस प्रकार चिन्ता करना । षट्चक्र पद्म में अवस्थित शब्दरूपी शिव की निश्चेष्ट भावना करना क्योंकि शब्दरूप महादेव के सम्बन्ध में कभी भी कोई कृत्य नहीं है । इस प्रकार मूलाधारादि समस्त चक्र में शक्ति एवं रुद्र की चिन्ता करना ।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव तथा उसके बाद परशिव—( षट्चक्र में ) ये छः शिव कीर्त्तित हुए हैं । शक्ति कह रही हैं—विशुद्ध चक्र में डाकिनी देवी, अनाहत चक्र में राकिणी, मणिपुर में लाकिनी, स्वाधिष्ठान में काकिनी, मूलाधार में शाकिनी, आज्ञाचक्र में हाकिनी शक्ति अवस्थित हैं । ब्रह्मरन्ध्र स्थिता याकिनी सभी काम्यफल प्रदान करती है ।

स्वयम्भूलिङ्ग पर अवस्थित कुण्डलिनी देवी का इस प्रकार ध्यान करना । उन्हें श्यामवर्णा, सूक्ष्मा, सृष्टिस्थित—लयस्वरूपा, विश्वातीता,

रक्तामिति सुन्दरी विषये ज्ञेयम् ।

हुङ्कारवर्णसम्भूता कुण्डली परदेवता ।
विभर्ति कुण्डली देहमात्मानं हंसमन्त्रतः ॥

## कुण्डलिनी योगः

प्रवृद्धवह्निसंयोगमनसामारुतैः सह ।
ऊर्ध्वं नयेत् कुण्डलिनीं जीवात्मसहितां परम् ॥
गच्छन्ति ब्रह्मरन्ध्रेण भित्वा ग्रन्थि चतुर्दशः ।
षट्चक्र-सन्धिमार्गेण सुषुम्ना वर्त्मना तथा ।
हंसेन मनुना देवीं सहस्रारं समानयेत् ॥
सदाशिवो महादेवो यत्रास्ते परमेश्वरि ।
तत्रगत्वा महादेवि कुण्डली परदेवता ॥
देवीरूपवती काम-समुल्लासविहारिणी ।
मुखारविन्दगन्धेन मोदितं परमं शिवम् ॥
प्रबोध्य परमेशानि तत्रोपरि वसेत् प्रिये ।

---

ज्ञानरूपा तथा ऊर्ध्वगामिनी चिन्ता करना। सुन्दरी के विषय में इन्हें रक्तवर्णा जानना अर्थात् सुन्दरी के उपासक गण इन्हें रक्तवर्णा जान कर ध्यान करेंगे। हुङ्कार वर्ण सम्भूता परदेवता कुण्डलिनी हंस मन्त्र के द्वारा अपने कुण्डली सर्पाकार देह पोषण करती है।

## कुण्डलिनी योग

वायु के साथ महावह्नि के संयोग से वह जैसे ऊपर गमन करता है उसी प्रकार साधक मन के द्वारा परदेवता कुण्डलिनी शक्ति को जीवात्मा के साथ ऊर्ध्व में ( ऊपर ) सहस्रार पद्म, में ले जाता है। ब्रह्मरन्ध पथ में ( रास्ते में ) गमन कारिणी शक्ति को ग्रन्थि ( स्वयम्भू, बाण तथा इतराख्य लिङ्गत्रय षट्चक्र तथा पञ्चशिव ) भेद करके षट्चक्र सन्धिस्थानस्थित सुषुम्ना पथ में हंस मन्त्र के साथ सहस्रार पद्म में आनयन करना।

हे परमेश्वरि ! यहाँ महादेव सदाशिव अवस्थान करते हैं। हे प्रिये ! हे परमेशानि ! हे महदेवि ! रुपवती परदेवता कुण्डलिनी देवी उसी स्थान में गमन करके कामसमुल्लास विहारिणी होकर मुखपद्म के गन्ध के द्वारा आमोदित ( आनन्दित ) परम शिव को जगा कर सदाशिव के गोदी में बैठती है।

शिवस्य मुखपद्मं हि चुचुम्बे कुण्डली शिवे ॥
सदाशिवेन देवेशि क्षणमात्रं रमेत् प्रिये ।
अमृतं जायते देवि तत्क्षणात् परमेश्वरि ॥
तदुद्भवामृतं देवि लाक्षारस समारुणम् ।
तेनामृतेन देवेशि तर्पयेत् परदेवताम् ॥
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्याऽमृतधारया ।
आनयेत् तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः ॥
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम् ।
एवमभ्यस्यमानस्तु अहन्यहनि पार्वति ॥
जराभरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ।
इत्युक्तं परमो योगो योनिमुद्रा प्रबन्धनः ॥

यामले—

कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा पुनरेव कुलं विशेत् ।
रमते सेयमव्यक्ता पुनरेकाकिनी सती ॥

संकेतपद्धत्याम्—

पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः पदं हंसः प्रकीर्तितः ।
रूपं विन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतश्च निष्फलम् ॥

---

हे प्रिये ! हे शिवे ! हे देवेशि ! (तब) कुण्डलिनी शक्ति शिव के मुखपद्म चुम्बन करते हैं तथा क्षणभर काल शिव के साथ क्रीड़ा करते हैं। हे देवि ; हे परमेश्वरि ! तभी उस क्रीड़ा से अमृत उत्पन्न होता है। हे देवि ! उस क्रीड़ाजात अमृत लाक्षारस के तुल्य समान अरुणवर्ण है।

हे देवेशि ! साधक उस अमृत के द्वारा परदेवता का तर्पण करेंगे। सुधी साधक वहाँ पर अमृत-धारा के द्वारा षट्चक्र देवता का तर्पण करके कुण्डलिनी शक्ति को उस पथ ( रास्ते से ) से पुनराय मूलाधार में आनयन करेंगे। साधक जाने आने के क्रम से ब्रह्म में मनः स्थिर करेंगे। हे पार्वति ! प्रतिदिन इस प्रकार अभ्यास करने पर जरामरण जनित दुःखादि तथा संसार बन्धन से मुक्तिलाभ करेंगे। यही है योनिमुद्रा प्रबन्धन (जन्मनाशक) इसे परम योग कहा गया है। यामल तन्त्र में कहा गया है—'कुलवधू जिस प्रकार कुल का परित्याग करके पुनः कुल में आगमन करती है' उसी प्रकार अव्यक्ता कुण्डलिनी ( मूलाधार से प्रत्यावर्त्तन करके ) एकाकिनी ( अकेला )

एतेन षट्चक्रभेदक्रमेण कुण्डलिनीं सहस्रदल पद्मे नीत्वा तत्रस्थ सदाशिवेन सङ्गमय्यतदुद्भवामृतेन परदेवतां षट्चक्रस्थशिव-शक्त्यादींश्चाप्लाव्य सोऽहमिति मन्त्रेण पुनः स्वस्थानमानयेदिति तु वाक्यार्थः।

सोऽमिति च मन्त्रेण स्वस्थानमानयेत् सुधीः। इति यामल-वचनात् ॥

**देव्युवाच**

देवदेव महादेव सृष्टिस्थित्यन्तकारकः।
मूर्ध्नि पद्मं सहस्रारं रक्तवर्णमधोमुखम् ॥
तस्य मध्ये स्थितं ध्यायेद् गुरुं शान्तं सशक्तिकम्।
मूलाधारे महाशक्तिं कुण्डलीरुप-धारिणीम् ॥
अधोवक्त्र क्रमेणैव सर्वपद्मेषु भावना।
तदा कथं भवेत् तत्र चिन्तनं गुरुदेवयोः ॥

---

अवस्थान करती है। सङ्केत पद्धति में कहा गया है—'कुण्डलिनी शक्ति पिण्ड एवं पद हंस कह कर कीर्त्तित हुए हैं'। रूप को समझ कर एवं रूपातीत को निष्कल ब्रह्म समझना चाहिये।

इस प्रकार षट्चक्र भेद की रीति के अनुसार से कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रदल पद्म में लेकर उस सहस्रदल पद्म स्थित सदाशिव के साथ मिला कर उस मिलन जनित अमृत के द्वारा पर देवता तथा षट्चक्र स्थित शिव-शक्ति आदि को आप्लावित करके 'सोऽहं' मन्त्र के द्वारा पुनः स्वस्थान में (मूलाधार) में आनयन करना (लाना)—यही है वाक्यार्थ, क्योंकि यामल तन्त्र में कहा गया है कि 'सुधी' साधक 'सोऽहं' इस मन्त्र के द्वारा कुण्डलिनी का आनयत करेंगे।

देवी कह रही है—हे देव देव! हे महादेव! हे सृष्टिस्थितलयकारिन्। मस्तक पर रक्तवर्ण अधोमुख सहस्रार पद्म अवस्थित है, उस पद्म के मध्य में अवस्थित शक्ति के साथ शान्तस्वभाव गुरु का एवं मूलाधार पद्म में कुण्डली रूपधारिणी महाशक्ति का ध्यान करना। यथाक्रम से समस्त पद्म में अधोमुख में ही ध्यान विहित हुआ है। अतएव वहाँ गुरु तथा देवता इन दोनों का ध्यान किसी प्रकार हो सकता है? आधार पद्म में अवस्थिति

आधारे चेत् स्थितिस्तत्र त्वधोभागे कथं भवेत् ।
अधोवक्त्रे स्थितस्यापि चिन्तनं वा कथं भवेत् ॥

**श्रीमहादेव उवाच**

यथा युक्तं त्वया देवि कथितं वीरवन्दिते ।
एवमेव तु सन्देहो जायते नात्र संशयः ॥
कथ्यते परमेशानि सन्देहोच्छेदकारणम् ।
तानि पद्मानि देवेशि सुषुम्नान्तः स्थितानि च ॥
परंब्रह्मस्वरूपाणि शब्दब्रह्ममयानि च ।
तत्सर्वं पङ्कजं देवि सर्वतोमुखमेव च ।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्वौ भावौजीवसंस्थितौ ॥
प्रवृत्तिमार्गः संसारः निवृत्तिपरमात्मनि ।
प्रवृत्तिमावचिन्तायामधोवक्त्राणि चिन्तयेत् ॥
निवृत्तियोगमार्गेषु सदैवोर्ध्वमुखानि च ।
एवमेव भावभेदादसन्देहोऽभिजायते ॥

---

यद्यपि सम्भव होता है, परन्तु वहाँ अधोमुख भावना किस प्रकार से हो सकता है ? और अधोमुख में अवस्थित पद्म की चिन्ता किस प्रकार से होगा ।

श्रीमहादेव बोले—हे देवि ! हे वीरवन्दिते ! तुम्हारे द्वारा जिस प्रकार युक्तियुक्त विषय कहा गया है, 'साधारणतः' उसमें इस प्रकार संशय ही पैदा होता है—इसमें संशय नहीं है । हे परमेशानि ! सन्देह निवारण का कारण कह रहा हूँ । हे देवेशि ! शब्द ब्रह्ममय परब्रह्मस्वरूप उस पद्म समूह सुषुम्ना नाड़ी के अभ्यन्तर में अवस्थित है । हे देवि ! वे सभी पद्मसमूह सर्वतोमुख है अर्थात् ऊर्ध्व ( ऊपर ) तथा अधोमुख ( नीचे के तरफ ) है । प्रवृत्ति तथा निवृत्ति नामक दोनों भाव जीव हृदय में अवस्थान करते हैं । संसार है प्रवृत्ति मार्ग और परमात्मा गति है निवृत्ति । प्रवृत्ति भाव के चिन्ता से पद्मसमूह का अधोमुख चिन्ता करना । निवृत्तिरूप योगमार्ग में इन पद्म-समूह को सदा सर्वदा ऊर्ध्वमुख चिन्ता करना । इस प्रकार भावों के भेद रहने से सन्देह निवृत्ति उत्पन्न होता है ।

## गृहस्थयोगसाधनम

(अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि गृहस्थानाञ्च साधनम् ।
मूलाधारे स्थितां देवीं कुण्डलीं परदेवताम् ॥
भोगकाले महेशानि आजिह्वान्तं विभाव्य च ।
शोधितान मत्स्यमांसादीन् तन्मुखे स्थापयेद् बुधः ॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य जुहोमि कुण्डलीमुखे ।
प्रतिग्रासे महेशानि एवं कुर्याद् विचक्षणः ॥
भोजनेच्छा भवेत् तस्या निर्लिप्तो जीवसंज्ञकः । )
एवमेव प्रकारेण ऊर्ध्वपद्मं प्रजायते ॥
गुरोः स्थितिश्च चार्वङ्गि तदा सम्यक् प्रजायते ।
भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छिद्यते सर्वसंशयः ॥
गुर्वादि भावनाद्देवि तदा सिद्धिः प्रजायते ।
स्वगेहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटतिदुर्मतिः ॥
अतएव महेशानि वातुलत्वं प्रजायते ।
इत्येतत्कथितं सारं मम ज्ञानविलोकितम् ॥

---

### गृहस्थ-योगसाधन

इसके अनन्तर गृहस्थों के अन्य योग साधन कह रहा हूँ-हे महेश्वरि ! साधक भोगकाल में मूलाधार स्थित परदेवता कुण्डलिनी देवी को जिह्वा तक ध्यान करके उनके मुख में शोधित मत्स्य मांस आदि स्थापन करेंगे। मूलमन्त्र उच्चारण करके "कुण्डलीमुख में जुहोमि" मन्त्र से आहुति देना।

हे महेश्वरि ! विचक्षण साधक प्रतिग्रास में इस प्रकार करेंगे। इस प्रकार करने से ही ऊर्ध्वमुख पद्म उत्पन्न होगा। हे चार्वङ्गि ! तब उनमें गुरु की स्थिति सम्यक् प्रकार से सम्भव होगा। हे देवि ! गुरु आदि की चिन्ता भावना से जब हृदयग्रन्थि ( अविद्या ) भिन्न होता है, और समस्त संशय छिन्न होता है; तब सिद्धि उत्पन्न होता है। जो लोग दुर्म्मति (खराब बुद्धि) हैं, वे लोग अपने घर पर खीर छोड़कर भिक्षा को प्राप्त करते हैं अर्थात् जो लोग अपने शरीर मध्य में सिद्धिलाभ का उपायस्वरूप कुण्डलिनी योग को अवलम्बन न करके बाह्य योग अवलम्बन ( ग्रहण ) करते हैं, उन लोगों को उसके द्वारा सम्यक् सिद्धिलाभ नहीं होता है। हे महेश्वरि ! यह कुण्डलिनी योग से ही वायु तत्व ( शिवत्व ) लाभ होता है। यही मेरा ज्ञानलब्ध सारतत्व जो तुमसे कह दिया।

## प्रकारान्तर-कुण्डलिनी-योगकथनम्

अथ योगं प्रवक्ष्यामि येन देवमयो भवेत्।
मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रामिता प्रिये ॥
तावत् किञ्चिन्न सिध्येत् मन्त्रयन्त्रार्चनादिकम्।
स्वापकालो वामवाहः प्रबोधो दक्षिणावहः ॥
मन्त्रिणां स्वापकाले तु जपोऽनर्थं फलप्रदः।
प्रबोधकालं जानीयादुभयोरपि पार्वति ॥
जागर्त्तियदि सा देवि बहुभिः पुण्यसञ्चयैः।
तदा प्रसादमायान्ति मन्त्रयन्त्रार्चनादयः ॥
योगयोगाद्भवेन्मुक्तिर्मन्त्रसिद्धिरखण्डिता ।
सिद्धे मनौ परावाप्तिरिति शास्त्रस्य निर्णयः ॥
जीवनमुक्तश्च देहान्ते परं निर्वाणमाप्नुयात्।
संसारोत्तरणं मुक्तिर्योगशब्देन कथ्यते ॥
प्राणायामैर्जपैर्यागैस्त्यक्तनिद्रा जगन्मयी।

---

### प्रकारान्तर कुण्डलिनी योग

इसके अनन्तर अन्य लोगों को कहूँगा जिसके द्वारा साधक देवमय हो सकता है। हे प्रिये! मूलाधार पद्म में कुण्डलिनी जब तक निद्रित (सोये हुये) रहती है, जब तक मन्त्र-यन्त्र की अर्चना आदि कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। निःश्वास जब वायें नाक से प्रवाहित होता है, तब स्वाप सोया हुआ काल है; और जब दाहिने नाक से निःश्वास प्रवाहित होता है, तब वह जाग्रत काल है। स्वाप काल में साधकों का जप अनर्थ फल प्रदान करता है। हे पार्वति! दोनों का ही अर्थात् साधक तथा कुण्डलिनी का प्रबोधकाल (जाग्रत काल) कल्याणकर जानना। हे देवि! अनेक पुण्य सञ्चय के द्वारा जब कुण्डलिनी देवी जाग्रत होती है, मन्त्र-यन्त्र की अर्चनादि से प्रसन्नता प्राप्त होती है। कुण्डलिनी योग के सम्बन्धवशतः अखण्ड मन्त्रसिद्धि एवं मुक्ति उत्पन्न होता है। मन्त्रसिद्ध होने पर परब्रह्म की प्राप्ति होती है–यहाँ शास्त्रसिद्धान्त है। जीवन्मुक्त साधक देहान्त परम निर्वाण लाभ करता है। योग शब्द के द्वारा संसार निवृत्तिरूप मुक्ति कहा गया है। जगन्मयी कुण्डलिनी प्राणायाम, जप तथा योग यज्ञ के द्वारा निद्रा को त्याग करते हैं।

चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानन्तु षड्दलम् ।
नाभौ दशदलं पद्मं सूर्यसंख्यादलं हृदि ॥
कण्ठे स्यात षोडशदलं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा ।
सहस्रदलमाख्यातं ब्रह्मरन्ध्रमहापथे ॥
मातृकाक्षर संयुक्तं सहस्रारं सरोरुहम् ।
अधोवक्त्रं शुक्लवर्णं रक्त किञ्जल्कभूषितम् ॥ इति ॥

( सुन्दरीविषये तु रक्तवर्णं बोध्यम् । समयातन्त्रोक्तत्वात्, अन्यथा । विरोधापत्तेः ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवश्चैव षट् शिवाः परिकीर्त्तिताः ॥
डाकिनी राकिनी चैव शाकिनी लाकिनी तथा ।
काकिनी शाकिनी चैव शक्तयस्ताः परिकीर्त्तिताः ॥
आधारे हृत्प्रदेशे च भ्रुवोर्मध्ये विशेषतः ।
स्वयम्भूसंज्ञो बाणाख्यस्तथैवेतरसंज्ञकः ॥
लिङ्गत्रयं महेशानि प्रधानत्वेन चिन्तयेत् ।
मूलाधारे स्थिताभूमिः स्वाधिष्ठाने जलं प्रिये ॥

---

आधार ( मूलाधार ) पद्म चतुर्द्दल, स्वाधिष्ठान षड्दल, नाभि में दशदल पद्म, हृदय में द्वादश दलपद्म, कण्ठ में षोडशदल—इस प्रकार भ्रूमध्य में द्विदल तथा मस्तक में सहस्रदल पद्म कहा गया है। सहस्रदल पद्म मातृकाक्षरों से युक्त, अधोमुख, शुक्लवर्ण तथा रक्त किञ्जल्कशोभित है। ( सुन्दरी के विषय में सहस्रदल पद्म को रक्तवर्ण समझना । क्योंकि समयातन्त्र में यही कहा गया है । अन्यथा विरोध की आपत्ति होती है ) ।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव उसके बाद परशिव—यह छः प्रकार शिव ( मूलाधारादि छः पद्म में ) स्वीकृत है । डाकिनी, राकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी, हाकिनी—ये सभी मूलाधारादि पद्म में शिव की शक्ति कह कर कीर्त्तित है ।

हे महेशानि ! मूलाधार पद्म में हृत्पद्म तथा भ्रू मध्य में ( छः शिव के बीच ) विशेषरूप से स्वयम्भूलिङ्ग, वाणलिङ्ग तथा इतर नामक लिङ्ग का प्रधानरूप से चिन्ता करना । हे प्रिये ! मूलाधार में भूमि, स्वाधिष्ठान में जल अवस्थित है, मणिपुर में तेज; हृदय में वायु अवस्थित है। हे महेशानि !

मणिपूरे स्थितं तेजो हृदये मारुतस्तथा।
विशुद्धौ तु महेशानि आकाशं कमलेक्षणे॥
आज्ञाचक्रे महेशानि मनः सर्वार्थसाधकम्।
तदूर्ध्वे परमेशानि पद्ममूर्ध्वमुखं सदा।
तस्योपरि महेशानि ध्यायेत् सदा शिवं गुरुम्॥

ऊर्ध्वमुखमिति। अधोमुख सहस्रदल पद्माधोगतेर्ध्वमुखद्वादश-दल-पद्मोपरि शिवरूपिणं श्रीगुरुं ध्यायेदित्यर्थः। तथा-चोक्तं यामले—

ब्रह्मरन्ध्र सरसीरुहोदरे नित्यलग्नमवदातमद्भुतम्।
कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितं द्वादशार्ण सरसीरुहं भजे॥

अहं द्वादशार्णं द्वादशदलं सरसीरुहं पद्मं भजे। सरसोरुहं किं विशिष्टम्? कुण्डलीविवर काण्डमण्डितं। कुण्डल्यां विवरं मूलाधारपद्मात् सहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतविन्दुरूपि-सदाशिव सन्निधौ गमनमार्गः, तस्य काण्डं तदाधारभूतं नालं, चित्रिणीनाडीत्यर्थः।

---

हे कमलेक्षणे! विशुद्धि चक्र में आकाश अवस्थित है। हे महेशानि! आज्ञा-चक्र में सर्वार्थ साधक मन अवस्थित है। हे परमेशानि! आज्ञा चक्र के ऊपर ऊर्ध्वमुख सहस्रदल पद्म सदा सर्वदा अवस्थित है। हे महेशानि उसके ऊपर सदाशिवरूपी श्रीगुरु का ध्यान करना।

'ऊर्ध्वमूखम्' इस वाक्य का अर्थ है—अधोमुख सहस्रदल पद्म के अधो-भागस्थित ऊर्ध्वमुख द्वादश दलपद्म के ऊपर में शिवरूपी श्रीगुरु का ध्यान करना। यामल तन्त्र में इसी प्रकार कहा गया है—'ब्रह्मरन्ध्र सरसीरु—होदरे' इत्यादि।

( ग्रन्थकार बाद में स्वयं उक्त श्लोक की व्याख्या किये है )—मैं द्वादशार्ण अर्थात् द्वादशदल विशिष्ट-सरसीरुह को अर्थात् पद्म को भजना कारि।

उस सरसी किस विशेषण विशिष्ट? 'कुण्डली विवरकाण्डमण्डितम्' व्याख्या कुण्डली का विवर अर्थात् मूलाधार पद्म से सहस्रदल पद्म के कर्णिका के अन्तर्गत ( भीतर ) जो विन्दु, उस विन्दु रूपी सदाशिव के समीप में गमन मार्ग है। उस कुण्डली विवर का काण्ड अर्थात् उसका आधार-भूत नाल अर्थात् चित्रिणी नाड़ी है। उस नल के 'मप्रित' अर्थात् पद्मनाल के समान चित्रिणी नाड़ी का शिरोभूषण है। उसके आगे द्वादश दल पद्म के

तस्य मण्डितं पद्मनालवत् चित्रिणीनाड्याः शिरोभूषणमित्यर्थः। तदग्रे द्वादशार्णस्य सरसीरुहस्य स्थितत्वात् भूषणमित्युक्तिः। पुनः किम्भूतम् ? ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे नित्यलग्नम्, सहस्रारपद्म कर्णिकासमीपे तदधोदेशे नित्यमविनाभाव सम्बन्धेन लग्नं स्थितमित्यर्थः। पुनः किम्भूतम् ? अवदप्तं गौरम्। पुनः किम्भूतम् ? अद्भुतं मनोहरम्। तत्र पूर्वोक्त क्रमेण शिवरूपिणं श्रीगुरुं ध्यायेत् ॥

षट्चक्रं परमेशानि। सदाशिवपुरं समम्।
शक्तिपुरं महेशानि सदाशिवपुरोपरि ॥
स एव निर्वाणाख्य कलोपरिगतः निर्वाणशक्तेः पुरम्।
शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणा
लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे ॥
पदं देव्या देवीचरणयुगलानन्दरसिका।
मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृति पुरुषस्थानममलम् ॥

---

अवस्थान वशतः 'भूषण' यह उक्त हुआ है।

पुनः किम्भूतम् ? अर्थात् उस सरसीरूह और किस प्रकार विशेषण विशिष्ट है ? 'ब्रह्मरन्ध्र-सरसीरुहोदरे नित्यलग्नं अर्थात् सहस्रार पद्म के कर्णिका के समीप में उसके अधोदेश में नित्य अर्थात् अविनाभाव सम्बन्ध से-लग्न अर्थात् स्थित। 'पुनः किम्भूतं' अर्थात् वह सरसीरूह और क्या विशेषण विशिष्ट है ? अवदातम् अर्थात् गौर वर्ण है। पुनः किम्भूतं ? अर्थात् वह सरसीरुह और क्या विशेषण विशिष्ट है ? 'अद्भूतम्' अर्थात् मनोहर है। उस सरसीरूह में पूर्वोक्तक्रम से शिवरूपी श्रीगुरु का ध्यान करना चाहिये।

हे परमेशानि ! षट्चक्र है सदाशिव का पुर हे महेशानि ! सदाशिवपुर के उपरि भाग में उसके तुल्य शक्तिपुर है। वह सदाशिव ही है निर्वाण नामक कला का उपरिस्थित निर्वाणशक्ति का पुर है। शैवगण इस स्थान को ( पद्म को ) शिवस्थान कहते हैं। वैष्णव गण उसे परम पुरुष विष्णु का स्थान कहते हैं। अनेक हरिहरोपासक तथा अन्यान्य उपासकगण उसे हरिहर पद कहते हैं। देवी के पादपद्म सेवकगण उसे देवी का स्थान कहते हैं। हंस मन्त्रोपासक मुनीन्द्रगण उसे मनोहर प्रकृति पुरुष का स्थान कहते हैं।

## कुण्डलिनी प्रत्यावर्त्तन प्रकारः

रमित्वा शम्भुना सार्द्धं कुण्डलीं परदेवताम् ।
मूलाधारं महेशानि सहस्रारात् समानयेत् ॥
शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभूतां विचिन्तयेत् ।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं तत्र इष्टदेवस्वरूपिणीम् ॥
सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम् ।
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥
पूर्णचन्द्रनिभां रक्तां सदा चञ्चललोचनाम् ।
नानारत्नयुतां धन्यां पादे नूपुरशोभिताम् ॥
किङ्किनी च तथा कट्यां रत्नकङ्कणमण्डिताम् ।
कन्दर्पकोटि-लावण्यां सदा मधुरहासिनीम् ॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं शिवे ।
मातृकामालया जप्त्वा आज्ञाचक्रं समानयेत् ॥
तत्रेतरेण लिङ्गेन योजयेत् कुण्डलीं पराम् ।
ध्यात्वा ब्रह्ममयीं तत्र शतमष्टोतरं जपेत् ॥

---

### कुण्डलिनी-प्रत्यावर्त्तन प्रकार

हे महेशानि ! ( साधक ) परदेवता कुण्डलिनी को ( सहस्रार पद्म में ) शिव के साथ मिलाकर सहस्रार पद्म से मूलाधार में आनयन करेगा एवं शम्भू के साथ उस पराशक्ति कुण्डलिनी को अभिन्न भावना करना । उस सहस्रदल पद्म में कुण्डलिनी के इष्टदेवस्वरूपिणी, सर्वदा षोडशवर्षीया ( स्थिर यौवना ), पीन, तथा उन्नत पयोधर विशिष्टा, नवयौवना, सभी प्रकार के अलङ्कारों से विभूषिता, पूर्णचन्द्र के समान सौन्दर्य विशिष्टा रक्तवर्णा, सर्वदा चञ्चलनयना, नानाविधि रत्नयुक्ता, सौभाग्यवती, पैरों में नूपुर शोभिता, कटिदेश में किङ्किणी युक्ता, रत्नकङ्कण मण्डिता, कोटि कन्दर्प तुल्य सौन्दर्य विशिष्ट सुन्दरी तथा सदा सर्वदा मधुरहास्ययुक्ता का ध्यान करना । हे शिवे ! इस प्रकार ध्यान करके १०८ बार मन्त्र जप करना । मातृकामाला में उक्त मन्त्र का जप करके कुण्डलिनी को आज्ञाचक्र में आनयन करना । उसी स्थान में इतर नामक लिङ्ग के साथ परा कुण्डलिनी को मिलाकर एवं उसी स्थान में कुण्डलिनी का ब्रह्ममयी ध्यान करके

ततो विशुद्धौ तां नीत्वा शिवेन सह योजयेत् ।
तामिष्टदेवतां ध्यात्वा जपेदष्टशतं प्रिये ॥
हृत्पद्मे तां ततो नीत्वा बाणेन सह योजयेत् ।
देवीरूपाञ्च तां ध्यात्वा जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥
मणिपूरे तु तां नीत्वा शिवेन सह योजयेत् ।
देवीरूपां च तां ध्यात्वा शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥
स्वाधिष्ठाने ततो नीत्वा शिवेन सह योजयेत् ।
योजयित्वा जपेन्मन्त्रं देवीं ध्यात्वा प्रियं वदे ॥
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा मूलाधारे तु तां नयेत् ।
तत्र लिङ्गं स्वयम्भूञ्च ध्यायेत्कुन्दसमप्रभम् ॥
शुक्लवर्णं चतुर्बाहुं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
नानारत्नयुतं रम्यं सार्द्धत्रिवलयान्वितम् ॥
प्रसन्नवदनं शान्तं नीलकण्ठविराजितम् ।
कपर्दिनं स्फुरत्सर्वभूषं कुन्दसमप्रभम् ॥

---

१०८ बार मन्त्र जप करना। हे प्रिये ! उसके बाद विशुद्धि चक्र में उस कुण्डलिनी को आनयन करके तत्रस्थ शिव के साथ मिलाकर एवं उन्हें इष्ट देवता-स्वरूपा चिन्ता करके १०८ बार मन्त्र जप करना। उसके बाद उन्हें हृत्पद्म में लेकर वाण नाम शिव के साथ मिलाकर एवं उन्हें देवीरूपा चिन्ता करके १०८ बार मन्त्र जप करना। उसके बाद उन्हें मणिपुर में ले जाकर शिव के साथ मिलाकर एवं उन्हें देवीरूपा ध्यान करके १०८ बार मन्त्र जप करना। उसके बाद उन्हें स्वाधिष्ठान चक्र में लेकर शिव के साथ मिलन करना चाहिये।

हे प्रियं वदे ! इस प्रकार देवी को मिलित करके ध्यान करके १०८ बार मन्त्र जप करना। १०८ बार मन्त्र जप करके मूलाधार में उन्हें आनयन करना। उसी स्थान पर स्वयम्भू लिङ्ग के कुन्द पुष्पवत् प्रभाविशिष्ट, शुक्लवर्ण, चतुर्बाहु, पञ्चमुख, तीन आँख विभिन्न रत्नयुक्त, मनोहर सार्द्ध त्रिवलययुक्त कुण्डलिनी के द्वारा आलिङ्गित देह, प्रसन्नवदन, शान्त, नील-कण्ठ, जटाजूटाधारी, अत्युज्ज्वल सर्वविध भूषणों से विभूषित, कुन्दपुष्प के समान सुन्दर ध्यान करना।

षट्चक्रे परमेशानि ध्यायेज्जगन्मयीं शिवाम् ।
भुजङ्गरूपिणीं देवीं नित्यां कुण्डलिनीं पराम् ॥
विषयन्तुमयीं देवीं साक्षादमृतरूपिणीम् ।
अव्यक्तरूपिणीं दिव्यां ध्यानगम्यां वरानने ॥
ध्यात्वा जप्त्वा च देवेशि साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत् ।
एवं द्वादशधा देवि यातायातं करोति यः ॥
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो मन्त्रसिद्धो न चान्यथा ।
यत्र तत्र मृतश्चायं गङ्गायां श्वपचालये ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मभूयाय कल्पते नान्यथा प्रिय ॥

अथ प्रार्थना—

अहं देवि न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान् ॥
हृदिस्थया परदेव्या प्रेरितश्च करोम्यहम् ।
न मे किञ्चिद् क्वचिद्वापि कृत्यमस्ति जगत्त्रयये ॥

---

हे वरानने ! हे परमेशानि ! षट्चक्र में परा कुल कुण्डलिनी देवी को जगन्मयी शिवा, शक्तिरूपा, भुजङ्गरूपिणी, नित्या, मृणालतन्तु कमल के नाल के अन्दर धागे के समान सूक्ष्मा दीप्तिमयी, साक्षात् अमृतरूपिणी, अव्यक्तस्वरूपा, दिव्या, ध्यान गम्या ध्यान करना ।

हे देवेशि ! ( साधक ) ध्यान करके तथा जप करके साक्षात् ब्रह्ममय होता है । जो साधक इस प्रकार द्वादश बार कुण्डलिनी को यातायात करता है अर्थात् कराता है, वह सर्वपाप से मुक्त होकर मन्त्र सिद्ध होता है अन्यथा मन्त्रसिद्ध नहीं हो सकता ।

हे प्रिये ! यह साधक जहाँ तहाँ गङ्गा के तट में अथवा चण्डाल के घर में मृत होने पर भी ब्रह्मविद् होकर ब्रह्मस्वरूप प्राप्ति के योग्यता का लाभ करता है; अन्यथा सम्भव नहीं है ।

अनन्तर प्रार्थना—हे देवि ! हम ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं, मैं ब्रह्म ही हूँ ( इसलिये ) शोकभागी भी नहीं है । सच्चिदानन्दरूप नित्यमुक्त ब्रह्मसत्ता ही मेरी सत्ता है; हृदयस्थित परदेवता कर्तृक प्रेरित होकर ही मैं कर्म करता हूँ । जगत्रय के ( स्वर्ग, मर्त्य, तथा पाताल का ) किसी स्थान में मेरा किसी प्रकार कुछ भी कृत्य नहीं है । मैं धर्म जानता हूँ, परन्तु मेरी उसमें

जानानि धर्मं न च मे प्रवृत्तिजानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया महादेवि हृदिस्थायाऽहं यथा यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥
त्रैलोक्य चैतन्यमयि त्रिशक्ते श्रीपार्वति त्वच्चरणाज्ञायैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये ॥
एवं सञ्चिन्त्य मनसा गृहान्निर्गत्य संयतः।
आचम्य प्रयतोमन्त्री दन्तधावनमाचरेत् ॥

## दन्तधावनविधिः

तन्त्रगन्धर्वे—
दन्तकाष्ठमखादित्वा पूजयेद्यस्तु देवताम्।
तत्पूजा विफला देवि मृते च नरकं व्रजेत् ॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—
विधायावश्यकं शौचमाचामं दन्तधावनम्।
मुखप्रक्षालनादीनि कृत्वा स्नानं समाचरेत् ॥

अथ मुखप्रक्षालनमन्त्रः दक्षिणामूर्त्तौ—क्लीं कामदेवसर्वजन-प्रियाय नमः।
क्लीमात्मकं कामदेव-सर्वजनमथालिखेत्।

---

प्रवृत्ति नहीं है। अधर्म भी जानता हूँ, किन्तु मेरी उससे निवृत्ति नहीं है। हे महादेवि ! तुम मेरे हृदय स्थित होकर जिस प्रकार मुझे नियोग कर रही हो, उसी प्रकार ही मैं कर्म कर रहा हूँ। हे त्रैलोक्य-चैतन्यमयि ! हे त्रिशक्ते ! हे पार्वति ! तुम्हारे श्रीचरण के आज्ञानुसार से ही प्रातःकाल में गात्रोत्थान (उठकर) करके तुम्हारे प्रीति के लिए संसारयात्रा का अनुवर्त्तन करूँगा। संयत साधक मन के द्वारा इस प्रकार चिन्ता करके घर से बाहर होकर नियमपूर्वक आचमन करके दन्तधावन करेंगे।

### दन्तधावन-विधि

गन्धर्वतन्त्र में कहा गया है—जो व्यक्ति दन्तकाष्ठ ( दन्तधावन ) बिना चबाकर देवता का पूजा करते हैं, हे देवि ! उसकी पूजा विफल है। वह पञ्चत्व प्राप्त होने पर नरक में गमन करते हैं। 'मन्त्रतन्त्र प्रकाश में कहा गया है'—अवश्य कर्त्तव्य शौच, आचमन, दन्तधावन करके एवं मुखप्रक्षालन ( मुख धोकर ) आदि करके स्थान करेंगे।

दक्षिणामूर्त्ति तन्त्र में मुख प्रक्षालन मन्त्र कहा गया है—क्लीं कामदेव सर्वजन प्रियाय नमः' ( मन्त्रोद्धार की प्रणाली ) पहले क्लीं कामदेव सर्वजन

प्रियाय हृदयान्तोऽयं मनुर्दन्तविशुद्धये ।
चतुर्दशाक्षरैर्वक्त्रं क्षालयेत् सिद्धिहेतवे ॥

## स्नानविधिः

यामले—

स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम् ।
तस्मात् स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्द्धनम् ॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

अरुणेऽनुदितेमन्त्री तीर्थे वा विमले जले ।
वैदिकं स्नानमाचर्य तान्त्रिकं स्नानमाचरेत् ॥

परखाते यत्कर्त्तव्यं तदाह विश्वसारे—

परखाते तु कर्त्तव्यः पञ्चपिण्डोद्धारः सदा ॥

## स्नानमन्त्रः

मन्त्रमाह—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पङ्क त्वं त्यज पुण्यं परस्य च ।
पापानि विलयं यान्तु शान्ति देहि सदा मम ॥

---

पद लिखना, अनन्तर प्रियाय पद लिखना । दन्त विशुद्धि के लिये यह मन्त्र हृदयान्त होगा अर्थात् अन्त में हृदय ( नमः ) लिखना । उसमें पूर्वोक्त मन्त्र उधृत होगा । सिद्धिलाभ के लिये ( पूर्वोक्त ) चतुर्दशाक्षर विशिष्ट मन्त्र के द्वारा मुखप्रक्षालन करना ।

### स्नानविधि

यामल तन्त्र में कहा गया है—मनुष्यों के श्रुति स्मृति विहित समस्त क्रिया स्नान-मूल अर्थात् स्नान के बाद अनुष्ठेय; अतएव श्री, पुष्टि तथा आरोग्यवर्धक स्नान ( अवश्य ) कर्त्तव्य है। मन्त्रतन्त्र प्रकाश में कहा गया है—'साधक अरुणोदय काल में ( सूर्योदय के समय ) तीर्थ में अथवा निर्मल जल में वैदिक स्नान करके तान्त्रिक स्नान करेंगे । दूसरे के जलाशय में ( स्नान के समय ) जो कर्त्तव्य है, विश्वसार तन्त्र में वह कह रहे है—( सुधी साधक ) दूसरे के जलाशय में किन्तु पाँच मिट्टी के पिण्ड प्रतिदिन उठायेगा ।

### स्नानमन्त्र

मृत्पिण्ड ( मिट्टी के ठेला ) उठाने के समय पाठ्य मन्त्र ) कह रहे हैं—"उत्तिष्ठोत्तिष्ठ" इत्यादि "हे पङ्क ! तुम उठो उठो एवं दूसरों के लिये

नोलतन्त्रे—

पुनर्निमज्य पयसि संकल्पञ्च समाचरेत् ।
ततः सङ्कल्प्य मतिमान्नाभिमात्रोदके स्थितः ॥
प्रीतये स्वेष्टदेवस्य स्नानं सर्वत्र कारयेत् ।
इष्टदेवतापूजार्थं स्नानं कार्यं जलाशये ॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

अस्त्रेणानोय मृत्स्नां वै त्रिभागं तत्र कारयेत् ।
भागमेकं जले चैव क्षिपेन्मन्त्रं समुच्चरन् ॥
एवं मूर्द्धादि नाभ्यन्तरं पठन् मूलं विलेपयेत् ।
शेषन्तु पादनाभ्यन्तं तथैव परिलेपयेत् ॥
अङ्गे षडङ्गं विन्यस्य प्राणायामपुरःसरम् ।
हृन्मन्त्रां कुशमुद्राभ्यां तोथमावाह्य मण्डलात् ॥

मण्डलात् सूर्यमण्डलात् ॥

### तीर्थावाहनमन्त्रः

ब्रह्माण्डेयानि तीर्थानि करैः स्पृष्टानि तेरवे ।

---

पुण्ड त्याग ( अर्पण ) करो । समस्त पाप विनाश प्राप्त हो । तुझे सर्वदा शान्ति दो । नीलमन्त्र में कहा गया है—'जल में पुनः अवगाहन करके सङ्कल्प करेंगे । उसके बाद मतिमान् साधक सङ्कल्प करके नाभि परिमाण जल में खड़े होकर अपने इष्ट देव की प्रीति के लिये सर्वत्र स्नान करेंगे । इष्ट देवता के पूजा के निमित्त जलाशय में स्नान ( अवश्य ) कर्त्तव्य है ।

मन्त्रतन्त्र प्रकाश में कहा गया है—"अस्त्र ( फट् ) मन्त्र के द्वारा जलशाय से मृत्तिका ( मिट्टी ) लाकर उस मिट्टी का तीन भाग करेंगे । मन्त्र उच्चारण पूर्वक एक भाग मिट्टी जल में ही निक्षेप करेंगे । इस प्रकार मूलमन्त्र का पाठ करके ( द्वितीय भाग मिट्टी को अपने शरीर में मस्तक से नाभि तक लेप करें । शेषभाग उसी प्रकार ही अर्थात् मूलमन्त्र पाठ पूर्वक अपने शरीर में पैर से नाभि तक लेप करें । अङ्ग में षडङ्गन्यास करके प्राणायाम पूर्वक हृन्मन्त्र ( नमः ) द्वारा अङ्कुश मुद्रायोग से मण्डल से ( "ब्रह्माण्डे यानि" इत्यादि मन्त्र के द्वारा ) तीर्थ आवाहन करेंगे । 'मण्डलात्' पद का अर्थ है—सूर्यमण्डल से ।

### तीर्थ आवाहनामन्त्र

उक्त आवाहना मन्त्र का अर्थ है—हे सूर्य ! ब्रह्माण्ड में जितने तीर्थ हैं,

तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥
ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
ॐ आवाहयामि देवि त्वां स्नानार्थमिह ,सुन्दरि ।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थ समन्विते ॥
एवमावाह्य विधिवत् मूलमन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
आमन्त्र्याऽम्भसि संयोज्य सोमसूर्याग्निमण्डलम् ॥
विचिन्त्य मन्त्री तन्मध्ये निमज्जेत् मूलमुच्चरन् ।
उत्थायाचम्य तत्पश्चात् षडङ्गन्यास संयुतः ॥

### अचामन मन्त्रः

यामले—

आत्मविद्या शिवैस्तत्त्वैराचामेत् साधकाग्रणीः ।
वह्निजायां परे दत्त्वा शुद्धेन पाथसा प्रिये । पाथसा जलेन ।

---

वे सभी ही तुम्हारे किरण के द्वारा स्पृष्ट है। हे देवदिवाकर ! उस सत्य-प्रयुक्त तुम मुझे तीर्थ प्रदान करो। हे गङ्गे ! हे यमुने ! हे गोदावरि ! हे सरस्वति ! हे नर्मदे ! हे सिन्धु ! हे कावेरि ! तुम लोग इस जल में सन्निहित हो जाओ। हे देवि ! हे सुन्दरी ! मैं स्नान के लिये तुम्हें आवाहन कर रहा हूँ। हे गङ्गे ! तुम आओ। हे सर्वतीर्थसमन्विते ! तुम्हें नमस्कार है।

विधिपूर्वक इस प्रकार आवाहन करके मूलमन्त्र के द्वारा जल अभिमन्त्रित करेंगे। साधक जल में ( इस प्रकार से तीर्थ ) आवाहन करके योग करके तथा सोम, सूर्य तथा अग्निमण्डल सन्निहित चिन्ता करके मूलमन्त्र का उच्चारण करके उस जल में अवगाहन करेंगे। जल में से उठकर आचमन करके उसके बाद षडङ्गन्यासयुक्त होगा अर्थात् षडङ्गन्यास करेंगे।

### आचमन मन्त्र

यामल तन्त्र में कहा गया है–हे प्रिये ! साधकाग्रणी शुद्ध जल के द्वारा आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व-परभाग में वह्निजाया ( स्वाहा ) देकर उसके द्वारा अर्थात् आत्मतत्त्वाय स्वाहा, विद्यातत्त्वाय स्वाहा, शिवतत्त्वाय स्वाहा मन्त्र से आचमन करें। 'पाथसा' अर्थात् जल के द्वारा।

अभिमन्त्र्य ततस्तोयं मूलमन्त्रेण साधकः ।
क्षालयेत् तेन वपुषः कलुषं कुम्भमुद्रया ॥
आत्मानं दशधा सिञ्चेन् मुद्रया कलशाख्यया ।
सप्तकृत्वोऽभिषिञ्चेद्वा मनुना मन्त्रितैर्जलैः ॥

ज्ञानार्णवे—

वामहस्ते कृता मुष्टिर्दक्षहस्तस्य पार्वति ।
कलशाख्या भवेन्मुद्रा सर्वपापहरा शुभा ॥

गौतमीये—

पीडयित्वाऽम्बरं चारु प्रक्षाल्याचम्य वाग्यतः ।
धारयेद्वाससी शुद्धे परीधानोत्तरीयके ॥
अच्छिन्ने सदशे शुक्ले आचामेत् पीठसंस्थितः ।
मोक्षार्थी रक्तवस्त्रे द्वे भोगार्थी श्वेतवाससी ॥

## शाक्ततिलकविधिः

तिलकं रक्तगन्धेन चन्दनेन च वा प्रिये ।
देव्यस्त्रं विलिखेद्भाले ताराबीजं ततो हृदि ।
शक्ति मध्यगतां कुर्यात् साधको नरपुङ्गवः ॥

---

उसके बाद साधक मूलमन्त्र के द्वारा जल को अभिमन्त्रित करके कुम्भ मुद्रा में उस जल के द्वारा शरीर का पाप क्षालन करेंगे। साधक कलश नामक मुद्रा में अभिमन्त्रित जल के द्वारा आत्मा को देह को दश बार सेचन करें अथवा मन्त्र द्वारा सातबार सेचन करें। ज्ञानार्णव तन्त्र में कहा गया है—हे पार्वति ! वाम हस्त में दक्षिणहस्त की मुट्ठि करने पर ही कलश नामक मुद्रा होती है। वह शुभजनक तथा सर्वपाप विनाशक है। गौतमीय तन्त्र में कहा गया है—'साधक वाग्यत होकर उत्तमरूप से वस्त्र धौत करके ( कपड़ा धोकर ) तथा निपीड़न करके ( निचोड़कर ) आचमन करके अच्छिन्न तथा दशायुक्त शुक्लवर्ण ( सफेद ) दो वस्त्र-पहन कर तथा उत्तरीयधारण करें। उसके बाद आसन में बैठकर आचमन करें। मोक्षार्थी दो रक्तवस्त्र एवं भोगर्थी दो श्वेतवस्त्र धारण करें।

## शाक्ततिलकविधि

हे प्रिये ! उसके बाद रक्तचन्दन अथवा चन्दन द्वारा तिलक धारण करें। नरश्रेष्ठ साधक कपाल में देवी का अस्त्र लिखें अर्थात् अस्त्राकार तिलक करें। उसके बाद हृदय में ताराबीज लिखें एवं मध्यस्थल में शक्तिबीज

देव्यस्त्रं स्वस्वोपासित देव्यस्त्रं लिखेदित्यर्थः ।

त्रिपुण्ड्रेणविना कुर्याद् यां काञ्चिद्वैदिकी क्रियाम् ।
सा निष्फला भवेद् भूप ब्रह्मणपि कृता यदि ॥

इति भविष्यपुराणवचनात् । कूर्मपुराणे—

वैष्णवो वाथ शैवा वा शाक्तो वा सौर एव वा ।
त्रिपुण्ड्रेण विना पूजां कुर्वाणो यात्यधोगतिम् ॥

शिवधर्मे—

सितेन भस्मना कुर्याल्ललाटे यस्त्रिपुण्ड्रकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥

भस्मेत्युपलक्षणम्, द्रव्यान्तरेणापि त्रिपुण्ड्रं कार्यम् । तथा च भविष्ये—

सर्वस्त्रिपुण्ड्रकं कुर्याद्यज्ञस्य भस्मना सदा ।
तदलाभे चन्दनेन मृदा वा वारिणापि वा ॥
यत्किञ्चित् कुरुते कर्म विना विप्रस्त्रिपुण्ड्रकम् ।
व्यर्थमेव भवेत्सर्वं बन्ध्यास्त्रीसङ्गमो यथा ॥
सच्छिद्रं कुरुते यस्तु पुण्ड्रं पशुमतिर्द्विजः ।

---

लिखें । 'देव्यस्त्र' पद का अर्थ है—अपने अपने उपासित देवी के अस्त्र लिखें क्योंकि भविष्य पुराण में कहा गया है—'त्रिपुण्ड्र व्यतीत वेदविहित जिस किसी क्रिया यदि ब्रह्मा कर्तृक भी अनुष्ठित होता है, हे महाराज ! तब वह निष्फल है । कूर्मपुराण में कहा गया है—"वैष्णव, शैव, शाक्त एवं सौर ( सूर्योपासक ) त्रिपुण्ड्र के बिना पूजा करने पर अधोगति को प्राप्त होगा ।

शिवधर्म में कहा गया है—जो व्यक्ति शुभ्रवर्ण भस्म के द्वारा कपाल में त्रिपुण्ड्र करते हैं, वह समस्त पाप से मुक्त होकर शिवलोक को गमन करते हैं । भस्मपद उपलक्षण है अर्थात् भस्मपद अन्यान्य तिलक द्रव्य को लक्षित कर रहे हैं । ( भस्म के अभाव में ) अन्य द्रव्य के द्वारा भी तिलक कर्त्तव्य है ।

यही भविष्यपुराण में कहा गया है—'समस्त साधक यज्ञभस्म के द्वारा सर्वदा तिलक करेंगे । यज्ञभस्म के अभाव में चन्दन द्वारा अथवा मृत्तिका द्वारा अथवा जल के द्वारा त्रिपुण्ड्र करेंगे । विप्र ( ब्राह्मण ) त्रिपुण्ड्र व्यतीत जो कोई भी कर्म करता है, वन्ध्या स्त्री के सहवास के समान उसके सभी

धर्मार्थकाममोक्षेषु तस्य छिद्रं प्रजायते ॥
वैदिकीं तान्त्रिकीं सन्ध्यां ततः कुर्यात् समाहितः ।
अशून्यं च करं कुर्यात्सुवर्णरजतैः कुशैः ॥
सुवर्णरजतञ्चैव जपपूजादि कर्मसु ।
एष एव कुशः शाक्ते न दर्भो वनसम्भवः ।
तर्जन्यां रजतं धार्यं स्वर्णं धार्यमनामया ॥

## तान्त्रिक-सन्ध्या

अथ सन्ध्या प्रवक्ष्यामि तान्त्रिकीं सर्वसिद्धिदाम् ।
उपविश्याचमेन्मन्त्री पयोभिर्हीनबुद्बुदैः ॥
ततश्च आत्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय तत्परम् ।
शिवतत्त्वाय वै प्रोच्य क्रमेण वह्निवल्लभाम् ॥
मूलान्तैरेभिराचामेत् पूर्वोत्तरमुखः सुधीः ।
आचमनं ततः कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥

---

कर्म व्यर्थ होंगे। जो मूढ़मति ब्राह्मण त्रिपुण्ड्र को सच्छिद्र करता है; उसके धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में छिद्र ( विघ्न ) उत्पन्न होता है।

उसके बाद समाहित होकर वैदिक तथा तान्त्रिक सन्ध्या करें। सुवर्ण, रजत अथवा कुश के द्वारा हस्त को अशून्य करें अर्थात् सुवर्ण, रजत अथवा कुशनिमिति अंगूठी हाथ में धारण करें। शक्ति विषयक जप पूजादि कार्य में स्वर्ण अथवा रजत ही कुश, वनजात दर्भ कुश नहीं है। तर्जनी में रजत एवं अनामिका में स्वर्ण धारण करें।

### तान्त्रिक-सन्ध्या

अनन्तर सर्वसिद्धिप्रद तान्त्रिकसन्ध्या विधि कहूँगा। दीक्षित साधक आसन में बैठकर बुद्बुद्हीन जल के द्वारा आचमन करें। उसके बाद सुधी साधक पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर आत्मतत्त्वाय एवं विद्यातत्त्वाय कह कर उसके बाद शिवतत्त्वाय कह कर यथाक्रम से वह्निवल्लभा ( स्वाहा ) कह कर अर्थात् मूल के अन्त में आत्मतत्त्वाय स्वाहा, विद्यातत्त्वाय स्वाहा शिवतत्त्वाय स्वाहा—इस तीन मन्त्र के द्वारा आचमन करें। उसके बाद आचमन करके प्राणायाम करें।

षडङ्गन्यासमाचर्य जले मूलं जपेद् दश ।
कुशेन तज्जलं भूमौ त्रिर्मूर्ध्नि सप्त निक्षिपेत् ॥
मूलमुच्चार्य देवेशि वामहस्ते जलं ततः ।
गृहीत्वा तज्जलं देवि तत्र मूलं समुच्चरन् ॥
शिववायुजलपृथ्वीवह्निबीजैस्त्रिधा पुनः ।
अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया ॥
गलिताम्बु क्षिपेन्मूर्ध्नि शेषं दक्षे निधाय च ।
इडयाकृष्य देहान्तः क्षालितैः पापसञ्चयैः ॥
कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनाडया विरेचयेत् ।
दक्षहस्ते तु तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च ।
पुरतो वज्रपाषाणे प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रतः ॥

## तर्पणविधिः

जले यन्त्रं समालिख्य तपयेत् परदेवताम् ।
पूजयित्वा तत्र देवीं परिवार-समन्विताम् ॥
गुरुपंक्तीः प्रतर्प्याथ तर्पयेदिष्टदेवताम् ।

---

षडङ्गन्यास करके जल में दस बार मूलमन्त्र जप करें । कुशा के द्वारा वह जल भूमि पर तीन बार एवं माथे पर सात बार निक्षेप करें । हे देवि ! हे देवेशि ! उसके बाद मूलमन्त्र का उच्चारण करके बायें हाथ में जल लेकर उस जल में मूलमन्त्र का जप करके शिवबीज ( हँ ), वायुबीज ( यँ ), जलबीज ( वँ ), पृथिवीबीज ( लँ ) तथा वह्निबीज ( रँ ) द्वारा उस जल को तीन बार अभिमन्त्रित करके पुनः मूलमन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करके तत्त्वमुद्रा के द्वारा ( अंगुलिच्छिद्र ) गलित उस जल को सात बार मस्तक पर निक्षेप करें । अवशिष्ट ( शेष ) जल दाहिने हाथ में लेकर इड़ा नाड़ी के द्वारा देह मध्य में आकर्षण करके उस जल से प्रक्षालित पापसमूहों के द्वारा कृष्णवर्ण देह मध्यस्थ उस जल को दक्षनाड़ी ( पिङ्गला ) के द्वारा दक्षिण हस्त से विरेचन ( बाहर ) करें । साधक उस विरेचित जल जल को पापरूप चिन्ता करके अस्त्रमन्त्र ( फट् ) उच्चारण पूर्वक सम्मुखवर्त्ती ( कल्पित ) व्रज पाषाण में निक्षेप करें ।

## तर्पणविधि

उसके बाद जल में इष्ट देवता का मन्त्र लिखकर परदेवता एवं इष्ट देवता का तर्पण करना । उ स जल में परिवारगणों के साथ के देवी की पूजा

उत्ताभिमुखो भूत्वा देवीमात्रं प्रतर्पयेत् ॥
तृप्यतां जगतां माता भैरवस्तृप्यतां तथा ।
मूलान्ते नाम चोच्चार्य तर्पयामि ततः परम् ॥
स्वाहान्ते तर्पणं त्वेवं पञ्चविंशतिसंख्यया ।
तर्पणञ्च प्रकुर्वीत द्वितीयान्तमथोच्चरन् ॥
पञ्चविंशतिसंख्यातं दशधा वा त्रिधापि वा ।
एकैकाञ्जलितोयेन परिवारांस्तु तर्पयेत् ॥

## सूर्यार्घदानम्

दिनेशाय क्षिपेत्तिष्ठन्वारिणा चाञ्जलित्रयम् ।
सूर्यमन्त्रं समुच्चार्य ॐ ह्रीं हंस इत्यपि ॥
मार्तण्डभैरवायेति प्रकाशशक्तिसंयुतम् ।
ङेन्तं समुच्चार्य ग्रहराशियुताय ठद्वयम् ॥
त्रिधाञ्जलिं क्षिपेन्मन्त्री सिद्धये साङ्गकर्मणाम् ।
तोयाञ्जलिं ततः क्षिप्त्वा सूर्यमण्डलमध्यगाम् ॥
आदित्यमण्डले देवीं ध्यायेत् सूर्यस्वरूपिणीम् ।

---

करके, गुरुपङ्क्ति का तर्पण करके उसके बाद इष्ट देवता का तर्पण करना अथवा उत्तर मुख होकर केवल देवी का ही तर्पण करना ।

तर्पण मन्त्र—जगतां माता तृप्यताम्, इसी प्रकार भैरवस्तृप्यताम् इस प्रकार मूलमन्त्र के अन्त में इष्ट देवता का नाम उच्चारण करके 'तर्पयामि' कह कर उसके बाद अन्त में 'स्वाहा' कहना अर्थात् मूल अमुक अमुकीं वा तर्पयामि स्वाहा कह कर एक एकबार जल देना । इस प्रकार तर्पण २५ बार करना । अनन्तर द्वितीयान्त 'इष्ट' नाम उच्चारण करके २५ बार, १० बार अथवा ३ बार तर्पण करना । एक एक अञ्जलि जल द्वारा परिवार गण को तर्पण करना ।

### सूर्यार्घदान

साधक अङ्गकार्य के साथ प्रधान कार्य के सिद्धि के लिये ॐ ह्रीं हंस इस प्रकार सूर्यमन्त्र उच्चारण करके मार्त्तण्डभैरवाय एवं ङेन्त ( चतुर्थी-विभक्तयन्त ) प्रकाशशक्तिसंयुत अर्थात्-प्रकाशशक्तिसंयुताय उच्चारण करके ग्रहराशियुताय तथा ठ द्वय (स्वाहा) उच्चारण करके तीन बार जालाञ्जलि देना । उसके बाद सूर्यमण्डल मध्यवर्त्तिनी देवी को उद्देश्य करके जलाञ्जलि

तत्तद्गायत्रीमुच्चार्य विसृजेदनयाऽर्घकम् ॥
गायत्रीं भावयेद्देवीं सूयासनकृताश्रयाम् ।
प्रातर्मध्याह्न सायाह्ने ध्यानं कृत्वा जपेत्सुधीः ॥

ध्यानं कृत्वेति । बीजत्रयरूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वा जपेदित्यर्थः ॥

## कुण्डलिनीध्यानम्

कुण्डलिनीं त्रिधा देवि तथा बीजत्रयं त्रिधा ।
तृतीयां कुण्डलीं मूर्ध्नि नित्यानन्द स्वरूपिणीम् ॥
वाग्भवं मूलदेशे च द्रवस्वर्णनिभं स्मरेत् ।
वह्निकुण्डलिनीं नित्यां बालार्कसदृशारुणाम् ॥
हृदये कामबीजञ्च सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सूर्यकुण्डलिनीं तत्र नित्यानन्दस्वरूपिणीम् ॥
भ्रूमध्ये शक्तिबीजञ्च कोटिचन्द्रसमप्रभम् ।
चन्द्रकुण्डलिनीं तत्र स्रवदमृतविग्रहाम् ॥

---

देकर सूर्यमण्डल मध्यवर्त्तिनी देवी का सूर्यस्वरूपा ध्यान करना। उन उन (इष्ट देवताका) गायत्री उच्चारण करके इसके द्वारा अर्घ्यविसर्जन करना। गायत्री देवी को सूर्यासन कृताश्रया अर्थात् सूर्यमण्डलमध्यवर्त्तिनी चिन्ता करना।

सुधी साधक प्रातःकाल में, मध्याह्न तथा सायाह्न में देवी का ध्यान करके जप करें। 'ध्यानं कृत्वा' इस वाक्य का अर्थ है—बीजत्रयस्वरूपा कुण्डलिनी को ध्यान करके जप करें।

### कुण्डलिनी ध्यान

हे देवि! कुण्डलिनी का तीन प्रकार, बीजत्रय का तीन प्रकार तथा मस्तक पर तुरीया कुण्डलिनी का नित्यानन्दस्वरूपा चिन्ता करना। मूलाधार में वाग्भव बीज को ( ऐं ) गला हुआ स्वर्ण के समान भावना करना। वह्निकुण्डलिनी को नित्या तथा बाल ( नवोदिता ) सूर्य के समान अरुणवर्णा भावना करना। हृदय में कामबीज ( क्लीं ) को कोटि सूर्य के समान दीप्तिमान चिन्ता करना। एवं उस स्थान में सूर्य कुण्डलिनी को नित्यानन्दस्वरूपा चिन्ता करना। भ्रूमध्य में शक्तिबीज ( ह्रीं ) को कोटि चन्द्र तुल्य प्रभायुक्त भावना करके एवं उस स्थान में चन्द्रकुण्डलिनी को गलित अमृतमय शरीर विशिष्ट चिन्ता करना।

बीजत्रयमयीं विन्दौ तूर्यां विन्दुत्रयात्मिकाम् ।
तूर्यकुण्डलिनीं देवि केवलां ज्ञानविग्रहाम् ॥

प्रातःकाले मूलाधारे—

बालार्कमण्डलाभासां भानुवह्नीन्दुलोचनाम् ।
पाशांकुशौ शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां स्मरेत् ॥

मध्याह्ने हृत्पद्मे—

मध्याह्ने चिन्तयेद्देवीं नवयौवन शोभिताम् ।

सायाह्ने भ्रूमध्ये—

सायह्नि चिन्तयेद्देवीं त्रैलोक्यैकप्रभामयीम् ॥
नवयौवनसम्पन्नामुज्वलां परमां कलाम् ।

रात्रौ सहस्रारे—

तामेव चिन्तयेद्रात्रौ भोगी भोगपरायणाम् ॥

## गायत्रीजपविधिः

गायत्रीं प्रजपेद् विद्वानष्टाविंशतिसंख्यया ।
मनसा प्रजपेन्मन्त्रं गायत्रीञ्च विशेषतः ॥

---

हे देवि ! विन्दु में बीजत्रयरूपा तूर्या कुण्डलिनी को विन्दुत्रयस्वरूपा चिन्ता करना । तूर्या कुण्डलिनी का केवल मात्र ज्ञानमय शरीर भावना करना ।

प्रातःकाल में मूलाधार पद्म में—कुण्डलिनी शक्ति को नवोदित सूर्य के समान अरुणवर्णा, रवि, अग्नि तथा चन्द्ररूप नयनत्रय ( तीनों आँख ) विशिष्टा, हाथ में पाश, अंकुश शर तथा चापधारिणी चिन्ता करना । मध्याह्न में हृदयपद्म में—दोपहर के समय देवी को नवयौवन-शोभिता भावना करना । सायाह्न में भ्रूमध्य में—सायं के समय देवी को त्रिलोक के मिलित प्रभाव के समान प्रभामयी, नवयौवना, दीप्तिमती तथा परमा कला भावना चिन्ता करना । रात्रि में सहस्रार पद्म में—रात्रि को उस कुण्डलिनी के भोगी व्यक्ति भोगपरायणा चिन्ता करना ।

### गायत्रीजपविधि

विद्वान् व्यक्ति २८ बार गायत्री जप करें । मनके द्वारा मन्त्र—विशेषतः गायत्री जप करना । गन्धर्व तन्त्र में कहा गया है—'जैसे कि गानकारी को

गान्धर्वे—

गायन्तं गायते यस्माद् गायत्री तेन चोच्यते ।
महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद्दशधा यदि ॥
सत्यं सत्यं महादेवि मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।
अष्टोत्तर शतावृत्या गायत्रीं जपते यदि ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवेत् पूजाधिकारवान् ।
अष्टोत्तर शतावृत्या मूलमन्त्रञ्च संजपेत् ॥

आर्द्रवस्त्रेण यत्कर्त्तव्यं तदाह यामले—

नाभिमात्रोदके स्थित्वा देवीमर्कगतां स्मरन् ।
जपेदष्टोत्तरशतं लभते महतीं श्रियम् ॥
संहारमुद्रया चैव तीर्थमुद्रास्य वाग्यतः ।
ततोमौनी विशुद्धात्मा हृदि विद्यां परामृशन् ॥
अवहिर्मानसो भूत्वा यागभूमिमथाविशेत् ।
शक्तिसन्ध्या मया प्रोक्ता कर्त्तव्या साधकोत्तमैः ।
सन्ध्यायां पतितायां तु गायत्रीं दशधा जपेत् ॥

---

( जपकारी को ) विपद् से त्राण ( रक्षा ) करती है इसीलिये वह 'गायत्री' नाम से कथित हुई है। महापातकी व्यक्ति भी यदि दशबार गायत्री जप करता है, हे महादेवि ! सत्य सत्य ही वह तत् क्षणात् पाप से मुक्त होता है। यदि १०८ बार गायत्री जप करता है, तब समस्त पाप से मुक्त होकर पूजा करने का अधिकारी होता है। इष्ट देवता का मूलमन्त्र भी १०८ बार जप करना।

आर्द्रवस्त्र में जो कर्त्तव्य है, यामल तन्त्र में वह कहा गया है—जो व्यक्ति नाभि परिमित ( नाभि तक ) जल में खड़े होकर गायत्री के सूर्यमण्डल मध्यवर्त्तिनी चिन्ता करते करते १०८ बार जप करेंगे, उससे वह महत् सम्पत् लाभ करेगा। साधक वाग्यत होकर संहार मुद्रा के द्वारा तीर्थ विसर्जन करके उसके बाद मौनी तथा संयतचित्त होकर हृदय में शक्ति की चिन्ता करते करते वह्निर्मुख न होकर अनन्तर यागभूमि ( पूजागृह में ) प्रवेश करें।

मेरे द्वारा शक्तिसन्ध्या कहा गया; साधक श्रेष्ठों का यह कर्त्तव्य है। सन्ध्या पतित होने पर अर्थात् यथाकाल में सन्ध्या न करने पर १० बार गायत्री जप करें।

सन्ध्याश्च त्रिकालं कुर्यात्। तथा शैवागमे—

प्रातर्मध्याह्ने सायाह्ने सन्ध्यां कुर्याच्च मन्त्रवित्।

सन्ध्यायास्त्वकरणे दोषमाह च लक्ष्मीकुलार्णवे—

सन्ध्यां तु विहीनो यो न दीक्षाफलमाप्नुयात्॥

तान्त्रिक सन्ध्यायां शूद्रस्याप्यधिकारः। विशुद्धेश्वरे—

सन्ध्यात्रयं सदा कुर्याद् ब्राह्मणोविधिपूर्वकम्।
तन्त्रोक्तविधि पूर्वान्तु शूद्रः सन्ध्यां समाचरेत्॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूत श्रीमद्ब्रह्मानन्द-
गिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां प्रातःकृत्यनिर्णयो
नाम चतुर्थोल्लासः॥ ४॥

---

सन्ध्या तीन काल में ( प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायाह्न ) करना। शैवागम तन्त्र में यही कहा गया है—'दीक्षित साधक प्रातःकाल **में,** मध्याह्न में तथा सायाह्न में सन्ध्या करें'। लक्ष्मीकुलार्णव तन्त्र में सन्ध्या न करने का दोष कह रहे हैं—"जो व्यक्ति सन्ध्या नहीं करते हैं वह दीक्षा-फल को प्राप्त नहीं होते"। तान्त्रिक सन्ध्या में शूद्रों का भी अधिकर है। विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है—"ब्राह्मण विधिपूर्वक सभी समय में अर्थात् अशौचादि में भी तीनों सन्ध्या करें। शूद्र तन्त्रोक्तविधि के अनुसार सन्ध्या ( तान्त्रिक सन्ध्या ) करें।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृत शाक्तानन्दतरङ्गिणी के प्रातःकृत्य-
निर्णय नामक चतुर्थ उल्लासः समाप्त।

# पञ्चमोल्लासः

## आसननिर्णयः

आसनस्य ग्राह्यत्वमाह गौरीयामले—

सलिले यदि कुर्वीत देवतानां प्रपूजनम् ।
अथाप्यासन आसीनो नोत्थितस्तु तथाचरेत् ॥
आसनं कल्पयित्वा तु मनसा पूजायेज्जले ।
आसनस्थो जपेत् सम्यङ् नन्त्रार्थगत-मानसः ॥

सम्मोहनतन्त्रे—

रक्तासनोपविष्टस्तु लाक्षारुण गृहेस्थितः ।
मनःकल्पितरक्ते वा साधकः स्थिरमानसः ॥
कुश(तूल) कम्बलवस्त्राणि सिंहव्याघ्रमृगाजिनम् ।
कल्पयेदासनं धीमान् सौभाग्यज्ञानवर्द्धनम् ॥
कौशेयं वाथचार्मं वा चैलतौलमथापि वा ।
शरपत्रं तालपत्रं कम्बलं दर्भमा(दार वा) सनम् ॥
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मुक्तिः स्याद्व्याघ्रचर्मणि ।

---

### आसन निर्णय

गौरीयामलतन्त्र में आसनों के ग्राहयत्व को कह रहे हैं—यदि जल में देवता की पूजा कर उसमें भी आसन में उपविष्ट होकर ही पूजा करना । आसन से उठ कर पूजा मत करना, परन्तु जल में मन के द्वारा आसन कल्पना करके पूजा करना । आसन में उपविष्ट होकर सम्यक्रूप में उस मन्त्रार्थ में चित्त संयत करके जप करना ।

सम्मोहन तन्त्र में कहा गया है—'साधक लाक्षा-तुल्य अरुण वर्ण गृह में रक्तासन में उपविष्ट होकर अथवा मनःकल्पित रक्तवर्ण आसन में उपविष्ट होकर स्थिर चित्त होगा ।

धीमान साधक सौभाग्य तथा ज्ञानवर्धक कुश, कम्बल, वस्त्र को अथवा सिंह, व्याघ्र चैलासन अथवा कपास निर्मित आसन सौभाग्य तथा ज्ञान का वर्धक है । शरपत्र, तालपत्र, कम्बल तथा दर्भ के आसन की कल्पना करना ।

कृष्णाजिने गृहस्थानां नाधिकारः कथञ्चन ॥
नादीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही ।
विशेद्यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी तु भिक्षुकः ॥
वस्त्रासने व्याधिनाशः कम्बले दुःखनाशनम् ।
जपध्यानतपोहानिर्वस्त्रासनं करोति यः ॥

अत्र—

वस्त्रनिषेधः केवलवस्त्रासनपरः अन्यथा विरोधापत्तेः ।
कुशासने भवेदायुर्मोक्षः स्याद्व्याघ्रचर्मणि ॥
अजिने च भवेत् पुत्री कम्बले सिद्धिरुत्तमा ।
शान्तिके धवलः प्रोक्तः सर्वार्थश्चित्र-कम्बले ॥
स्यात्पौष्टिके तु कौशेयं कम्बले दुःखमोचनम् ।
त्रिपुरापूजने शस्तं रक्तकम्बलमासनम् ॥
नैतद् द्विहस्ततो दीर्घं सार्द्धहस्तान्न विस्तृतम् ।
न त्र्यंगुलात् समुच्छ्रायं पूजाकर्मणि संग्रहे ।
आसनञ्च ततः कुर्यान्नातिनीचं न चोच्छ्रितम् ॥

---

कृष्णसार मृग के आसन में ज्ञानसिद्धि एवं व्याघ्रचर्म के आसन में मुक्ति होती है ।

गृहस्थों के लिये कृष्णसार मृग के आसन में किसी प्रकार से भी अधिकार नहीं है । अदीक्षित गृही कभी भीकृष्णसार मृग के चर्म पर न बैठें । किन्तु सन्यासी वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी तथा भिक्षुक बैठ सकता है । वस्त्रासन में बैठने पर व्याधिनाश तथा कम्बलासन में दुःखनाश होता है । जो वस्त्रासन करता है उसका जप ध्यान तथा तपस्या नष्ट होता है । यहाँ केवल वस्त्रासन तात्पर्य में वस्त्र निषेध हुआ है; अन्यथा विरोध की आपत्ति होती है ।

कुशासन में आयुः वृद्धि, व्याघ्र चर्म के आसन में मोक्ष, मृगचर्म के आसन में पुत्रवान् तथा कम्बलासन उत्तमसिद्धि होती है । शान्ति कर्म में श्वेतवर्ण आसन कहा गया है । चित्र कम्बल सर्वार्थ सिद्धिप्रद होता है । पौष्टिक कर्म में कौशेय आसन होगा । कम्बलासन में दुःख नाथ होता है । त्रिपुरा के पूजा में रक्तकम्बलासन प्रशस्त है । उक्त आसन दो हाथ के अधिक दीर्घ नहीं होगा एवं डेढ़ हाथ से अधिक विस्तृत नहीं होगा; तीन अंगुलि से अधिक उच्च नहीं होगा । पूजा कार्य में आसन संग्रह में इस प्रकार आसन करना । सुतरां अति उच्च अथवा अति नीचा आसन मत करना ।

तन्त्रगन्धर्वे—

धारण्यां दुःखसम्भूतिदौर्भाग्यं दारुजासने ॥
आम्रनिम्बकदम्बानामासनं वंशनाशनम् ।
बकुलेकिंशुके चैव पनसे च हतश्रीकः ॥
वंशेष्टकाश्मधरणीतृणपल्लवनिर्मितम् ।
वर्जयेदासनं मन्त्री दारिद्रयव्याधिदुःखदम् ॥

दारुजासनं विशेषयति गन्धर्वतन्त्रे—

गाम्भारीनिर्मितं शस्तं नान्यद्दारुमयं शुभम् ।
चतुर्विशांगुलं दीर्घं कुर्यात्काष्ठासनं शिवे ॥
षोडशांगुलविस्तीर्णमुच्छ्राये चतुरंगुलम् ।
कम्बलं चर्मजं चैलं महामाया प्रपूजने ॥
प्रशस्तमासनं प्रोक्तं कामाख्यायास्तथैव च ।
त्रिपुरायाश्च रुद्रस्य विष्णोश्चापि कुशासनम् ॥
तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।
यथोक्तमासनं कुर्यात् सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्मणि साधकः ॥

---

तन्त्रगन्धर्व में कहा गया है—'मृत्तिकासन में दुःख तथा काष्ठासन में दूरदृष्टि उत्पन्न होता है। आम्र, निम्ब तथा कदम्ब काठ के आसन से वंशनाश, वकुल, किंशुक सेमर तथा पनस काष्ठ के आसन में साधक लक्ष्मी हीन होगा। साधक दारिद्रय, व्याधि तथा दुःखप्रद वंश, इष्टक ( ईंट ) प्रस्तर ( पत्थर ), मृत्तिका, तृण एवं पल्लव आसन वर्जन करें।

गन्धर्वतन्त्र में दारुनिर्मित आसन के विशेष विधि कह रहे हैं—गाम्भारी काठ से निर्मित आसन प्रशस्त है; अन्य किसी काठ से निर्मित आसन शुभ कर नहीं है। हे शिवे ! काष्ठासन २४ अङ्गूल दीर्घ ( लम्बा ), षोडश १६ सोहल अङ्गूल विस्तीर्ण (चौड़ा) एवं चार अङ्गूल उँचा करना। महामाया तथा कामाख्या के पूजा में कम्बलासन कर्मासन, चैलासन प्रशस्त है यह कहा गया है। उसी प्रकार त्रिपुरा, रुद्र, तथा विष्णु के पूजा में कुशासन प्रशस्त है। तृणासन में यशोनाश एवं पल्लवासन में चित्त विभ्रम होगा। साधक सर्वसिद्धिप्रद उक्तरूप आसन करें; पूजा कार्य में यथेष्टासन अर्थात् इच्छानुसार आसन ग्रहण न करें।

अन्यत्र—

वंशाश्मधरणीदारुतृणपल्लवनिर्मितम् ।
वर्जयेदासनं धीमान्दारिद्र्यव्याधिदुःखदम् ॥

तन्त्रे—

काष्ठासने भवेद्रोगी वंशे वंशक्षयो भवेत् ।
शैलासने च वागरोधः पल्लवे मतिवभ्रमः ॥

अन्यत्रापि—

धरण्यां शोकसंयुक्तः काष्ठे व्यर्थश्रमो भवेत् ॥
पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं भद्रं वज्रासनं तथा ।
वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम् ॥

## पद्मासनादिलक्षणम्

सव्यं पादमुपादाय दक्षोपरि न्यसेत्ततः ।
तथैव दक्षिणं सव्यस्योपरि च विधानवित् ॥
विष्टभ्य कोटयाः पार्ष्णी तु नासाग्रन्यस्तलोचनः ।
पद्मासनमिदं प्रोक्तं जपकर्मसु शस्यते ॥

---

अन्यत्र भी कहा गया है—'बुद्धिमान, दारिद्य, व्यधि तथा दुःखप्रद वंश ( वांश ) प्रस्तर ( पत्थर ) मृत्तिका ( माटि ) काठ, तृण तथा पल्लव (पत्ते) से निर्मित आसन त्याग करें। तन्त्रों में कहा गया है—काष्ठासन से साधक रोगी होता है तथा वाँस के आसन से वंश नाश होगा। पत्थर के आसन से वाक्य रोध एवं पल्लव ( पत्ते ) के आसन से चित्त विभ्रम होगा। अन्यत्र भी कहा गया है—मृत्तिकासन में शोकमुक्त होता है, काष्ठ के आसन से परिश्रम व्यर्थ होता है।

### पद्मासनादिलक्षण

पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन तथा वीरासन यथाक्रम से यह पाँचों आसन कहा गया है। विधिज्ञ साधक वाम पाद ( बाँया पैर ) लेकर दाहिने पैर में रखें। उसके बाद उसी प्रकार दाहिने पैर में बाँया पैर रखें। दोनों गुड़ाली दोनों कटि पर रखकर नाक के अग्रभाग में अपने दृष्टि को स्थापन करें—यही पद्मासन कहा गया है। जप के कार्य में यही आसन प्रसिद्ध है। दक्षिण जानु तथा दक्षिण उत्तर अभ्यन्तर में बाँया पैर के तल

जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायो विशेन्मन्त्री स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् ।
वृषणाधः पादपार्श्वौ पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ॥
भद्रासनं समुद्दिष्टं मुनिभिः परिकल्पितम् ।
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली ॥
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ।
एकपादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम् ।
ऋजुकायो विशेन्मन्त्री वीरासनमितीरितम् ॥

## नित्यनैमित्तिकपूजाकथनम्

रुद्रयामले—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं पूजनं स्मृतम् ।

नीलतन्त्रे—

नित्यसेवारतो मन्त्री कुर्यान्नैमित्तिकार्चनम् ॥
नित्यपूजां दिवा कुर्यात् रात्रौ नैमित्तिकार्चनम् ।
उभयोः काम्यकर्माणि चेति शस्त्रस्य निश्चयः ॥

---

पर एवं वामउरु तथा वाम जानु के अभ्यन्तर में दाहिने पैर के तल सम्यक् रुप में रखकर एवं देह सरल रखकर के बैठे । उसे स्वस्तिकासन कहते हैं । अण्डकोष के दोनों पासों ( बगल ) में दोनों गुल्फ स्थिरभाव में रखकर अण्डकोष के अधोभाग में दोनों पैर का दोनों पास दोनों हाथों से पकड़ कर बाँधना । मुनिगण द्वारा कल्पित यह आसन ही भद्रासन कहा गया है । यथाक्रम से दोनों ऊरुयों के ऊपर दोनों पैर रखकर दोनों घुटनों के ऊपर में दोनों हाथ रखें, हाथों के अङ्गुलि सब चित् रूप में रखें । यह उत्तम वज्रासन कहा गया है । एक पैर जमीन पर रखकर दूसरा पैर ऊरु में स्थापन करके देह को सरल करके बैठें—यही है वीरासन ।

### नित्यनैमित्तिक पूजा कथन

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—"पूजा तीन प्रकार की कही गयी है—नित्य पूजा, नैमित्तिक पूजा और काम्य पूजा" । नीलतन्त्र में कहा गया है—'नित्य पूजा-परायण दीक्षित साधक नैमित्तिक पूजा करें ।' नैमित्तिक पूजा में सिद्ध साधक अनन्तर काम्य पूजा करें । नित्य पूजा दिन में एवं नैमित्तिक पूजा रात में और काम्यपूजा कर्म दिन और रात्रि में कर्त्तव्य है—"यही है शास्त्र

रुद्रयामले—

राात्रौ पूजां सदा कुर्यात् रात्रौ सिद्धिर्न संशयः ।
सफला रजनीपूजा दिवापूजा च निष्फला ॥
शक्तिमन्त्रं जपेद्रात्रौ विनापि पूजनं शुचिः ।
विशेषतो निशीथे तु तत्राऽतिफलदो जपः ॥

बृहत्तोडलतन्त्रे—

निशायां योऽर्चयेत्कालीं ताराञ्च भैरवीं तथा ।
आसमुद्रक्षितीशानां श्रेष्ठो भवति सर्वथा ॥

अन्यत्रापि—

मातङ्गीञ्च तथा बालां चामुण्डां छिन्नमस्तकाम् ।
भद्रकालीञ्च दुर्गाञ्च जयदुर्गां तथैव च ॥
आसां जपश्च पूजा च रात्रौ चेत् क्रियते सदा ।
भुक्त्वा भोगानशेषांश्च सोऽवश्यं याति रुद्रताम् ॥

समयातन्त्रे—

दिवा प्रपूजनं देवि यथोक्तफलदं भवेत् ।
पूजनं लक्षण-गुणितं निशि नीरजलोचने ॥
अर्धरात्रात्परं यच्च मुहूर्त्तद्वयमेव हि ।

---

सिद्धान्त"। रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—'सदा सर्वदा रात्रि में पूजा कर्त्तव्य है; क्योंकि रात में ही सिद्धि होती है; इसमें संशय नहीं है'। रात की पूजा सफल, किन्तु दिन की पूजा निष्फल है। शुचि साधक पूजा को छोड़कर भी रात्रि में शक्तिमन्त्र जप करें। उस जप के भीतर विशेषतः रात्रि जप अतिशय फलप्रद हैं। वृहत् तोड़ल तन्त्र में कहा गया है—जो व्यक्ति रात्रि में काली, तारा, तथा भैरवी की अर्चना करता है, वह सभी प्रकार से ससागरा बसुन्धारा के अधिपतिगणों में से श्रेष्ठ होता है।

अन्यत्र भी कहा गया है—मातङ्गी, बाला, चामुण्डा, छिन्नमस्ता भद्रकली, दुर्गा तथा जयदुर्गा—इन देवियों का जप तथा पूजा यदि रात में होती है, विविध वहुभोग्य भोग करके निश्चय ही वह साधक रुद्रत्व प्राप्त होगा।

समयातन्त्र में उक्त हुआ है—हे देवि ! दिव्यपूजा यथोक्त फलप्रद होता है। हे पद्म पलाश लोचने ! रात्रि में पूजा ( तदपेक्षा ) लक्षगुण फलप्रदान करते हैं। अर्द्धरात्रि के बाद जो मुहूर्त्त द्वय ( दो मुहूर्त्त ), वह महारात्रि है,

सा महारात्रिरुद्दिष्टा कृता तत्राऽक्षया भवेत् ॥

तन्त्रे—

गते तु प्रथमे यामे तृतीयं प्रहरावधि ।
निशायाञ्च प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न हि ॥
प्रकटे शक्तिमन्त्रे च हानिः स्यादुत्तरोत्तरम् ।
पशुसन्निधिमासाद्य नित्यपूजाञ्च वर्जयेत् ॥
पशोरग्रे कृताया तु प्रमादान्निष्फला भवेत् ।
निजसाधकमध्ये तु न गोप्तव्या कदाचन ॥

समयामन्त्रे—

स्त्रीसमीपे कृतापूजा जपश्च परमेश्वरि ।
कामरूपाच्छतगुणावव्ययौ समुदीरितौ ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्या मासन-
निर्णयो नाम पञ्चमोल्लासः ॥ ५ ॥

---

कह कहा गया है। उस महारात्रि में अनुष्ठित पूजा अक्षय होकर रहता है।

तन्त्रों में कहा गया है—रात के प्रथम प्रहर बीत जाने पर तृतीय प्रहर तक रात्रि में जप करें। कभी भी शेष रात्रि में जप मत करें। शक्तिमन्त्र प्रकाशित होने पर उत्तरोत्तर हानि होगी। पशु के सन्निधि प्राप्त होने पर अर्थात् पूजा के समीप आने पर नित्य पूजा त्याग करना चाहिये। प्रमाद-वशतः पशु के सामने जो पूजा अनुष्ठित होती है; वह पूजा निष्फल होगी। अपने साधक सम्प्रदाय के बीच कभी भी पूजा गोपन मत करना।

समयातन्त्र में कहा गया है—हे परमेश्वरि ! स्त्री के समीप अनुष्ठित पूजा तथा जप कामरूपक्षेत्र अपेक्षा शतगुण अधिक फलप्रद तथा अव्यय ( खर्च न होने वाला ) कहा गया है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतं शाक्तानन्दतरङ्गिणी के आसननिर्णय
नामक पञ्चम उल्लास समाप्त।

# षष्ठोल्लास:

## अन्तर्यागविधिः

आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा वहिर्देवं विचिन्तयेत् ।
करस्थं कौस्तुभं त्यक्त्वा भ्रमन्ते काचतृष्णया ॥
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये वहिस्थां पूजयेच्छिवाम् ।
यस्य यस्य च देवस्य यथा भूषणवाहनम् ॥
तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् परमेश्वरि ।
अथान्तर्यजनं वक्ष्ये येन देवमयो भवेत् ॥
सुखासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥
स्वकीय हृदये ध्यायेत्सुधासागर मुत्तमम् ।
रत्नद्वीपञ्च तन्मध्ये सुवर्णवालुकामयम् ॥
मन्दारपारिजाताद्यैः कल्पवृक्षैः सुपुष्पितैः ।
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यपुष्पफलैर्द्रुमैः ॥
नानासुगन्धिकुसुम गन्धामोदितदिङ्मुखम् ।

---

### अन्तर्यागविधि

जो लोग आत्मस्थ अर्थात् अपने हृदयस्थित इष्ट देवता का त्याग करके वह्निःस्थ ( वाहरी ) अर्थात् प्रतिमा आदि में देवता का अनुसन्धान करते हैं, वे लोग हस्तस्थित (हाथ के) कौस्तु भमणि को त्याग कर शीसे की आकांक्षा में भ्रमण करते हैं। सुतरां अपने हृदय में इष्ट देवता का प्रत्यक्ष करके बाहरी देवता की पूजा करें।

हे परमेश्वरि ! जिन जिन देवता का भूषण तथा वाहन जिस प्रकार है, उन देवता के पूजा में वही अर्थात् तद्रूप ही भावना करना।

अनन्तर अन्तर्याग विधि कहूँगा। जिसके द्वारा साधक देवमय होगा। सुखकर ( कोमल, मुलायम ) आसन पर पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख में बैठकर अपने हृदय में उत्तम सुधासागर का ध्यान करना। उस सुधासागर के बीच सुवर्णरूप वालुकामय; सुपुष्पित मन्दार ( मदार ), परिजात आदि कल्पवृक्ष एवं नित्य फल पुष्पयुक्त दिव्य वृक्ष समूहों के द्वारा चतुर्द्दिक अलंकृत; नाना प्रकार सुगन्धित पुष्पों के गन्ध से आमोदित दिङ्मण्डल; विकसित कुसुम-गन्ध

उत्फुल्लकुसुमामोद प्रहृष्टभृङ्गसंकुलम् ॥
कूजत्कोकिलसंघेन वाचालितदिगन्तरम् ।
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्लसत्काञ्चनपङ्कजैः ।
मौक्तिकैः कुसुमैः स्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ॥
तन्मध्ये संस्मरेद्देवि कल्पवृक्षं मनोहरम् ।
चतुर्वेदचतुःशाखं गुणत्रयसमन्वितम् ॥
पीतं कृष्णं तथा श्वेतं रक्तं पुष्पञ्च सुन्दरि ।
हरितञ्च विचित्रञ्च नानापुष्पैर्विराजितम् ॥
कोकिलैर्भ्रमरैर्देवि शोभितं बहुपक्षिभिः ।
एवं कल्पद्रुमं ध्यात्वा तदधोरत्नवेदिकाम् ॥
तत्रोपरि महद्व्याप्तं चिन्तयेद्रत्नमण्डपम् ।
उद्यदादित्यसंकाशं रत्नसोपानमण्डितम् ॥
ध्वजावलीसमाकीर्णं चतुर्द्वारसमन्वितम् ।
नानारत्नादिशोभाढ्यं रत्नप्राकारमण्डितम् ॥
स्वस्वस्थानस्थितैस्तैस्तैर्लोकपालैरधिष्ठितम् ।
सिद्धचारणगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ॥
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिः परिवारितम् ।

---

से प्रहृष्ट ( प्रसन्न ) भ्रमर ( भौंरा ) समूहों के द्वारा परिपूर्ण; गुञ्जनरत भ्रमर समूहों के द्वारा प्रतिध्वनित-दिगन्तर; विकसित स्वर्गीय स्वर्णपङ्कज समूहों के द्वारा चतुर्द्दिक अलंकृत, मुक्ता, पुष्प, पुष्पमाला, वस्त्र, स्वर्णतोरण-समूहों के द्वारा शोभित रत्नद्वीप का ध्यान करना।

हे देवि ! हे सुन्दरि ! उस रत्नद्वीप के बीच चतुर्वेदरूप चार प्रकार शाखाविशिष्ट; सत्त्वादि गुणत्रय समन्वित; पीत, कृष्ण, श्वेत, हरित तथा विचित्र नानाविध पुष्प विशिष्ट, कोकिल भ्रमर आदि बहु पक्षिगणों के द्वारा शोभित मनोहर कल्पवृक्ष का चिन्तन करना। इस प्रकार कल्पवृक्ष का ध्यान करके उस कल्पवृक्ष के अधोदेश में ( नीचे के भाग में अर्थात् मूलभाग में ) रत्नवेदिका की चिन्ता करना। उस रत्नवेदिका के ऊपरिभाग में उदीयमान सूर्य के समान रक्तवर्ण रत्ननिर्मित सोपानावली ( सींड़ी समूह ) भूषित, ध्वजावली युक्त, चतुर्द्वार विशिष्ट, विभिन्न रत्नों के द्वारा सुशोभित, रत्ननिर्मित, प्राचीर वेष्टित अपने अपने स्थानों में स्थित उन उन लोकपाल गणों के द्वारा अधिष्ठित, क्रीड़ापरायण सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर,

नृत्यवादित्रनिरतैरमरस्त्रीगणैर्युतम् ॥
किङ्किनीजालसन्नद्धपताकाभिरलंकृतम् ।
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नचामरभूषितम् ॥
स्थूलमुक्ताफलोन्नद्धवितानसमलंकृतम् ।
चन्दनागुरुकाश्मीरमृगनाभिविलेपितम् ॥
तन्मध्ये संस्मरेद्देवि महामाणिक्यवेदिकाम् ।
उद्यदर्केन्दुकिरणां चतुष्कोण प्रशोभिताम् ।
ध्यायेत्सिंहासनं तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
सिंहासने महेशानि प्रसूनतुलिकां न्यसेत् ॥
पीठपूजां ततः कुर्यात् स्वकल्पोक्तक्रमेण तु ।
प्रेतपद्मासने तत्र चिन्तयेत्परमेश्वरीम् ॥
आत्मनोऽभीष्टदेवता ध्यानं कुर्यादित्यर्थः ।
श्रीरत्नपादुके दत्त्वा नीत्वा तां स्नानमन्दिरे ।
सिंहासनोपविष्ठायामुद्वर्तनं समाचरेत् ॥
कर्पूरागुरुकस्तूर्या तथा मृगमदेन च ।
कुंकुमरोचनाचूर्णैर्नानागन्धसमन्वितः ॥

---

महोरग ( वृहत् सर्प ), किन्नर तथा अप्सरागणों के द्वारा परिवृत नृत्य तथा बाद्यनिरत देवस्त्रीगणों के द्वारा युक्त, किङ्किनी जालयुक्त झण्डों के द्वारा अलंकृत, महामाणिक्य, वैद्वर्य तथा रत्नयुक्त चामर के द्वारा सुशोभित, स्थूलमुक्तामण्डित वितान समूहों के द्वारा समलंकृत; चन्दन, अगुरु, कुंकुम तथा मृगनाभि द्वारा विलिप्त, रत्नवेदिव्याप्त विशाल रत्नमण्डप का ध्यान करना ।

हे देवि ! उस रत्नमण्डप के अभ्यन्तर में चतुष्कोण शोभित उदीयमान सूर्य की किरणों के समान प्रभाविशिष्ट महामाणिक्य वेदिका का ध्यान करें। वहाँ अर्थात् महामाणिक्य वेदिका के मध्य में ब्रह्म, विष्णु, शिवस्वरूप सिंहासन का ध्यान करें। हे महेशानि ! उस सिंहासन में प्रसून-तूलिका ( पुष्पशय्या ) को स्थापन करें। उसके बाद स्वकल्पोक्त क्रम से अर्थात् अपने सम्प्रदाय सम्मत तन्त्रोक्त क्रम से पीठपूजा करें एवं उस स्थान में प्रेत पद्मासन में परमेश्वरि का ध्यान करें। अर्थात् अपने इष्टदेवता का ध्यान करें। अनन्तर रत्नपादुका देकर उन्हें स्नान मन्दिर में लेकर सिंहासन में उपविष्ट कराकर उद्वर्त्तन ( मलशोधन ) करें। कर्पूर, अगुरु, कस्तुरी,

देव्यां उद्वर्जनं कृत्वा गन्धतैलं विलेपयेत् ।
देवीनां शतसाहस्रैः स्वर्णकुम्भसहस्रकैः ॥
आनीय वारिणा स्नातां चिन्तयेत्परदेवताम् ।
दुकूलैर्मार्जितं गात्रं दुकूले परिधाप्य च ॥
कङ्कत्या केशं संस्कृत्य विधिवद् बन्धनं चरेत् ।
पट्टगुच्छं केशपाशे नानारत्नोपशोभितम् ॥
ललाटे तिलकं दद्यात् सिन्दूरं केशमध्यके ।
नागेन्द्रदन्तखचितं शङ्खं दद्यान्मनोहरम् ॥
हस्ते केयूरकञ्चैव कङ्कणं कटकं तथा ।
स्वर्णांगुरीयकं दद्यान्नातारत्नोपशोभितम् ॥
पादयोर्नूपुरं दद्यानासाग्रे गजमौक्तिकम् ।
निवेदयेद्यथा शक्त्या पुष्पमालाञ्च भूषणम् ॥
सर्वाङ्गे लेपनं कुर्याद् गन्धचन्दनसिह्लकैः ।
काञ्चनाञ्चितकञ्चुलीशोभितां हृदयोपरि ॥
समाधौ चिन्तयेद्देवीं भूतशुद्धयादिकं चरेत् ।
न्यासजालं विधायाथ समाधौ पूजयेत्सदा ॥

---

मृगनाभि द्वारा एवं नानाविध गन्धयुक्त कुंकुम तथा रोचना चूर्ण द्वारा देवी का उद्वर्त्तन करके गन्ध तैल लेपन करें। अनन्तर परदेवता को शत सहस्र देवी के द्वारा सहस्र स्वर्णकुम्भ में आनीत जल द्वारा स्नाता चिन्ता करना बहु वस्त्रों के द्वारा गात्र मार्जित करके दोनों वस्त्र परिधान कराकर कङ्कती ( कंघी ) द्वारा केश संस्कार करके यथाविधि केशबन्ध करें। केशपाश में नानाविधरत्न-शोभित पट्टगुच्छ ललाट में तिलक, केशमध्य में ( सिंथि में ) सिन्दूर दें। हाथ में हस्तिदन्त-खचित मनोहर शङ्ख, केयूर ( ताड़ ) कटक ( बाला ) तथा नानारत्नशोभित स्वर्णांगुरी प्रदान करें। दोनों पैरों में नूपुर नासाग्र में गजमुक्ता एवं कण्ठ में पुष्पमाला तथा भूषण यथा शक्ति अर्पण करें। गन्ध, चन्दन तथा सिल्हक ( गन्धद्रव्यविशेष ) द्वारा सर्वाङ्ग में लेपन करें। हृदय के ऊपरिभाग में अर्थात् हृत्पद्म में सुवर्ण खचित कञ्चुली ( कांचुलि ) शोभिता देवी को समाधि अवस्था में अर्थात् समाहित चित्त में चिन्ता करें। उसके बाद भूतशुद्धि आदि करें। सभी न्यास करके अनन्तर समाधि अवस्था में अर्थात् एकाग्रचित्र में सर्वदा पूजा करें।

षोडशैरुपचारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम्।
रत्नसिहासनं दद्यात्स्वागतं कुशलं वदेत्॥
पाद्यञ्च पादयोर्देवि शिवस्यर्घ्यं निवेदयेत्।
परामृताचमनं प्रदद्यान्मुखपङ्कजे॥
मधुपर्कं मुखे दद्यात् त्रिधा त्वाचमनं मुखे।
हेमपात्रगतं दिव्यं परमान्नं परिष्कृतम्॥
कपिलाधतसंयुक्तमन्नं व्यञ्जनसंयुतम्।
( सुधाम्बुधि मांसशैलं मत्स्यराशिं फलानि च॥ )
भक्ष्यं भोज्यं तथा लेह्यं चर्व्यं चूष्यं तथैव च।
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं मानसं परिकल्पयेत्॥
आवरणं ततो देव्याः पूजयेन्मनसैव हि।
इत्थमन्तः समाराध्यमनसैव जपेन्मनुम्॥
सहस्रादि जपं कृत्वा देव्यै सोदकमर्पयेत्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः॥
एत एव महादेव्याः पर्यङ्कं समुदाहृतम्॥

---

हृदय स्थित शक्ति को षोडश उपचारों के द्वारा ही पूजा करें। उपवेशन के लिये रत्न सिंहासन दें; स्वागत तथा कुशल प्रश्न करें। हे देवि! पादद्वय में पाद्य एवं मस्तक पर अर्घ्य निवेदन करें। मुखपद्म में परामृतरूप आचमन अर्पण करें। मुख में मधुपर्क दें एवं बाद में तीन बार आचमन भी मुख में दें। स्वर्णपात्रस्थित परिष्कृत मनोहर परमान्न, कपिला गाय के घृत संयुक्त एवं व्यञ्जनयुक्त अन्न सुधाम्बोधि अर्थात् समुद्र प्रमाण सुधा, पर्वत प्रमाण मांस, प्रचुर मत्स्य तथा फल एवं भक्ष्य भोज्य, लेह्य, चर्व्य तथा चुष्य एवं कर्पूर मिश्रित ताम्बूल यह सभी में ही मानस उपचार की कल्पना करें। अर्थात् इन सभी मानस उपचार के द्वारा शक्ति का अर्चना करें। उसके बाद मन के द्वारा ही देवी के आवरण देवता की पूजा करें। इसी प्रकार मन ही मन देवी की अर्चना करके मन के द्वारा ही मन्त्र जप करें। सहस्र संख्यक अथवा उससे अधिक मन्त्र जप करके देवी के उद्देश्य से जलगण्डूष के साथ जप समर्पण करें।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव ये सभी महादेवी का पर्यङ्क ( पालङ्क ) कहा गया है। उस पर्यङ्क में नानाविध ( नानाप्रकार ) पुष्प–

पयः फेननिभां शय्यां नानापुष्पोपशोभिताम् ।
पुष्पशय्याञ्च संस्कुर्यात् तत्र देवीं सुरेश्वरीम् ॥
चिन्तयेत् साधको योगी नानासुखविलासिनीम् ।
नृत्यगीतैः सवाद्यैश्च तोषयेत्परमेश्वरीम् ॥
ततो होमं प्रकुर्वीत पूजासार्थक्यतवे ॥

अथ होमं प्रवक्ष्यामि येन चिन्मयतां लभेत् ।
अथाधारमये कुण्डे चिदग्नौ होमयेत्ततः ॥
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः ।
एतद्रूपन्तु चित्कुण्डं चतुरस्रं विभावयेत् ॥
आनन्दमेखलारम्यां विन्दुत्रिवलयाङ्कितम् ।
अर्द्धमात्रायोनिरूपं ब्रह्मानन्दमय भवेत् ॥
नाडीमिडां वामभागे दक्षिणे पिङ्गलां पुनः ।
सुषुम्नां मध्यतोध्यात्वा कुयाद्धोमं यथाविधि ॥
धर्माधर्मौ साधकेन्द्रो हविष्ट्वेन प्रकल्पयेत् ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य ततः श्लोकं जपेदमुम् ॥

---

शोभित दुग्धफेन निभ शय्या एवं उसके ऊपर पुष्प शय्या की रचना करना। योगी साधक उस शय्या ( विस्तर ) में देवी सुरेश्वरी की विभिन्न प्रकार सुखों से विलासिनी रूप से चिन्ता करें। विभिन्न प्रकार वाद्य के साथ नृत्य-गीत के द्वारा देवी को सन्तुष्ट करें। उसके बाद पूजा की सार्थकता, सफलता सम्पादन के लिये आन्तर हवन ( होम ) करना।

अनन्तर आन्तर होम विधि कहूँगा। जिसके द्वारा साधक चिन्मयत्व प्राप्त करता है। पहले मूलाधाररूप कुण्ड में चिद्रूप अग्नि में हवन करे। उसके लिये आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा एवं ज्ञानात्मा नामक चार प्रकार के आत्मा कीर्त्तित हुये हैं। आत्म चतुष्टयरूप चित् कुण्ड को चतुरस्र चिन्ता करें। आनन्दरूप मेखला में बहुकुण्ड मनोहर एवं विन्दुरूप त्रिवलय-युक्त तथा अर्द्धमात्रा-नादबिन्दुरूप योनियुक्त होकर ब्रह्मानन्दरूप हुई है। वामभाग में इड़ा नाड़ी, दक्षिण में पिङ्गला एवं मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करके यथाविधि हवन करें।

साधक श्रेष्ठ धर्म तथा अधर्म को यज्ञ को हविरूप में कल्पना करें। उसके बाद मूलमन्त्र उच्चारण करके यह श्लोक अर्थात् 'नाभौ चैतन्यरूपाग्नौ'

नाभौ चैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा ।
ज्ञान प्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥
वह्निजायान्तमन्त्रेण दद्याच्च प्रथमाहुतिम् ।
मूलमन्त्रोपरि श्लोकमपरं प्रपठेदमुम् ॥
धर्माधर्महविर्दीप्ति आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्ना वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥
वह्निजायान्तमन्त्रेण द्वितीयाहुतिमादिशेत् ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य ततः श्लोकं जपेदमुम् ॥
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचा ।
ज्ञान प्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥
वह्निजायान्तमन्त्रेण तृतीयाहुतिमाचरेत् ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य ततः श्लोकं जपेदमुम् ॥

अन्तर्निरन्तरमनिन्धनमेधमानेमोहान्धकारपरिपन्थिनि सम्विदग्नौ ।

---

इत्यादि मूलोक्त मन्त्र जप करें। मन्त्र का अर्थ है—मैं मनोरूप स्रुव् के द्वारा ज्ञानोद्दीप्त नाभिस्थित चैतन्यरूप अग्नि में हवि के द्वारा नित्य इन्द्रिय वृत्तियों का हवन कर रहा हूँ। वह्निजायान्त ( स्वाहान्त ) उक्त मन्त्र के द्वारा पहली आहुति दें। उसके बाद मूलमन्त्र के बाद दूसरा यह मन्त्र अर्थात्—'धर्माधर्महविर्दीप्त' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र पाठ करें। मन्त्र का अर्थ—मैं धर्म एवं अधर्मरूप हवि के द्वारा दीप्त आत्मरूप अग्नि में मनोरूप स्रुव् के द्वारा सुषुम्ना पथ से नित्य इन्द्रियवृत्तियों को आहुति प्रदान कर रहा हूँ। वह्निजायान्त ( स्वाहान्त ) उक्त मन्त्र के द्वारा द्वितीय आहुति दें। उसके बाद मूलमन्त्र का उच्चारण करके यह मन्त्र पढ़ें—'प्रकाशाकाशहस्ताभ्याम्' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र पढ़ें। मन्त्रार्थ—मैं प्रकाश तथा अप्रकाशरूप हस्तद्वय के द्वारा पकड़ कर उन्मनीरूप स्रुव् के द्वारा ज्ञानदीप्त आत्माग्नि में नित्य इन्द्रियवृत्तियों को हवन करता हूँ। वह्निजायान्त ( स्वाहान्त ) उक्त मन्त्र के द्वारा तृतीय ( तीसरा ) आहुति दें।

उसके बाद मूलमन्त्र का पाठ कर यह मन्त्र अर्थात्—अन्तर्निरन्तर इत्यादि मूलोक्त मन्त्र का जप करें। मन्त्रार्थ—अन्तर में बिना ईंधन से सदा प्रज्वलित होमरूप अन्धकार विनाशी, अद्भूत मरीचिर भी विकाशभूमि

कस्मिश्चिदद्भुतमरीचिविकाशभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम् ॥

स्वाहान्तोनाऽमुना हुत्वा पूर्णाहुतिरनन्तरम् ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य श्लोकमेतमुदीरयेत् ॥
अह[इद]न्तापात्रभरितमिद [अह]न्ता परमामृतम् ।
पराहन्तामये वह्नौ पूर्णहोमं जुहोम्यहम् ॥
वह्निजायान्तमन्त्रेण दद्यात्पश्च [पूर्णा]हुतिं प्रिये ।
इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत् ॥
एवमेव पूजयन्ति गृहस्थाः परमेश्वरीम् ।
योगिनो मुनयश्चैव पूजयन्ति सदाप्रिये ॥
केवलं मानसेनैव नहि सिद्धो भवेत् गृही ।
सवाह्येन तु तेनैव सिद्धो भवति यद् गृही ॥

भूतशुद्धौ—

सर्वासु वाह्यपूजासु अन्तःपूजा विधीयते ।
अतः पूजां विना नैव वाह्यपूजाफलं लभेत् ॥
सान्तःपूजा महेशानि वाह्या कोटिफलप्रदा ।

---

उस अनिर्वचनीय संवित् रूप अग्नि में पृथिव्यादि शिवान्त समग्रविश्व को हवन कर रहा हूँ । स्वाहान्त इस मन्त्र के द्वारा हवन कर बाद में पूर्णाहुति दें । मूलमन्त्र उच्चारण करके यह मन्त्र पढ़ें—'अहन्तापात्र भरित' इत्यादि श्लोक मन्त्र का पाठ करें । उक्त श्लोक कार्य—मैं अहन्तारूप पात्र में परिपूर्ण इदन्तारूप परमामृत पराहन्तामय वह्नि मैं पूर्ण होम आहुति कर रहा हूँ ।

हे प्रिये ! स्वाहान्त उक्त मन्त्र के द्वारा पञ्चम आहुति प्रदान करना । साधक इस प्रकार अन्तर्याण को सम्पन्न करके ब्रह्ममय होता है । गृहस्थगण इसी प्रकार से ही परमेश्वरी की आराधना करते हैं । हे प्रिये ! योगिगण एवं मुनिगण भी सर्वदा इसी प्रकार से ही पूजा करते हैं । गृहस्थगण केवल मानस पूजा के द्वारा ही सिद्ध नहीं होते हैं; क्योंकि बाह्य पूजा के साथ ही नामस पूजा के द्वारा सिद्धि होती है ।

भूतशुद्धि तन्त्र में कहा गया है—'समस्त बाह्यपूजाओं में आन्तर पूजा विहित हुआ है । आन्तर पूजा को छोड़कर बाह्यपूजा का फललाभ नहीं होता । हे महेशानि ! आन्तर पूजा के साथ बाह्यपूजा कोटिगुण फलप्रदान करते हैं ।

कि तस्य वाह्यपूजायां सर्वं व्यर्थं कदर्थनम् ॥
उपचाराद्यभावे च वाह्यपूजा कदर्थनम् ।
विनोपचारैर्या पूजा सा पूजा निष्फला भवेत् ॥

तन्त्रान्तरे—

यदि वाह्यार्चना द्रव्यसम्पत्तिरपि वर्त्तते ।
अन्तर्यागं विधायेत्थं वहिर्यागविधिं चरेत् ॥

यामले—

अर्चाभावे महेशानि हृदये पूजयेच्छिवाम् ।
सर्वपूजाफलं देवि प्राप्नोति साधकः प्रिये ॥

तन्त्रगन्धर्वे—

मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दीयते यदि ।
योनरो भक्तिसंयुक्तो दीर्घायुः ससुधी भवेत् ॥
माल्यं पद्मसहस्रस्य मनसायः प्रयच्छति ।
कल्पकोटिसहस्राणिकल्पकोटिशतानि च ॥
स्थित्वा देवीपुरे श्रीमान्सार्व भौमो भवेत् क्षितौ ।

---

मानस पूजा को छोड़कर उसका बाह्यपूजा का क्या प्रयोजन है ? जैसे उसमें समस्त व्यर्थ एवं कदर्थित होता है और उपचारादियों के अभाव में भी बाह्यपूजा कदर्थित होता है। उचचार रहित जो पूजा है, वहपूजा निष्फल होती है।

तन्त्रान्तरों में कहा गया है–यदि बाह्यपूजा का द्रव्यसम्पत्ति उपचार बाहुल्य रहता है, तब उसी प्रकार से अन्तर्याग करके वहिर्याग का अनुष्ठान करना। यामलतन्त्र में उक्त हुआ है–"हे महेशानि ! उपचारों के अभाव में हृदय में अर्थात् मन के द्वारा शक्ति की पूजा करना। हे प्रिये ! हे देवि ! साधक उसी से ही समस्त पूजा का फल पायेगा।" तन्त्र गन्धर्व में कहा गया है–जो मनुष्य भक्तिमान होकर यदि मन के द्वारा ही महादेवी को नैवेद्य देता है; तब वह दीर्घायु एवं सुखी होता है। जो व्यक्ति मन के द्वारा सहस्र पद्म ( कमल ) की माला महादेवी को दान करता है। वह श्रीमान् होकर शत कोटिकल्य अथवा सहस्र कोटिकल्य समय देवीपुर में वास करके भूमण्डल में सार्वभौम नरपति होता है। जो व्यक्ति मन के द्वारा ही महादेवी

मनसाऽपि महादेव्यै यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।
स दक्षिणे यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥
मनसाऽपि महादेव्या यो भक्त्या कुरुते नतिम् ।
सोऽपि लोकान् विनिर्जित्य देवीलोके महीयते ॥
महामाये महादेवीमर्चयामि च भक्तितः ।
नानाविधैस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्तु यः ॥
नैवेद्यं देहि मे भातरिति यो भावयेन् मुहुः ।
सोऽपि लोकान् विनिर्जित्य देवीलोके महीयते ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूत श्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरि
कृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यांमन्तयगिविधिनाम
षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

---

के उद्देश्य से प्रदक्षिण करता है, वह दक्षिणदिक स्थित यमगृह के नरक समूह का दर्शन नहीं करता। जो व्यक्ति भक्ति के साथ मन के द्वारा ही महादेवी को प्रणाम करता है, वह भी समस्त लोक जय करके देवीलोक में सुख से वास करता है।

हे महामाये ! जो व्यक्ति नाना प्रकार नैवेद्य के द्वारा भक्ति के साथ महादेवी की पुजा करूँगा। इस प्रकार चिन्ता में व्याकुल होता है एवं जो व्यक्ति हे मातः ! मेरा नैवेद्य ग्रहण कीजिए। इस प्रकार बार-बार भावना चिन्ता करता है, वह भी समस्त लोकजय करके देवीलोक में सुख से वास करता है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतं शाक्तानन्दतरङ्गिणी के मन्तर्यागविधि
नामक षष्ठ उल्लास समाप्त।

# सप्तमोल्लासः

## गुप्ततन्त्रोक्तपूजाविधिः

अथानन्दमयीपूजां वक्ष्यामि गुप्ततान्त्रिकीम् ।
यां कृत्वा शिवसायुज्यं लभेते साधकोत्तमः ॥
पूजागृहं समासाद्य साधकेन्द्रो महेश्वरि ।
प्रथमं जलमानीय पादप्रक्षालनं चरेत् ॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा पादप्रक्षालनं चरेत् ।
दिवा पूर्वमुखो भूत्वा रात्रौ कुर्यादुदङ्मुखः ॥
देव्याः पूज्यां शिवस्यापि सदा कुर्यादुदङ्मुखः ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य तदिति च पदं ततः ॥
सदिति तु समुच्चार्य कर्म कुर्याद् विचक्षणः ।
स्मरणात्कर्मणामाद्ये ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु तान्त्रिके वैदिके तथा ।
स्वविद्यां संस्मरन्कुर्यात्क्रियां सर्वप्रचोदिताम् ॥

स्थानशोधनमाह गन्धर्वतन्त्रे—

---

### गुप्ततन्त्रोक्त-पूजाविधि

इसके अनन्तर गुप्ततन्त्रोक्त उस आनन्दमयी पूजाविधि कहूँगा। पूजा को करके साधक श्रेष्ठ जिस शिवसायुज्य को प्राप्त हुये हैं। हे महेश्वरि! साधक प्रवर पूजागृह में उपस्थित होकर जल लाकर पहले पैर धो लें। उत्तराभिमुख होकर पाद प्रक्षालन कर्त्तव्य है। दिन में पूर्वमुख होकर एवं रात्रि में उत्तरमुख होकर देवी की पूजा करें। शिव की पूजा सदासर्वदा उत्तरमुख होकर करना कर्त्तव्य है। विचक्षण व्यक्ति पहले प्रणव ( ॐ ) एवं 'तत्' यह पद उच्चारण करके अनन्तर 'सत्' यह पद का उच्चारण करके अर्थात् ॐ तत्सत् उच्चारण करके कर्म को करें। सभी कार्य के प्रारम्भ में 'ॐ तत्सत्' स्मरण से ही ब्रह्मत्व लाभ का अधिकारी होता है। सभी समय वैदिक तथा तान्त्रिक सभी कार्य में इष्टदेवता का स्मरण करके सर्वशास्त्र-विहित कर्म करें।

वीक्षणं वर्मबीजेन यागभूमेः समीरितम् ।
प्रोक्षणं चास्त्रमन्त्रेण यागभूमेः समाचरेत् ॥
अज्ञातदूषितं स्थानं मार्जनादौ च यद्भवेद् ।
एवमादीनि सर्वाणि नश्येत् तल्लोकनात् प्रिये ॥
मधुकैटभयोर्मेदः संघातैर्दृढतां गता ।
मेदिनी सर्वदाऽशुद्धा सुरपूजासु सर्वतः ॥
तस्य दोषस्य मोक्षाय कामबीजं क्षितौलिखेत् ।
पञ्चवर्णरजश्चित्रा नानागन्धसमन्विता ॥
पुष्पप्रकरसंकीर्णा घण्टाचामरभूषिता ।
बालार्कसदृशी रम्या मनःसन्तोषकारिणी ॥
एवं भूमिं समाश्रिता पूजयेत्परमेश्वरीम् ।
मन्त्रैराचमनं कुर्याद्देवीं ध्यात्वा हृदम्बुजे ।
पीठे चोपविशेद्देवि बद्धा वीरासनादिकम् ॥

---

गन्धर्व तन्त्र में स्थान शोधन कह रहे हैं—'वर्मबीज' ( हूँ ) द्वारा यागभूमि का अवलोकन कहा गया है । अस्त्रमन्त्र ( फट् ) के द्वारा यागभूमि का प्रोक्षण ( झाड़ना ) करना, हे प्रिये ! मार्जन आदि से वह स्थान जिन सभी अज्ञात दोषों से दुष्ट होगा, इस प्रकार सभी दोष मन्त्रपाठ पूर्वक अवलोकन के द्वारा विनष्ट होता है । मधु तथ कैटभ के मेदसंघात के द्वारा यह पृथ्वी पृथिवी दृढ़ता को प्राप्त है । अतएव पृथिवी देवपूजा के लिये सर्वदा सर्वतोभाव से अशुद्ध है । इस दोष के शान्ति के निमित्त पृविथी में अर्थात् पूजा गृह के भूमि में कामबीज ( क्लीं ) लिखें । पूजाभूमि पञ्चवर्ण चूर्ण द्वारा चित्रिता, नाना प्रकार सुगन्धों से परिपूर्णा, पुष्प स्तवकों के द्वारा संकीर्णा, घण्टा तथा चामर भूषिता, प्रातः सूर्य के समान रक्तवर्णा, सुशोभिता, चित्र के हर्ष जनिका होगा । इस प्रकार भूमि में उपस्थित होकर परमेश्वरी का पूजा करना । हृत्पद्म में देवी का ध्यान करके मन्त्र के द्वारा आचमन करना । हे देवि ! उसके बाद वीरासनादि बन्धन करके आसन पर उपवेशन करना ।

## द्रव्यासादनम्

उपविश्य ततो मन्त्री द्रव्याणि स्थापयेत्पुरः।
गन्धपुष्पाक्षतादींश्च दक्षे दीपांश्च सर्वतः॥
नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो वा न पृष्ठतः।
घृतदीपं दक्षिणे तु तैलदीपं तु वामतः॥
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पञ्च भूषणम्॥
सर्वं स्वदक्षिणे स्थाप्यं वामे चार्घ्यं निवेशयेत्।
स्थापयेच्चार्व्यं चूष्यादि नैवेद्यादीनि सन्निधौ॥
करयोक्षालनार्थाय पृष्ठे पात्रं विनिर्दिशेत्।
स्वस्य शक्त्यानुरूपेण सर्वं सम्पाद्य यत्नतः॥
पूजा द्रव्याणि संप्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण साधकः।
दर्शयेद्धेनुमुद्राञ्च द्रव्यशुद्धिरितीरिता॥
अन्नं नैवेद्यादिकं यत्पुष्पगन्धादिकञ्च यत्।

---

### द्रव्यासादन

उसके बाद साधक आसन पर बैठकर सामने के तरफ सभी पूजाद्रव्यों को रखें। गन्ध, पुष्प, तथा अक्षतादि दाहिने के तरफ, प्रदीप दीप सभी दिशाओं में अर्थात्—जिस किसी दिशा में नैवेद्य दाहिने तरफ, बायें अथवा सम्मुख सामने रखें, किन्तु पीछे के तरफ कभी भी मत रखना। घृतदीप, दक्षिण में परन्तु तैल दीप बायें तरफ रखें। उसी प्रकार धूप बायें अथवा सामने रखना, किन्तु दाहिने ओर मत रखना। गन्ध, पुष्प, तथा अलङ्कार सम्मुख में 'सामने' निवेदन करना।

( इससे छोड़कर अन्य ) सभी द्रव्य अपने दाहिने रखें। बायें ओर अर्घ्य स्थापन करें। चर्व्य, चुष्य आदि नैवेद्यादि सामने रखें। दोनों हाथों को धोने के लिये पीछे के ओर एक पात्र रखें। अपने समार्थ्यानुसार यत्नपूर्वक सभी द्रव्यों को आयोजन करके साधक मूलमन्त्र के द्वारा पूजा का सभी द्रव्य प्रोक्षण (धोकर) करके धेनुमुद्रा दिखा दें। यही द्रव्य शुद्धि कहा गया है। जब तक देवी का आवाहन किया नहीं जाता, तब तक जिन सभी अन्न

सर्वमाच्छादितं कार्यं यावन्नावाहयेत् परम् ॥
राक्षसाः प्रतिगृह्णन्ति निराच्छादनकं यतः ॥

**अथ शान्तिकुम्भप्रमाणम्**

ईशान्यास्थापयेत्कुम्भं स्वर्णताम्रादिनिर्मितम् ।
दैर्घ्यं विंशत्यंगुलन्तु ग्रीवा वेदांगुलान्विता ॥
वाक्षमष्टांगुलं प्रोक्तं मुखमष्टांगुलं स्मृतम् ।
दृढं समतलः कार्यो मानं तत्परिकीर्तितम् ॥

कुम्भविधानन्तु गौतमीये—

हैमं रौप्यं तथा ताम्रं मार्त्तिकं वा स्वशक्तितः ।
वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं कृते नैष्फल्यमाप्नुयात् ॥
षट्त्रिंशदंगुलं कुम्भं विस्तारोन्नतिशालिनम् ।
षोडशं द्वादशं वापि ततो न्यूनं न कारयेत् ॥

प्रोक्षणीस्थापनमाह गान्धर्वे—

पात्रमस्त्राम्बुभिः प्रोक्ष्य दक्षिणे स्थापयेत्ततः ।
शुद्धोदकेन सम्पूज्य मूलमन्त्रं जपेत्सुधीः ॥

---

नैवेद्यादि अथवा जिन सब गन्धपुष्पादि–सभी वस्तु ढक कर रखना । क्योंकि अनाच्छादित द्रव्य राक्षसों द्वारा भक्षण ग्रहण करते हैं ।

अथ शान्ति कुण्डप्रमाण

अनन्तर शान्तिकुण्ड का प्रमाण कहा जा रहा है । ईशान कोण में स्वर्ण अथवा ताम्रादि निर्मित कुण्ड को स्थापन करें । उक्त कुण्ड का दैर्घ्य विंशति (बीस) अंगुलि, ग्रीवा चार अंगुलि परिमिता, कण्ठदेश अष्टांगुल ८ अंगुल कहा गया है–एवं मुख अष्टांगुल कहा गया है । कुण्ड दृढ़ तथा समतल करना । यही कुण्ड परिमाण कहा गया है ।

गौतमीय तन्त्र में कुण्डविधान कहा गया है–'अपने शक्ति के अनुसार से स्वर्ण, रौप्य 'चाँदी' ताम्र, अथवा मृत्तिका का कुण्ड करें । कृपणता न करें । कृपणता करने पर निष्फलता प्राप्त होगा । दैर्घ्य-प्रस्थ-विशिष्ट उस कुण्ड को ३६ अंगुल १६ अंगुल अथवा १२ अंगुल करना; इससे कम मत करना ।

गन्धर्व तन्त्र में प्रोक्षणी स्थापन कहा गया है–'सुधी साधक 'फट्' मन्त्र से जल के द्वारा प्रोक्षणी पात्र प्रोक्षण करके ( धो करके ) दक्षिण में रखें ।

प्रोक्षयेत्तेन सकलं प्रोक्षणीस्थने वारिणा ।

आधारस्थ जलशोधनमाह गान्धर्वे—

मण्डलं वा मतः कृत्वा जलेन चतुरस्रकम् ।
ॐ वषट्कार मन्त्रेण साधारं मण्डले घटम् ॥
स्थापयेत्तत्र वह्न्यर्कसोमानां मण्डलं भजेत् ।
आनन्दभैरवं तत्र यजेदानन्दभैरवीम् ॥
यदन्यद्दूषणं पात्रे तोये वाऽज्ञानतो भवेत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति पूजार्यं तज्जलं भवेत् ॥

## अर्घ्यस्थापनक्रमः

अर्घ्यं द्वारि परिष्कार्य तत्क्रमः कथ्यतेऽधुना ।
अस्त्रेण पात्रं प्रक्षाल्य हृन्मन्त्रेण प्रपूरयेत् ।
मन्त्रयेत्प्रणवेनैव सामान्यार्घ्यमिदं स्मृतम् ॥

प्रणवेन दशधा मन्त्रयेदित्यर्थः ।

---

उसके बाद शुद्ध जल के द्वारा प्रोक्षणी पात्र पूर्ण करके मूलमन्त्र का जप करें एवं उस प्रोक्षणी पात्रस्थ जल के द्वारा सभी द्रव्य प्रोक्षण करें। ( धो डालें ) गन्धर्व तन्त्र में आधारस्थ जलशोधन कहा गया है—"वाम भाग में जल के द्वारा चतुरस्र मण्डल करके 'ॐ वषट्' इस मन्त्र के द्वारा साधार घट ( आधार के साथ ) मण्डल में स्थापन करें। उस घट में वह्निमण्डल, अर्कमण्डल तथा सोममण्डल का पूजा करें। एवं उसी घट में आनन्द भैरव एवं अथवा आनन्द भैरवी का पूजा करें। यदि जल में वा पात्र में अज्ञानतः किसी अन्य किसी प्रकार दोष रहता है, तब उसके द्वारा उन सभी दोष विनष्ट होगा एवं वह जल पूजा का उपयोगी होगा।

### अर्घ्यस्थापनक्रम

द्वारदेश में अर्घ्य परिष्कार अर्थात् स्थापन करें। सम्प्रति उसका क्रम कहा जा रहा है। अस्त्र ( फट् ) मन्त्र द्वारा अर्घ्यपात्र का प्रक्षालन करके हृन्मन्त्र ( नमः ) द्वारा उसमें जल पूरण करें। ( जल को भरें ) एवं प्रणव के द्वारा ही अभिमन्त्रित करें। यही है सामान्यर्घ्य कथित हुआ है। "प्रणवेनैव" अर्थात् प्रणव के द्वारा दशबार अभिमन्त्रित करें। 'फट्' मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण करके बीज के द्वारा देवताओं की पूजा करें।

फटा द्वारं च संप्रोक्ष्य बीजैनाम्यर्च्चयेत् सुरान् ।
गां वां क्षां यां च बीजानि उक्तानि परमेश्वरि ॥
गणेशवटकक्षेत्रपालांश्च योगिनीं तथा ।
पूजयेत्साधकश्रेष्ठः प्रतिद्वारमिति क्रमात् ॥

विश्वसारे—

एषां पूजां विलंघ्याथ न सिद्धिः स्याद्युगेयुगे ।
उत्तरादिक्रमेणैव द्वारपालान् समर्चयेत् ।
ब्रह्माणं वास्तुदेवं च पूजयेद्गृहमध्यतः ॥
आसने मण्डलं कृत्वा सम्पूज्यारोहयेत्सुधीः ।
विशोध्य वाक्कायचित्तं भूमिं सम्यग्विशोधयेत् ॥
ॐ पवित्र वज्रभूमे हुं फट् स्वाहेति मन्त्रतः ।
अनन्तरं देशिकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्याऽवलोकनैः ॥
दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्राद्भिश्चान्तरीक्षगान् ।
पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमानिति विघ्नान् निवारयेत् ॥

---

हे परमेश्वरि ! गां, वां, क्षां, वां–यह सब बीज कहा गया है । साधक श्रेष्ठ यथाक्रम से अर्थात् उत्तरदिक्रम से द्वार पर गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल एवं योगिनी का पूजा करें । विश्वसार तन्त्र में कहा गया है–'यह सभी देवताओं का पूजा लङ्घन ( लांघकर ) करके युगयुगों में भी सिद्धि नहीं होगा । उत्तरादिक्रम से द्वारपालगणों का अर्चना करना । गृहमध्य में ब्रह्मा तथा वास्तु देव का पूजा करें ।

सुधी साधक आसन पर मण्डल करके पूजा करके उपवेशन करें । वाक्य, देह तथा चित्त शोधन पूर्वक 'ॐ पवित्र वज्रभूमे हूँ फट् स्वाहा' इस मन्त्र के द्वारा यागभूमि को सम्यक् प्रकार से शोधन करें । अनन्तर साधक श्रेष्ठ अपने दिव्य दृष्टि के द्वारा ऊपर की ओर देखकर दिव्य सभी विघ्नों को एवं अस्त्र मन्त्र अर्थात् 'फट्' मन्त्र तथा जलके द्वारा अन्तरीक्षगत सभी विघ्नों को दूर करें । भूमिपर तीनबार गोड़ालि ( पैर तलके पीछे का अंश ) के द्वारा आघात करके भौम सभी भौम विघ्नों को दूर करें ।

विश्वसारे—

अनिमेषदृशा दृष्टिर्दिव्यदृष्टिः प्रकीर्तिता ।

करशुद्धिर्यामले—

प्रागुदीचीमुखो वापि सपुष्पैर्मार्जयेत्करम् ।
मूलमुच्चार्य देवेशि तत्पुष्पं वामतस्त्यजेत् ॥

मन्त्रमाह यामले—

भौतिकः शशिकलासमन्वितो वह्निषोडशकला समन्वितः ।
ङेन्तमन्त्रमथ फट्समन्वितं शुद्धये मनुरयं प्रकीर्तितः ॥

भौतिकः ऐकारः । शशिकला नादविन्दुः । वह्नीरेफः । षोडशकला अः कारः । तेन ऐं रः अस्त्राय फट् । शुद्धये करशुद्धये इत्यर्थः ॥

तन्त्रगन्धर्वेऽपि—

गृहीत्वा रक्तपुष्पञ्च सगन्धं साधकोत्तमः ।
अनेनैव तु मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम् ॥
सम्मार्ज्य सव्यहस्तेन वामेन पाणिना ततः ।
निर्मञ्छ्यकामबीजेन जिघ्रेत्तद्वाग्भवेन च ।

---

विश्वसार तन्त्र में कहा गया है—'अनिमेष ( अपलक ) नेत्रों के द्वारा दर्शन ही दिव्यदृष्टि कहा गया है। यामलतन्त्र में करशुद्धि ( हाथ शुद्धि ) उक्त हुआ है—हे देवेशि ! पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर मूलमन्त्र का उच्चारण करके पुष्पयुक्त ( गन्ध ) द्वारा हस्त ( हाथ ) मार्जन करें। एवं उस पुष्प को वामभाग में त्याग करें। यामलतन्त्र में करशुद्धि का मन्त्र कह रहे हैं—शशिकला (चन्द्रकला) नादबिन्दु=ँ युक्त भौतिक (ऐ) एवं षोडशकला ( अः ) युक्तवह्नि (र); अनन्तर ङेन्त (चतुर्थी विभक्ति का एक वचन युक्त) अस्त्र अर्थात् अस्त्राय। करशुद्धि के लिये यह मन्त्र 'फट्' युक्त कहा गया है। भौतिक शब्दों का शब्दों का अर्थ है—ऐकार। शशिकला शब्द का अर्थ है—नादबिन्दु ( ँ )। वह्नि शब्द का अर्थ है—रेफ ( र )। षोडशकला शब्द का अर्थ है—अः कार ( : ) सुतरां सम्पूर्ण है—"ऐं रः अस्त्राय फट्"। शुद्धये पद का अर्थ है—करशुद्धये अर्थात् करशुद्धि के लिये।

तन्त्रगन्धर्व में भी कहा गया है—हे पार्वति ! साधक प्रवर गन्धयुक्त रक्तपुष्प ग्रहण करके इसी मन्त्र के द्वारा ही अर्थात् "ऐं रः अस्त्राय फट्"

ऐशान्यां निक्षिपेदेतच्छरबीजेन पार्वति ॥

तत्रैव—

मार्जनात्करयोः शुद्धिर्निर्मञ्छनातु पृष्ठयोः ।
घ्राणाद्देवाश्च तुष्यन्ति तीर्थानाञ्च समागमः ॥
क्षेपणात् सर्वविघ्नानां दूरसंस्थानमेव च ।
दुर्गन्धोच्छिष्ट संस्पर्शदूषणं करयोस्तु यत् ॥
अज्ञातरूपं तत्सर्वं नाशयेद् विधिनाऽमुना ।
करशुद्धि समासाद्य कुर्यात्तालत्रय ततः ॥
ऊर्ध्वोर्ध्वमस्त्रमस्त्रेण दिग्बन्धमपि देशिकः ।
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण ऊर्ध्वोर्ध्वमप्यधस्तथा ॥
कुर्यात्तालत्रयं मन्त्री दिग्बन्धनमथाचरेत् ।
दिग्बन्धनं छोटिकाभिर्दशभिः कारयेत्सुधीः ॥
विघ्नमुत्सारितं कृत्वा ततः पुष्पं विशोधयेत् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामे गुरुत्रयं नमेत् ॥

---

मन्त्र के द्वारा ही हस्ततलस्थित पुष्प को वामहस्त के द्वारा मार्ज्जना करके बाद में वाम हस्त के द्वारा कामबीज ( क्लीं ) मन्त्र से निर्मञ्जन ( रगड़ कर ) करके वाग्भव ( ऐं ) बीज के द्वारा उस पुष्प का आघ्राण ( सूंघें ) करें। बाद में शरबीज के द्वारा ( फट् मन्त्र से ) उस पुष्प को ईशान कोण में निक्षेप करें ( फेंक दें )। वहीं कहा गया है—'पुष्पों के मार्जन के द्वारा करतलद्वय का शुद्धि, निर्मञ्जन के करपृष्ठ का शुद्धि होता है। और उसे घ्राण के द्वारा देवगण सन्तुष्ट होते हैं तथा तीर्थों का समागम होता है। निक्षेप के द्वारा समस्त विघ्नों का दूर में अवस्थान होता है। इस विधि के द्वारा अज्ञातरूप जो हाथों का दुर्गन्ध तथा उच्छिष्ट-संस्पर्श दोष है, वह सभी नाश करेंगे।

करशुद्धि सम्पन्न करने के बाद तालत्रय ( तीनताली ) दोनों हाथों से करें। साधक 'हूं फट् स्वाहा' इस मन्त्र के द्वारा उर्द्धोर्द्ध में एवं अधोदेश में तालत्रय करके अनन्तर दिग्बन्धन करें। सुधी साधक दस छोटिका ( तुड़ि अर्थात् दाहिने हाथ के वृद्धांगुलि एवं मध्यमा के द्वारा फट् फट् आवाज ) के द्वारा दश दिगों का बन्धन करें। विघ्नों को उत्सारित करने के बाद पुष्प-

गुरुत्रयमाहतन्त्रे—

गुरुं परगुरुञ्चैव परापरगुरुं तथा।
दक्षपार्श्वे गणेशञ्च मूर्ध्नि देवीं नयेत् प्रिये॥

गन्धर्वे—

भूतशुद्धिर्ऋषिन्यासः पीठन्यासस्तथैव च।
कराङ्गयोः षडङ्गानि मातृकान्यास एव च॥
विद्यान्यासो महेशानि यैश्च देवमयो भवेत्।
एतदेव हिनित्यं स्यात्काम्यं चान्यत्प्रकीर्तितम्॥
देव एव यदेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्।
अदेवः पूजयन् देवं न पूजाफलभाग्भवेत्॥

वासिष्ठरामायणे—

अविष्णुः पूजयन् विष्णुं न पूजाफलभाग्भवेत्।
विष्णुर्भूत्वाऽर्चयेद्विष्णुरिति स्मरन्॥

भारते—

नाविष्णुः कीर्तयेद्विष्णुर्विष्णुमर्चयेत्।
नाविष्णुः संस्मरेद्विष्णुं नाविणुर्विष्णुमाप्नुयात्॥

---

शोधन करें एव कृताञ्जलि होकर बायें तरफ गुरुत्रय को प्रणाम करें। तन्त्रों में गुरुत्रय कह रहे हैं—'हे प्रिये! गुरु, परमगुरु तथा परापर गुरु को प्रणाम करें। दक्षिण में गणेश को, मस्तक पर इष्ट देवता को प्रणाम करें।

गन्धर्व तन्त्र में उक्त हुआ है—हे महेशानि! जिन सभी न्यास के द्वारा साधक देवमय होता है, साधक के भीतर-भूतशुद्धि, ऋषिन्यास, पीठन्यास, करन्यास तथा षडङ्गन्यास, मातृकान्यास—यह सभी न्यास नित्य; और अन्य न्यास काम्य है कहा गया है। देव होकर अर्थात् न्यासादि के द्वारा पाञ्च भौतिक देह को लय करके अपने को देवतास्वरूप भावना करके देवता का पूजा करें। देवता न होकर देवता का पूजा अर्चना मत करना। अदेव होकर देवता का पूजा करके पूजक पूजा का फल भागी नहीं होगा। वशिष्ट रामायण में कहा गया है—"अविष्णु विष्णुपूजा करके पूजा का फल भागी नहीं होगा। 'मैं विष्णु—इस प्रकार स्मरण करते करते विष्णुस्वरूप होकर विष्णु का पूजा करें। भारत में कहा गया है—"अविष्णु व्यक्ति विष्णु का कीर्त्तन न करें। अविष्णु व्यक्ति विष्णु का अर्चना न करें। अविष्णु विष्णु

भविष्ये—

नारुद्रः संस्मरेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत् ।
नारुद्रः कीर्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात् ॥
नादेवी कीर्तयेद्देवीं नादेवी तां समर्चयेत् ।
न्यासात्तदात्मको भूत्वा देवीभूतस्तु तां यजेत् ॥

आग्नेये—

रुद्रस्य पूजनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद्विष्णुपूजनात् ।
सूर्यः स्याद् सूर्यपूजातः शाक्त्यादिः शक्तिपूजनात् ॥

शक्तिपूजनात् शक्त्यादिपूजनात् । आदिपदात् गणेशादि परिग्रहः ।

यथैव न्यासमात्रेण देववज्ज्र जायतेनरः ।
प्राणायामैस्तथा ध्यानैर्न्यासैर्देवशरीरमृत् ।
न्यासानां प्रचुरत्वेन फलानामपि भूरिता ॥

---

का स्मरण न करें। अविष्णु विष्णु को प्राप्त नहीं होता। भविष्य पुराण में कहे हैं—अरुद्र व्यक्ति रुद्र का स्मरण न करें। अरुद्र रुद्र का अर्चना भी न करें। अरुद्र रुद्र का कीर्त्तन भी न करें। अरुद्र रुद्र को नहीं प्राप्त होता है। अदेवी व्यक्ति देवी का कीर्त्तन न करें। अदेवी उस देवी का अर्चना न करें।

न्यास के द्वारा देवीस्वरूप होकर ही देवतात्मक व्यक्ति ही देवी की पूजा करें। आग्नेय पुराण में कहा गया है—रुद्र के पूजा के द्वारा रुद्रस्वरूप, विष्णु के पूजा के द्वारा विष्णुस्वरूप, सूर्यपूजा द्वारा सूर्यस्वरूप एवं शक्ति आदि के पूजा के द्वारा शक्ति आदि स्वरूप व्यक्ति होता है। 'शक्तिपूजनात्' अर्थात्—शक्ति आदि पूजनात् अर्थात् शक्ति आदि का पूजा के द्वारा। आदि पद के द्वारा गणेशजी का ग्रहण करना होगा।

मानव जिस प्रकार न्यासमात्र के द्वारा ही देवमय होता है; उसी प्रकार प्राणायाम, ध्यान तथा न्यास समूहों के द्वारा देवमय शरीर को धारण करता है। न्यास के प्राचुर्य से फल का भी प्राचुर्य (आधिक्य) अधिकता होता है।

## भूतशुद्धिः

तन्त्रगन्धर्वे—

स्वभावतः सदाऽशुद्धं पञ्चभूतात्मकं वपुः ।
मलमूत्रसमायुक्तं सर्वदैव महेश्वरि ॥
तस्यैव हि विशुद्ध्यर्थं वाय्वग्निसलिलाक्षरैः ।
चन्द्रबीजेन देवेशि पृथ्वीबीजेन देशिकः ॥
शोषदाहौ तथा भस्मप्रोत्सारामृतवर्षणम् ।
आप्लावनञ्च कर्त्तव्यं पूरकुम्भकरेचकैः ॥
शरीराकारप्राप्तानां भूतानां यद्विशोधनम् ।
अव्यक्तब्रह्मसंस्पर्शाद् भूतशुद्धिरियं शिवे ॥
भूतशुद्धिं विधाये त्थमर्घ्यादिस्थापनं चरेत् ।
विदध्यान्मातृकान्यासं मन्त्रन्यासमनन्तरम् ॥
प्राणायामत्रयं कुर्यादृष्यादिन्यासमाचरेत् ।
न्यासौ कराङ्गयोः कृत्वात्मानं भगवतीं स्मरेत् ॥
प्राणायामं ततः कुर्यात्पूरकुम्भकरेचकैः ।
तत्त्रयं तु विधातव्यमनुलोमविलोमतः ॥

---

### भूतशुद्धिः

तन्त्र गन्धर्व में कहा गया है—पञ्चभूतात्मक यह देव स्वभाव से ही सर्वदा अशुद्ध है। सर्वदा ही मल-मूत्र-युक्त है। हे महेश्वरि ! हे देवेशि ! साधक उसी शरीर में ही विशुद्धि के लिये वायुबीज ( यं ), अग्निबीज (रं) सलिलबीज ( वं ); चन्द्रबीज ( ठं ) तथा पृथिवी बीज ( बं ) द्वारा पूरक, कुम्भक तथा रेचक करके शरीर का शोषण तथा दाह करें। उसी प्रकार भस्म प्रोत्सारण तथा अमृतवर्षण एवं आप्लावन भी कर्त्तव्य है। अव्यक्त ब्रह्म के संस्पर्श से देहात्मक पञ्चभूत का जो विशुद्धि है, हे शिवे ! यही भूतशुद्धि है इसी प्रकार से भूतशुद्धि करके अर्घ्यादि का स्थापन करें। अनन्तर मातृकान्यास, मन्त्रन्यास तथा प्राणायामत्रय तीनों प्राणायाम करके करके ऋष्यादिन्यास करें। करन्यास तथा अङ्गन्यास करके अपने को भगवती अर्थात् इष्ट देवता का स्वरूप ध्यान करें। उसके बाद पूरक कुम्भ तथा रेचक के द्वारा प्राणायाम करें। यह प्राणायाम अनुलोभ विलोम में तीन बार करना कर्त्तव्य है।

अर्घ्यं संस्थापयेन्मन्त्री यथान्यायं विधानतः।
त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्राणि कारयेत् ।
पुष्पैरभ्यर्च्यं तन्मन्त्री तत्राधारं निवेशयेत् ॥
मं वह्निमण्डलायेति दशकलात्मने नमः।
पूजयित्वा अर्घ्यपात्रं तु तत्रैव स्थापयेद् बुधः ॥
फडिति प्रक्षालनं कृत्वा पूजयेत्साधकोत्तमः।
अं अर्कमण्डलायेति द्वादशान्ते कलात्मने ॥
नम इत्यन्तमन्त्रेण पूजयेदर्कमण्डलम्।
मूलेनापूर्य देवेशि विमलेन जलेन तु ॥
ॐ सोममण्डलायेति षोडशान्ते कलात्मने।
नम इत्यन्तमन्त्रेण पूजयेच्चन्द्रमण्डलम् ॥
पूजयित्वा षडङ्गानि न्यसेत्साधकसत्तमः।
तत्राक्षतानि पुष्पाणि दूर्वादीने विनिःक्षिपेत् ॥
मूलमन्त्रं जपेत् स्पृष्ट्वा अङ्गमन्त्रं प्रविन्यसेत्।
हृन्मन्त्रेणाऽभिसम्पूज्य हस्ताभ्यां छादयेदपः ॥

हस्ताभ्यामिति मत्स्यमुद्रया इत्यर्थः।

---

साधक न्यायानुसार से यथाविधान से अर्घ्यस्थापन करें। साधक त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त तथा चतुरस्र ( चतुष्कोण ) करें। पुष्प के द्वारा उस मण्डल का अर्चना करके उस मण्डल में आधार ( त्रिपदी ) स्थापना करें। ज्ञानी साधक ''मं वह्निमण्डलाय दश कलात्मने नमः'' इस मन्त्र से आधार पूजा करके ही उसी आधार में ही अर्घ्यपात्र स्थापन करें। साधक प्रवर 'फट्' इस मन्त्र से प्राणायाम करके 'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से उस अर्घ्यपात्र में अर्कमण्डल का पूजा करें।

हे देवेशि ! मूलमन्त्र से शुद्धजल के द्वारा उस पात्र को पूर्ण करके 'उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से उस जल में सोममण्डल का पूजा करें। साधक प्रवर पूजा करके उस जल में षडङ्गन्यास करें। एवं आतपतण्डूल ( चावल, भूंजिया नहीं ) पुष्प तथा दुर्वा ( दुब ) आदि निक्षेप करें। जल को स्पर्श करके मूलमन्त्र जप तथा अङ्गमन्त्र का न्यास करें। 'नमः' मन्त्र के द्वारा पूजा करके दोनों के द्वारा जल को आच्छादन करें। 'हस्ताभ्यां' इस पद का अर्थ है—मत्स्यमुद्रया अर्थात् मत्स्यमुद्रा के द्वारा।

अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठ्य च ।
धेनुमुद्रां समापाद्य रोधयेत् त्स्वमुद्रया ।
अमृतं तज्जलं चिन्त्यं द्रव्यसंप्रोक्षणं चरेत् ॥
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ।
सदूर्वैः सर्वदेवानामेत दर्घ्यमुदीरितम् ॥

शिवविषये गृहिणां सगर्भैव दूर्वा । यथा —

अन्तः शून्यां त्रिपत्राञ्च योदद्यान्मच्छिरोपरि ।
जन्मन्यत्र दरिद्रः स्यादन्ते च नरकं व्रजेत् ॥
अर्घ्यपात्रस्थितैस्तोयैर्विना यत्तु निवेदनम् ।
देवेभ्यो दीयते यद्यद् तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥
अर्घ्यस्योत्तरतः स्थाप्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।
तत्पार्श्वे मधुपर्कञ्च दद्यात्तु मधुमिश्रितम् ॥
एतत् श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ।
पाद्यपात्रे च दातव्यमर्घ्यं ञ्चैवार्घ्यपात्रके ॥
जातीलवङ्गकंकोलं दद्यादाचमनीयके ।
आदौ द्रव्याणि संस्कृत्य पश्चात्तन्त्रोदिताञ्यसेत् ।

---

'फट्' मन्त्र से रक्षा करके कवच ( हुं ) द्वारा अवगुण्ठन करके 'वं' मन्त्र से धेनुमुद्रा दिखाकर सन्निरोधिनी मुद्रा के द्वारा सन्निरोधन करें। उस जल को अमृतस्वरूप चिन्ता करके द्रव्य का प्रोक्षण करें।

दुर्वायुक्त ( दूब ) गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल तथा सर्षप ( सरसों ) द्वारा यह अर्घ्य सर्वदेवता के सम्बन्ध में कहा गया है। गृहस्थों के लिये शिव पूजा सगभी दूब ही विहित है। इस विषय में प्रमाण है—जो व्यक्ति मेरे मस्तक के ऊपर अन्तः शून्य त्रिपत्र दूब प्रदान करता है, वह इसी जन्म में दरिद्र होता है एवं अन्त में अर्थात् देह के विनाश के बाद नरक में गमन करता है। अर्घ्यपात्र स्थित जल को छोड़कर जो निवेदन अथवा जो जो द्रव्य देवताओं को दिया जाता है, वह सभी निष्फल है। अर्घ्य के ऊपर भाग में पाद्य तथा आचमनीय पात्र स्थापन करें। उसके बगल में मधुमिश्रित मधुपर्क प्रदान करें। श्यामाघास, दूर्वा, दूब, पद्म तथा विष्णुक्रान्ता 'अपराजिता' द्वारा पाद्य कथित हुआ है।

यह पाद्य पाद्यपात्र में दें एवं अर्घ्यपात्र में अर्घ्य दें। आचमन पात्र में जातीफल, लवङ्ग, जायफल, लौंग तथा कट्फल दें।

मातृका द्विविधा प्रोक्ता पराचाप्यपरा तथा ।
सुषुम्नान्तः पराज्ञेया अपरादेहमाश्रिता ॥

## अथ मातृकाषडङ्गन्यासः

ज्ञानार्णवे—

अं आंमध्ये कवर्गन्तु इं ईं मध्ये चवर्गकम् ।
उं ऊं मध्ये टवर्गन्तु एं ऐं मध्ये तवर्गकम् ॥
ओं औं मध्ये पवर्गन्तु अं अः मध्ये यवर्गकम् ।
न्यासं कुर्यान्महेशानि हृदयादि षडङ्गकम् ॥
मूलादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं ध्यायेद्देवीं चिदात्मिकाम् ।
विन्दुस्रुत सुधासारैस्तर्पयन्मातृकां न्यसेत् ॥

## अन्तर्मातृकान्यासः

अथाऽन्तर्मातृकान्यासं श्रृणुष्व कमलानने ।
द्वयष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान्षोडश विन्यसेत् ॥

---

प्रथमसर्व सभी द्रव्य संस्कृत अर्थात् मन्त्र के द्वारा शुद्ध करके अनन्तर तन्त्रोक्त सभी न्यास को करें। मातृका दो प्रकार का कहा गया है—परा तथा अपरा। सुषुम्ना का मध्यस्थिता मातृका परा मातृका है। देह में आश्रित मातृका अपरा मातृका है।

### मातृका षडङ्गन्यास

ज्ञानार्णव तन्त्र में कहा गया है—हे महेश्वरि ! अं तथा आं—इसके बीच मध्य में क वर्ग अर्थात् 'अ'' इस वर्ण के बाद 'कं खं गं घं ङं' कहकर 'आं' पढ़ें। इसी प्रकार—इं, तथा ईं उनमें च वर्ग, उं एवं ऊं—उसमें ट वर्ग, एं तथा ऐं उसमें त वर्ग ॐ ओं तथा औं उसमें भी प वर्ग, अं तथा अः इसमें में जोड़कर य वर्ग युक्त हृदयादि षडङ्गन्यास करें। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक चित्स्वरूपिणी कुण्डलिनी देवी का ध्यान करना एवं विन्दु-क्षरित अमृत-धारा के द्वारा तर्पण करके मातृकान्यास करना।

### अन्तर्मातृकान्यास

हे कमलानने ! उसके बाद अन्तर्मातृकान्यास श्रवण करो 'सुनो'। कण्ठस्थित षोडशदल पद्म में षोडश स्वर का न्यास करना। द्वादशदल हृत्पद्म

द्वादशच्छदहृत्पद्मे कादीन्द्वादश विन्यसेत्।
दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन्न्यसेद्दश ॥
षट्पत्रे लिङ्गमूले च वकारादीन्न्यसेच्च षट्।
आधारे चतुरो वर्णान्न्यसेद्वादीन् चतुर्दले ॥
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्विदले विन्यसेत्प्रिये।
एकैकं वर्णमुच्चार्य मनसा तु ध्रुवादिकम्।
नमोऽन्तमिति विन्यास आन्तरः परिकीर्तितः ॥

ध्रुवादिकं प्रणवादिकमित्यर्थः।

शारदायाम्—

वाह्यं चैव मातृकान्यासं शृणुष्वावहितोमम।
ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेशु गण्डयोः ॥
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गस्यदोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च।
पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽसङ्के ॥
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वपाणिपादयुगे तथा।
जठराननयोर्न्यसेन्मातृकार्णान् यथाक्रमम् ॥

---

में ककारादि द्वादशवर्ण का न्यास करना। नाभिस्थित दशदल पद्म में डकारादि दसों वर्ण का न्यास करना। लिङ्गमूल में षडदल पद्म में वकारादि छ वर्ण का न्यास करना। मूलाधार में चतुर्द्दल पद्म में वकारादि चारों वर्ण का न्यास करना चाहिये।

हे प्रिये! भ्रूमध्यस्थित द्विदल पद्म में ह् क्ष वर्ण का न्यास करना। प्रणवादि नमोऽन्त अर्थात् आदि में 'ॐ' एवं अन्त में 'नमः' कहकर एक एक वर्ण का उच्चारण करके मन के द्वारा जो न्यास है, वह आन्तर न्यास कहा गया है। ध्रुवादि शब्द का अर्थ है—प्रणवादि। शारदातिक में कहा गया है—'बाह्य मातृकान्यास को अवहित होकर मेरे पास सुनों। ललाट, मुखवृत्त, नेत्र द्वय, कर्ण द्वय, नासिकाछिद्रद्वय, गण्डद्वय, ओष्ठ, दन्त, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, हस्त, पद, तथा शरीर के सन्धिस्थल ( गांठ ) एवं अग्रभाग, पार्श्वद्वय, पृष्ठ, नाभि, जठर, दक्षिण स्कन्ध, ककुद ( घाड़ ) वामस्कन्ध, हृदयावधि हस्तद्वय तथा पदद्वय उदर तथा मुख में यथाक्रम से अकारादि मातृकावर्ण समूहों का न्यास करना चाहिये।

मातृकान्यासमुद्रामाह मानसोल्लासे—

मनसा वा न्यसेन्न्यासान्पुष्पैरेवाऽथवा न्यसेत् ।
अंगुष्ठानामिकायोगान्न्यसेद्वा सर्वकर्मसु ॥

गौतमीये—

चतुर्द्धा मातृका प्रोक्त केवला विन्दुसंयुक्ता ।
सविसर्गा सोभया च रहस्यं कथयामिते ॥
अन्त्योपान्त्यौ स्वरौ विन्दुसर्गहीनौ न्यसेत्प्रिये ।
विद्याकरी केवला च सोभया मुक्तिदायिका ।
सविसर्गा पुत्रदात्री सविन्दुर्विन्दुदायिनी ॥

विन्दुदायिनो मोक्षदायिनीत्यर्थः ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं कलिकल्मषनाशनम् ।
यः कुर्यान्मातृकान्यासं स एव श्रीसदाशिवः ॥

## अथ विद्यान्यासः

नवरत्नेश्वरे—

मूर्ध्नि मूले च हृदये नेत्रत्रितय एव च ।
श्रोत्रयोर्युगले देवि मुखे च भुजयोः पुनः ॥

---

मानसोल्लास में वर्णित मातृकान्यास की मुद्रा कह रहे है–'मन के द्वारा सभी न्यास करना अथवा पुष्प के द्वारा ही सभी न्यास करना अथवा सभी कर्म में अंगुष्ठ तथा अनामिका के योग से तत्त्वमुद्रा न्यास करना ।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है–हे प्रिये ! मातृका का रहस्य तुम्हें कह रहा हूँ । मातृका चार प्रकार का कही गयी है–(१) केवला, (२) अनुस्वार-युक्ता, (३) विसर्गयुक्ता, (४) उभययुक्ता अर्थात् अनुस्वार विसर्गयुक्ता; अन्त्य तथा उपान्त्य स्वरद्वय (अं तथा अः) अनुस्वार विसर्ग न दे कर न्यास करें । केवला मातृका विद्याकरी, अनुस्वार-विसर्ग-युक्ता मातृका भुक्ति-दायिनी । विसर्गयुक्ता पुत्रप्रदा है । अनुस्वार युक्ता विन्दुदायिनी है अर्थात् मोक्षदायिनी है । जो व्यक्ति सौभाग्यप्रद, यशोवर्द्धक, आयुष्कर, कलिकल्मष-नाशक का मातृकान्यास करता है, वही साधक सदाशिव है ।

### अथ विद्यान्यास

नवरत्नेश्वर तन्त्र में कहा गया है–'हे देवि ! मस्तक, मूलाधार, हृदय, नेत्रत्रय, कर्णद्वय, मुख, बाहुद्वय, पृष्ठ, जानुद्वय तथा नाभि में विद्यान्यास

पृष्ठे जान्वोस्तथा नाभौ विद्यान्यासं समाचरेत् ।
एवं न्यासकृतः साक्षात्पशुः पशुपतिः स्वयम् ॥

फेत्कारिणीयतन्त्रे—

ॐकारसम्पुटीकृत्य मूलेन व्यापकं न्यसेत् ।
पञ्चधा नवधा वापि न्यसेद्वा सप्तधाऽथवा ॥

मूलमुच्चार्य शीर्षादिपादपर्यन्तं पादादिशीर्षान्तं हृदयादि-मुखान्तं व्यापकं न्यसेदित्यर्थः । इति विद्यान्यासः ॥

विशुद्धेश्वरे—

प्राणायामत्रयं कुर्याद्विद्यया तदनन्तरम् ।
पूरकं वामनाड्यां तु कुर्याद् षोडशधा जपैः ॥
कुम्भकं मध्यनाड्यान्तु चतुःषष्टिजपात्ततः ।
रेचकं पिङ्गलायान्तु तदर्द्धजपसंख्यया ॥
विपरीतं पुनः कुर्याद्यथाशक्त्या च साधकः ।
तदशक्तौ चतुर्द्धापि प्राणसंयमनं चरेत् ॥

---

करना । इस प्रकार न्यास करने वाला जीव स्वयं साक्षात् शिवस्वरूप होता है ।' फेत्कारिणी तन्त्र में कहा गया है—ॐ कार के द्वारा पुटित करके मूलमन्त्र से व्यापक न्यास करें । पाँच बार, नौ बार, अथवा सात बार व्यापक न्यास कर्त्तव्य है । मूलमन्त्र का उच्चारण करके मस्तक से पद तक, पद से मस्तक तक एवं हृदय से मुख तक व्यापक न्यास करें । यही विद्यान्यास है ।

विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है—'उसके बाद मूलमन्त्र के द्वारा प्राणायामत्रय को करें । षोडश बार मूलमन्त्र जप के द्वारा वाम नाड़ी में पूरक करें । अनन्तर चौंसठ बार मूलमन्त्र जप के द्वारा मध्य नाड़ी में कुम्भक करें । उसके बाद उसके आधा जप संख्या में अर्थात् बत्तीस बार मूलमन्त्र को जपें और पिङ्गला में रेचक करें । साधक शक्ति के अनुसार पुनः विपरीत अर्थात् १६ बार जप के द्वारा पिङ्गला में पूरक करें, ६४ बार जप के द्वारा मध्य नाड़ी में कुम्भक करें । ३२ बार जप के द्वारा वामनाड़ी में रेचक करें । उससे अशक्त होने पर 'चतुर्द्धा' अर्थात् चार बार जप के द्वारा प्राण संयमन ( पूरक ) करें ।

चतुर्द्धेति मूलविद्याश्चतुर्वारजपेन पूरकं, षोडशवार जपेन कुम्भकमष्टवारजपेन रेचकमित्यर्थः। तत्राप्यशक्तौ समयाङ्कमातृकायाम्।

इडया पूरयेद्वायुं सकृच्च मूलविद्यया।
मध्यनाड्या कुम्भयेच्च वेदसंख्यं वरानने॥
नेत्रसंख्याक्रमेणैव रेचयेत् पिङ्गलाध्वना।
पुनः पुनः क्रमेणैव यथा वारत्रयं भवेत्॥
वाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको भवेत्।
सम्पूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भको भवेत्।
वहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचको हि सः॥

ज्ञानार्णवे—

कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम्।
प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना।
प्राणायामं विना देवि पूजने नास्ति योग्यता॥

यामले—

ऋषिं न्यसेन्मूर्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे।
देवतां हृदये चैव बीजं तु गुह्यदेशके॥

---

मूलोक्त 'चतुर्द्धा' इस पद का अर्थ है—मूलविद्या का चार बार जप के द्वारा पूरक, षोडश बार जप के द्वारा कुम्भक एवं आठ बार जप के द्वारा रेचक करना। उससे भी अशक्त होने पर समयाङ्क मातृका में कहा गया है—"एक बार मूलमन्त्र के जप के द्वारा ईड़ा नाड़ी में वायु पूरण करें।

हे वरानने! मध्यनाड़ी में ४ बार कुम्भक करें। दो बार जप के द्वारा पिङ्गलानाड़ी में रेचक करें। जिस प्रकार तीन बार होता है, यथाक्रम में बार बार वही ही करें। बाह्य देश से उदर में वायु का आपूरण, यही पूरक है। जल पूर्ण कुम्भ के समान उदर में वायु का जो धारण है, वही कुम्भक है, एवं उदर से वहिर्भाग में वायु का जो रेचन है वही रेचक है। ज्ञानार्णव तन्त्र में कहा गया है—'तर्जनी तथा मध्यमा व्यतीत ( छोड़कर ) कनिष्ठा, अनामिका तथा अङ्गुष्ठ के द्वारा जो नासापुट धारण है, वही प्राणायाम है। हे देवि! प्राणायाम के बिना पूजा की योग्यता नही होती है।

शक्ति तु पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ॥

ऋषिं न्यसेदिति—

तत्तत्प्रकारणीयमृषिच्छन्द इत्यादिकं न्यसेदित्यर्थः।

ऋषिच्छन्दो देवतानां विन्यासेन विना यदा।
जपेत्तु साधको यस्तु न स तत्र फलं लभेत् ॥

कराङ्गन्यासमाह शारदायाम्—

अंगुष्ठादिष्वंगुलिषु न्यसेदङ्गैः सजातिभिः।

अङ्गैस्तत्तत्कल्पोक्तांगमन्त्रैः। सजातिभिः नम आदिभिः।

ज्ञानार्णवे—

नमः स्वाहा वषट् हुं वौषट् फडन्ताः सजातयः।
हृच्छिरः शिखा-कवच-नेत्रत्रयं तथास्त्रकम् ॥

शारदायाम्—

अस्त्रं तत्तलयोर्न्यस्य कुर्यात्तालत्रयादिकम्।
दिशस्तेनैव बध्नीयाच्छोटिकाभिः समाहितः ॥

---

यामल तन्त्र में कहा गया है—मस्तक में ऋषिन्यास करना। मुखपद्म में छन्दः, हृदय में देवता, गुह्य देश में बीज, पादद्वय में शक्ति एवं सर्वाङ्ग में कीलक न्यास करें। 'ऋषिं न्यसेत्' इसका अर्थ है—तत्तत् पूजा प्रकरणोक्त ऋषि छन्दः आदि का न्यास करना। जो साधक ऋषि, छन्द तथा देवता का विना न्यास किये यदि जप करता है, तब उसमें उसे फललाभ नहीं होता है।

शारदातिलक में कराङ्गन्यास कह रहे हैं—'सजाति' अर्थात् नमः द्वारा प्रभृतियुक्त अङ्गमन्त्र के द्वारा अंगुष्ठादि अंगुलि समूहों में कराङ्गन्यास करना। 'अङ्गैः' अर्थात्—तत्तत् कल्पोक्त अर्थात् तत्तत् देवता का बीज ध्यानादि प्रतिपादक जो शास्त्र, उस शास्त्रोक्त तत्तत् देवता के अङ्गमन्त्र के द्वारा। 'सजातिभिः' अर्थात्—नमः आदि युक्त। ज्ञानार्णव तन्त्र में कहा गया है—'नमः, स्वाहा, वषट्, हुँ, वौषट् तथा फट् ये सभी सजातीय मन्त्र हैं। हृदय, मस्तक शिखा, कवच नेत्रत्रय तथा अस्त्र ( करतल ) यह सभी न्यास स्थान अर्थात् यह सभी स्थान में न्यास करें। शारदातिलक में कहा गया है-दोनों हाथों के तलवे में अर्थात् करतल तथा करपृष्ठ में अस्त्र न्यास करके तालत्रय करें एवं समाहित होकर उसके द्वारा ही अर्थात् अस्त्रमन्त्र तथा छोटिका के द्वारा दशदिग्बन्धन करें।

## अथाङ्गन्यासः

हृदयादिषु विन्यसेदङ्गमन्त्रांस्ततः सुधीः ।
हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वह्निवल्लभा ॥
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ।
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात् ।
षडङ्गमन्त्रानित्युक्तान् षडङ्गेषु नियोजयेत् ॥

रुद्रयामले—

हृदयं मध्यमाऽनामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः ।
मध्यमार्जनीभ्यां स्यादंगुष्ठेन शिखा स्मृता ॥
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम् ।
प्रोक्तांगुलीभ्यामस्त्रं स्यादंक्लृप्तिरियं मता ॥ इति ।

तिसृभिरिति तर्जनीमध्यमानामाभिः ।

तर्जनीमध्यमानामाः प्रोक्ता नेत्रत्रये क्रमात् ।
यदि नेत्रद्वयं देवि तदा तर्जनीमध्यमे ॥

---

### अङ्गन्यास

उसके बाद सुधी साधक हृदय आदि में सभी अङ्गमन्त्रों का विन्यास करें । पहले हृदय में 'हृदयाय नमः' उसके बाद मस्तक में 'शिरसे स्वाहा' कहा गया है । 'शिखायै वषट्' कवच में कहा गया है । 'कवचाय हुं' नेत्रों में 'नेत्रत्रयाय वौषट्', अस्त्र में 'अस्त्राय फट्' इसी क्रम से पहले कहे गये षडङ्गमन्त्रों द्वारा हृदयादि छह अङ्गों में विन्यास करें ।

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है–'मध्यमा, अनामा तथा तर्जनी द्वारा हृदय, मध्यमा तथा तर्जनी द्वारा मस्तक, अङ्गुष्ठ द्वारा शिखा दश अंगुलि द्वारा कवच; तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका द्वारा नेत्र एवं उक्त अंगुलिद्वय अर्थात् मध्यमा तथा तर्जनी द्वारा अस्त्र कहा गया है । यही है अङ्गक्ल्प्ति अर्थात् अङ्गन्यास में अंगुलि नियम । 'तिसृभिः' इस पद का अर्थ है–तर्जनी, मध्यमा तथा अनामा द्वारा । नेत्रत्रय के सम्बन्ध में यथाक्रम से तर्जनी, मध्यमा तथा अनामा कहा गया है । हे देवि ! यदि नेत्रद्वय होता है तब तर्जनी ही तथा मध्यमा ही विहित ( निर्देशित ) हुआ है ।

भैरवतन्त्रे—

षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री त्रिःसकृद्वा यथाक्षमम्।

तन्त्रे—

अङ्गन्यास करन्यासौ षड्दीर्घमायया चरेत्।

सारावल्यां—

यद्बीजाद्या भवेद्विद्या तद्बीजेनाऽङ्गकल्पना।

कुलचूडामणौ—

एकाक्षरमधिकृत्य पूर्वं बीजं परं शक्तिरिति।
षड्दीर्घभाजाबीजेन कुर्यादङ्गादिकल्पना॥

कालीविद्यायां स्वच्छन्दसंग्रहे—

स्वरं विहाय बीजस्य दीर्घषट्कं नियोजयन्।
षडङ्गानि विदध्याद्वै सर्वत्राऽयं विधिः स्मृतः॥
पूजाजपार्च्चनाहोमाः सिद्धमन्त्रैः कृता अपि।
अङ्गन्यासेन हीनास्तु न दास्यन्ति फलान्यमी॥

इत्यङ्गन्यासस्य नित्यत्वम्। अथ स्वस्वकल्पोक्तषोढान्यासं कुर्यात्॥

---

भैरव तन्त्र में कहा गया है—साधक शक्ति के अनुसार तीनबार अथवा एक बार षडङ्गन्यास करें। तन्त्रों में कहा गया है—षट् दीर्घस्वरयुक्त मायाबीज के द्वारा कराङ्गन्यास करें। सारावली में कहा गया है—'विद्या का जो आद्यबीज होगा, उस बीज के द्वारा उस देवता के कराङ्गन्यास की कल्पना करें। कुलचूड़ामणि तन्त्र में कहा गया है—'एकाक्षर बीज के पूर्व वर्णबीज, परवर्ण शक्ति छह प्रकार दीर्घस्वर युक्त बीज के द्वारा कराङ्गन्यास करना। कालीविद्या प्रकरण में स्वच्छन्द संग्रह में कहा गया है—'बीज मन्त्र के स्वर को छोड़कर छः दीर्घस्वर युक्त करके षडङ्गन्यास करना चाहिये। सर्वत्र यह विधि कही गयी है। पूजा, जप, अर्चना एवं होम सिद्धमन्त्र के द्वारा अनुष्ठित होने पर भी अङ्गन्यास विहीन होने पर यह सभी मन्त्र फल प्रदान नहीं करते। इन सब वचनों में अङ्गन्यास का नित्यत्व कहा गया है। अनन्तर स्वस्वकल्पोक्त षोढान्यास करना चाहिये।

## षोढान्यासफलम्

षोढान्यासशरीरस्तु भवेद् गङ्गाधरः स्वयम् ।
अवश्यं प्रत्यहं कुर्यात् ततः पूजां जपं तथा ।
कृतेऽपि साधक श्रेष्ठो महादेवसमो भवेत् ॥
कृतन्यासोऽकृतन्यासं प्रणमेद्यदि पार्वति ।
तत्क्षणादकृतन्यासो विदीर्णहृदयो भवेत् ॥
यं नमन्ति महादेवि षोढापुटित विग्रहाः ।
अल्पायुः स भवेत्सद्यो देवता कम्पते भिया ।
न्यासं निर्वर्त्तयेद्देवि षोढान्यासपुरःसरम् ॥

## आत्मध्यानम्

तन्त्रगन्धर्वे—

आत्मानं साधको ध्यायेद्दिव्यस्त्रीभिरलंकृतम् ।
दिव्यं मूर्ध्नि महाच्छत्रं सहस्रदल कल्पितम् ॥
रत्नासनोपविष्टन्तु लाक्षारुणगृहस्थितम् ।
ताम्बूलरक्तवदनं नानागन्धसमन्वितम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरी रक्तचन्दनभूषितम् ।

---

### षोढान्यास फल

षोढान्यास शरीर अर्थात् जिसके शरीर में षोढान्यास अनुष्ठित हुआ है, वह स्वयं गङ्गाधर स्वरूप है। साधक श्रेष्ठ प्रतिदिन अवश्य ही षोढान्यास करें। उसके बाद पूजा, अनन्तर जप करें। षोढान्यास करने पर ही साधक महादेव तुल्य होगा। हे पार्वति ! कृत-षोढान्यास व्यक्ति यदि अकृत-षोढान्यास व्यक्ति को प्रणाम करता है तब तत्क्षणात् अकृतषोढान्यास व्यक्ति विदीर्ण हृदय होगा। हे महादेवि ! षोढापुटित-विग्रह अर्थात् जो लोग स्वदेह में षोढान्यास को किये हैं, वह व्यक्ति जिसे प्रणाम करता है, वह तत्क्षणात् अल्पायु हो जाता है। देवतागण इनके भय से कम्पित होते हैं। हे देवि ! षोढान्यासपूर्वक अन्य न्यास का अनुष्ठान करना चाहिये।

### आत्मध्यान

तन्त्रगन्धर्व में कहा गया है—साधक उनके आत्मा को दिव्य स्त्री गणों में परिवेष्टित ( घिरा हुआ ) मस्तक पर सहस्रदल कल्पित दिव्य महाछत्र-शोभित, लाक्षारसरञ्जित, अरुणवर्ण गृह में स्थित, रत्नमण्डित आसन पर उपविष्ट, ताम्बूलराग-रञ्जित-मुख, नाना गन्धलिप्त; चन्दन; अगुरु,

सर्वालङ्कारभूषाढयं देव्या विग्रहरूपिणम् ॥
सुगन्धिपुष्पाभरणरत्नादिभिरलंकृतम् ।
तस्य हस्तगता सिद्धिर्नान्यस्य च कदाचन ॥

## देवीध्यानम्

ततो देवीं हृदम्भोजे ध्यायेत्तद्गतमानसः ।
पुष्पं गृहीत्वा देवेशि मुद्रया तु त्रिखण्डया ॥
तां कुर्याद् हृदयासन्नां निमील्य लोचनद्वयम् ।
समकायशिरोग्रीवा भूत्वा स्थिरमना बुधः ॥

तत्रैव सफलध्यानकर्तव्यत्वमाह—

ध्यानं समाचरेन्मन्त्री सर्वपापप्रणाशनम् ।
ततो हृत्पद्मगां देवीं मानसैरुपचारकैः ॥
गन्धपुष्पधूपदीपैर्नैवेद्यैर्बलिभिस्तथा ।
भोगैश्च पूजयेदेनां साधकस्तु यथाविधि ॥
ततो वै मानसं जापं कुर्याद् होमञ्च साधकः ।
नमस्कृत्य तथा स्तुत्वा वहिर्यजनमाचरेत् ॥

---

कस्तूरी तथा रक्तचन्दन से भूषित सभी अलङ्कारों-भूषणों से आढच, देवी का विग्रहरूप, सुगन्धि पुष्प, आभरण तथा वस्त्रादि के द्वारा अलंकृत— इस प्रकार ध्यान करें। उनका अर्थात् उक्तरूप में आत्मध्यानकारी साधक को ही सिद्धि हस्तगत होती है अन्यथा नहीं।

### देवीध्यान

हे देवेशि ! अनन्तर तद्गतचित्त होकर त्रिखण्डा मुद्रा के द्वारा पुष्प ग्रहण करके हृत्पद्म में देवी का ध्यान करें। स्थिरचित्त ज्ञानी साधक देह, मस्तक तथा ग्रीवा सम करके नेत्रद्वय बन्द करके उस त्रिखण्ड मुद्रा को हृदय के निकट-वर्त्तिनी करें। उस तन्त्रगन्धर्व में ही ध्यान की कर्त्तव्यता एवं फल कह रहे हैं—'अनन्तर साधक सर्वपापनाशक का ध्यान करें, मानस उपचार के द्वारा हृत्पद्म स्थिता देवी की पूजा करें। साधक मानसिक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, बलि एवं भोगों के द्वारा यथाविधि इस देवी की पूजा करें। उसके बाद साधक अवश्य ही मानस जप तथा मानस होम करें। नमस्कार करके एवं स्तव करके वहिर्यजन अर्थात् बाह्यपूजा का अनुष्ठान करें।

ततो हृदयपद्मान्तः स्फुरन्तीं परमेश्वरीम् ।
सुषुम्नावर्त्मना नीत्वा शिर(व)स्थाने महेश्वरीम् ॥
तत्रानन्देन संयोज्य केवलानन्दरूपिणीम् ।
ततो वै हृदयासन्ने पूर्वस्थाने समानयेत् ॥
तामाज्ञास्थानमानीय वहन्नाभ्या विरेचयेत् ।
नासया दक्षया देवि वायुबीजेन मन्त्रवित् ।
करस्थकुसुमे देवीं स्थापयेदासनोपरि ॥

## देव्यावाहनम्

एह्येहि भगवत्यम्ब भक्तानुग्रहविग्रहे ।
योगिनीभिः समं देवि रक्षार्थं मम सर्व(दा)था ॥
देवेशि ! भक्तिसुलभे ! परिवार समन्विते ।
यावत् त्वां पूजयामीशे तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।
देवीं ध्यात्वा समावाह्य तत्तन्मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥

तत्तन्मुद्रा आवाहन्यादि पञ्चमुद्राः। शालग्रामादावाहनस्य निषेधमाह—

---

अनन्तर हृत्पद्म के अभ्यन्तर में प्रकाशमाना, केवल मात्र आनन्दमयी महेश्वरी को सुषुम्ना पथ से शिरःस्थान में अर्थात् सहस्रदल पद्म के निकट ले जाकर वहीं पर आनन्द के अर्थात् शिव के साथ मिलित कराकर बाद में हृदय समीपवर्त्ती पूर्वस्थान में आनयन करें।

### देवी का आवाहन

हे देवि ! मन्त्रज्ञ साधक उन्हें वहन्नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी द्वारा आज्ञा स्थान में आनयन करके दक्षिण नासिका में वायुबीज ( वं ) द्वारा विरेचन अर्थात् बहिर्गत करें। अनन्तर उस देवी के हस्तस्थित पुष्प में स्थापन करें। बाद में आसन के ऊपर अर्थात् मूर्त्ति आदि में 'एह्येहि भगवत्यम्ब०' इत्यादि आवाहन मन्त्र का पाठ करके देवी का ध्यान करके आवाहन करके उन उन मुद्राओं को देवी को दिखावें। उक्त आवाहन मन्त्र अर्थ है-हे अम्बे ! हे भगवति ! षडैश्वर्यशालिनि ! हे भक्तानुग्रहविग्रहे ! चिन्मयी होकर भी भक्तों के लिये अनुग्रह के विग्रह अर्थात् शरीरधारिणी ! हे देवि ! हे देवेशि ! हे भक्तिसुलभे ! हे परिवारपरिकृते ! तुम सभी प्रकार से मेरी रक्षा के लिये परिवारगणों के साथ, जब तक मैं तुम्हारी पूजा

शालग्रामे मणौ चाप्सु वह्नौ मनसि पुष्पके ।
एषु चावाहनं नास्ति तत्र देवाः सदा स्थिताः ॥

## द्रव्यदाननियमः

पूजाप्रकारमाह यामले—

आदौ मूलं समुच्चार्य पश्चाद् देयं समुच्चरेत् ।
सम्प्रदानं तदन्ते तु त्यागार्थकपदं ततः ।
एवं कल्पक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥
नार्चयेदेकहस्तेन पञ्चानां नखदर्शनम् ।
निष्फला कीर्त्तिता सा हि सर्वत्राऽपि न शोभते ॥

## षडङ्गाद्यावरणपूजा

चरणाधारनाभ्यन्तर्वक्षो मौलिषु पञ्चसु ।
पञ्चाञ्जलीन्प्रसूनैश्च विकीर्याऽथ महेश्वरि ।

---

करूँगा, तावत् काल तुम सुस्थिर होकर रहो। 'तत्तन्मुद्राः' अर्थात् आवाहनी आदि पाँच मुद्रा ।

शालग्राम आदि में आवाहन का निषेध कह रहे हैं—शालग्राम में, मणि में, जल में, अग्नि में, मन में तथा पुष्प (यन्त्र पुष्प में) इन सभी स्थानों में आवाहन नहीं होता क्योंकि उन सभी स्थानों में देवता सर्वदा अवस्थित हैं ।

## द्रव्यदान नियम

यामल तन्त्र में पूजा का प्रकार कह रहे हैं—'पहले मूलमन्त्र का उच्चारण करके बाद में देयवस्तु का नाम उच्चारण करें। उसके बाद सम्प्रदान देवता को अर्थात् चतुर्थी विभक्ति युक्त उन देवता का नाम उच्चारण करके अनन्तर त्यागार्थक पद ( नमः आदि ) उच्चारण करें। इस प्रकार कल्पक्रम से ही अर्थात् शास्त्रानुसार से ही परमेश्वरी की पूजा करें। एक हाथ के द्वारा पूजा नहीं करना चाहिये अर्थात् दाहिने हाथ के साथ बाँया हाथ युक्त करके पूजा करें। पञ्चनख नहीं दिखाना अर्थात् मुद्रायोग से उपचार देने पर पञ्चनख का दर्शन नहीं होता, किन्तु बिना मुद्रा से पूजा करने पर पञ्चनख का दर्शन हो सकता है। यही यहाँ निषिद्ध हुआ है क्योंकि वह पूजा निष्फल होगी और वह सर्वत्र ही अशोभनीय होगा ।

## षडङ्गादि आवरणपूजा

हे महेश्वरि ! अनन्तर चरण में, मूलाधार में, नाभिमध्य में तथा

देवीपादाम्बुजे द्वन्द्वे त्रिधा पुष्पाञ्जलीन् क्षिपेत् ॥
श्रीपादुकां पूजयामीत्यमुं मन्त्रं समुच्चरन् ।
अंगुष्ठाऽनामया दक्षे त्रिधा पुष्पाणि पातयेत् ॥
तर्पणं तु मुखे दद्यात्त्रिवारं तत्त्वमुद्रया ।
अंगुष्ठानामिकायोगः शिवशक्त्यात्मकः स्मृतः ॥
तयोः संयोगमात्रेण द्रव्यं स्यादमृतोपरम् ।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवताम् ॥

व्यक्तमाह—

अंगुष्ठानामिकाभ्याञ्च वामहस्तस्य पार्वति ।
तर्पयेत्सुन्दरीं देवीं समुद्राञ्च सवाहनाम् ॥ ]
षडङ्गं पूजयेत् तत्र देव्या देहेऽथ साधकः ।
हृदये हृदयाङ्गं तु शिरस्येव शिरोऽङ्गकम् ॥
शिखां शिखायां सम्पूज्य कवचं सर्वदेहके ।
नेत्रत्रयं त्रिनेत्रे तु दिक्ष्वस्त्रं च प्रपूजयेत् ॥
नमः स्वाहा वषट् हुञ्च वौषट् फट् जातिसंयुतम् ।
षडङ्गयुवतो नित्यं देव्यो देहेषु संस्थिता ॥

---

मस्तक पर पाँचों स्थानों में पुष्प द्वारा पञ्चअञ्जलि अर्थात् पञ्च-पुष्पाञ्जलि प्रदान करके देवी के पादपद्मयुगल में तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करें। "श्रीपादुकां पूजयामि" यह मन्त्र उच्चारण करके अंगुष्ठ युक्त अनामा के द्वारा दक्षिण भाग में तीन बार पुष्प प्रदान करें एवं तत्त्वमुद्रा के द्वारा मुख में तीन बार तर्पण करें। अंगुष्ठ तथा अनामिका के संयोग से शिव तथा शक्तिस्वरूप कहा गया है। उस अंगुष्ठ तथा अनामिका के संयोगमात्र से ही द्रव्य अमृततुल्य होता है। इसी कारण उस दिव्य अमृत के द्वारा परदेवता का तर्पण करें।

स्पष्ट कह रहे हैं—हे पार्वति ! बाँये हाथ के अंगुष्ठ तथा अनामिका के द्वारा मुद्रायुक्ता सवाहना सुन्दरी देवी का तर्पण करें। अनन्तर साधक उस देवी के देह में षडङ्गपूजा करें। नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट्, फट् तथा स्वाहा संयुक्त करके हृदय में हृदयाङ्ग (हृदयाय नमः), मस्तक में ही शिरोऽङ्ग, शिखा में शिखा की पूजा करके समस्त देह में कवच तथा तीनों नेत्रों में नेत्रत्रय एवं दिक् समूहों में अस्त्र की पूजा करें। उक्त षडङ्ग युवती देवी के देह में देवता सर्वदा नित्य अवस्थित हैं।

तन्त्रे—

इज्यं हृदयमाग्नेय्यामैशान्यां तु शिरो यजेत् ।
नैर्ऋत्यां तु शिखा पूज्या वायव्यां कवचं यजेत् ॥
अभ्यर्च्य पुरतो नेत्रं दिक्षु चास्त्रथार्चयेत् ।
प्रधानतनुरूपाणि षडङ्गानि प्रपूजयेत् ॥

शारदाटीकायाम्—

वायव्यादीशपर्यन्तं गुरुपंक्ति समर्चयेत् ।

गुरुपंक्त्याज्ञाने यामले—

अविज्ञातगुरुर्देवि गुरुञ्च परमं गुरुम् ।
परापरगुरुं चैव परमेष्ठिगुरुं तथा ।
आग्नेयादिचतुष्कोणे पूजयेत् परमेश्वरि ॥

आग्नेयादि कोणमाह तन्त्रगन्धर्वे—

ईशानमग्निकोणं स्याद्वायुकोणं तथेशकम् ।
राक्षसं वायुकोणं स्यादग्निश्च राक्षसं भवेत् ॥

गन्धर्वतन्त्रे—

अथवा रश्मयः सर्वा देवीरूपा विचिन्तयेत् ।
निःसरन्ति यथा नित्यं सूर्यविम्बान्मरीचयः ॥

---

तन्त्रों में कहा गया है—"अग्निकोण में हृदय की पूजा करें, ईशान कोण में शिरः ( मस्तक ) की पूजा करें । नैर्ऋत कोण में शिखा की पूजा करें । वायुकोण में कवच की पूजा करें । पूरोभाग में ( सम्मुख में ) नेत्र की पूजा करें । अनन्तर दिक्समूहों में अस्त्र की पूजा करें । प्रधान तनुस्वरूप षडङ्ग समूहों की अवश्य पूजा करें ।

शारदातिलक की टीका में कहा गया है—'वायुकोण से ईशान कोण तक गुरुपंक्ति की पूजा करें ।' गुरु पंक्ति का ज्ञान न रहने पर यामलतन्त्र में कहा है । हे देवि ! हे परमेश्वरि ! जो साधक गुरुपंक्ति से अज्ञात हों, वह गुरु, परमगुरु, परापरगुरु, तथा परमेष्ठी गुरु की आग्नेयादि चारों कोणों में पूजा करें ।

तन्त्रगन्धर्व में आग्नेयादि कोण कहे गये हैं—'ईशानकोण अग्निकोण होगा । उसी प्रकार वायुकोण भी ईशान कोण है, नैर्ऋतकोण भी वायुकोण होगा तथा अग्निकोण भी नैर्ऋत कोण होगा" गन्धर्वतन्त्र में कहा गया है—'अथवा समस्त रश्मि ( अङ्ग ) देवता का देवीस्वरूप चिन्ता करें । सूर्य-

देव्यस्तथा समुत्पन्ना महादेव्याः शरीरतः ।
श्रीपात्रामृततोयेन रश्मिवृन्दं प्रतर्पयेत् ॥
प्राचीं दिशं तु विज्ञाय पूजयेदङ्गदेवताः ।
स्वस्थानमाश्रित्य देवाः सर्वाभीष्टफलप्रदाः ।
स्वस्थानवर्जिता देवाः शोकदुःखफलप्रदः ॥

## पूर्वादिदिग्निरूपणम्

प्राच्यादिदिशमाह नवरत्नेश्वरे—

पूज्यपूजकमध्यं तु पूर्वाशैव व्यवस्थिता ।
पूज्यस्य दक्षिणे दक्षा चोत्तरे चोत्तरा तथा ।
पश्चिमे पश्चिमा ज्ञेया पूजायां सर्वतः शिवे ॥

सर्वत इति षडङ्गपूजायाम् ।

आत्मनः सम्मुखञ्चैव देवतायाश्च सम्मुखम् ।
देवस्य मस्तकं कुर्यात्कुसुमेनार्चितं सदा ।
पूजाकाले देवताया नोपरि भ्रामयेत्करम् ॥

---

विम्ब से जिस प्रकार किरण समूह सर्वदा निर्गत होता है, उसी प्रकार महादेवी के शरीर से देवीगण ( अङ्गदेवता ) उत्पन्न हुये हैं'। श्रीपात्रस्थित अमृतरूप जल के द्वारा रश्मिवृन्द का तर्पण करें। पूर्वदिक का निर्णय करके अङ्गदेवता की पूजा करें। स्वस्थानस्थित देवतागण समस्त अभीष्ट प्रदान करते हैं। स्वस्थान वर्जित होने पर अर्थात् जिनका जो स्थान नहीं है, उसी स्थान में उनकी पूजा करने पर देवतागण शोक तथा दुःखस्वरूप फल को प्रदान करते हैं।

### पूर्वादिदिशाओं का निरूपण

नवरत्नेश्वर में प्राची आदि दिक् कह रहे हैं—हे शिवे ! सर्वतः अर्थात् षडङ्ग पूजा के पूज्य देवता तथा पूजक के मध्यवर्त्ती दिक् पूर्व दिक् कहा गया है। पूज्य देवता के दक्षिण में दक्षिण दिक् एवं बायें तरफ उत्तरदिक् एवं पश्चिम में ( पश्चात् दिक् ) पश्चिम दिक् जानना चाहिये। 'सर्वतः' अर्थात् षडङ्ग पूजा है, देवता का मस्तक (स्वरूप) आत्मा का ( पूजक का ) सम्मुखवर्त्ती एवं देवता का सम्मुखवर्त्ती स्थान सर्वदा कुसुमों के द्वारा आच्छादित करना चाहिये। पूजा के समय देवता के ऊपर में हस्त भ्रमण

त्रिपुराविषये—

पुरन्दरमुखो देवी पूजयेत्त्रिपुरां यदि ।
देवीपृष्ठं भवेत् प्राची प्रतीची त्रिपुरापुरः ॥

कृताञ्जलिः—"श्रीमत्यमुकि देवि आवरणं ते पूजयामि" इत्यनुज्ञां लब्ध्वा आवरणं पूजयेत् ।

पद्मपत्रे ततश्चक्रे देव्या अग्रदलादितः ।
वामावर्तेन देवेशि क्रमेण परिपूजयेत् ।
स्वकल्पोक्त क्रमेणैव पूजयेदङ्गदेवताः ॥

कुलार्णवे—

त्रिवारं पूजयेद्वापि सकृद्वापि यथेच्छया ।

यामले—

देव्यस्त्रं पूजयेद्दिक्षु पुनर्देवीं प्रपूजयेत् ।
सवाहनाः सवर्गाश्च परिवारास्ततः परम् ॥
तथा सर्वोपचारैश्च पूजितास्तर्पितास्तथा ।
सन्त्वित्येतन्मनुं जप्त्वा देव्यै पूजां समर्पयेत् ॥
पूजां सर्पयेद्देव्यै गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
विशेषार्घ्योदकेनैव तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥

---

न करें। त्रिपुरा के विषय में कहा गया है—"साधक यदि पुरन्दर अर्थात् पूर्वमुख होकर त्रिपुरा की पूजा करते हैं, तब देवी का पृष्ठ देश पूर्वदिक् होगा। त्रिपुरा के सम्मुख पश्चिम दिक् होगा।

कृताञ्जलि होकर 'श्रीमत्यमुकि देवि ! आवरणं ते पूजयामि' (हे देवि ! मैं तुम्हारे आवरण देवता की पूजा कर रहा हूँ) इस मन्त्र से देवी की अनुज्ञा ग्रहण करके आवरण देवता की पूजा करें। हे देवेशि ! पद्मपत्र में अग्रदलादि से वामावर्त्तक्रम में देवी की आवरण पूजा करें। उसके बाद चक्र-पूजा करें। स्वकल्पोक्त क्रम से ही अङ्गदेवतागणों की पूजा करें।

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है—अपने इच्छा के अनुसार तीनबार अथवा एक बार पूजा करें। यामल तन्त्र में कहा गया है—'दिक् समूहों में देवी के अस्त्र की पूजा करके पुनः देवी की पूजा करें। अनन्तर 'सवाहनाः सवर्गाः परिवाराः सर्वोपचारैः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' इस मन्त्र का जप करके महादेवी को समर्पण करें। गन्ध, पुष्प तथा अक्षतादि के द्वारा देवी को पूजा समर्पित करना एवं विशेषार्घ्य जल के द्वारा ही परमेश्वरि का तर्पण करें।

## मन्त्रजपप्रकारः

ध्यात्वा कामकलां देहे विद्याजपं समाचरेत् ।
मन्त्रार्थस्मृतिपूर्वं तु सहस्रादिजपं चरेत् ॥

बृहच्छ्रीक्रमे—

न जपेत्त्रिशता न्यूनं साधकस्तु कदाचन ।

तन्त्रे—

सहस्रं वा शतं वापि दश वापि जपं तथा ।
कुर्यादष्टाधिकं तेषामिति जप्यविधिः स्मृतः ॥
जपं समर्पयेद्देवि गन्धपुष्वार्घ्यवारिभिः ।
तेजोमयं जपं देव्या वामहस्ते निवेदयेत् ॥
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वमिति मन्त्रेण मन्त्रवित् ।
ततो नीराजनं कुर्याद्दशवारं तु दीपकैः ॥
स्तुवन् प्रदक्षिणीकृत्य दण्डवद् प्रणमेद् भुवि ।
आत्मार्पणेन मनुना कुर्यादात्मार्पणं प्रिये ॥

---

### मन्त्रजपप्रकार

देह में कामकला का ध्यान करके मन्त्र का जप करें। वृहत् श्रीक्रम में कहा गया है—"साधक कभी भी त्रिश (३० बार) से कम जप न करें। तन्त्र में कहा गया है"—'सहस्रवार, शतवार अथवा दस वार जप करना चाहिये। उन संख्याओं की अपेक्षा आठ वार अधिक जप करना अर्थात् १००८, १०८ अथवा बार १८ मन्त्र जप का करें।

यही जप की विधि है।

हे देवि ! गन्ध, पुष्प तथा अर्घ्य जल के द्वारा जप समर्पण करें। मन्त्रवित् साधक 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं०' इस मन्त्र के द्वारा तेजोमय जप को देवी के वामहस्त में निवेदन करना चाहिये। अनन्तर दीपमाला के द्वारा दस बार निराञ्जन ( आरती ) करना। स्तव पाठ करते करते प्रदक्षिण करके भूमि पर दण्डवत् साष्टाङ्ग प्रणाम करें।

हे प्रिये ! अनन्तर आत्मसमर्पण मन्त्र से आत्मसमर्पण करें।

## आत्मसमर्पणम्

तदुक्तं यामले—

इतः पूर्वमिति प्रोच्य प्राणबुद्धीति चोच्चरेत् ।
देहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥
सर्वावस्थासु मनसा वाचा च कर्मणेति च ।
हस्ताभ्यामथ पद्भ्याञ्च तथोदरेण संस्मरेत् ॥
शिश्ना यत्स्मृतमित्येतद्यदुक्तं यत्कृतं तथा ।
सर्वमित्यपि तद्ब्रह्मार्पणमस्त्वग्निवल्लभा ॥
प्रणवञ्च मदीयं मां सकलं साध्यदेवताम् ।
ङेन्तां समर्पितं तारं तत्सदित्यपि संस्मरेत् ॥
अर्घ्योदकाक्षतैर्मूलैर्देव्यै पूजां समर्पयेत् ।
पूजिताऽस्त्वियनेनैव देव्यै पूजां समर्पयेत् ।
देव्या गृहीतमित्येवं भावयेद्यतमानसः ॥

विश्वसारे—

आज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात्साधनस्य च ।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

---

### आत्मसमर्पण

यामल तन्त्र में वही मन्त्र कहा गया है यथा—'इतः पूर्वं' यह कहकर 'प्राण बुद्धि' यह कहें। बाद में 'देहधर्माधिकारतो जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-सर्वावस्थासु मनसा वाचा कर्मणा' यह कहकर अनन्तर 'हस्ताभ्यां', बाद में 'पद्भ्यां' तथा 'उदरेण' कहें। बाद में 'शिश्ना यत् स्मृतं' यह कहकर 'यदुक्तं यत् कृतं' एवं 'सर्वं' यह कहकर 'तद् ब्रह्मार्पणस्तु स्वाहा' कहें। 'ॐ मदीयं मां फलम्' एवं 'ङेन्त साध्य देवता' अर्थात् चतुर्थी विभक्त्यन्त इष्टदेवता ( अमुक देवतायै ) यह कहकर 'सर्मपितं' कहें। बाद में 'ॐ तत् सत्' कहें। अर्घ्योदक तथा अक्षत द्वारा देवी को पूजा सर्मपित करें। संयत-चित्त साधक 'पूजितोऽस्तु' इस मन्त्र के द्वारा ही देवी को पूजा समर्पित करें एवं देवी कर्तृक समस्त गृहीत हुआ है—इस प्रकार भावना करें।

अनन्तर विश्वसार तन्त्रोक्त 'अज्ञानाद्वा' इत्यादि प्रार्थना मन्त्र से प्रार्थना करें। मन्त्रार्थ—अज्ञान के द्वारा, प्रमाद वशतः एवं साधन अर्थात्

द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाभक्तिविवर्जितम् ।
तत्सर्वं कृपया देवि क्षमस्व त्वं दयानिधे ॥
यन्मया क्रियते कर्म महद्वा स्वल्पमेव वा ।
तत्सर्वञ्च जगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमञ्जलिः ॥

कुलार्णवे—

कृताञ्जलिर्महेशानि रक्षामन्त्रं पठेत्सुधीः ।
ॐ काली विदध्यान्मम पुत्ररक्षां तथा कराली मम देहरक्षाम् ।
दुर्गाऽट्टहासैर्मम शत्रुनाशं करोतु तारा विदधतु राज्यम् ॥
पठेत्सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं मोक्षस्य साधनम् ।
स्तोत्रैः स्तुत्वा पठेद्देवि कवचं सर्वकामदम् ।
कवचं हि बिना देवि शूद्रस्तु जपमाचरेत् ॥

कवचं हि बिनेति । स्वाहाप्रणवसंयुक्तं कवचं विनेत्यर्थः ।

---

द्रव्यादि का वैकल्य ( वैगुण्य ) वशतः ( कारण ) जो कुछ भी न्यून ( कम ) अथवा अतिरिक्त हुआ है, वह सब क्षमा करना । हे देवि ! हे दयानिधे ! जो सभी कार्य द्रव्यहीन, क्रियाहीन तथा श्रद्धाभक्ति विवर्जित हुआ है, वह सब तुम कृपापूर्वक ( कृपा करके ) क्षमा करना । हे जगद्धात्रि ! मेरे द्वारा महत् अथवा थोड़ा सा जो कर्म अनुष्ठित हुआ है, वह सभी क्षमा करना । यही अञ्जलि अर्थात् प्रार्थना है ।

कुलार्णव तन्त्र में उक्त हुआ है—हे महेशानि ! साधक कृताञ्जलि होकर 'काली विदध्यान्मम' इत्यादि रक्षामन्त्र को पढ़ें । मन्त्रार्थ—'काली मेरे पुत्रों को रक्षा करें । कराली मेरे देह का रक्षा करें ।

दुर्गा अट्टहास्य के द्वारा मेरे शत्रु का नाश करें । हे देवि ! मोक्षजनक सहस्रनाम नामक स्तोत्र को पढ़ना एवं स्तोत्र के द्वारा स्तव करके सर्वकामप्रद कवच को पढ़ना । हे देवि ! शूद्र कवच को छोड़कर जप करें । 'कवचं हि विना' इस वाक्य का अर्थ है—स्वाहा-प्रणव संयुक्त कवच को छोड़कर अर्थात् जिस कवच में स्वाहा तथा प्रणव है, वह कवच शूद्र न पढ़े । देवी की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करके विसर्जन करना । उसके बाद पुष्प आघ्रण करके सुषुम्ना के पथ से स्वीय विद्या को ( इष्ट देवता के ) स्वीय ( अपने )

देवीं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।
विधाय पश्चात्स्वां विद्यां स्वीयहृत्सरसोरुहे ॥
सुषुम्नावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेत्ततः ।
क्षमस्वेति च मन्त्रेण हृदि देवीं विसर्जयेत् ॥

भैरवीतन्त्रे—

संहार मुद्रया देवि क्षमस्वेति विसर्जयेत् ।
तन्नैवेद्यशतांशं वा सहस्रांशं च भैरवि ।
दद्यादुच्छिष्टचाण्डाल्यै स्वाहेति मनुना ततः ॥

अथवा—

निर्माल्येन यजेद्देवीमीशे निर्माल्यवासिनीम् ।
निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गे चानुलेपनम् ॥
नैवेद्यञ्चोपभुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने ।
शताभिमन्त्रितं पुष्पं चन्दनं मूर्ध्नि भालतः ॥
धृत्वाऽवश्यं नयेद्वश्यं त्रैलोक्यमपि दर्शनात् ।
यं यं गच्छामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुषा ॥
स एव दासतां यातु यदि शक्रसमो भवेत् ।
अनेन तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यमपि मोहयेत् ॥

---

हृत्पद्म में आनयन करके उद्वासन करना। अनन्तर 'क्षमस्व' इस मन्त्र के द्वारा हृदय में देवी का विसर्जन करें।

भैरव तन्त्र में उक्त हुआ है—हे देवि ! संहार मुद्रा के द्वारा 'क्षमस्व०' इस मन्त्र से विसर्जन करें। हे भैरवि ! अनन्तर उस नैवेद्य का शतांश अथवा सहस्रांश 'उच्छिष्ट चाण्डाल्यै स्वाहा' इस मन्त्र से उच्छिष्ट-चाण्डाली को दें अथवा ईशान कोण में निर्माल्य द्वारा निर्माल्यवासिनी देवी की पूजा करें। निर्माल्य मस्तक पर धारण करें एवं अनुलेपन अर्थात् चन्दनादि सर्वांग में लेपन करें। देवी के भक्तगणों को नैवेद्य देकर स्वयं भक्षण करें। साधक शतमन्त्र से अभिमन्त्रित पुष्प तथा चन्दन मस्तक पर एवं ललाट में धारण करके दर्शन के द्वारा त्रैलोक्य को भी निश्चय ही-वशीभूत कर सकता है। "यं यं गच्छामि" इत्यादि मन्त्र से तिलक धारण करके त्रैलोक्य को भी वशीभूत कर सकता है। उक्त मन्त्र का अर्थ है—मैं जहाँ-जहाँ जाउंगा, जिसे-जिसे चक्षु के द्वारा देखूंगा, यदि वह इन्द्रतुल्य भी होता है, तब वह भी दासत्व को प्राप्त हो अर्थात् मेरे वशीभूत हो जाय। सद्यः अथवा पर्य्युसित

सद्यः पर्युसितं वापि निर्माल्यं प्रदूष्यति ।
ब्रह्मरध्रे गुप्तस्थाने यन्त्रलेपं तु धारयेत् ।
उदकं तरुमूले वा निर्माल्यं तस्य संत्यजेत् ॥

रुद्रयामले—

पूर्वजन्मार्जितैः पुण्यैर्ज्ञात्वैनां परदेवताम् ।
यो भजेद्भक्तिभावेन सद्यः श्रीसम्पदां पदम् ।
यदाराधनमात्रेण जीवन्मुक्तिः प्रजायते ॥ इति वचनात् ।
देव्याः पूजा त्रिधा प्रोक्ता स्थूलमाभ्यन्तरं तथा ।
स्थूलं मन्त्रमयीं पूजां स्थूलविग्रहचिन्तनम् ॥
मानसैरुपचारैस्तु पूजा चाभ्यन्तरं प्रिये ।
कर्मयोगं विना देवि ज्ञानयोगो न सिध्यति ।
ज्ञानेन कर्मणा वापि सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्द-
गिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां प्रातःकृत्यनिर्णयो
नित्यपूजाप्रमाणनिर्णयो नाम सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

---

निर्माल्य दूषित नहीं होता है। ब्रह्मरन्ध्र में, गुप्त स्थान में, यन्त्र लेप धारण करें। जल में तथा वृक्षमूल में देवी के निर्माल्य का त्याग करें।

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—पूर्वजन्मार्जित पुण्य से इस परदेवता को जान कर जो व्यक्ति भक्तिभाव से भजन करते हैं, वह तत्क्षणात् धन सम्पत्ति का अधिकारी होते हैं क्योंकि वचनों में उक्त है कि—'जिनकी आराधना-मात्र से ही जीवन्मुक्ति उत्पन्न होता है। देवी की पूजा के दो प्रकारहैं— स्थूल एवंआभ्यन्तर (सूक्ष्म)। स्थूलविग्रह का चिन्तन तथा मन्त्रमयी जो पूजा है, वह स्थूल पूजा है। हे प्रिये ! मानस उपचार के द्वारा जो पूजा है, वह आभ्यन्तर पूजा है। हे देवि ! कर्मयोग ( उपासनादि ) व्यतीत ज्ञानयोग सिद्ध नहीं होता। ज्ञान तथा कर्म के द्वारा ही सिद्धि होता है, अन्य किसी प्रकार से नहीं।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत
शाक्तानन्दतरङ्गिणी के नित्यपूजा-प्रणामनिर्णय
नामक सप्तम उल्लास समाप्त।

# अष्टमोल्लासः

## मालानिर्णयः

अथ वक्ष्ये महेशानि मालायाः परिनिर्णयम् ।
नित्यं जपं करे कुर्याद् न तु काम्यं कदाचन् ।
काम्यमपि करे कुर्याद् मालाभावे च सुन्दरि ॥

अथ करमाला यामले—

अनामायास्त्रयं पर्वं कनिष्ठायास्त्रिपर्विका ।
मध्यमायास्त्रयं पर्वं तर्जनी मूलपर्वं च ॥
प्रादक्षिण्यक्रमेणैव जपेद्दशसु पर्वसु ।
शक्तिमाला समाख्याता सर्वमन्त्रप्रदीपिका ॥
पर्वद्वयं तु तर्जन्या मेरुं तद्विद्धि पार्वति ।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् तत्रमानवः ।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशोबलम् ॥

श्रीविद्यायाम्—

अनामामध्यमायाश्च मूलाग्रञ्च द्वयं द्वयम् ।

---

मालानिर्णय

हे महेशानि ! अनन्तर मालानिर्णय कह रहा हूँ—हे सुन्दरि ! नित्य जप हाथ में करना; किन्तु काम्य जप कभी भी हाथ में मत करना। माला के अभाव हाथ में भी काम्य जप हो सकता है। अनन्तर यामल तन्त्र में करमाला उक्त हुआ है। यथा—'अनामिका का तीनपर्व, कनिष्ठा अंगुलि तीनपर्व, मध्यमा का तीनपर्व एवं तर्जनी का मूलपर्व—प्रदक्षिण क्रम से इसे दस पर्व में जप करें। यह सर्वमन्त्र प्रदीपक शक्तिमाला कहकर कथित हुआ है। हे पार्वति ! तर्जनी के अग्र तथा मध्यरूप जो पर्वद्वय है, वह मेरु जानना। उस तर्जनी के अग्र में तथा मध्य में जो मानव जप करता है, उसका आयु, विद्या, यश तथा बल—यह चारों नष्ट होता है।

श्रीविद्या के विषय में कहा गया है। हे देवि ! हे महेश्वरि ! अनामा

कनिष्ठायाश्च तर्जन्यास्त्रयं पर्व महेश्वरि ॥
अनामामध्ययोर्मध्यं मेरुश्च द्वितयं स्मृतम् ।
प्रादक्षिण्यक्रमाद्देवि जपेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ॥

## करमालायां जपप्रकारः

हृदये हस्तमारोप्य तिर्यक् कृत्वा करांगुलीः ।
आच्छाद्य वाससा हस्तौ दक्षिणेन सदा जपेत् ॥
अंगुलीनां वियुञ्जीत किञ्चिदाकुञ्चयेत्तलम् ।
अंगुलीनां वियोगाच्च छिद्रेण स्रवते जपः ॥
अंगुल्यग्रेषु यज्जप्तुं यज्जप्तुं मेरुलंघने ।
सर्वसन्धिसु यज्जप्तुं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

यामले मणिनियममाह—

मण्यष्टकशतेनैव निर्मिता या तु मालिका ।
राज्यं वितनुते नित्यं देहान्ते मोक्षदायिनी ॥
मोक्षदा पञ्चविंशत्या त्रिंशता धनवृद्धिदा ।
चतुर्दशमयी माला मोक्षदा भोगवर्द्धिनी ।

---

तथा मध्यमा का मूल दोनों पर्व एवं अग्र दो पर्व, कनिष्ठा का तीन पर्व तथा तर्जनी का तीन पर्व ( यह दस पर्व ) प्रदक्षिण क्रम से त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र का जप करें। अनामा तथा मध्यमा का मध्य पर्वद्वय को मेरु कहा गया है।

### करमाला जपप्रकार

हृदय में हस्त को रखकर करांगुलियों को वक्र करके वस्त्र के द्वारा हस्तद्वय सर्वदा आच्छादित करके दक्षिण हस्त में जप करें। अंगुलियों को बियुक्त (फांक) मत करना। हस्ततल को किञ्चित् आकुञ्चित करें। अंगुलियों का विभाग जन्य छिद्र के द्वारा जप क्षरित होता है अर्थात् जप का फल नहीं होगा। अंगुलि के अग्रभाग में जो जप, मेरुलङ्घन में अर्थात् लङ्घन करके जो जप एवं पर्व सन्धि से सभी जप निष्फल होगें।

यामल तन्त्र में मणि नियम कह रहे हैं—'अष्टोत्तर शतमणि निर्मित माला सर्वदा राज्य को विस्तार करता है एवं देहान्त में मोक्षदान करता है। पञ्चविंशति ( २५ संख्यक ) मणि के द्वारा निर्मित माला मोक्षप्रदा है। त्रिशत् संख्यक मणिद्वारा निर्मित माला धनवृद्धिदा है, चतुर्दश १४

सर्वार्थाः सप्तविंशत्या पञ्चदश्याभिचारिके ॥
( पञ्चविंशत्याभिचारके इत्यपि पाठः )
पञ्चाशता कार्यसिद्धिश्चतुःपञ्चाशता तथा ।
अष्टोत्तरशतेनैव सर्वसिद्धिरुदाहृता ।
त्रिपुरायाणपेशस्ता रुद्राक्षै रक्तचन्दनैः ॥
भैरवीविषये वाराहीतन्त्रे—
सुवर्णमणिभिर्माला स्फाटिकी शङ्खनिर्मिता ।
प्रवालैरपि वा कार्या पुत्रजीवं विवर्जयेत् ॥
श्मशानधुस्तूरैर्मालां कुर्याद्धूमावतो विधौ ।
रक्तेन चन्दनेनाऽपि बालामालां प्रकल्पयेत् ॥
दन्तेन कालिकायास्तु राजदन्तस्य मेरुणा ।
उग्रताराजपे शस्ता महाशङ्खस्य मालिका ॥
उन्मुख्याश्च तथा ज्ञेया मालिका सिद्धिदायिका ।
शाक्तानां स्फाटिकी माला रक्तचन्दनसम्भवा ॥
रुद्राक्षमालिका ज्ञेया चतुर्वर्गफलप्रदा ।

---

मणियुक्ता माला मोक्षप्रदा तथा भोगवृद्धिकरी है, सप्तविंशति २७ मणिद्वारा निर्मित माला सर्वार्थसाधिनी है, पञ्चदश १५ मणिद्वारा निर्मित माला अभिचारकरी है, पञ्चशत ५० मणिद्वारा निर्मित माला कार्यसिद्धिदा है, चतुपञ्चाशत् ५४ मणिद्वारा भी वही अर्थात् उसी प्रकार कार्यसिद्धि एवं अष्टोत्तरशत १०८ मणिद्वारा सर्वसिद्धि कथित है। रुद्राक्ष तथा रक्तचन्दन माला त्रिपुरा जप में प्रशस्त है।

भैरवी के विषय में वाराही तन्त्र में कहा गया है—'सुवर्ण मणि के द्वारा, स्फटिक के द्वारा, शङ्ख के द्वारा अथवा प्रवाल के द्वारा माला निर्माण कर्त्तव्य है। पुत्रजीव को वर्जन करना अर्थात् पुत्रजीव की माला द्वारा भैरवी मन्त्र जप नहीं करना। धूमावती के प्रयोग में श्मशान धुस्तूर के द्वारा माला का निर्माण करना। रक्तचन्दन के द्वारा बाला का जप करना। कालिका के प्रयोग में प्रधान दन्त को मेरुयुक्त करके ( नर ) दन्त के द्वारा माला तैयार करना। महाशङ्ख की माला उग्रतारा के जप में प्रशस्त है। उन्मुखी अर्थात् बगला के प्रयोग में महाशङ्ख की माला सर्वार्थसाधिनी जानना। शाक्तगणों के स्फटिक-निर्मित माला, रक्तचन्दन की माला अथवा रुद्राक्ष माला चतुर्वर्ग

निर्मिता रौप्यमणिभिर्जपमालेप्सितप्रदा ॥
हिरण्यमणिभिर्माला सर्वान्कामान्प्रयच्छति ।
प्रवालैर्विहिता माला प्रयच्छेत् विपुलं धनम् ॥
सौभाग्यं स्फाटिकी माला मौक्तिकैर्विहिता तथा ।
निर्मिता शङ्खमणिभिः कुरुते कीर्त्तिमयव्याम् ॥
सुवर्णै रचिता माला सदा स्यान्मुक्तये नृणाम् ।
गोपनीयाऽनिशं देवि जपमालेप्सिताप्तये ॥

मुण्डमालायाम्—

रुद्राक्षैर्वा यदि जपेदिन्द्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा ।
नान्यमध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिकञ्च यत् ॥
यदन्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि ।
तस्य कामं च मोक्ष च नो ददाति प्रियङ्करी ॥

यामले—

रुद्राक्षैः शक्तिमन्त्रञ्च मन्त्री यः प्रजपेत् प्रिये ।
स दुर्गतिमाप्नोति निष्फलस्य तस्य तज्जपः ॥

---

( धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ) प्रदा जानना । रौप्यमणि द्वारा निर्मित जपमाला अभीष्टप्रदा है । सुवर्ण मणि द्वारा निर्मित माला समस्त काम्य को प्रदान करता है । प्रबाल के द्वारा निर्मित माला विपुल धन प्रदान करता है । स्फटिक निर्मित माला एवं मुक्तानिर्मित माला सौभाग्य को दान करता है । शङ्खमणि द्वारा निर्मित माला कीर्त्ति को अक्षय करता है । सुवर्ण द्वारा निर्मित माला मानवों को सर्वदा मुक्ति जनक होता है ।

हे देवि ! अभीष्ट प्राप्ति के लिए जपमाला को सर्वदा गोपन रखें ।

मुण्डमाला तन्त्र में उक्त हुआ है—'रुद्राक्षमाला में, इन्द्राक्षमाला में अथवा स्फटिक माला में यदि कोई जप करता है, तब उसके मध्य पुत्रजीवादि अन्य वस्तु का योग मत करना । जपकार्य में तथा माला में अन्य वस्तु योग यदि कोई करता है, तब प्रियङ्करी (इष्टदेवता) उसे अभीष्ट फल तथा मोक्ष नहीं देते ।

यामल तन्त्र में कहा गया है—हे प्रिये जो साधक रुद्राक्ष के माला द्वारा शक्तिमन्त्र जप करता है; वह दुःख पाता है एवं उसका वह जप भी निष्फल होता है । वहीं पर ही प्रतिप्रसव अर्थात् इस सम्बन्ध में विशेष बिधान

प्रतिप्रसवमाह तत्रैव—

कालिका छिन्नमस्ता च त्रिपुरा तारिणी तथा।
एताः सर्वा न दूष्यन्ति जपाद् रुद्राक्षमालया॥

रुद्रयामले—

दिवा नैव प्रजप्तव्यं रुद्राक्षमालया क्वचित्।
पूर्वश्चर्यादृते चात्र दूषणञ्च वरानने॥
अरुद्राक्षधरः कुर्यात्तान्त्रिकं वैदिकं तथा।
जपहोमादिकं यद्यत्तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥

मालाविशेषफलमाह मन्त्रदेवप्रकाशिकायाम्—

पर्वस्वष्टगुणं पुत्रजीवे दशगुणं भवेत्।
शतं स्याच्छङ्खमालायां प्रवाले च सहस्रकम्॥
स्फाटिके दशसाहस्रं लक्षं तु मौक्तिके भवेत्।
पद्माक्षे दशलक्षन्तु कोटिः सौर्वणिके तथा॥
कुशग्रन्थौ च रुद्राक्षेष्वनन्तगुणितं भवेत्।
श्वेतपद्माक्षमालायां जपे स्यादमितं फलम्॥

---

कह रहे है—रुद्राक्ष माला के जप में कालिका, छिन्नमस्ता, त्रिपुरा तथा तारिणी ये सभी कुपित नहीं होते है।

रुद्रयामल तन्त्र में कह रहे है—हे वरानने! दिवस में पुरश्चरण व्यतीत रुद्राक्ष माला के द्वारा कभी भी जप न करें। उससे अर्थात् इस प्रकार के जप से दोष होता है। अरुद्राक्षधर अर्थात् रुद्राक्ष धारण न करके वैदिक अथवा तान्त्रिक जप होमादि जो जो कर्म करता है, वह सभी कर्म ही निष्फल होता। मन्त्रदेव-प्रकाशिका में माला-विशेष का फल कह रहे हैं—पर्व काल में अष्टगुण फल, पर्वकाल में पुत्रजीव के माला का जप करने पर दसगुण फल होता है। शङ्खमाला में शतगुण एवं प्रबाल माला में सहस्रगुण फल होता है। स्फटिक माला में दस सहस्रगुण एवं मुक्ता के माला में लक्षगुण अधिक फल होते है। पद्माक्षमाला में लक्षगुण, सुवर्णमाला में कोटिगुण, कुशग्रन्थि में तथा रुद्राक्षमाला में अनन्तगुण एवं श्वेतवर्ण पद्माक्ष माला में जप से अपरिमित गुण फल होता है।

## मालाविधानम्

समासेनाऽक्षमालानां विधानमिह कथ्यते ।
यथालाभं यथारूपमक्षाण्यादाय यत्नतः ॥
अन्योन्यसमरूपाणि नातिस्थूलकृशानि च ।
कीटादिभिरदुष्टानि न जीर्णानि कदाचन ॥
गव्यैश्च पञ्चभिस्तानि प्रक्षालयेत्पृथक् पृथक् ।
द्विजस्त्रीनिर्मितं सूत्रं शुभ्रं ग्रन्थिविवर्जितम् ॥
कार्पासनिर्मितं वापि पट्टसूत्रमथापि वा ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्रथयेच्छिल्पशास्त्रतः ॥
सर्वेषामेव वर्णानां पट्टं सर्वेप्सितप्रदम् ।
कार्पाससम्भवं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥
मूलास्त्रे च पठन् सूत्रं बीजं प्रक्षालयेत्ततः ।
मणिमेकैकमादाय सूत्रे तत्र तु योजयेत् ॥
मुखे मुखन्तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत् ।
तत्सजातीयमेकाक्षं मेरुत्वेनाऽग्रतो न्यसेत् ॥

---

### मालाविधान

यहाँ संक्षेप में अक्षमाला का विधान कथित हो रहा है। परस्पर समान अनतिस्थूल, अनतिकृश, कीटादि के द्वारा अदुष्ट ( छिद्रादिरहित ) एवं जो किसी अवस्था से जीर्ण नहीं है—इस प्रकार अक्ष ( माला की गुटि ) दाना सब यथारूप अर्थात् जो जातीय, यथालाभ अर्थात् जिस प्रकार प्राप्त होता है, उसी प्रकार उस बीजों को यत्नपूर्वक लाकर पञ्चगव्य के द्वारा उन सभी को पृथक् पृथक् प्रक्षालन करें। द्विज-स्त्रीनिर्मित ग्रन्थिशून्य शुभ्र कार्पास निर्मित त्रिगुण सूत्र को अथवा त्रिगुणित पट्ट सूत्र को त्रिगुणित करके शिल्प शास्त्रानुसार माला गूँथना। समस्त वर्णो का ही पट्ट सूत्र अभीष्ट प्रदान करता है। कपास निर्मित सूत्र धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रद है। मूलमन्त्र तथा अस्त्रमन्त्र ( फट् ) पाठ करके सूत्र तथा बीज ( दाना ) को प्रक्षालन करें। अनन्तर एक एक मणि ग्रहण करके उस सूत्र में योजना करें। बीज के मुख में मुख युक्त करके पुच्छ में पुच्छयोग करना। उसका सजातीय एक ( प्रधान ) अक्ष को मेरु ( मध्यमणि ) के रूप में अग्रे

एकैकमणिमादाय ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्पयेत् ।
ग्रथयेन मालिकां चैव हृदि तारं मनुं स्मरन् ॥
स्वयमेव जपेन्मन्त्रमन्यः प्रणवमुच्चरेत् ।
सार्द्धंत्रयावर्त्तनेन ग्रन्थिं कुर्यादथो दृढम् ॥
ब्रह्मग्रन्थिं ततो दद्यान्नागपाशमथापि वा ।
गोपुच्छसदृशीं कुर्यादथवा सर्पपुच्छवत् ॥
ग्रन्थिहीना न कर्त्तव्या मेरुपृष्ठे न दूष्यति ।
दूषणं त्वत्र नास्त्येव ग्रन्थिहीनैव नित्यशः ॥
काल्याश्च त्वरितायाश्च वज्राख्या षट्कभेदके ।
तोतलावनवासिन्योर्वाराह्याश्च विशेषतः ॥
नान्यस्याश्चण्डिकायाश्च ग्रन्थिहीना विधीयते ।
एवं निर्माय मालां वै शोधयेत् मन्त्रिसत्तमः ॥
अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति यो नरः ।
सर्वं तद्विफलं विद्यात्क्रुद्धा भवति चण्डिका ॥

---

(पहले) विन्यस्त (गूंथना) करना। एक एक मणि ग्रहण करके ब्रह्मग्रन्थि की कल्पना ( रचना ) करना एवं हृदय में उनका ( ॐ ) तथा इष्ट मन्त्र का स्मरण करते करते माला को गूंथना। स्वयं ही मन्त्र जप करना एवं अन्य व्यक्ति प्रणव का उच्चारण करें अर्थात् स्वयं माला ग्रहण करने पर इष्टमन्त्र का जप करें एवं अन्य कोई माला को ग्रहण करने पर प्रणव उच्चारण करके माला को गूंथना।

अनन्तर सार्द्धत्रय आवर्त्तन के द्वारा अर्थात् साढ़े तीन पाक देकर दृढ़रूप में ब्रह्मग्रन्थि करना अथवा नागपाशग्रन्थि करना। माला को गोपुच्छाकार ( दोनों दिक् ) पतला तथा मध्य भाग मोटा करना अथवा सर्वपुच्छ के समान क्रमशः पतला करना। ग्रन्थिहीन माला मत करना। मेरुपृष्ठ में ग्रन्थिहीन होने पर दोष नहीं होता। इस प्रकार वक्ष्यमाण स्थलों में किन्तु सभी समय में माला ग्रन्थिहीन होने पर भी दोष नहीं है।

कालिका का, त्वरिता का, षड्विध तारा का, तोतला तथा वनवासिनी का, महिषमर्दिनी एवं विशेषरूप से वाराही तथा चण्डिका के मन्त्र जप में ग्रन्थिहीन माला ही विहित हुआ है, दूसरों में नहीं। इस प्रकार से माला निर्माण करके साधक प्रवर उसका शोधन करें। अप्रतिष्ठित (असंस्कृत) माला के द्वारा जो व्यक्ति जप करता है, उसका वह सभी जप विफल निष्फल होता है तथा चण्डिका क्रुद्धा होती है।

## मालाप्रतिष्ठाविधिः

अथोच्यते प्रतिष्ठा हि मालायास्तन्त्रवर्त्मना ।
गुरुं ततः प्रणम्यादौ संस्कुर्याज्जपमालिकाम् ॥
शुभे लग्ने शुभे वारे शुभेर्क्षे च शुभे तिथौ ।
प्रतिष्ठां कारयेन्मन्त्री स्वयं वा गुरुणाऽथवा ॥
नित्यं कर्म ततः कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च ।
पञ्चगव्ये क्षिपेन्मालां शिवमन्त्रेण मन्त्रयेत् ॥

शिवमन्त्रमाह यामले—

शान्तः शत्रुस्वरारूढो नादविन्दुविभूषितः ।
कथितः शिवमन्त्रोऽयं साधकानां हिताय च ॥

शान्तो हकारः, शत्रुस्वरः उकारः ।

शीतलेन जलेनैव स्नापयेत्तदनन्तरम् ।
क्षालयेत्पञ्चगव्येन सद्योजातेन मार्जयेत् ॥

सद्योजातमन्त्रस्तु—

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।

---

### मालाप्रतिष्ठाविधि

अनन्तर तन्त्र रीति से माला की प्रतिष्ठा की कथित हो रही है उसके बाद ( माला गूंथने के बाद ) पहले गुरु को प्रणाम करके जप माला का संस्कार करें। शुभ लग्न में, शुभ बार में, शुभ नक्षत्र में, शुभतिथि में साधक स्वयं अथवा गुरु के द्वारा माला की प्रतिष्ठा करें। अनन्तर नित्य कर्म करके एवं सामान्यार्घ्य स्थापन करके पञ्चगव्य में माला निक्षेप करना एवं शिवमन्त्र के द्वारा मन्त्रित करना।

यामल तन्त्र में शिवमन्त्र कह रहे हैं—'साधकों के कल्याण के लिये नादबिन्दु * विभूषित; शक्रस्वर विशिष्ट सान्तवर्ण ( हकार ) यह शिवमन्त्र कहा गया। 'सान्तः'—इस पद का अर्थ है—हकार, "शक्रस्वर"—अर्थात् औकार। अनन्तर शीतल जल के द्वारा ही माला को स्नान कराना, पञ्चगव्य के द्वारा प्रक्षालन करना एवं "सद्योजात" मन्त्र के द्वारा मार्जन करना। सद्योजात मन्त्र है—"सद्योजातं प्रपद्यामि" इत्यादि मूलमन्त्र है, मन्त्रार्थ—सद्योजात को ( महादेव के सद्योजात नामक पश्चिम मुख को ) आश्रय

भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥
क्षालयेदीशसूक्तेन लिम्पेत्तत्पुरुषेण तु ।
गन्धैरनल्पैर्मतिमानधोरेण तु धूपयेत् ॥
अघोरेण तु सूक्तेन शतान्यूनं तु मन्त्रयेत् ।
वामदेवेन मन्त्रेण समीकुर्याद्विचक्षणः ॥
अश्वत्थपत्रनवकैः पद्माकारं प्रकल्पयेत् ।
तन्मध्ये स्थापयेन्मालां मातृकामूलमुच्चरन् ।
संस्कृत्यैवं बुधोमालां तत्प्राणांस्तत्र योजयेत् ॥

तत्प्राणान् आराध्यदेवताप्राणान् ।

तत्र देवीं प्रपूज्यैव परिवारगणैः सह ।
अनुलोमविलोमेन मातृकार्णेन मन्त्रयेत् ।
मेरुं प्रेतेन संमन्त्र्य भावयेद्देवतात्मिकाम् ॥

प्रेतेन प्रेतबीजेन हसौः इति बीजेनेत्यर्थः ।

---

करता हूँ । सद्योजात को नमस्कार करता हूँ । हे सद्योजात, तुम मुझे बार बार जन्म ग्रहण के लिये प्रेरित मत करना । पुनर्जन्म न होने के लिये ( तत्त्वज्ञानलाभ में ) प्रेरण करें । संसार के उद्धारकारी तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

विचक्षण साधक ईश सूक्त के द्वारा प्रक्षालन करें । एवं तत्पुरुष सूक्त में प्रचुर गन्ध के द्वारा लेपन करें । अघोर मन्त्र के द्वारा वह्नि ताप में धूपित करें । अघोर सूक्त के द्वारा अन्यून शतबार मन्त्रित करना एवं वामदेव मन्त्र के द्वारा समीकरण ( मार्जन ) करें ।

नव नौ अश्वक्ष (पीपल) पत्र के द्वारा पद्माकार कल्पना करके अर्थात् पद्माकार से ९ पीपल पत्र को सजाना । मातृका तथा मूलमन्त्र का उच्चारण करके उसके मध्य में माला-स्थापन करें । साधक इस प्रकार माला संस्कार करके उस माला में प्राण योजना ( प्रतिष्ठा ) करें । 'तत् प्राणान्' अर्थात् आराध्य देवता, इष्टदेवता के प्राण समूहों का ।

उस माला में देवी की परिवारगणों के साथ पूजा करके ही मातृका वर्णो के द्वारा अनुलोम तथा विलोम में माला को मन्त्रित करना । प्रेतबीज ( हसौः ) द्वारा मेरु को अभिमन्त्रित करके देवतास्वरूप चिन्ता करना । "प्रेतेन" अर्थात् प्रेतबीजेन अर्थात् ( हसौः ) इस बीज के द्वारा । अनन्तर

वह्निं संस्कृत्य विधिवदष्टोत्तरशतं हुनेत् ।
हुतशेषं प्रतिकृतौ प्रदद्याद्देवताधिया ॥
होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत् ।
ताराक्षमालाधिपते सुसिद्धिं देहि देहि मे ॥
सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय द्वितयं ततः ।
सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ॥
इत्थमाशंसिता माला जपकर्मणि सर्वदा ।
अभीष्टकं ददात्यर्थं सर्वकामफलं तथा ॥

**मालायां जप विधिः**

गुरुं सम्पूज्य तद्धस्ताद् गृह्णीयादक्षमालिकाम् ।
जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः ॥
ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै हृन्मन्त्रेण प्रपूजयेत् ।
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद्दक्षिणे करे ॥
हृत्समीपे समानीय न तु वामेन संपृशेत् ।
मध्यमाया मध्यभागे स्थापयित्वा समाहितः ॥
मध्यमस्थामक्षमालमंगुष्ठाग्रेण चालयेत् ।

---

यथाविधि वह्निसंस्कार करके १०८ बार होम करें। देवबुद्धि में प्रतिकृति अर्थात् माला में हुतशेष दान करें। यदि होमकर्म में अशक्त होता है तब द्विगुण जप करें। अनन्तर तार प्रणव—ॐ शब्द के बाद 'अक्षमालाधिपते !' सुसिद्धि देहि देहि मे सर्वमन्त्रार्थ साधिनि ! इस वाक्य कहकर 'साधय द्वितय' अर्थात् 'साधय साधक' कहकर सर्वसिद्धि परिकल्पय मे स्वाहा' कहें। इस मन्त्र में जप कार्य में माला संस्कृत होने पर वह सर्वदा ही अभीष्ट अर्थ तथा समस्त काम्य फल प्रदान करेंगे। गुरु की पूजा करके उनके हस्त से माला का ग्रहण करना।

### माला में जप-विधि

जप के आदि में माला की पूजा करना। यत्नपूर्वक जल के द्वारा माला अभ्युक्षण करके "ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः" इस मन्त्र से माला की पूजा करना। माला की पूजा करके उसे दक्षिण हाथ में ग्रहण करें। बायें हाथ से स्पर्श न करें। बाद में हृदय के निकट लाकर मध्यमांगुलि के मध्यभाग में स्थापन करके समाहित होकर मध्यमांगुलिस्थित उस अक्षमाला को अंगुष्ठ के अग्रभाग द्वारा जपक्रम से चालित करें।

अशुचिर्न स्पृशेन्मालां करभ्रष्टां न कारयेत् ॥
तर्जन्या न स्पृशेदेनां गुरोरपि न दर्शयेत् ।
भुक्तौ मुक्तौ तथा पुष्टौ मध्यमायां जपेत्सुधीः ॥
एकैकस्य जपेऽप्येवं चालयेद्देशिकोत्तमः ।
जप्त्वाऽक्षमालां सकलां भ्रामयेदखिलान्मणीन् ॥
प्रदक्षिणं पुनः कृत्वा प्रारभ्यैवं समापयेत् ।
एवं क्रमेण देवेशि जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥
स्थूलावधि जपेन्मन्त्रं सूक्ष्मभागे समर्पयेत् ।
हस्तौ च वाससाच्छाद्य दक्षिणेन सदा जपेत् ॥

एवं सूक्ष्मावधिस्थूलान्तो जपः संहारः ॥

न स्वयं वामहस्तेन जपमालां तु संस्पृशेत् ।
जपकाले जपं कृत्वा शुद्धस्थाने सदा न्यसेत् ॥
जीर्णसूत्रे पुनः सूत्रं ग्रथयित्वा शतं जपेत् ।
अदीक्षितद्विजेनाऽपि स्पृष्टा चेत् शुद्धिमाचरेत् ॥

---

अशुचि व्यक्ति माला को स्पर्श न करें। करभ्रष्ट न करें एवं तर्जनी द्वारा इसे स्पर्श मत करना एवं गुरु को भी मत दिखाना। सुधी साधक भोग एवं मोक्ष में पुटित मध्यमांगुलि में जप करें। साधक एक एक मन्त्र के जप में इसी प्रकार से माला की चालना करें। सभी मणियों के अर्थात् मणि में ( गुटित ) जप करके पूरी माला को भ्रामित करना अर्थात् घुमाना। पुनराय प्रदक्षिण करके इस प्रकार फिर आरम्भ करके जप समापन करना।

हे देवेशि ! इस प्रकार क्रम से अष्टोत्तरशत मन्त्र जप करना। स्थूल मणि से जप आरम्भ करके सूक्ष्मभाग में ( गुटि में ) जप शेष करना। हस्तद्वय वस्त्र के द्वारा आच्छादित करके दक्षिण हाथ के द्वारा सर्वदा जप करना। इस प्रकार सूक्ष्ममणि से स्थूलमणि तक जप 'संहार' नाम से अभिहित हुआ है।

स्वयं वामहस्त के द्वारा जपमाला को स्पर्श न करें। जपकाल में जप करके शुद्धस्थान में सर्वदा माला को रखना। सूत्र जीर्ण होने पर पुनराय ( दोबारा ) सूत्र ग्रथित करके अर्थात् माला गूँथकर शतबार इष्टमन्त्र का

न धारयेत्करे कण्ठे मूर्ध्नि च जपमालिकाम् ।
उरुपादाधरस्पृष्टा चापसव्यप्रचालिता ॥
अगुप्ता चालिता वापि पुनः संस्कारमर्हति ।
जपमाला मया देवि कथिता भुवि दुर्लभा ।
सदा गोप्या प्रयत्नेन यदि त्वां मम वल्लभा ॥

## अथ वर्णमाला

माला पञ्चाशिका प्रोक्ता सूत्रं शक्तिशिवात्मकम् ।
कुण्डलीग्रथिता शक्तिरलान्ते मेरुसंस्थितिः ॥
चित्रिणी बिसतन्त्वाभा ब्रह्मनाडीगतान्तरा ।
तया संग्रथिता ध्येया साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी ॥
अन्तर्विद्रुमभासमानभुजगीसप्रोतवर्णोज्वला ।
आरोहप्रतिरोहतः शतमयी वर्गाष्टकाष्टोत्तरा ॥
अनुलोमविलोमेन मन्त्रवर्णविभेदतः ।
मन्त्रेणाऽन्तरितान्वर्णान्वर्णेनाऽन्तरितं मनुम् ॥

---

जप करें। यदि अदीक्षित द्विजकर्तृक भी स्पृष्ट हो जाय, तब भी शुद्धि ( शोधन ) करें। जपमाला को हाथ में, कण्ठ में तथा मस्तक पर धारण न करें। यदि माला उरु, पाद, अधर, निम्नोष्ठ द्वारा स्पृष्ट होता है, वामहस्त के द्वारा चालित होता है अथवा अगुप्तभाव से चालित होता है, तब पुनः वह संस्कार योग्य होता है अर्थात् संस्कार करना होगा।

हे देवि ! इस लोक में दुर्लभ जपमाला मेरे द्वारा कहा गया है। यदि तुम मेरी पत्नी हो तो सर्वदा यत्न से गोपनीय रखना।

### वर्णमाला

पञ्चाशिका अर्थात् अकारादि क्षकारान्त पञ्चाशत् मातृका माला ( वर्णमाला ) कहकर कहा गया है। उस वर्णमाला का सूत्र है शक्ति तथा शिवस्वरूप पञ्चाशत् वर्णरूपिणी कुण्डली शक्ति उस सूत्र के द्वारा ग्रथित हुई है। अलान्त में अर्थात्—अकार से लकार तक वर्णसमूह के शेष (अन्त में) में क्षकाररूप मेरु अवस्थित है। बिसतन्तुल्या चित्रिणी ब्रह्मनाड़ीं के मध्य से गयी है, उसके द्वारा साक्षात् जागत् स्वरूपिणी कुण्डलिनी का ध्यान करना। उस वर्णमाला विद्रम के 'प्रबाल' मध्यभाग के न्याय दीप्ति विशिष्ट कुण्डलिनी रूप सूत्र में सुग्रथित मातृका वर्णसमूह के द्वारा समुज्जवल है। वह अनुलोम तथा विलोम में शतसंख्यामयी, अष्टवर्ग का अष्टसंख्यायोग में

कुर्याद्वर्णमयी मालां सर्वमन्त्र प्रकाशिनीम् ।
चरमार्णं मेरुरूपं लंधनं नैव कारयेत् ॥
सविन्दुं वर्णमुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेत्सुधीः ।
अकारादिलकारान्तमनुलोम इति स्मृतम् ॥
पुनर्लकारमारभ्य श्रीकण्ठान्तं मनुं जपेत् ।
विलोम इति विख्यातं क्षकारं केवलं जपेत् ॥
वर्णानामष्टवर्गेण अष्टवारं जपेत्सुधीः ।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रं ज्ञानेन संजपेत्सुधीः ।
अ क च ह त प य शा इत्येवं चाष्टवर्गकाः ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां मालानिर्णयो नामाऽष्टमोल्लासः ॥ ८ ॥

---

अष्टोत्तरा हो अर्थात् अष्टोत्तर शतसंख्यामयी होता है। मन्त्रवर्ण के भेद से अकारादि वर्णों के अनुलोम तथा विलोम के मन्त्र द्वारा व्यवहित करके एवं वर्ण के द्वारा मन्त्र को व्यवहित करके सर्वमन्त्र प्रकाशिनी वर्णमयी माला प्रस्तुत करना चाहिए।

जप के समय मेरुस्वरूप चरमवर्ण क्षकार को कभी भी लङ्घन मत करना। सुधीसाधक अनुस्वार युक्तवर्ण उच्चारण करके बाद में अकार से लकार तक मन्त्र को जप करें। वह अनुलोम जप कहा गया है। पुनराय लकार से श्रीकण्ठ अकार तक मन्त्र जप करें। उसे विलोम जप कहा गया है। बाद में केवल क्षकार का जप करना अर्थात् अन्यवर्ण के शेष में जैसे मन्त्रवर्ण उच्चार्य, क्षकार के बाद मन्त्र उच्चार्य नहीं है। सुधीसाधक अष्ट वर्ग के अन्तिम आठवर्ण का आठबार जप करें।

सुधीसाधक ज्ञान के द्वारा अर्थात्—मन के द्वारा अष्टोत्तरशत मन्त्र का जप करें। अवर्ग (अ से अः तक), कवर्ग (क ख ग घ ङ), च वर्ग (च छ ज झ ञ), ट वर्ग ( ट ठ ड ढ ण ), त वर्ग ( त थ द ध न ), प वर्ग ( प फ ब भ म ), य वर्ग ( य र ल व ) तथा श वर्ग ( श ष स ह ल क्ष ) इस प्रकार आठ वर्ग कथित हुआ है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृतं शाक्तानन्दतरङ्गिणी के माला निर्णय नामक अष्टमो उल्लासः समाप्त।

# नवमोल्लासः

## जपविधिः

जपविधिमहं वक्ष्ये श्रृणुष्व कमलानने।
जपार्थं सर्वमन्त्राणां विन्यासश्च लिपेर्विना॥
कृतं तन्निष्फलं विद्यात्तस्मादादौ न्यसेत्प्रिये।
जपादौ च जपान्ते च प्राणायामं समाचरेत्॥

## मानसादि जपभेदः

विशुद्धेश्वरे—

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकाः।
निजकर्णगोचरो यो मानसः स जपः स्मृतः॥
उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः परिकीर्त्तितः।
निगदस्तु जनैर्वेद्यस्त्रिविधो जप ईरितः॥

---

### जपविधि

हे कमलानने सर्वमन्त्र के जप के निमित्त मैं जपविधि कह रहा हूँ, श्रवण करो। हे प्रिये! मातृकान्यास के बिना जप अनुष्ठित होने पर उसे निष्फल जानना। अत एव सबसे पहले न्यास करना चाहिए। जप के आदि में तथा जप के अन्त में प्राणायाम करना चाहिए।

### मानसादि जपभेद

विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है—जप है अक्षरवृत्ति अर्थात् मन्त्र के अन्तर्गत अक्षरों के उच्चारण को जप कहते हैं। वह मानस, उपांशु तथा वाचिक है। जो जप अपने कर्ण के अगोचर, श्रवण के अयोग्य हो, वह जप 'मानस' कहा गया है। अपने कर्ण के गोचर (श्रवण योग्य) जप 'उपांशु' कहा गया है। साधारण लोक समूहों में वेद्य (ज्ञान विषयीभूत) जो जप, वह निगद अथवा वाचिक है। इस प्रकार जप तीन प्रकार के कहे गये हैं।

अन्यत्रापि—

यद्युच्चनीचोच्चरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः ।
मन्त्रमुच्चारयेद्व्यक्तं जपयज्ञः स वाचिकः ॥
उच्चारयेन्मन्त्रमीषत् किञ्चिदोष्टौ प्रचालयन् ।
किञ्चिच्छब्दमयं ब्रूयादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥
धिया यदक्षरश्रोण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दानुचिन्तनाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः ॥
उच्चैर्जपाद् विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः ।
तस्मादपि विशिष्टः स्यात्सहस्रं मानसो जपः ॥

## मन्त्रजपपद्धतिः

देवतां चित्तगां कुर्यात्कुर्याच्च हृदयं स्थिरम् ।
ओष्ठौ तु सम्पुटौ कृत्वा स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः ॥
ध्यायेच्च मनसा वर्णान् जिह्वोष्ठौ न विचालयेत् ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवान्दन्तानैव प्रकाशयेत् ।

---

अन्यत्र भी कहा गया है—यदि उच्च नीच भाव से अर्थात् उदात्तादि भेद से उच्चरित स्पष्टशब्द युक्त अक्षर समूहों के द्वारा स्पष्टरूप से मन्त्र उच्चारण किया जाय, तब वह 'वाचिक' जपयज्ञ होता है। अल्प ओष्ठों का चलाना अर्थात् धीरे धीरे मन्त्र का उच्चारण करना एवं किञ्चित् उच्चस्वर से बोलना, उस मन्त्र को 'उपांशु' कहा गया है। मन के द्वारा अक्षर श्रेणी के वर्णों का, पर वर्ण तथा पद के पद की चिन्ता करना। इस प्रकार शब्दों का जो ध्यानाभ्यास है वही 'मानस' जप कहा गया है। उच्च (वाचिक) जप से उपांशु जप दशगुण श्रेष्ठ है, मानस जप उसमें से भी सहस्रगुण श्रेष्ठ है।

### मन्त्रजपपद्धति

हृदय को स्थिर करना, देवता के हृदयगत अर्थात् हृदय में ध्यान करना। दोनों ओठ युक्त करके स्थितचित्त तथा स्थिरेन्द्रिय होकर मन के द्वारा वर्णसमूहों का ध्यान करना। जिह्वा तथा ओठ चालना मत करना। मस्तक तथा ग्रीवा को कम्पित मत करना, दाँत समूह बाहर मत करना।

मन्त्रोद्धारक्रमेणैव मन्त्रं जपति साधकः ॥
तदा सिद्धिं विजानीत न सिद्धिश्चान्यथा भवेत् ॥

मन्त्रोद्धारक्रमेणैव मन्त्रघटकीभूत स्वरव्यञ्जन वर्णज्ञान क्रमेणेत्यर्थः । एव-कारोऽवधारणार्थः ।

आदौ ध्यानं ततो मन्त्रं ध्यानस्याऽन्ते मनुं जपेत् ।
ध्यानमन्त्रसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति साधकः ॥

कुलार्णवे—

मनसा पठितं स्तोत्रं वाचा वापि मनोर्जपः ।
उभयं निष्फलं देवि भिन्न भाण्डोदकं यथा ॥

भूतशुद्धौ—

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता ।
चिन्तयित्वा तदाकारं मनसा जपमाचरेत् ॥
शनैः शनैरविस्पष्ट न द्रुतं न विलम्बितम् ।
क्रमेणोच्चारयेद्वर्णानाद्यन्तक्रमयोगतः ॥
अतिह्रस्वो व्याधिहेतुरतिदीर्घो वसुक्षयः ।
अक्षराक्षरसंयुक्तं जपेन्मौक्तिक हारवत् ॥

---

साधक जब मन्त्रोद्धार क्रम से ही मन्त्र जप करता है, तभी सिद्धि मिलती है। अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती। मन्त्रोद्धार क्रमेणैव इस पद का अर्थ है मन्त्र के अन्तर्गत स्वर तथा व्यञ्जन वर्ण के ज्ञान क्रम से ही है। 'एव' कार का अर्थ है—अवधारणा। पहले ध्यान तथा उसके बाद मन्त्र जप करना; ध्यान के अन्त में भी मन्त्र जप करना। साधक ध्यान तथा मन्त्र युक्त होने पर ही शीघ्र सिद्धि लाभ करता है।

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है—हे देवि ! मन के द्वारा पठित स्तोत्र एवं वाक्य के द्वारा अर्थात् उच्चस्वर से मन्त्र के जप से—उभय ही भग्न भाण्ड-स्थित जल के समान निष्फल है। भूतशुद्धि तन्त्र में कहा गया है—जिन जिन मन्त्रों के जो जो देवता कहे गये हैं, उसी देवता के आकार (मूर्त्ति) की चिन्ता करके मन के द्वारा जप करना चाहिए। द्रुत अथवा विलम्ब में मन्त्रवर्ण का उच्चारण न करें। धीरे धीरे अविस्पष्टरूप भाव से आद्यन्त क्रम से क्रमिक मन्त्र वर्ण समूहों को उच्चारण करना। अत्यन्त धीमी गति से उच्चारण व्याधिका जनक है और अतिद्रुत गति धन क्षय कारक है। मुक्ताहार के समान अक्षर के बाद अक्षर संयुक्त करके जप करना चाहिए।

कुलार्णवे—

तन्निष्ठस्तद्गतप्राणस्तच्चित्तस्तत्परायणः ।
तत्पदार्थानुसन्धानं कुर्वन्मन्त्रं जपेत् प्रिये ॥

रुद्रयामले—

कथं मन्त्राश्च सिध्यन्ति मन्त्रार्थाज्ञानिनः प्रिये ।
पशुर्भावविहीनश्च न तस्य भजते फलम् ।
मन्त्रार्थस्याऽनभिज्ञो हि न जपफलमश्नुते ॥

मन्त्रार्थः मन्त्रदेवतयोरभेदज्ञानम् । तथाचोक्तं यमाले—

मन्त्रार्थो देवतारूप चिन्तनं परमेश्वरि ।
मन्त्रात्मकश्च देवः स्याद् मन्त्रवाच्या च देवता ॥
वाच्यवाचकभावेनैवाऽभेदो मन्त्रदेवयोः ।
मन्त्रगच्या देवता हि मन्त्रो हि वाचकः स्मृतः ।
वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति ॥

प्रकारान्तरमाह भूतशुद्धौ—

मन्त्रार्थं परमेशानि सावधानऽवधारय ।
आधारे चिन्तयेद्विद्यां शुद्धस्फटिकसन्निभाम् ॥

---

'कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है—हे प्रिये ! मन्त्रनिष्ठ तथा मन्त्रगत प्राण होकर एवं मन्त्र में चित्त न्यस्तकरके मन्त्र परायण होकर मन्त्र के अन्तर्गत मन्त्र पदार्थ का स्मरण करते करते मन्त्र जप करना चाहिए ।

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—हे प्रिये ! मन्त्रों के अर्थ ज्ञान रहित व्यक्ति की मन्त्रसिद्धि किस प्रकार होगी ? पशु अर्थात् अदीक्षित जीव भावना शून्य होने पर उस मन्त्र का फल लाभ नहीं करता एवं मन्त्रार्थ में अनभिज्ञ व्यक्ति जप-फल का भोग नही करता । "मन्त्रार्थ" पद का अर्थ है-मन्त्र तथा देवता का अभेद ज्ञान । यामल तन्त्र में वही कहा गया है यथा—हे परमेश्वरि ! मन्त्रार्थ है देवता का रूप चिन्तन; क्योंकि देवता मन्त्र के स्वरूप एवं मन्त्र के वाच्य तथा देवता है । वाच्य-वाचक भाव से ही मन्त्र तथा देवता का अभेद हुआ है । देवता मन्त्र के वाच्य एवं मन्त्र देवता का वाचक कहा गया है । वाचक मन्त्र विशेषरूप से ज्ञात होने से ही वाच्य देवता प्रसन्न होते हैं ।

भूतशुद्धि तन्त्र में मन्त्रार्थ के प्रकारान्तर कह रहे हैं—हे परमेशानि ! तुम अवहित होकर मन्त्र का अर्थ श्रवण करो । मूलाधार में विद्या का

बन्धूकरुचिरां लिङ्गे नाभौ स्फटिक सन्निभाम् ।
हृदि मारकत प्रख्यां हरिद्वर्णां विशुद्धके ॥
आज्ञायां चिन्तयेद्विद्यां चतुर्वर्णानुरञ्जिताम् ।
षट्चक्रे परमेशानि ध्यायेत्साधकसत्तमः ॥

## मन्त्रपुरश्चरणविधिः

रुद्रयामले—

मन्त्रं नीत्वा गुरोः पार्श्वे गुरुभक्तिपुरःसरः ।
मन्त्रश्रोत्रास्यहृन्नेत्रप्राणान्विज्ञाय यत्नतः ।
मन्त्राणां कीलकं ज्ञात्वा कुर्यान्मन्त्रपुरष्क्रियाम् ॥

नचैतद्वचनं पुरश्चरणविषयमेवेति बोद्धव्यम् । श्रोत्रादीनां ज्ञानाभावे मन्त्रजपमात्रनिषेधात् । तथा चोक्तं मन्त्रकोषे—

श्रोत्रादीनां ज्ञानाभावे मन्त्रजापं करोति यः ।
दारिद्रचश्च विपत्तिश्च नरकं प्राप्नुयात्तु सः ॥

अन्यत्रापि—

हृन्नेत्रविहीनो मन्त्रो दारिद्रचक्लेशदायकः ।

---

( इष्टदेवता का ) शुद्ध स्फटिकतुल्य चिन्तन करना । लिङ्गमूल में बन्धूक पुष्प के समान कान्तिविशिष्ट अर्थात् रक्तवर्णा, नाभि में स्फटिक के समान दीप्तिविशिष्ट, हृदय में मरकत मणि के समान हरिद् वर्ण, विशुद्ध चक्र में हरिद् वर्ण एवं आज्ञाचक्र में विद्या को चार वर्णों में अनुरञ्जित ऐसा ही चिन्तन करना । हे परमेशानि ! साधक प्रवर षट्चक्र में विद्या के इस रूप का ध्यान करें ।

### मन्त्रपुरश्चरणविधि

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—साधक गुरु के प्रतिभक्ति पूर्वक गुरु के निकट मन्त्र लेकर यत्नपूर्वक मन्त्र के श्रोत्र, मुख, हृदय, नेत्र तथा प्राण अवगत होकर एवं मन्त्र की कीलक जानकर मन्त्र का पुरश्चरण करें । यह बचन पुरश्चरण के विषय में मत समझना क्योंकि उक्त वचन में श्रोत्रादि के ज्ञान के अभाव में केवल मन्त्र जप का निषेध हुआ है ।

मन्त्र कोष में भी वही कहा गया है यथा—जो व्यक्ति मन्त्र का श्रोत्रादि ज्ञान न रहने पर भी जप करता है; वह दारिद्रच, विपत्ति तथा नरक को प्राप्त होता है । अन्यत्र भी कहा गया है—हृदय तथा नेत्र विहीन मन्त्र अर्थात् जिस मन्त्र के हृदय तथा नेत्र का ज्ञान नहीं है, वह दारिद्रच तथा क्लेशप्रद है ।

तन्त्रान्तरे—

श्रोणास्यनेत्रहृदयज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ।
सद्यः सिद्धिः सर्वविद्या स्यात्साक्षाच्छिव एव सः ॥

भूतडामरे—

इन्द्रियमनोविशुद्धया मनोरास्यादिकं वक्ष्ये ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कालीमन्त्रतनुक्रमम् ॥

**कालीमन्त्रादीनां तनुक्रमः**

विन्दुं श्रोत्रं नादमास्यं ककारं हृदयं विदुः ।
वह्निं नेत्रं कीलकञ्च दीर्घेकारं प्रियंवदे ॥
तकारं तारिणीमन्त्रो हृदयं विद्धि पार्वति ।
हकारं विद्धि सर्वत्र शक्तिमन्त्रे सुरेश्वरि ॥

उत्तरतन्त्रे—

प्राणविद्या महाविद्या सा विद्या मुक्तिदायिका ।

श्यामाया द्वाविंशत्यक्षरविद्यायां विशेषमाह उत्तरतन्त्रे—

क्रीं कारोमस्तकं देवि क्रींकारश्च ललाटकम् ।

---

तन्त्रान्तर में कहा गया है—'श्रोत्र, मुख, नेत्र तथा हृदय के ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है, एवं तत्क्षणात् सर्वविध सिद्धि होती है और वह साधक साक्षात् शिव हो जाता है।

भूतडामर तन्त्र में कहा गया है—'इन्द्रिय तथा मन के विशुद्धि के साथ काली मन्त्र का मुख इत्यादि कह रहा हूँ। हे देवि ! उसे श्रवण करो।

कालो मन्त्रों का तनुक्रम

हे प्रियंवदे ! काली मन्त्र क्रींकार में विन्दु को श्रोत्र, नाद को मुख, क कार को हृदय, वह्नि अर्थात् रकार को नेत्र एवं दीर्घ ई कार को कीलक जानना। हे पार्वति ! तारिणी मन्त्र में तकार को हृदय जानना। हे सुरेश्वरि ! सर्वत्र अर्थात् सभी शक्तिमन्त्र में मायाबीज में हकार को ही हृदय जानना चाहिए।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है—'प्राणविद्या ही (प्राणयोग) महाविद्या, है, वह प्राणविद्या ही मुक्तिदायिनी है।' उत्तर तन्त्र में श्यामा के द्वाविंशति अक्षर मन्त्र में विशेष कह रहे हैं—हे देवि ! (प्रथम) क्रीं—कार मस्तक; द्वितीय

नेत्रत्रयं क्रींकारेण हूँकारेण च नासिका ॥
हूंकारो मुखपद्मं स्याद् ह्लींकारः कर्णयुग्मकम् ।
ह्लींकारेण भवेद् ग्रीवा दकारश्चिबुकं भवेत् ॥
क्षिकारेण भवेद्दन्तो णेकारेणौष्ठयुग्मकम् ।
काकारेण स्तनद्वन्द्वं लिकारः पृष्ठदेशकम् ॥
केकारेण भवेद्बाहुः क्रींकारेणोदरं भवेत् ।
क्रींकारो नाभिदेशः स्यात् क्रींकारश्च नितम्बकम् ॥
हूंकारो योनिरूपः स्याद् हूंकारेणोरुयुग्मकम् ।
ह्लींकारो जानुयुग्मं स्याद् ह्लींकारो गुल्फदेशकः ।
स्वाकारेण पदद्वन्द्वं हाकारेण नखास्तथा ॥

ताराविद्यायां यामले—

वाग्देव्याः समुदायः स्यादाकृतिः प्रणवोमुखम् ।
मायावधुस्थितौ विन्दु लोचने समुदाहृते ॥
हसकारो श्रुती दीर्घस्वरौ हृदयरूपिणौ ।
फटकारौ योन्युदरावकारेण स्तन द्वयम् ॥
रेफयुग्मं पदद्वन्द्वं तकारं माललोचनम् ।

---

क्रींकार ललाट तथा तृतीय क्रीं—कार के द्वारा नेत्रत्रय; हूँकार द्वारा नासिका; हूँकार मुखपद्म; प्रथम ह्लींकार कर्णद्वय तथा द्वितीय ह्लींकार के द्वारा ग्रीवा होगा। दकार चिबुक, क्षिकार द्वारा दन्त णेकार द्वारा ओष्ठद्वय, काकार द्वारा स्तनद्वय; लिकार द्वारा पृष्ठ देश, के कार द्वारा बाहुद्वय। प्रथम क्रींकार के द्वारा उदर होता है। द्वितीय क्रींकार नाभिदेश तथा तृतीय क्रींकार नितम्ब स्वरूप है। प्रथम हूँकार योनिस्वरूप, द्वितीय हूँकार के द्वारा उरुयुग्म तथा ह्लींकार के द्वारा जानुयुग्म होगा। ह्लींकार गुल्फदेशस्वरूप, स्वाकार के द्वारा पदद्वय एवं हाकार के द्वारा नखसमूह होता है।

यामल तन्त्र में ताराविद्या के विषय में कहा गया है 'वाग्देवी ( नील सरस्वती ) का मन्त्र समुदाय आकृति है। प्रणव मुखस्वरूप है। मायाबीज तथा बधुबीज स्थित विन्दुद्वय के दो लोचन कहे गये हैं। हकार तथा सकार कर्णद्वय, दीर्घ स्वरद्वय हृदय स्वरूप फकार योनि स्वरूप, टकार उदर स्वरूप है। अकार के द्वारा स्तनद्वय होता है रेफद्वय पादद्वय स्वरूप,

वेदभुजस्वरूपञ्च नादयुग्ममुदाहृतम् ॥
कूर्चं प्राणा एकजटा शरीरं सर्वमिष्यते ।
कूर्चं मुखन्तु विज्ञेयमन्यमन्त्रेषु पार्वति ॥

अन्य मन्त्रेषु एकजटा या प्रणवरहितमन्त्रेषु कूर्चं मुखं तेन तत्तन्मन्त्रघटकीभूत तत्तद्वर्णोत्पन्नमुखनासौष्ठदन्ताधरहस्तपादस्तनयोन्याद्यवयवावच्छिन्नशरीरं ज्ञानविषयीकृत्य जपेदित्यर्थः ॥

## कामिनीतत्त्वम्

कामधेनुतन्त्रे—

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कामिनोतत्त्वमद्भुतम् ।
शृणु तत्त्वं महेशानि ककारस्याऽतिदुर्लभम् ॥
रहस्यं परमाश्चर्यं त्रिकोणानाञ्च संशृणु ।
वामरेखा भवेद् ब्रह्माविष्णुर्दक्षिणरेखिका ॥
अधोरेखा भवेद् रुद्रो मात्रा साक्षात्सरस्वती ।
कुण्डली चांकुशाकारा मध्यशून्यं सदाशिवः ॥

---

तकार ललाट स्थित लोचन स्वरूप एवं नादद्वय चार बाहु स्वरूप कहा गया है । कूर्च्चबीज प्राण स्वरूप है । समस्त एकजटा शरीर इस प्रकार ही कहा गया है ।

हे पार्वति ! अन्यमन्त्र समूह कूर्च्चबीज मुखस्वरूप जानना । 'अन्यमन्त्रेषु' अर्थात् एकजटा समूह प्रणवरहित मन्त्रेषु अर्थात् एकजटा का प्रणवरहित मन्त्र समूह में कूर्च्चबीज मुखस्वरूप है । अतएव एकजटा का उस मन्त्र के अन्तर्गत उन उन वर्णों के द्वारा उत्पन्न मुख, नासिका, ओष्ठ, दन्त, अधर, हस्त, पद, स्तन, योनि आदि अवयवविशिष्ठ शरीर जान कर जप करना चाहिए ।

### कामिनीतत्त्व

कामधेनु तन्त्र में कहा गया है—अनन्तर आश्चर्य जनक अन्य कामिनीतत्त्व ( ककार तत्त्व ) कहूँगा । हे महेशानि ! ककार का अति दुर्लभ तत्त्व श्रवण करो एवं त्रिकोण समूह का परमाश्चर्य रहस्य भी श्रवण करो । ककार की वामरेखा है—ब्रह्मा, दक्षिणरेखा-विष्ण, अधोरेखा-रुद्र एवं मात्रा है—साक्षात् सरस्वती । अंकुशाकार रेखा कुण्डलीस्वरूपा एवं मध्य का अवकाश सदाशिव स्वरूप है ।

ज्वायावकसङ्काशा वामरेखा वरानने ।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशा दशरेखा समूर्त्तिका ॥
अधोरेखा भवेद् रुद्रो महामरकतद्युतिः ।
शङ्ख दुग्धसमाभासा मात्रा साक्षात्सरस्वती ॥
अंकुशाकुण्डली या तु कोटिविद्युल्लताकृतिः ।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशो मध्यशून्यं सदाशिवः ॥
शून्येषु परमेशानि सर्वव्यापी सदाशिवः ।
इश्वरो यस्तु देवेशि कलाचतुष्टयात्मकः ॥
इच्छाशक्तिर्भवेद् ब्रह्मा विष्णुस्तु ज्ञानशक्तिमान् ।
क्रियाशक्तिर्भवेद्रुद्रः सर्वः प्रकतिमूर्त्तिमान् ॥
आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैः सदाशिवः प्रतिष्ठितः ।
शून्येषु संस्थिता कालो कैवल्यपददायिनी ॥
मर्द्दिनी संस्थिता तस्य दक्षभागे समूर्त्तिका ।
वामभागे स्थिता लक्ष्मीश्चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥
तासां गर्भे स्थिता सा च सुन्दरी परदेवता ।
तिसृणां गर्भसम्भूता त्रिपुरा चात एव हि ॥

---

हे वरानने ! वामरेखा जवा तथा यावक ( अलक्तक रस आलता ) के समान रक्तवर्ण, दक्षिणरेखा शरच्चन्द्र के समान शुक्लवर्णा तथा मूर्त्ति विशिष्टा है । अधोरेखा रुद्र महामरकत के समान द्युतिविशिष्ट है । साक्षात् सरस्वतीरूपा मात्रा शङ्ख तथा दुग्ध के समान शुभ्रवर्णा है । कुण्डली स्वरूपा अंकुशाकार रेखा कोटि विद्युत् माला के समान आकार-विशिष्ट अर्थात् अत्युज्ज्वल शुक्लवर्णा; सदाशिवस्वरूप मध्यावकाश कोटि चन्द्र के समान शुभ्रवर्णा है । हे परमेशानि ! सर्वव्यापी सदाशिव शून्यभाग में हैं । हे देवेशि ! जो ईश्वर है, वही कलाचतुष्टय स्वरूप ( इच्छा, ज्ञान, क्रिया, तथा पराशक्ति स्वरूप ) है । इच्छाशक्ति हैं ब्रह्मा, विष्णु ज्ञानशक्तिमान् हैं । क्रियाशक्ति रुद्र है । ये सभी ही प्रकृति के मूर्त्ति विशिष्टा अर्थात् शक्तिमान है । सदाशिव आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्व के द्वारा प्रतिष्ठित हैं । कैवल्यपद ( मोक्ष ) दायिनी काली शून्य में अवस्थित हैं । साक्षात् मूर्तिमती महिषमर्द्दिनी उनके दक्ष भाग में अवस्थित है । चतुर्वर्गप्रदायिनी लक्ष्मी वामभाग में अवस्थित है । परदेवता सुन्दरी उन सभी के गर्भ में स्थित हैं ।

परमात्मस्वरूपत्वात्तासां गर्भे प्रतिष्ठिता ।
अन्ये च कालिकायाः स्युः सर्वा भेदाश्च पार्वति ॥
तत्र स्थित्वा सृजेद् ब्रह्मा विष्णुः पालनतत्परः ।
रुद्रः संहारकर्त्ता च ईश्वरस्तुसदाशिवः ॥
ईश्वरो यस्तु देवेशि त्रिकोणे तस्यस्थितिः ।
त्रिकोणमेतत्कथितं योनिमण्डलमुत्तमम् ॥
ककाराज्जायये देवि सर्वश्च वरवर्णिनि ।
ककारात्सर्वमुत्पन्नं कामः कैवल्यमेव च ॥
अर्थोऽपि जायते देवि सोऽपि धर्मबलाद् तथा ।
सर्वासां देवतानाश्च ककारो मूलमेव च ॥
आसनं त्रिपुरादेव्याः ककारः पश्चदैवतः ।
ककारात्कामदा कामरूपिणी स्फुरदव्यया ॥
माता सा सर्वदेवानां कैवल्यपददायिनी ।
कैवल्यं प्रपदे य(स्याः)स्मात्कामिनी सा प्रकीर्तिता ॥

---

इन तीनों के गर्भ से उत्पन्न होने से ही वह 'त्रिपुरा' हैं। उनका परमात्म-स्वरूप उन सभी के गर्भ में प्रतिष्ठित हैं। हे पार्वति ! अन्य सभी भेद ही कालिका का अर्थात् अन्यान्य सभी मूर्त्ति ही कालिकारूपी ककार तत्त्व से उत्पन्न है। इस प्रकार तत्त्व में रह कर ही ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन परायण बने हुये हैं, एवं रुद्र संसार कर्त्ता तथा सदाशिव ईश्वर हुये है। हे देवेशि ! जो ईश्वर उनके त्रिकोण में ही अवस्थित हैं, यह त्रिकोण उत्तम योनि मण्डल कहा गया है। हे देवि ! हे वरवर्णिनी क कार से सभी उत्पन्न होते हैं। ककार से काम, कैवल्य-सभी उत्पन्न होता है। हे देवि ! अर्थ भी उत्पन्न होता है एवं वह अर्थ भी धर्मबल से अर्थात्-धर्म से भी उत्पन्न होता है। सभी देवताओं का ककार ही मूल कारण है। पञ्चदेवता-स्वरूप ककार त्रिपुरा देवी का आसन है। ककार से कामरूपिणी, कामफलप्रदा, नित्या, सभी देवतागणों के माता, कैवल्यपद ( मोक्ष ) दायिनी, दीप्तिमयी वह कामिनी आविर्भूत हुई हैं जैसे कि उनके पादद्वय में कैवल्य अवस्थित है, उसी लिये वे 'कामिनी' कहकर कीर्त्तित हुई हैं।

## कामिनी ध्यानम्

जवायावकसिन्दूरसदृशीं कामिनीं पराम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च बाहुवल्ली विराजिताम् ॥
कदम्ब कोरकाकारस्तनद्वयविभूषिताम् ।
शङ्खकङ्कणकेयूरैरङ्गदैरुपशोभिताम् ॥
रत्नहारैः पुष्पहारैः शोभितां परमेश्वरीम् ।
एवं हि कामिनीं ध्यात्वा ककारं दशधा जपेत् ॥
प्रफुल्लञ्च ततो जप्त्वा जपस्य फलभाग् भवेत् ।
एतत्ते कथितं देवि ककारतत्त्वमद्भुतम् ॥
एतत्तु कालिकाबीजं प्रफुल्लं शृणु सुन्दरि ।
पृथ्वीबीजं ततो धृत्वा वामाक्षिसंयुतं कुरु ॥
बिन्द्वर्द्धसंयुतो भूत्वा प्रफुल्लं भवति प्रिये ।
लकारः पृथिवी साक्षात्सर्वरत्नप्रदायिनी ॥
पोताङ्गीं पीतवसनां पीतविद्युल्लताकृतिम् ।

---

### कामिनीध्यान

परा परमेश्वरि कामिनी का जवा पुष्प, यावक ( अलक्तक ) तथा सिन्दूर सदृशी अर्थात् रक्तवर्णा, चतुर्भुजा, नेत्रत्रय युक्ता, बाहुरूप बल्ली ( लता ) द्वारा विराजिता अर्थात् सुन्दर बाहु विशिष्ट, कदम्ब कोरक के समान स्तनद्वय से शोभिता; शङ्ख कङ्कण, केयूर तथा अङ्गद ( ताड़ ) द्वारा विभूषित, रत्नहार तथा पुष्पहार के द्वारा शोभित ऐसा ध्यान करना चाहिए।

कामिनी का इस रूप से ही ध्यान करके दशबार ककार का जप करना। उसके बाद ही साधक प्रफुल्ल मन्त्र का जप करके जप फल का भागी होगा। हे देवि ! यह अद्भुत-ककार तत्त्व तुम्हारे निकट कहा गया है। हे सुन्दरि ! यह ककार तत्त्व ही कालिका का बीज है। प्रफुल्ल बीज श्रवण करो। उसमें से अर्थात् कालिका के बीजरूप ककार तत्त्व से पृथ्वीबीज धारण ( ग्रहण ) करके बामाक्षि ( दीर्घ ईकार ) के द्वारा संयुक्त करो।

हे प्रिये ! विन्दु तथा अर्द्धचन्द्र ( ँ ) द्वारा संयुक्त होकर वह प्रफुल्ल होता है। ल कार ही साक्षात् सर्वरत्न प्रदायिनी पृथिवी है। पीताङ्गी, पीतवसना, पीतवर्णा विद्युत्-लता ( माला ) के समान आकृति विशिष्ट,

सुखप्रसन्नवदनां रत्नकुण्डल मण्डिताम् ॥
एवं हि संस्मरेद् बीजं तदूर्ध्वे कामिनी पराम् ।
ककार संयुतं कृत्वा प्रफुल्लं भावयेत्प्रिये ॥
मर्द्दिनी या महेशानि सा वामा परमेश्वरि ।
प्रतप्तकाञ्चनाभासां दशबाहुसमान्विताम् ॥
त्रिभङ्गललिताकारां जटाजूटविभूषिताम् ।
त्रिलोचनां चन्द्ररेखां महिषासुरमर्द्दिनीम् ।
सिंहासनगतां देवीं भावये द्वैष्णवोत्तमः ॥
बहुरूपमयीं देवीं ककारं कामिनी पराम् ।
शुक्लवर्णां रक्तवर्णां (पीतवर्णां) पीतचम्पकहासिनीम् ॥
हरिद्वर्णां कृष्णवर्णां नानाचित्रस्वरूपिणीम् ।
उत्पत्तेः कारणं भूमेर्देवानां चैव पार्वति ॥
बीजमेतन्महागुह्यं विष्णोर्जन्मस्थलं सदा ।
तदूर्ध्वे नादतत्त्वञ्च योनिरूपां सनातनीम् ॥
प्रतप्तकाञ्चनाभासां त्रिकोणां शशिशेखराम् ।
श्रृङ्गाररससन्दोहैः पूरि(जि)तां परमेश्वरीम् ॥

---

सुख से प्रसन्न वदना अर्थात् हास्यमुखी, रत्नकुण्ड के द्वारा विभूषित-इस रूप में प्रफुल्लबीज का चिन्तन करना एवं उनके ऊर्ध्व में परा कामिनी का स्मरण करना। हे प्रिये ! क कार संयुक्त करके प्रफुल्लबीज की भावना करना। हे परमेश्वरि ! जो मर्द्दिनी ( महिषमर्द्दिनी ) हैं वे ही वामा है। वैष्णवोत्तम देवी महिषमर्द्दिनी का प्रतप्त काञ्चन के समान दीप्तिविशिष्ट, दशबाहुयुक्ता, त्रिभङ्ग में ललिताकारा अर्थात् मनोहर आकृतिविशिष्टा, जटाजूट विभूषिता, त्रिलोचना, चन्द्ररेखा विभूषिता, सिंहासनोपविष्टा, ऐसी भावना करें।

ककार रूप बहुरूपमयी परा कामिनी देवी का शुक्लवर्णा, रक्तवर्णा पीतचम्पक के समान वर्ण विशिष्टा अर्थात्-गौराङ्गी, हरिद्वर्णा, कृष्णवर्णा तथा नानावर्णस्वरूपिणी का चिन्तन करें।

हे पार्वति ! यह महागुह्य बीज भूमि तथा देवता की उत्पत्ति का कारण है एवं यही सर्वदा विष्णु का जन्मस्थान है। उनके ऊर्ध्व में नादतत्त्व के योनिस्वरूपा, सनातनी, प्रतप्त काञ्चन के समान दीप्तिविशिष्टा, त्रिकोणाकारा, शशिशेखरा, श्रृङ्गाररस समूहों के द्वारा परिपूर्णा, परमेश्वरी

तदूर्ध्वे भावयेद्विन्दुं शिवशक्तिमयं सदा ।
शून्यरूपः शिवः साक्षाद्विन्दुः परमकुण्डली ॥
शून्यभागः कलायुक्तो विन्दुश्च मोक्षदोऽव्ययः ।
सार्द्धत्रिवलयाकारा कोटिविद्युत्समप्रभा ॥
सर्पाकारा शिवं वेष्ट्य तत्रैव संस्थिता सदा ।
एवं हि संस्मरेद्भक्त्या बीजशक्तिसमाश्रिताम् ॥
बीजात्तु जायते ब्रह्मा ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।
शब्द ब्रह्ममयो भूत्वा ईश्वरः कार्यकारणम् ॥
कृष्णस्य चञ्चलापाङ्गि माता सा कामिनी परा ।
बीजाच्चैवाऽङ्कुरे जाते बीजं निष्फलतां व्रजेत् ॥
एतद्बीजं वरारोहे सदा सारमयं विभु ।
लकारसंयुतं भूत्वा प्रसूते हरिमव्ययम् ॥
स्वयं शक्तिर्हरिर्भूत्वा जायते नात्र संशयः ।
ककारसंयुता भूत्वा शक्तिराविरभूत्स्वयम् ॥
जन्मकर्माणि सर्वाणि प्रकृतेरस्ति भामिनि ।
जपे ध्याने च पूजायां प्रकृतिः सुप्रतिष्ठिता ॥

---

स्वरूप भावना करना । उसके ऊर्ध्व में विन्दु को सर्वदा शिवशक्तिस्वरूप भावना करना । शून्यरूप अंश साक्षात् शिवस्वरूप एवं विन्दु साक्षात्-कुण्डलिनी है । ( शिवस्वरूप ) शून्यभाग कला ( शक्ति ) युक्त एवं विन्दु मोक्षप्रद तथा अव्यय है । सार्द्ध त्रिवलयाकारा, कोटि विद्युत् तुल्य प्रभा-विशिष्टा, सर्पाकारा कुण्डलिनी शिव को वेष्टन करके वहीं पर ही सर्वदा अवस्थित हैं । बीज एवं शक्ति संयुक्ता कामिनी का इस रूप में ही भक्तिपूर्वक भावना करना । ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ब्रह्मा इस बीज से ही उत्पन्न होते हैं एवं शब्दब्रह्ममय होकर वही कार्य-कारणरूप में ईश्वर होते हैं ।

हे चञ्चला पाङ्गि ! वह परा कामिनी कृष्ण की जननी है । बीज से अंकुर उत्पन्न होने पर बीज निष्फल होता है । हे वरारोहे ! यह बीज सदा सारमय तथा विभु ( नित्य ) है । लकार संयुक्त होकर ये अव्यय हरि को प्रसव करते हैं । स्वयं शक्ति ही हरि होकर जन्मग्रहण करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है । शक्ति ककार संयुक्त होकर स्वयं हरिरूप में आविर्भूत होते हैं ।

हे भामिनि ! जन्म, कर्म-सभी ही प्रकृति के हैं अर्थात् ब्रह्म के नहीं हैं ।

ककारस्योर्ध्वकोणे तु प्राणो वायुः प्रतिष्ठितः ।
अपानो वामकोणे च संस्थितश्च सदा प्रिये ॥
समानोदक्षिणे कोणे शुद्धस्फटिक सन्निभः ।
उदानस्त्वंशाकारे मात्रायां व्यान एव च ।
एतत्ते कथितं देवि ककारतत्त्वमद्भुतम् ॥
नवतत्त्वं ककारस्य ज्ञात्वा यः कुरुते जपम् ।
स जपश्चञ्चलापाङ्गि जप एव न संशयः ॥
एतत्तत्वमविज्ञाय प्रजपेद्यदि कोटिधा ।
न तज्जप्तं वरारोहे सदा त्वावर्त्तनं भवेत् ॥

## नवतत्त्वनिरूपणम्

देवतत्त्वं प्राणतत्त्वं विन्दुतत्त्वञ्च सुन्दरि ।
ज्ञानतत्त्वं शक्तितत्त्वं योनितत्त्वं तथैव च ॥
नवतत्त्वमिदं प्रोक्तं कामधेनुमतं प्रिये ।
कीलितो नहिदेवो हि विद्या मन्त्रश्च सर्वथा ॥

---

जप से, ध्यान से तथा पूजा से प्रकृति सुप्रतिष्ठिता है । ककार के ऊर्ध्व कोण में प्राणवायु अवस्थित है । हे प्रिये ! ककार के वाम कोण में अपान वायु सर्वदा ही अवस्थित है, दक्षिण कोण में विशुद्ध स्फटिकतुल्य समान, अंकुशाकार रेखा में उदान, मात्रा से व्यान वायु अवस्थित है ।

हे देवि ! इस अद्भुत ककार तत्त्व को तुम्हारे निकट कहा गया है । हे चञ्चलापाङ्गि ! जो व्यक्ति ककार का नवतत्त्व जानकर जप करता है, वह जप ही जप है; इसमें संशय नहीं है । हे वरारोहे ! यह तत्त्व अवगत न होकर यदि कोई कोटि बार भी मन्त्र जप करता है, तब वह जप नहीं है, अर्थात् वह सर्वदा आवर्त्तन मात्र हो सकता है ।

### नवतत्त्वनिरूपण

हे सुन्दरि ! देवतत्त्व, प्राणतत्त्व, विन्दुतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, शक्तितत्त्व, अङ्गतत्त्व, रूपतत्त्व तथा गर्भतत्त्व—हे प्रिये ! यही कामधेनु तन्त्र सम्मत नवतत्त्व कहे गये हैं ।

न शप्तः परमेशानि न विद्धो वरवर्णिनि।
सर्वेषां जङ्गमादीनां स्थावराणांन्तु योगिनि ॥
देवता मातृका माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
एकाक्षरविहीनत्वाद् ब्रह्महत्या वरानने ॥
कस्य स्याद्वशगा देवी हृदये भावयेत्प्रिये।
भावनादक्षरश्रेण्याः साक्षाद् ब्रह्म न संशयः ॥
अक्षरे दूषणं नास्ति शप्तादि कमलानने।
दूषणं यत्कृतं देवि हृदिस्थं भावयेत्प्रिये ॥
रक्षणार्थं सुराणाञ्च ह्यात्मनो गोपनाय च।
मानवाः परमेशानि वराकाः क्षुद्रबुद्धयः ॥
मानवस्य च रक्षार्थं रक्षार्थं पन्नगस्य च।
मयैव निर्मितौ देवि विद्यामन्त्रौ पुरैव हि ॥
अतएव महेशानि ह्यसुराः क्षयमागताः।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन जपं कुरु वरानने ॥

---

हे परमेशानि ! हे वरवर्णिनि ! हे देवेशि ! देवता, विद्या तथा मन्त्र किसी प्रकार से कीलित नहीं है। एवं अभिशप्त भी नहीं है, विद्ध भी नहीं है। हे योगिनी ! सृष्टि, स्थिति तथा ध्वंस कारिणी मातृकात्मिका माया समस्त स्थावर तथा मनुष्यादि जङ्गम समूहों के देवता हैं। हे वरारोहे ! एकाक्षर विहीन होने पर ही ब्रह्महत्या होता है अर्थात् ककार तत्त्व के एक अक्षर भी यदि यथा यथरूप से प्रयुक्त नहीं होते, तभी ब्रह्महत्या के तुल्य पाप होता है।

हे प्रिये ! 'देवी किसके वशवर्त्तिनी होगी-यह भावना करना। साधक अक्षर श्रेणी की भावना से साक्षात् ब्रह्मस्वरूप होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अक्षर में दोष नहीं है शापादि भी नहीं है। हे कमलानने ! हे प्रिये जो दोष अनुष्ठित हुये हैं, वह हृदयवर्त्ती हैं-अर्थात् मन्त्र के वर्ण में कोई दोष नहीं है। मनुष्य के मनोगत दोष वर्ण में आरोपित होते हैं-यही भावना करना। देवताओं की रक्षा के लिये एवं आत्मा की रक्षा अर्थात् स्व स्वरूप में स्थिति के लिये। हे देवि ! हे वरानने। मानव अति क्षुद्र तथा क्षुद्र बुद्धि होते हैं; इस लिये मानवों की रक्षा के लिये एवं पन्नगों के रक्षा के लिये पुराकाल में मेरे द्वारा विद्या तथा मन्त्र निर्मित हुये हैं। हे महेशानि ! इसीलिये ही असुरगण नाश को प्राप्त होते हैं। हे वरानने ! अतएव सर्वप्रयत्न से जप करना।

## मन्त्रार्थनिरूपणम्

यामले—

देवतायाः शरीरन्तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम् ।

भूतशुद्धौ—

ध्यानेन परमेशानि यद्रूपं समुपस्थितम् ।
तदेव परमेशानि मन्त्रार्थं विद्धि पार्वति ॥

मन्त्रस्थानमाह तन्त्रे—

स्थानस्था वरदामन्त्रा ध्यानस्थाश्च फलप्रदाः ।
ध्यानस्थानविनिर्मुक्ताः सुसिद्धा अपि वैरिणः ॥

## मन्त्रस्थानम्

मन्त्रस्थानं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि वरानने ।
सकलं निष्फलं सूक्ष्मं तथा सकलनिष्फलम् ॥
कलाभिन्नं कलाभीतं षोढामन्त्रं शिवोऽब्रवीत् ।
सकलं ब्रह्मरन्ध्रस्थं तदधो विद्धि निष्फलम् ॥

---

### मन्त्रार्थ-निरूपण

यामल तन्त्र में कहा गया है—'देवता का शरीर निश्चय ही देवता के बीज से उत्पन्न होता है ।

'भूतशुद्धितन्त्र में कहा गया है—हे परमेशानि ! ध्यान के द्वारा जिस प्रकार मूर्त्ति उपस्थित होता है, हे पार्वति ! हे परमेशानि ! वही मन्त्र का अर्थ, जानना । तन्त्र में मन्त्रस्थान कह रहे हैं—सभी मन्त्र यथास्थान में स्थित ( प्रयुक्त ) होने पर वरदान करते हैं एवं ध्यान में स्थित होने पर फलदान करते हैं । ध्यान तथा स्थान भ्रष्ट होने पर सुसिद्ध मन्त्र भी शत्रु हो जाता है ।

### मन्त्रस्थान

हे देवि ! हे वरानने ! मन्त्रों के स्थान कह रहा हूँ । श्रवण करो । सकल, निष्फल, सूक्ष्म, सकल-निष्कल, कलाभिन्न तथा कलातीत यह छः प्रकार के मन्त्र शिव के द्वारा कहे गये हैं । ब्रह्मरन्ध्रस्थित मन्त्र को सकल,

मानसः सूक्ष्ममाख्यातो हृत्स्थः सकलनिष्फलः ।
विन्दुस्थितः कलाभिन्नः कलातीतस्तदूर्ध्वतः ॥
कला कुण्डलिनी चैव नादः शक्तिः शिवोदिता ।
षट्कस्थानस्थिता मन्त्राः स्थानस्थाः प्ररिकोर्तिताः ॥

ध्यानन्तु स्वरव्यञ्जनभेदेन मन्त्रघटकीभूतवर्णचिन्तनमेवेत्यर्थः ।

भूतशुद्धौ—

चैतन्यरहितं मन्त्रं यो जपेत्स च पापकृत् ।
मन्त्राश्चैतन्यसहिताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः ॥

### मन्त्रचैतन्यादिनिरूपणम्

चैतन्यं सर्वमन्त्राणां श्रृणुष्व कमलानने ।
सहस्रारं शिवपुरं कल्पवृक्षं मनोहरम् ॥
चतुर्वेद चतुःशाखं नित्यं पुष्पफलान्वितम् ।
पीतं रक्तं तथा श्वेतं कृष्णञ्च हरितं तथा ॥
भ्रमरैः कोकिलैर्देवि बहुपुष्पोपशोभितम् ।

---

उसके अधोदेशवर्त्ती मन्त्र को निष्कल जानना चाहिए। मानस मन्त्र सूक्ष्म, हृदयस्थित मन्त्र सकल निष्कल, बिन्दुस्थित मन्त्र कलाभिन्न एवं उसके ऊर्ध्वदेशस्थित मन्त्र कलातीत कहे गये हैं। कला है कुण्डलिनी, और नादशिव की समवायिनी शक्ति है। ये छः स्थानस्थित मन्त्र 'स्थानस्था' कहकर कथित हुये हैं। स्वर तथा व्यञ्जन भेद से मन्त्र के अन्तर्गत वर्ण का चिन्तन—ही ध्यान शब्द के अर्थ हैं।

भूतशुद्धि तन्त्र में कहा गया है—जो व्यक्ति चैतन्य रहित मन्त्र जप करता है वह पापी है। चैतन्य विशिष्ट होने पर सभी मन्त्र के सकलसिद्धि जनक कह कर कथित हुये हैं।

### मन्त्रचैतन्यादि निरूपण

हे कमलाने! सभी मन्त्रों को चैतन्य श्रवण करो। सहस्रार पद्म शिव का गृह है, वहाँ मनोहर कल्पवृक्ष है। वह चतुर्वेद रूप चार शाखायुक्त; नित्य फलपुष्पों के द्वारा शोभित है; वह ( कल्पवृक्ष समूह ) पीत, रक्त, श्वेत, कृष्ण तथा हरिद्वर्ण विशिष्ट है। हे देवि! वह भ्रमर तथा

एवं कल्पद्रुमं ध्यात्वा तदधोरत्नवेदिकाम् ॥
तत्रोपरि महेशानि पर्यङ्कं सुमनो हरम् ।
नानापुष्पसंयुतया रचितं हेममालया ॥
तत्रोपरि महादेवं महाकुण्डलिनीयुतम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं महादेवि त्रिवर्गदाम् ॥
आनन्दाश्रूणि पुलको देहावेशः सुरेश्वरि ।
गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः ॥
सकृदुच्चरितेऽप्येवं मन्त्रे चैतन्यसंयुते ।
शते सहस्रे लक्षे वा कोटिजापेन तत्फलम् ॥
इत्येतत्कथितं देवि मन्त्रचैतन्यमुत्तमम् ।
विष्णुमन्त्रे तथा शैवे शक्तिमन्त्रे सुरेश्वरि ।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यत्नतः समुपाचरेत् ॥

## योनिमुद्रा

योनिमुद्रामाह तन्त्रमुक्तावल्यां—
उपविश्यासने मन्त्रीप्रङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।

---

कोकिल समूहों के द्वारा एवं अनेक पुष्पों के द्वारा शोभित है। हे महेशानि ! कल्पवृक्ष का इस रूप में ध्यान करके उसके उपरिभाग में नानापुष्प संयुक्त हेममाला के द्वारा आरचित (सुशोभित) सुमनोहर पर्यङ्क का चिन्तन करना। उस पर्यङ्क के उपरिभाग में महाकुण्डलिनीयुक्त महादेव का ध्यान करना। हे महादेवि ! त्रिवर्ण (धर्म, अर्थ, काम) प्रदायिनी देवी (इष्टदेवी) का इस रूप में भावना करके मन्त्र जप करना।

हे सुरेश्वरि ! (उसी समय में) सहसा आनन्दाश्रु, पुलक, देहावेश (रोमाञ्च) तथा गद्गदोक्ति उत्पन्न होता है, इसमें सन्देश नहीं है। शत, सहस्र, लक्ष अथवा कोटि बार मन्त्र जप में जो फल होता है, चैतन्य-संयुक्त मन्त्र एकबार उच्चरित होने पर वही फल होता है। हे देवि ! यह उत्तम मन्त्र-चैतन्य कहा गया है। हे सुरेश्वरि ! विष्णुमन्त्र में शिवमन्त्र में तथा शक्तिमन्त्र में यत्नपूर्वक मन्त्रार्थ तथा मन्त्र चैतन्य की भावना करना।

### योनिमुद्रा

मन्त्रमुक्तावली में योनिमुद्रा कह रहे हैं—हे देवि ! दीक्षित साधक पूर्वमुख

षट्चक्रं चिन्तयेद्देवि प्राणायामपुरःसरम् ॥
चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानन्तु षड्दलम् ।
नाभौ दशदलं पद्मं सूर्यसंख्यदलं हृदि ॥
कण्ठे स्यात्षोडशदलं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा ।
सहस्रदलमाख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथे ॥
आधारे कन्दमध्यस्थं त्रिकोणमतिसुन्दरम् ।
त्रिकोणमध्ये देवेशि कामबीजं सुलक्षणम् ॥
कामबीजोद्भवं तत्र स्वयम्भूलिङ्गमुत्तमम् ।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् चित्कलां हंसमाश्रिताम् ॥
ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्ग वेष्टिताम् ।
चित्कलां तां कुण्डलितां तेजोरूपां जगन्मयीम् ॥
आधारादीनि पद्मानि भित्त्वा तेजः स्वरूपिणीम् ।
हंसेन मनुना देवीं ब्रह्मरन्ध्रं नयेत्सुधीः ॥
सदाशिवेन देवी सा क्षणमात्रं रमेत्प्रिये ।
अमृतं जायते देवि तत्क्षणात्परमेश्वरि ॥

---

अथवा उत्तरमुख होकर आसन में उपवेशन करके प्राणायाम पूर्वक षट्चक्र का चिन्तन करें। मूलाधार चक्र चतुर्द्दल, स्वाधिष्ठान षड्दल, नाभि में मणिपुर पद्म दशदल; हृदय में द्वादशदल; कण्ठ में षोडशदल; भ्रूमध्य में द्विदल एवं महापथ ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रदल पद्म का चिन्तन करने। मूलाधार में कन्दमध्यस्थित त्रिकोण अति सुन्दर है। हे देवेशि ! उस त्रिकोण मध्य में सुलक्षण कामबीज (क्लीं) है। उस स्थान में उत्तम स्वयम्भू लिङ्ग को कामबीज से उत्पन्न ध्यान करें। उसके उपरिभाग में वंसारूढा चित्कला का पुनः ध्यान करें एवं स्वयम्भूलिङ्ग वेष्टिता देवी कुण्डलिनी का भी ध्यान करें।

सुधी साधक हंस मन्त्र के द्वारा तेजःस्वरूपिणी, तेजोरूपा अर्थात् दीप्ति-विशिष्टा जगन्मयी उस चित्कला (चित् शक्ति) कुण्डलिनी के मूलाधारादि छह चक्रों के पद्म को भेद करके ब्रह्मरन्ध्र में ले जाय। हे प्रिये ! वह देवी सदाशिव के साथ क्षणकाल विहार करती हैं। हे देवि ! हे परमेश्वरि ! उसी क्षण में ही अमृत उत्पन्न होता है।

तदुद्भवामृतं देवि लाक्षारस समोपमम् ।
तेनामृतेन देवेशि तर्पयेत्परदेवताम् ॥
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्याऽमृतधारया ।
आनयोत्तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः ॥
ततस्तु परमेशानि अक्षमालां विचिन्तयेत् ।
चित्रिणी विसतन्त्वाभा ब्रह्मनाडीगतान्तरा ॥
तया संग्रथिता मध्ये साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी ।
अनुलोम विलोमेन मन्त्रवर्णविभेदतः ॥
मन्त्रेणाऽन्तरितान्वर्णान्वर्णेनाऽन्तरितं मनुम् ।
कुर्याद्वर्णमयीं मालां सर्वमन्त्रप्रकाशिनीम् ॥
चरमार्णं मेरुरूपं लंघनं नैव कारयेत् ।
सविन्दुं वर्णमुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेत्सुधीः ॥
अकारादि लकारान्तमनुलोम इति स्मृतम् ।
पुनर्लकारमारभ्य श्रीकण्ठान्तं मनुं जपेत् ॥
विलोम इति विख्यातं क्षकारं केवलं जपेत् ।

---

हे देवि ! उस विहार से उत्पन्न अमृत लाक्षारस के तुल्य अर्थात् अरुण वर्ण है। हे देवेशि ! सुधी साधक उस अमृत के द्वारा देवता का तर्पण करें एवं उसी स्थान पर अमृत धारा के द्वारा षट्चक्र देवता का तर्पण करके उसी पथ से पुनः कुण्डलिनी का आनयन करें।

हे परमेशानि ! उसके बाद अक्षमाला ( वर्णमाला ) का चिन्तन करें। मृणालतन्तु ( कमल के नाल के भीतर धागा ) के तुल्य चित्रिणी नाड़ी ब्रह्मनाड़ी के मध्य से गयी है। मध्यभाग में साक्षात् जाग्रत्-स्वरूपिणी कुण्डलिनी उनके द्वारा ग्रथित हुई है। मन्त्रवर्ण के भेद से अकारादि वर्ण-समूहों को अनुलोम तथा विलोम में मन्त्र के द्वारा व्यवहित करके एवं अकारादि वर्ण के द्वारा मन्त्र को व्यवहित करके सर्वमन्त्रप्रकाशिनी वर्णमयी माला का जप करें। जप के समय मेरुस्वरूप चरमवर्ण क्षकार का लङ्घन नहीं करें।

सुधी साधक अकार से लकार तक अनुस्वार युक्तवर्ण उच्चारण करके बाद में मन्त्र जप करें। यह 'अनुलोम' जप कहा गया है। पुनराय लकार से श्रीकण्ठ (अकार) तक सविन्दुवर्ण उच्चारण करके मन्त्र जप करें। इसे 'विलोम' जप कहा गया है। बाद में केवल क्षकार का जप करें

वर्णानामष्टवर्णेन त्वष्टवारं जपेत्सुधीः ॥
अ क च ट त प य शा इत्येवं चाष्टवर्गकाः ।
अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं ज्ञानेन संजपेत् ।
योनिमुद्रा महेशानि तव स्नेहात्प्रकाशिता ॥
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां नवेत्ति यः ।
शतकोटिजपेनाऽपि तस्य सिद्धिर्न जायते ॥

इति योनिमुद्रा

## मन्त्रशिखानिरूपणम्

मन्त्रशिखामाह यामले—

श्रृणुदेवि प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानोत्तमोत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण क्षिप्रं विद्या प्रसीदति ॥
मूलकन्दे तु या देवी भुजगाकाररूपिणी ।
तद्भ्रमावर्त्तवातो यः प्राण इत्युच्यते बुधैः ॥
भिल्लीवाऽव्यक्तमधुरा कुजन्ती सततोत्थिता ।

---

अर्थात् क्षकार के बाद पुनः मन्त्र जप न करें। सुधी साधक अष्टवर्ग के आठों वर्णों के द्वारा आठबार जप करें। अ वर्ग, क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, म वर्ग, तथा श वर्ग इस प्रकार यह आठों 'अष्टवर्ग, कहे गये हैं। साधक इस प्रकार अष्टोत्तर शतमूलमन्त्र के ज्ञान के द्वारा अर्थात् मन के द्वारा जप करें।

हे महेशानि ! तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण योनिमुद्रा प्रकाशित हुआ है। जो व्यक्ति मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य तथा योनिमुद्रा नहीं जानता, शतकोटि मन्त्र जप के द्वारा भी उसकी सिद्धि नहीं होती।

इति यौनिमुद्रा प्रकरण।

## मन्त्रशिखा-निरूपण

यामल तन्त्र में मन्त्रशिखा कह रहे हैं—हे देवि ! सर्वज्ञानों के मध्य में उत्तमोत्तम विषय कह रहा हूँ, श्रवण करो। जिनके ज्ञानमात्र से ही विद्या शीघ्र प्रसन्न होती है। मूलकन्द में अर्थात् मूलाधार में सर्पाकार-स्वरूपिणी जो देवी अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति हैं, उनके भ्रमण से जो आवर्त्तवायु ( घूर्णी-वायु ) उत्पन्न होता है, पण्डितगणों द्वारा वह प्राण ( हंस ) कहा गया है।

गच्छन्ती ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्ति स्वकेतनम् ॥
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोत्लयम् ।
तेन मन्त्रशिखा जाता सर्वमन्त्रप्रदीपिका ॥
तमःपूर्णे गृहे यद्वत् न किञ्चित्प्रतिभासते ।
शिखाहीनास्तथा मन्त्रा न सिद्ध्यन्ति कदाचन ॥
शिखापदेशः सर्वत्र गोपितः परमेश्वरि ।
विना येन न सिद्धिः स्याद्वर्षकोटिशतैरपि ।
तस्मात्त्वयापि गिरिजे गोपनीयः प्रयत्नतः ॥

## अशौचभङ्गः

रुद्रयामले—

जातसूचकमादौ स्यादन्ते च मृतसूतकम् ।
सूतकद्वयसंयुक्तो न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

जपादौ जातसूतकं जपान्ते च मृतसूतकमिति सूतकद्वयमित्यर्थः ।

---

सदा जाग्रतस्वरूपिणी उस कुण्डलिनी झिल्ली ( झि झि आवाज करता हुआ रात का एक कीड़ा ) के समान अव्यक्त मधुर शब्द करते करते ( सुषुम्ना के अन्तर्गत चित्रिणी नाड़ी के मध्य से ) ब्रह्मरन्ध्र पथ से गमन करते करते निज निकेतन (मूलाधार) में प्रवेश करते हैं । इस यातायात क्रम से ही वहीं पर मनोलय अर्थात् चित्त को स्थिर करना । इसी से ही सर्वमन्त्र के प्रकाशिका मन्त्रशिखा उत्पन्न होती है । अन्धकार पूर्ण गृह में जिस प्रकार कुछ भी प्रकाशित नहीं होता, शिखाहीन मन्त्र भी उसी प्रकार कभी भी सिद्ध नहीं होता ।

हे परमेश्वरि ! जिनके द्वारा अर्थात् जो मन्त्र शिखा के उपदेश व्यतीत ( विना ) एक शत कोटि वर्ष में भी सिद्धि नहीं होगा, उस मन्त्रशिखा का उपदेश सर्वत्र मेरे द्वारा गोपित हुआ है । सुतरां हे गिरिजे ! तुम भी यत्नपूर्वक इसे गोपनीय रखना ।

### अशौच भङ्ग

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—'पहले अर्थात् मन्त्र जप के आरम्भ में जाताशौच तथा जप के अन्त में मृताशौच होता है । सूतकद्वय विशिष्ट मन्त्र सिद्धिप्रद नहीं होता । 'सूतकद्वय' अर्थात्-जप के आदि में जात सूतक एवं

यामले—

ब्रह्मबीजं मनोर्दत्त्वा चाद्यन्ते परमेश्वरि।
सप्तवारं जपेन्मन्त्रं सूतकद्वयमुक्तये॥

सूतकद्वयमुक्तये मनोराद्यन्ते ब्रह्मबीजं प्रणवं दत्त्वा जपादौ सप्तवारं जपान्ते च सप्तवारं तं मनुं जपेदित्यर्थः।

सूतकद्वयमुक्तो यः स मन्त्रः सर्वसिद्धिदः।
चतुर्दश स्वरो देवि पुण्यः सिद्धि प्रदायकः।
नादविन्दुसमोपेतो दीर्घ प्रणव उच्यते॥

## स्त्रीशूद्राणामशौचभङ्गः

तन्त्रोक्तः प्रणवः सोऽपि स्त्रीशूद्राणां प्रशस्यते।
तस्मात्स्त्रीणाञ्च शूद्राणां स एव परिकीर्तितः॥

भूतशुद्धौ—

तन्त्रोक्तं प्रणवं देवि वह्निजायां सुरेश्वरि।
प्रजपेत्सततं शूद्रो नात्र कार्या विचारणा॥

तेन प्रणवपुटितमन्त्रजपस्थले स्त्री शूद्रश्च ॐकारपुटितं कृत्वैव

---

जप के अन्त में मृत सूतक है। यामलतन्त्र में कहा गया है—'हे परमेश्वरि! इस अशौचद्वय निवृत्ति के लिये मन्त्र जप के आदि में तथा अन्त में ब्रह्मबीज (प्रणव) देकर सातबार मन्त्र जप करना। इस बचन के तात्पर्यार्थ हैं—मन्त्र के आदि में तथा अन्त में ब्रह्मबीज प्रणव देकर जप के आदि में सातबार वह मन्त्र एवं अन्त में सातबार उस मन्त्र का जप करना। जो मन्त्र सूतकद्वय से मुक्त है अर्थात् जिस मन्त्र के सूतकद्वय नहीं हैं, वह मन्त्र सर्वसिद्धि प्रद है।

### स्त्री शूद्रों का अशौचभङ्ग

हे देवि! पुण्यजनक एवं सर्वसिद्धिप्रद चतुर्द्दश स्वर (औ) नाद एवं विन्दुयुक्त होने पर ही दीर्घ प्रणव (औंकार) कथित होता है। वह भी तन्त्रोक्त प्रणव है। वह (औंकार) स्त्री एवं शूद्रगणों के पक्ष में प्रशस्त है। इसलिये स्त्री एवं शूद्रगणों के लिए वही प्रणव कहकर कीर्त्तित हुआ है।

भूतशुद्धि तन्त्र में कहा गया है—'हे ईश्वरि! हे देवि! शूद्रतन्त्रोक्त प्रणव (औं) का सर्वदा जप करें। इस प्रकार तन्त्रोक्त वह्निजाया (नमः) कह कर जप करें। इसमें विचार न करें। सुतरां प्रणव पुटित मन्त्र जप के

मन्त्रं जपेत् । तन्त्रोक्ता वह्निजाया तु हृदयमेव ( नमः ) स्वाहास्थाने च नमः पदं प्रयोज्य न्यासजपादिकं कुर्यादिति ज्ञेयम् ॥

## गणनाविधिः

गणनाविधिमाहयामले—

गणनाविधिमुल्लंघ्य यो जपेत् तज्जपं यतः ।
गृह्णन्ति राक्षसास्तेन गणयेत्सर्वथा बुधः ॥
नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः ।
न चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्यां तु कारयेत् ॥
लाक्षाकुशीदसिन्दूरं गोमयश्च करीषकम् ।
विलोड्य गुटिकां कृत्वा जपसंख्यां तु कारयेत् ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूत श्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरि कृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां जपलक्षणादिनिर्णयो नाम नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

---

स्थान में स्त्री एवं शूद्र मन्त्र को ॐकार पुटित करके ही जप कर सकता है। तन्त्रोक्त वह्निजाया है—हृदय ( नमः ) 'स्वाहा' के स्थान में 'नमः' पद योग करके न्यास एवं जपादि करें—यही तत्पर्य है।

## गणनाविधि

यामलतन्त्र में गणना का विधि कर रहे हैं—जो व्यक्ति गणना का विधि लङ्घन करके जप करता है, उसका जप रासक्षगण ग्रहण करते हैं। पण्डित-गणों को सर्वदा ही अक्षत समूहों के द्वारा, हस्तपर्व द्वारा, धान्य द्वारा, पुष्पों द्वारा चन्दन तथा मृत्तिका द्वारा जप संख्या की गणना करना चाहिए। लाक्षा, 'कुशीद' (रक्तचन्दन), सिन्दूर, गोमय, करीष ( सुखागोवर का टुकड़ा अथवा भस्म ) गुलिया ··· गुटिकरके जप संख्या की गणना करें।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत
शाक्तानन्दतरङ्गिणी के जपलक्षणानिर्णय
नामक नवम उल्लास समाप्त।

# दशमोल्लासः

## महासेतुनिरूपणम्

अथ महासेत्त्वादीनां प्रयोजनमाह—

महासेतुं विना देवि यो जपेत् सतु पापभाक्।
आदौ जप्त्वा महासेतुं ततः सेतुं ततो मनुम्।
एवं क्रमैर्वरारोहे यथेष्टं जपमाचरेत्॥

सेतुमङ्गलतन्त्रे—

यो जपेत्परमेशानि विना सेतुं महामनुम्।
तस्य सर्वार्थहानिः स्यान्मृते च नरकं व्रजेत्॥

## महासेतुः

महासेतुमाह यामले—

महासेतुश्च देवेशि सुन्दर्या भुवनेश्वरी।
कालिकायाः स्वबीजन्तु ताराया कूर्च उच्यते।
अन्येषान्तु वधूबीजं महासेतुर्वरानने॥

---

### महासेतु निरूपण

इसके अनन्तर महासेतु, सेतु, आदि का प्रयोजन कह रहे हैं—हे देवि! जो व्यक्ति महासेसु बिना अर्थात् महासेतु मन्त्र जप न करके इष्टमन्त्र जप करता है, वह पाप भागी होता है। सर्वप्रथम महासेतु जप करके उसके बाद सेतु जप करके उसके बाद मन्त्र जप करना चाहिए। हे वरारोहे! इस क्रम से इच्छानुरूप जप करना चाहिए।

सेतु मङ्गल तन्त्र में कहा गया है—'हे महेशानि! जो साधक सेतु जप न करके महामन्त्र ( इष्टमन्त्र ) का जप करता है, उसका सभी अर्थ नष्ट होता है, एवं पञ्चत्व को प्राप्त होने पर वह नरक में गमन करता है।

### महासेतु

यामल तन्त्र में महासेतु कह रहे हैं—'हे देवेशि! सुन्दरी का महासेतु है भुवनेश्वरि अर्थात् ह्रीं'। कालिका का महासेतु स्वबीज ( क्रीं ) एवं तारा का महासेतु कुर्च्च ( हूं ) कहा गया है। हे वरानने! अन्य सभी देवता का

वधूबीजमाह रुद्रयामले—

आकाशाद्यं चतुर्थाद्यं यकारान्तं च संहतम्।
लक्ष्मीविन्दुयुतं देवि वधूबीजमुदाहृतम् ॥

आकाशाद्यं सकारः चतुर्थाद्यं तकारः, यकारान्त रेफः। संहतं एतत्त्रितय संयुक्तम्। लक्ष्मीः ईकारः विन्दुरनुस्वारः, ताभ्यां युतम्। एतेन स्त्रीमिति।

महासेतुं विना देवि न जप्तव्यं कदाचन।
शतकोटिजपेनाऽपि तस्य सिद्धिर्न जायते ॥

## सेतुनिरूपणम्

सेतुमन्त्रं महेशानि सर्वेषां कुल्लुकां शृणु।
सेतुविद्या महेशानि साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी ॥
आदावन्ते च देवेशि जपेत्तां तु जपान्मनोः।
ततः सिद्धो भवेद्देवि मन्त्रो विद्या विशेषतः ॥
अन्यथा विफलं देवि निश्चयं वचनं मम।

---

महासेतु है वधूबीज (स्त्रीं)। रुद्रयामल तन्त्र में वधूबीज कह रहे हैं—हे देवि ! परस्पर मिलित एवं लक्ष्मी तथा बिन्दु के द्वारा युक्त आकाशाद्य, चतुर्थाद्य एवं यकारान्त वर्ण वधूबीज कह रहे कथित हुआ है। आकाशाद्य अर्थात् सकार। चतुर्थाद्य अर्थात् तकार। यकारान्तं अर्थात्—रेफ, संहत अर्थात्—एतत् त्रितय संयुक्त अर्थात् सकार, तकार तथा रकार परस्पर संयुक्त। 'लक्ष्मी' अर्थात्—ई कार है। 'बिन्दु' अर्थात् अनुस्वार है। 'ताभ्यां युतं' अर्थात् ईकार तथा अनुस्वार-इन दोनों के द्वारा युक्त। सुतरां वधूबीज होने से-ह्लीं।

हे देवि ! महासेतु को छोड़कर किसी भी प्रकार जप मत करना। शतकोटि बार जप के द्वारा भी उस मन्त्र की सिद्धि नहीं होती।

### सेतुनिरूपण

हे महेशानि ! समस्त देवताओं के सेतु एवं कुल्लुका का श्रवण करो। हे महेशानि ! सेतुविद्या साक्षात ब्रह्मस्वरूपिणी है। हे देवेशि ! मन्त्र जप के आदि में तथा अन्त में सेतुविद्या का जप करना। हे देवि ! उसी से ही विशेषरूप से मन्त्र तथा विद्या सिद्ध होगी। हे देवि ! अन्यथा अर्थात् सेतु जप न करके मन्त्र जप करने पर विफलता होगी। यह मेरा सत्य कथन है।

पार्श्वयोः सेतुमाधाय जपकर्म समाचरेत् ॥
निःसेतुसलिलं यद्वत्क्षणान्निम्नं प्रसर्पति ।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात्क्षरति यज्वनाम् ॥

आदावन्तेचेति । मनोर्जपात् आदौ तदन्ते च सेतुविद्यां जपेदित्यर्थः ।

## समान्यसेतुः

सामान्यसेतुमाह—

विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रियाणां तथैव च ।
वैश्यानां तु फडर्णः स्यान्माया शूद्रस्य कथ्यते ॥

## विशेषसेतुः

विशेषसेतुमाह यामले—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि सुन्दर्याः सेतुमुत्तमम् ।
मायाबीज समुद्धृत्य सौभाग्यं च ततः परम् ॥
पुनर्मायां समुद्धृत्य विद्येयं त्र्यक्षरी परा ।
सुन्दरीविषये सेतुः कथितः परमेश्वरि ॥

---

सुतरां दोनों तरफ अन्त्र के आदि में तथा तन्त में सेतु जप करके ही जप कर्म करना चाहिए। निःसेतु सलिल अर्थात् वांधहीन जल जिस प्रकार निमेष भर में नीचे चला जाता है। याजक गणों के सेतु हीन मन्त्र भी उसी प्रकार निमेष भर में ही क्षरित अर्थात् निष्फल होता है। 'आदावन्ते च' अर्थात् मन्त्र जप के आदि में तथा मन्त्र जप के अन्त में सेतु विद्या का जप करना चाहिए।

### सामान्य सेतु

सामान्य सेतु कह रहे हैं—विप्रगणों का सेतु है प्रणव, क्षत्रियगणों का भी वही है। वैश्यों का 'फट्' एवं शूद्रों का माया ( ह्रीं ) सेतु कहा गया।

### विशेष सेतु

यामलतन्त्र में विशेष सेतु कह रहे हैं—हे देवि ! सुन्दरी का उत्तम सेतु कह रहा हूँ सुनों ! मायाबीज ( ह्रीं ) उद्धृत करके उसके बाद सौ तथा भाग्य एवं पुनः माया का उद्धार करना। हे परमेश्वरि ! सुन्दरी विषय में

सौ स्वरूपम् । भाग्यं विसर्गः । मन्त्रो यथा—ह्लीं सौः ह्लीं ।

अथ वक्ष्ये महेशानि भैरव्याः सेतुमुत्तमम् ।
हरप्रियां समुद्धृत्य सुरसा च ततः परम् ॥
औदर्यसंयुत कृत्वा विन्द्वर्द्धं संयुतं कुरु ।

इयं विद्या वरारोहे भैरव्याः सेतुरूपिणी । मन्त्रो यथा—ह्स ।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखा तदनन्तरम् ।

एषा च द्व्यक्षरी विद्या तारायाः सेतुरुच्यते ॥ मन्त्रो यथा—ॐ ह्लीं ।

श्यामायाः—

ऐश्वर्यं बीजमुद्धृत्य कूर्चबीजं समुद्धरेत् ।
पुनरैश्वर्यमुद्धृत्य विन्द्वर्द्धं संयुतं कुरु ॥

सेतुरेषा महेशानि श्यामायाः परिकीर्तिता । मन्त्रो यथा—ऐं हूं ऐं ।

भुवनेश्याः—

प्रणवं प्रथमं देवि हृल्लेखाद्वितयं ततः ।
ततश्च परमेशानि प्रणवद्वयमुद्धरेत् ॥

---

यह त्र्यक्षरी परा विद्या सेतु कहा गया है । 'सौ' अर्थ-स्वरूप अर्थात् 'सौ' वर्ण, 'भाग्यं अर्थात् विसर्ग । सुतरां सुन्दरी का सेतुमन्त्र है—ह्लीं सौः ह्लीं ।

इसके अनन्तर भैरवी का उत्तम सेतु कहूँगा । हरप्रिया (ह)का उद्धार करके बाद में सुरसा ( स् ) उद्धार करके औदर्य ( औ ) संयुक्त करके विन्द्वर्द्ध ( ं ) संयुक्त करें ।

हे वरारोहे ! भैरवी की यह विद्या सेतु-स्वरूपिणी है । मन्त्र यथा-ह्स । पहले प्रणव का उद्धार करके बाद में हृल्लेखा ( ह्लीं ) का उद्धार करना चाहिए । यह द्वाक्षरी विद्या तारा का सेतु कहा गया है । मन्त्र यथा-ॐ ह्लीं ।

श्यामा का सेतु—ऐश्वर्यबीज ( एँ ) का उद्धार करके कूर्चबीज ( हूँ ) का उद्धार करना । पुनः ऐश्वर्यबीज का उद्धार करके विन्द्वर्द्ध को संयुक्त करना । हे महेशानि ! यही श्यामा का सेतु कहकर कीत्तित हुआ है । मन्त्र यथा—एँ हूँ एँ ।

भुवनेश्वरी का सेतु है—हे देवि ! हे परमेशानि ! पहले प्रणव, उसके बाद दोनों हृल्लेखा ( ह्लीं ) तथा उसके बाद दोनों प्रणव का उद्धार करना ।

भुवनेश्याः महेशानि विद्येयं सेतुरुच्यते । मन्त्रो यथा—ॐ ह्लीं ह्लीं ॐ ॐ

अन्नदायाः—

अथ वक्ष्ये महेशानि चान्नदासेतुमुत्तमम् ।
आदौ मायां समुच्चार्य वह्निजाया समुद्धरेत् ॥ मन्त्रो यथा—ह्लीं स्वाहा ।

महिषमर्दिन्याः—

अथ वक्ष्ये महेशानि मर्दिन्याः सेतुमुत्तमम् ।
हंस-(वर्णं)रूपं समुद्धृत्य रंजिन्युपरि संस्थितम् ॥
ईतिवर्णयुतं कृत्वा विन्द्वर्द्धं संयुतं कुरु ।
ततश्च परमेशानि वह्निजायां उद्धरेत् ॥

त्र्यक्षरीयं सेतुविद्या मर्दिन्याः परिकीर्तिता । मन्त्रो यथा—ह्लीं स्वाहा ।

विष्णोः—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य वासवाद्यं ततः परम् ।
इन्दिरासंयुतं कुर्याद्यत्नतः परमेश्वरि ॥

---

हे महेशानि ! यह विद्या भुवनेश्वरी का सेतु कहा गया है । मन्त्र यथा—ॐ ह्लीं ह्लीं ओं ओं ।

अन्नदा का सेतु—अनन्तर अन्नदा का उत्तम सेतु कह रहा हूँ । पहले मायाबीज का उच्चारण करके वह्निजाया का उद्धार करना । मन्त्र यथा—ह्लीं स्वाहा ।

महिषमर्द्दिनी का सेतु—हे परमेशानि ! इसके अनन्तर महिषमर्द्दिनी का उत्तम सेतु कह रहा हूँ । रञ्जिनी ( रकार ) का उपरिभाग में संस्थित हंस वर्ण ( ह ) उद्धार करके 'ई' यह वर्ण तथा विन्द्वर्द्ध ( ँ ) संयुक्त करना । बाद में वह्निजाया का उद्धार करना । यह त्र्यक्षरी विद्या महिषमर्द्दिनी की सेतुविद्या कहा गया है । मन्त्र यथा—ह्लीं स्वाहा । विष्णु का सेतु-पहले प्रणव का उद्धार करके उसके बाद वासवाद्य ( व ) का उद्धार करके यत्नपूर्वक इन्दिरा ( इ ) संयुक्त करना चाहिए ।

ष्णात्मकमक्षरं चोक्त्वा ततः परमुदीरयेत् ।
बालिबीजं समुद्धृत्य एधिता संयुतं कुरु ॥

पुनः प्रणवमुद्धृत्य विष्णोः सेतुः शुचिस्मिते । मन्त्रो यथा—
ॐ विष्णेव ॐ

श्रीकृष्णस्य—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मन्मथं तदनन्तरम् ।
पुनः प्रणवमुद्धृत्य सेतुमन्त्रं मनोहरम् ॥
श्रीकृष्णविषये सेतुस्त्र्यक्षरः समुदाहृतः ॥ मन्त्रो यथा—
ॐ क्लीं ॐ

रामस्य—

शृणु कमलपत्राक्षि सेतुं रामस्य सुन्दरम् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य राजहंसं ततः परम् ॥
आचार्यं संयुतं कृत्वा विन्द्वर्द्धसंयुतं कुरु ।
पुनः प्रणवमुद्धृत्य विद्येयं सेतुरूपिणी ॥
त्र्यक्षरीयं महाविद्या सेतुविद्या प्रकीर्तिता । मन्त्रो यथा—ॐ रां ॐ

---

हे परमेश्वरि ! उसके बाद 'ष्ण' वर्ण तथा वालिबीज (व) का उद्धार करके उच्चारण करना एवं एधिता (ए) को संयुक्त करना । हे शुचिस्मिते ! पुनः प्रणव का उद्धार करना । यह विष्णु का सेतु है । मन्त्र यथा—ओं विष्णवे ओं ।

श्रीकृष्ण का सेतु—पहले प्रणव का उद्धार करके अनन्तर मन्मथ ( क्लीं ) तथा पुनराय प्रणव का उद्धार करके मनोहर सेतु मन्त्र का उद्धार करना । श्रीकृष्ण के विषय में यह त्र्यक्षर मन्त्र सेतु कहा गया है । मन्त्र यथा—ओं क्लीं ओं ।

राम का सेतु है—हे कमलपत्राक्षि ! राम का सुन्दर सेतु श्रवण करो । पहले प्रणव का उद्धार करके उसके बाद राजहंस ( र ) का उद्धार करना । बाद में उसमें आचार्य ( आ ) संयुक्त करके विन्द्वर्द्ध ( ं ) संयुक्त करना एवं पुनः प्रणव का उद्धार करना । यह सेतुरूपिणी विद्या है । त्र्यक्षरी यह महाविद्या राम की सेतुविद्या कही गयी है । मन्त्र यथा—ओं रां ओं ।

शिवस्य—

हंसयुक्तं समुद्धृत्य समुद्ररूपिणं ततः ।
चन्द्रार्द्ध संयुतं देवि कुरु यत्नेन पार्वति ।
एषा च द्व्यक्षरी विद्या शिवस्य सेतुरूपिणी ॥

मन्त्रो यथा—हंसः ।

अन्येषु देवोदेवेषु प्रणवः सेतुरुच्यते ।
सर्वेषां शूद्रजातीनामौङ्कारः सेतुरुच्यते ॥

## अथ कवचसेतुः

यत्र यत्र विनिर्दिष्टः सेतुमन्त्रः शुचिस्मिते ।
तन्मन्त्रं त्रिगुणं कृत्वा सेतुमन्त्रं कुरु प्रिये ॥
कवचस्य महेशानि सेतुर्भवति सुन्दरि ।
सेतुं विना महेशानि कवचं यः पठेन्नरः ॥
स भक्ष्ये जायते देवि योगिनीनां शुचिस्मिते ।
वैष्णवे गाणपत्ये च शैवे शाक्ते शुचिस्मिते ।
आदावन्ते महासेतुं दत्वा तु कवचं पठेत् ॥

---

शिव का सेतु मन्त्र—हे पार्वति ! हंसयुक्ता समुद्ररूपिणी वर्ण को ( हंस ) उद्धार करके यत्नपूर्वक चन्द्रार्द्ध संयुक्त करना । यह द्व्यक्षरी विद्या शिव की सेतुरूपिणी है । मन्त्र यथा—हंसः । प्रणव अन्य देव देवी के सेतु कहकर कथित हुये हैं । सभी शूद्र जाती के अर्थात् शूद्र के समान-धर्मी हैं इसलिये शूद्र एवं स्त्री गणों को भी औङ्कार सेतु कहा गया है ।

अथ कवचसेतु

हे शुचिस्मिते यहाँ सेतु मन्त्र कहा गया है—हे—प्रिये ! उस मन्त्र को त्रिगुण करके सेतुमन्त्र ( कवच के सेतुमन्त्र ) करना । हे सुन्दरि ! हे महेशानि ! वह कवच का सेतु होता है, जो व्यक्ति बिना सेतु का कवच पाठ करता है, हे देवि ! हे शुचिस्मिते ! वह योगिनी गणों के लिए भक्ष्य होता है । हे शुचिस्मिते ! विष्णु के कवच में, गणपति के कवच में, शिव के कवच में अथवा शक्ति के कवच में आदि में तथा अन्त में महासेतु देकर कवच का पाठ करना चाहिए ।

## कुल्लुका प्रयोजनम्

**अथ कुल्लुका प्रयोजनमाह—**

**रुद्रयामले—**

अज्ञात्वा कुल्लुकां देवि महामन्त्रं जपेत्तु यः ।
तस्य नश्यन्ति चत्वारि आयुर्विद्या यशो बल(धन)म् ॥
कुल्लुकाञ्च न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः ।
पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुला भवेत् ॥
अज्ञात्वा कुल्लुकामेतां जपते योऽधमः प्रिये ।
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिश्च जायते ॥
तथा जपादिकं सर्वं निष्फलं नात्र संशयः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रजपेन्मूर्ध्नि कुल्लुकाम् ॥

**वाराही तन्त्रे—**

जपं समारभेन्मन्त्रो कुल्लुकाद्यं यथाविधि ।
पूजां जपं समाप्यैव स्तुत्वा च कवचं पठेत् ॥

---

### कुल्लुका प्रयोजन

इसके अनन्तर रुद्रयामल तन्त्र में कुल्लुका का प्रयोजन कह रहे हैं– हे देवि ! जो व्यक्ति कुल्लुका न जान कर महामन्त्र ( इष्टमन्त्र ) का जप करता है, उसकी आयुः, विद्या, यशः तथा बल-चारों नष्ट होते हैं। जो मनुष्य कुल्लुका नहीं जानता है, अथवा महामन्त्र का जप करता है, उसका विनाश होता है अथवा वातुल होता है। हे प्रिये ! जो अधम यह कुल्लुका न जान कर जप करता है, वह शीघ्र ही पञ्चत्व को प्राप्त होगा। उसकी सिद्धिहानि भी होती है एवं उसका जप आदि सभी कर्म निष्फल होता है, इसमें सन्देश नहीं है। अतः सभी प्रयत्नों से मस्तक पर कुल्लुका मन्त्र का जप करना।

वाराही तन्त्र में कहा गया है–दीक्षित साधक यथाविधि आदि में कुल्लुका मन्त्र का जप करके इष्टमन्त्र का जप आरम्भ करें। पूजा तथा जप समाप्ति करके स्तव पाठ करके कवच को पढ़ना चाहिए।

## कुल्लुकानिरूपणम्

**विशुद्धेश्वरतन्त्रे—**

गुह्याद् गुह्यतरं देवि तव स्नेहेन कथ्यते ।
तारायाः कुल्लुका देवि महानीलसरस्वती ॥ मन्त्रो यथा—ह्रीं स्त्रीं हूं ।

पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लुका परिकीर्तिता ।
काली कूर्चं वधूर्माया फडन्ता परमेश्वरि ॥ मन्त्रस्तु—क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट् ।

छिन्नायास्तु महेशानि कुल्लुकाऽष्टाक्षरी भवेत् ।
वज्रवैरोचनीये च अन्ते वर्म प्रकीर्तयेत् ॥ मन्त्रस्तु—वज्रवैरोचनीये हूं ।

प्रसादबीजं शम्भोस्तु मञ्जुघोषे षडक्षरी ।
ललाटवचनं चैव ध्यर्णं चन्द्रयुतं स्मरेत् ॥
मन्त्रस्तु शिवस्य—हौं, मञ्जुघोषस्य तु अरवचन धीं ।

भुवनेश्याश्च ह्रीं बीजं विष्णोर्वै चाष्टवर्णिका ।

---

### कुल्लुका निरूपण

विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है—हे देवि ! तुम्हारे प्रति स्नेह वशतः गुह्य से भी गुह्यतर विषय यह विषय कहा जा रहा है । तारा का कुल्लुका महानीलसरस्वती अर्थात् महानीलसरस्वती मन्त्र ह्रीं स्त्रीं हूँ यह तारा की कुल्लुका है । काली ( क्रीं ), कूर्च्चं ( हूँ ) वधू ( स्त्रीं ) तथा फड़न्त माया अर्थात् ह्रीं फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या कालिका की कुल्लुका कहा गया है । मन्त्र यथा—क्रीं हूँ स्त्रीं ह्रीं ।

हे महेशानि ! अष्टाक्षरी विद्या छिन्नमस्ता की कुल्लुका है । 'वज्रवैरोचनीये' एवं अन्त में बर्म ( हूँ ) अर्थात् 'वज्रवैरोचनीये हूँ' यही है छिन्नमस्ता का अष्टाक्षरी कुल्लुका विद्या ऐसा कहा गया है ।

प्रासाद बीज ( हौं ) शिव की कुल्लुका है । ललाट ( अ ), र वचन तथा धी इस वर्ण में चन्द्र विन्दु युक्त करके चिन्ता करना अर्थात् 'अरवचन-धीं' यहीं है मञ्जुघोष की षडक्षरी कुल्लुका विद्या ।

शिव का मन्त्र—हौं, मञ्जुघोष का-अरवचनधीं है । पहले वाग्भव बीज ( ऐं ), कामबीज ( क्लीं ), लज्जाबीज ( ह्रीं ) तथा त्रिपुरा में पद उद्धार

नमो नारायणायेति प्रणवाद्या च कुल्लुका ॥

भुवनेश्वर्याः—ह्रीं । विष्णोः—ॐ नमो नारायणाय ।

वर्मबीजं तु भैरव्याः कुल्लुका परिकीर्तिता ।

मन्त्रो यथा—हूं ।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः कुल्लुका द्वादशाक्षरी ।
वाग्भवं कामबीजञ्च लज्जाञ्च त्रिपुरे ततः ।
भगवतिपदं पश्चादन्ते ठद्वयमुद्धरेत् ॥

मन्त्रस्तु—

ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा ।

अथवा—

वाग्भवं प्रथमं बीजं कामराजमनन्तरम् ।

लज्जाबीजं क्रोधबीजं फडन्तञ्च समुद्धरेत् ॥ मन्त्रस्तु–ऐं क्लीं ह्रीं हूं फट् ।

अथवा कामबीजाख्या कुल्लुका परिकीर्त्तिता । मन्त्रस्तु–कएईलह्रीं ।

सरस्वत्या वाग्भवञ्च अन्नदायास्त्वनङ्गकम् ॥ सरस्वत्याः ऐं । अन्नदायाः–क्लीं ।

मातंग्याः प्रथमं बीजं माया धूमावतीं प्रति । मातंग्याः–ॐ; धूमावत्याः ह्रीं ।

बगलाया वधूबीजं लक्ष्म्याश्च निजबीजकम् । बगलायाः स्त्रीं ।

---

करके उसके बाद 'भगवति' पद उद्धार करके अन्त में ठद्वय ( स्वाहा ) का उद्धार करना, यही है श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी की द्वादशाक्षरी कुल्लुका का विद्या । मन्त्र यथा–ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा अथवा पहले वाग्भव बीज, अनन्तर कामराजबीज ( क्लीं ), लज्जाबीज ( ह्रीं ) एवं फड़न्त क्रोध-बीज अर्थात् 'हूँ फट्' का उद्धार करना अर्थात् ऐं क्लीं ह्रीं हूँ फट्–यह भी त्रिपुरसुन्दरी की एक प्रकार की कुल्लुका है अथवा कामबीज नामक विद्या अर्थात् क ए ई ल ह्रीं यह त्रिपुरसुन्दरी की अन्य प्रकार की कुल्लुका है। सरस्वती वाग्भव ( ऐं ) अन्नदा का अनङ्ग बीज ( क्लीं ), मातङ्गी का प्रथम बीज ( ओं ); धूमावती का माया (ह्रीं), बगला का वधूबीज (स्त्रीं);

लक्ष्म्याः–श्रीं ।

धनदाया वधूबीजं कुल्लुका परिकीर्तिता । मन्त्रो यथा–स्त्रीं ।

अपरेषाञ्च देवानां स्वमन्त्रं परिकीर्तितः ।
अन्यासां तु पराबीजं कुल्लुका परमेश्वरि ॥

रामस्य—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य राजहंसं ततः परम् ।
आचार्यं संयुतं कृत्वा विन्द्वर्द्धं संयुतं कुरु ॥
पुनः प्रणवमुद्धृत्य विद्येयं सेतुरूपिणी ।
एतां विद्यां वरारोहे मन्मथैः पुटितां कुरु ।
तदा भवति देवेशि रामस्य स्वर्गदुर्लभा ॥

पञ्चाक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता । मन्त्रस्तु–क्लीं ॐ वां ॐ क्लीं ।

इत्येवं कथिता देवि संक्षेपात्कुल्लुका मया ॥

सेतुमङ्गलतन्त्रे—

वाग्भवं पूर्वमुद्धृत्य मन्मथं तदनन्तरम् ।
भृगुबीजं समुद्धृत्य मनुसर्गयुतं कुरु ॥

सुन्दरीविषये बोध्या कुल्लुकेयं महेश्वरि । मन्त्रो यथा–ऐं क्लीं सौः ।

---

लक्ष्मी का स्वबीज ( श्रीं ) है एवं धनदा का वधूबीज ( स्त्रीं ) कुल्लुका कह कर कीर्त्तित हुआ है । हे परमेश्वरि ! अन्य देवगणों के अपने मन्त्र एवं अन्य देवीगणों का पराबीज ( ह्रीं ) कुल्लुका नाम से कहा गया है ।

हे देवेशि ! पहले प्रणव उद्धृत करके उसके बाद राजहंस ( र ) उद्धार करके आचार्य ( आ ) संयुक्त करके विन्द्वर्द्ध ( ँ ) संयुक्त करो । पुनः प्रणव उद्धृत करके इस विद्या को मन्मथबीज ( क्लीं ) द्वारा पुटित करना । तब यह विद्या राम की स्वर्ग दुर्लभा कुल्लुका होगी । पञ्चाक्षरी यह विद्या ( क्लीं ॐ रां ओं क्लीं ) सभी तन्त्रों में गोपित हुआ है । हे देवि ! संक्षेप में मेरे द्वारा इस प्रकार की कुल्लुका कही गयी है ।

सेतुमङ्गल तन्त्र में कहा गया है–'पहले वाग्भव बीज का उद्धार करके अनन्तर मन्मथ बीज तथा भृगुबीज ( स ) का उद्धार करके मनु ( औ ) एवं सर्ग ( : ) युक्त करना । हे महेश्वरि ! सुन्दरी विषय में इस विद्या को कुल्लुका जानना चाहिए । मन्त्र यथा–ऐं क्लीं सौः ।

कामधेनुं समुद्धृत्य लोकबन्धां ततः परम् ।
वामनीयकबीजस्तु पुनरुद्धृत्य सुन्दरि ।
ईतिबीजयुतं कृत्वा विन्द्वर्द्ध संयुतं कुरु ॥

कुल्लुकेयं महाविद्या भैरव्याः परिकीर्तिता । मन्त्रस्तु–कलरीं ।

ताराया:—

मायाबीजं समुद्धृत्यततश्च प्रणवद्वयम् ।
पुनर्मायां समुद्धृत्य कुल्लुकाजपमाचरेत् ॥

कुल्लुकाजपमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ मन्त्रो यथा–ह्रीं ॐ ॐ ह्रीं ।

कालिकाया:—

पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लुका परिकीर्तिता ।

काली कूर्चं वधूमाया फडन्ता परमेश्वरि ॥ मन्त्रो यथा–क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट् ।

भुवनेश्या:—

कालकूटप्रशमनीबीजमुद्धृत्य सुन्दरि ।
वामनीयकबीजेन संयुतं कुरु सुन्दरि ।
विन्द्वर्द्ध संयुतं कृत्वा त्रिगुणं कुरु सुन्दरि ॥

---

हे सुन्दरि ! कामधेनु ( क ) का उद्धार करके बाद में लोकबन्धा ( ल ) तथा वामनीयक बीज ( र ) उद्धार करके, ई–यह बीज संयुक्त करके विन्द्वर्द्ध ( ँ ) संयुक्त करना। यह महाविद्या भैरवी की कुल्लुका कहकर कीर्त्तित हुयी है। मन्त्र यथा–कलरीं ।

तारा की कुल्लुका–पहले मायाबीज का उद्धार करके उसके बाद प्रणवद्वय तथा पुनः माया का उद्धार करके कुल्लुका जप करना। साधक कुल्लुका के जपमात्र से ही समस्त सिद्धि का अधिपति हो सकता है। मन्त्र यथा–ह्रीं ओं ओं ह्रीं ।

हे परमेश्वरि ! काली ( क्रीं ), कूर्च्च ( हूँ ), वधू(स्त्रीं) माया ह्रीं तथा अन्त में 'फट्'–यह पञ्चाक्षरी विद्या कालिका की कुल्लुका नाम से कही गई है। मन्त्र यथा–क्रीं हूँ स्त्रीं ह्रीं फट् ।

भुवनेश्वरि की कुल्लुका है–हे सुन्दरि ! कालकूट प्रशमनी बीज ( क्लीं ) का उद्धार करके वामनीयक बीज के साथ संयुक्त करो। हे सुन्दरि ! उसमें

एषा विद्या महेशानि कुल्लुका विष्णुपूजिता ॥ मन्त्रो यथा—ह्लीं ह्लीं ह्लीं ।

आद्यान्ते परमेशानि कूर्चबीजद्वयं कुरु ।
तदा भवति विधेयं मर्दिन्याः कुल्लुका प्रिये ॥

आद्यन्ते ॐ ह्लीं स्वाहा ॐ इति मन्त्रस्याद्यन्तयोः हूं इति बोजं कृत्वेत्यर्थः । तेन हूं ॐ ह्लीं स्वाहा ॐ हूं ।

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः ।
एवं कृते महेशानि प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते ।
अन्यथा पशुवद्देवि न जपेत्तु कदाचन ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूत श्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरि कृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां सेतु महासेतुकुल्लुका निर्णयो नाम दशमोल्लासः ॥ १० ॥

---

विन्दद्धं ( ँ ) संयुक्त करके त्रिगुण करो । हे महेशानि ! यह विद्या भुवनेश्वरि की विष्णु पूजिता अर्थात् श्रेष्ठ कुल्लुका है । मन्त्र यथा—ह्लीं ह्लीं ह्लीं ।

हे परमेशानि ! मन्त्र के आदि में तथा अन्त में कूर्चबीज ( हूँ ) की योजना करना । हे प्रिये ! उसमें यह विद्या महिषमर्द्दिनी की कुल्लुका होगी । 'आद्यान्ते' इसका अर्थ है—'ओं ह्लीं स्वाहा ओं' इस मन्त्र के आदि में तथा अन्त में 'हूँ' बीज की योजना करना । उसमें मन्त्र होगा—हूँ ओं ह्लीं स्वाहा ओं हूँ । केबल वर्णात्मक मन्त्र पशुभाव से अवस्थान करता है । हे महेशानि ! इस प्रकार करने पर वह सभी मन्त्र प्रभुत्व को प्राप्त होगें । हे देबि ! यह न करने पर मन्त्र पशुवत् होता है कभी भी वह जप नहीं करना चाहिए ।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृतं शाक्तानन्दतरङ्गिणी के सेतु महासेतु कुल्लुकानिर्णय नामक दशम उल्लास समाप्त ।

# एकादशोल्लासः

## मुखशोधनम्

मुखशोधनमाह सारस्वततन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महेशानि मुखशोधनमुत्तमम् ।
यन्न कृत्वा वरारोहे जप-पूजा वृथा भवेत् ॥
अशुद्ध जिह्वया देवि यो जपेत्सतु पापभाक् ।
दशधा प्रजपित्वा वै मुखशोधन माचरेत् ॥

देव्युवाच—

देवदेव महादेव शूलपाणे पिनाकधृत ।
पृथक् पृथग् देवतानां कथयस्व दयार्णव ।
शोधनं सर्वविद्यानां मुखस्य दशनस्य च ॥

श्रीमहादेव उवाच—

महात्रिपुरसुन्दर्याः श्रृणुष्व मुखशोधनम् ।
श्रीबीजं प्रणवो लक्ष्मीस्तारः श्रोः प्रणवस्तथा ॥

इमं षडक्षरं मन्त्रं सुन्दर्या दशधा जपेत् । मन्त्रस्तु—श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ ।

---

### मुखशोधन

सारस्वत तन्त्र के मुखशोधन को कह रहे हैं—हे महेशानि ! हे वरारोहे ! जो न करने पर जप, पूजा सब व्यर्थ होता है, अनन्तर उत्तम रूप से उस मुखशोधन विधि को कहूँगा । हे देवि ! अशुद्ध जिह्वा में जो जप करता है, वह पाप भागी होता है । दसबार मुखशोधन मन्त्र का जप करके ही मुखशोधन करना चाहिए ।

देवी कहने लगीं—हे देवदेव महादेव ! हे शूलपाणे ! हे पिनाकधृक् ! हे दयार्णव ! पृथक् पृथक् देवताओं की समस्त विद्या ( स्त्री दैवत मन्त्र ) के मुख तथा दन्त की शोधन विधि कहिये ।

श्रीमहादेवजी कह रहे हैं—महात्रिपुर-सुन्दरी का मुखशोधन मन्त्र श्रवण करो । श्रीबीज ( श्रीं ), प्रणव, लक्ष्मी बीज ( श्रीं ), तारा का ( ओं ), श्रीबीज तथा प्रणव-सुन्दरी का यह षड़क्षर मन्त्र का दसबार जप करना ।

बालायाः शृणुचार्वङ्गि सुखशोधनमुत्तमम् ।
वाग्भवः भुवनेशी च वाग्भवं सुरवन्दिते ॥

एषा च त्र्यक्षरी विद्या सदामृतमयी प्रिये । मन्त्रस्तु–ऐं ह्रीं ऐं ।

भैरव्याः शृणु चार्वङ्गि मुखशोधनमुत्तमम् ।
प्रणवश्च हसौबीजं प्रणवं सुरवन्दिते ॥

इमं त्र्यक्षरमन्त्रं च प्रथमं दशधा जपेत् ॥ मन्त्रस्तु–ॐ हसौः ॐ ।

शृणुसुन्दरि श्यामायाः मुखशोधनमुत्तमम् ।
निज बीजत्रयं देवि प्रणवत्रितयं ततः ॥
कामत्रयं वह्निविन्दुरतिचन्द्रार्द्धभूषितम् ।
एषा नवाक्षरी विद्या मुखशोधन कारिणी ॥

मन्त्रस्तु—

क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ।

ताराया: शृणुचार्वङ्गि अपूर्वं मुखशोधनम् ।
जीवनी मध्य(मा)गा लज्जा भुवनेशी ततः परम् ॥

त्र्यक्षरीयं महाविद्या जिह्वागेऽमृतवर्षिणी ॥ मन्त्रस्तु–ह्रीं हूं ह्रीं ।

---

हे चार्वङ्गि ! बाला का मुखशोधन श्रवण करो । हे प्रिये ! वाग्भव (ऐं) भुवनेशी ( ह्रीं ) तथा वाग्भव–यह त्र्यक्षरी विद्या सर्वदा अमृत स्वरूपा है ।

चार्वङ्गि ! भैरवी का उत्तम मुखशोधन श्रवण करो । हे सुरवन्दिते ! प्रणव, 'ह्सौः' यह बीज तथा प्रणव यह त्र्यक्षर मन्त्र का दसबार जप जप करना । मन्त्र ओं ह्स सौः ओं ।

हे सुन्दरि ! श्यामा का उत्तम मुखशोधन श्रवण करो । हे देवि ! तीन प्रकार निज ( स्व ) बीज ( क्लीं ), तीन प्रणव प्रकार प्रणव तथा वह्नि (र), विन्दु ( ँ ), रति ( ई ) एवं चन्द्रार्द्ध ( ँ ) भूषित तीन प्रकार कामबीज अर्थात् क्रीं–यह नवाक्षरी विद्या मुखशोधन कारी है । मन्त्र है–क्रीं क्रीं क्रीं ओं ओं ओं क्रीं क्रीं क्रीं ।

हे चार्वङ्गी ! तारा का मुखशोधन मन्त्र श्रवण करो । जीवनी ( हूँ ) मध्यस्था लज्जा ( ह्रीं ) तथा उसके बाद भुवनेशी ( ह्रीं ) यह त्र्यक्षर महाविद्या जिह्वा के अग्रभाग में अमृतवर्षण करता है । मन्त्र यथा–ह्रीं हूँ ह्रीं है ।

अपूर्वं श्रृणु चार्वङ्गि भुवनामुखशोधनम् ।
द्वादशस्वरमुद्धृत्य नादविन्दुयुतं कुरु ।
एतत्त्रिकं दशधा भुवनेशी जपेत्सुधीः ॥
त्र्यक्षरीयं समाख्याता नानासुख विलासिनी-मन्त्रस्तुः ऐं ऐं ऐं ।
दुर्गायाः श्रृणुचार्वङ्गि मुखशोधनमुत्तमम् ।
द्वादश स्वरमुद्धृत्य विन्दुयुक्तश्चतत्त्रिकम् ॥ मन्त्रस्तु-ऐं ऐं ऐं ।
अथ देवि प्रवक्ष्यामि बगलामुखशोधनम् ।
वाग्भवं भुवनेशानी वाग्बीजं सुरवन्दिते ॥
एषा तु त्र्यक्षरी विद्या सदाऽमृतमयी प्रिये । मन्त्रस्तु-ऐं ह्लीं ऐं ।
मातङ्ग्याः शोधनं देवि अंकुशं वाग्भवं तथा ।
बीजश्चांकुशमेतद्धि विज्ञेयं त्र्यक्षरात्मकम् ॥
त्र्यक्षरीयं समाख्याता मुखशोधनदुर्लभा । मन्त्रस्तु-क्रों ऐं क्रों ।
अपरैकं श्रृणु प्रौढे लक्ष्म्याश्च मुखशोधनम् ।
श्रियाश्च परमेशानि बीजान्ते कमलानने ।
पुनः श्रीबीजमुद्धृत्य मुखशोधनमाचरेत् ॥

---

हे चार्वङ्गि ! भुवनेश्वरी का अपूर्व मुखशोधन मन्त्र श्रवण करो । द्वादश स्वर का उद्धार करके नाद-बिन्दु युक्त करना । सुधी साधक उसका तीन दसबार जप करके भुवनेश्वरी मन्त्र का जप करें । यह त्र्यक्षरी विद्या नानाविध सुख विलास की जननी है । मन्त्र यथा-ऐं ऐं ऐं ।

हे चार्वङ्गि ! दुर्गा का मुखशोधन श्रवण करो । द्वादश स्वर का उद्धार करके विन्दुयुक्त करो । तत् त्रिक अर्थात् उसका तीनों दुर्गा का मुखशोधन मन्त्र है । मन्त्र यथा-ऐं ऐं ऐं ।

हे देवि ! अनन्तर वगला का मुखशोधन कहूँगा । हे सुरवन्दिते ! हे प्रिये ! वाग्भव ( ऐं ) भुवनेश्वरी ( ह्लीं ) तथा वाग्भव-यह त्र्यक्षरी विद्या सर्वदा अमृत स्वरूपा है । मन्त्र-ऐं ह्लीं ऐं ।

हे देवि ! मातङ्गी का मुखशोधन है-अंकुश बीज ( क्रों ) वाग्भव बीज तथा अंकुश बीज-यह त्र्यक्षरात्मक मन्त्र को जानना । यह त्र्यक्षरी विद्या मुखशोधन मन्त्र के मध्य में दुर्लभा अर्थात् श्रेष्ठ है । मन्त्र यथा-क्रों ऐं क्रों ।

हे प्रौढ़े ! लक्ष्मी का अपर एक और मुखशोधन मन्त्र श्रवण करो । लक्ष्मी बीज ( श्रीं ) के अन्त में 'कमलानने' एवं पुनः श्रीबीज का उद्धार

इयं सप्ताक्षरी विद्या चतुर्वर्गमयो सदा। मन्त्रस्तु–श्रीं कमलानने श्रीं।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि दुर्गाया मुखशोधनम्।
वाग्बीजपुटिता माया दुर्गे स्वाहा ततः प्रिये॥
भुवनेशी पुनश्चैव वाग्बीजद्वय मेव च।
इयं दशाक्षरी विद्या सदा मम हृदि स्थिता॥

मन्त्रस्तु–ऐं ह्रीं ऐं दुर्गे स्वाहा ह्रीं ऐं ऐं।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि धनदामुखशोधनम्।
प्रणवं दान्तमुद्धृत्य वामकर्ण विभूषितम्॥

विन्दुयुक्तं ब्रह्मबीजं विज्ञेयं त्र्यक्षरात्मकम्। मन्त्रस्तु–ॐ धूं ॐ
धूमावत्या महेशानि शोधनं चैतदेव हि। मन्त्रस्तु– ॐ धूं ॐ
भुवनायाः स्वबीजन्तु प्रणवं वा विशोधनम्॥ मन्त्रस्तु–ह्रीअथवाॐ।

रुद्रार्णादष्टमो देवि भूपुष्टयक्रूरसंयुतः।
एकाक्षरीयं विद्या तु चान्नदामुखशोधने॥ मन्त्रस्तु–क्लीं।

---

करके मुखशोधन करना। यह सप्ताक्षरी विद्या सर्वदा चतुवर्ग फलप्रदा है। मन्त्र यथा–श्रीं कमलानने श्रीं।

दूसरा एक दुर्गा का मुखशोधन कहूँगा। हे प्रिये! पहले वाग्बीज-पुटिता माया अर्थात् ऐं ह्रीं ऐं, बाद में 'दुर्गे स्वाहा' तथा भुबनेशानी (ह्रीं) एवं पुनः दोनों वाग्बीज (ऐं ऐं)–यह दशाक्षरी विद्या सर्वदा मेरे हृदय में अवस्थान करता है। मन्त्र–ऐं ह्रीं ऐं दुर्गे स्वाहा ह्रीं ऐं ऐं।

दूसरा एक और धनदा का मुखशोधन मन्त्र कहूँगा। पहले प्रणव एवं वामकर्ण (अ) तथा विन्दुयुक्त दान्त (ध) का उद्धार करके ब्रह्मबीज (ओं) का उद्धार करना; त्यक्षर यह मन्त्र धनदा का मुखशोधन मन्त्र जानना। मन्त्र यथा–ओं धूं ओं।

हे महेशानि! धूमावती का यही है अर्थात् 'ॐ धूं' ओं मुखशोधन मन्त्र। मन्त्र–ॐ धूं ओं।

स्व बीज (ह्रीं) अथवा प्रणव भुवनेश्वरी का दूसरा एक मुखशोधन मन्त्र है। मन्त्र–ह्रीं अथवा ॐ।

हे देवि! रुद्रवर्णों के अष्टमवर्ण (क कार), बह्न भू (ल), पुष्टि (ई) तथा अक्रूर (ँ) संयुक्त होकर एकाक्षरी होता है। यह एकाक्षरी विद्या अन्नदा के मुखशोधन में प्रयुक्त होता है, मन्त्र यथा–क्लीं।

उच्छिष्टचाण्डालीदेव्या भद्रकाल्यास्तथैव च ।
जिह्वायाः शोधनं भद्रे शृणुष्व वरवर्णिनि ।
षष्ठस्वरं विन्दुयुक्तं लज्जाबीजनन्तरम् ॥
पुनराद्यं महेशानि चाण्डाल्या मुखशोधनम् ॥ मन्त्रस्तु–ॐ ह्रीं ॐ ।

चतुर्दशस्वरेणाढ्यं विन्दुचन्द्रार्द्धभूषितम् ।
शिवबीजं महेशानि भद्रकाल्या विशोधनम् । मन्त्रस्तु–हौं ।
अन्यासां देवतानाञ्च तथा विष्णोः शिवस्य च ।
अन्येषाञ्चैव देवानां प्रणवं मुखशोधनम् ।
माया वा परमेशानि प्रजप्य मुखशोधनम् ॥
कुर्यादिति शेषः । अन्यदेवदेवीनां मन्त्रस्तु–ॐ अथवा ह्रीं ।
अन्येषु सर्वदेवेषु देवीषु च वरानने ।
दशधा प्रणवेनैव मुखशोधन माचरेत् ॥
मुखशोधन मात्रेण जिह्वाऽमृतमयी भवेत् ।
अन्यथा विषसंयुक्ता जिह्वा भवति सर्वदा ॥
भक्षणे दूषिता जिह्वा मिथ्यावादेन दूषिता ।
कलहैर्दुःखिता जिह्वा नानादोषेण दूषिता ॥

---

हे भद्रे ! हे वरवर्णिनि ! उच्छिष्ट-चाण्डाली तथा भद्रकाली देवी के जिह्वा का शोधन मन्त्र श्रवण करो । हे महेशानि ! विन्दु ( ँ ) युक्त षष्ठ स्वर ॐ, अनन्तर लज्जाबीज (ह्रीं) पुनः आद्यबीज ( ॐ ) यही है उच्छिष्ट चाण्डाली देवी का मुखशोधन मन्त्र । मन्त्र यथा–ॐ ह्रीं ॐ ।

हे महेशानि ! चतुर्द्दशस्वर ( औ ) युक्त एवं विन्दु तथा अर्द्धचन्द्र ( ँ ) भूषित शिवबीजाक्षर (ह) भद्रकाली का मुखशोधन मन्त्र है । मन्त्र यथा–हौं ।

हे महेशानि ! अन्य सभी देवी, विष्णु, शिव तथा अन्य सभी देवगणों के मुखशोधन मन्त्र प्रणव अथवा माया बीज का जप करके मुखशोधन करना । श्लोक में क्रिया पद न रहने से 'कुर्यात्' यह क्रिया श्लोक में गुह्य है ।

हे वरानने ! अन्य सभी देवगण तथा देवीगणों के लिए दसबार प्रणव जप के द्वारा ही मुखशोधन करना । मुखशोधन मात्र से ही जिह्वा अमृतमयी होती है । यह न होने पर जिह्वा सर्वदा विषयुक्ता रहती है । खाने से जिह्वा दूषित होती है, मिथ्या बात के द्वारा जिह्वा दूषित होती है, कलह (झगड़े) के द्वारा जिह्वा दूषित होती है, एवं विभिन्न दोषों के द्वारा जिह्वा दूषित

तं कथं पामरो लोको जिह्वायां प्रजपेन्मनुम् ।
संशोधनमनाचर्य न जपेत्पामरः क्वचित् ॥
शाक्तो वा वैष्णवो वापि गाणपः सौर एव वा ।
शैवो वाऽप्यन्यभक्तो वा कारयेन्मुखशोधनम् ॥
देवो यदि जपेन्मन्त्रमकृत्वा मुखशोधनम् ।
सर्वं तस्य वृथा देवि मन्त्रसिद्धिर्न जायते ॥
तस्मात्प्रयत्नतो देवि जिह्वाशोध माचरेत् ।
अन्यथा प्रजपेन्मन्त्रमकृत्वा मुखशोधनम् ॥
पतनं तस्य देवेशि यो जपेत्स च पापभाक् ।
तस्यात्प्रयत्नतो देवि जिह्वाशोधन माचरेत् ॥
इति सारस्वत तन्त्रोक्तमुखशोधन विधानम् ।

## निद्राभङ्ग

देव्युवाच—पूजाकाले महेशान यदि निद्रातुरो मनुः ।
तत्कथं सिध्यते मन्त्रः किं कर्त्तव्यं तदा प्रभो ॥
प्रजपेत्केन विधिना न जपेद्वा वद प्रभो ।
निद्रायाश्चैव देवेश लक्षणं वद मे प्रभो ॥

---

होती है । अतः पामर ( अधम ) लोग किस प्रकार से उस जिह्वा से मन्त्र जप करते हैं ? मुखशोधन न करके पामर व्यक्ति किसी स्थलों में मन्त्र जप न करें । शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, सौर, शैव अथवा अन्य देवताओं के भक्त-सभी व्यक्ति मुखशोधन करें ।

हे देवि ! देवता भी यदि मुखशोधन न करके मन्त्र जप करते हैं, उनकी भी सभी वृथा है, मन्त्रसिद्धि भी उत्पन्न नहीं होगी । अतएव हे देवि ! यत्नपूर्वक जिह्वाशोधन करना अन्यथा अर्थात् मुखशोधन न करके जो मन्त्र जप करता है, हे देवेशि ! उसका पतन होता है । जो मुखशोधन न करके जप करता है, वह पाप भागी होता है । हे देवि ! अतएव यत्नपूर्वक जिह्वाशोधन करना चाहिए ।

## निद्रा भङ्ग

देवि कहने लगीं—हे महेशान ! पूजाकाल में मन्त्र यदि निद्रातुर होता है, तब वह मन्त्र किस प्रकार सिद्ध होगा ? हे प्रभो ! तब क्या कर्त्तव्य है । हे प्रभो ! तब किस विधि के अनुसार से जप करेंगे अथवा जप न करें ? यही आप मुझे कहिए । हे प्रभो ! हे देवेश ! निद्रा का लक्षण भी कहिए ।

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
इडायाञ्च गते वायौ शक्तिमन्त्रं जपेत प्रिये ।
रात्रौ जपैकमात्रेण चण्डिका वरदा भवेत् ॥

रुद्रयामले—

पिङ्गलायां गते वायौ तदा निद्रातुरः प्रिये ।
इडायाञ्च गते वायौ तदा निद्रातुरो मनुः ॥
एतत्ते कथितं देवि निद्राया लक्षणं प्रिये ।
प्रजपेद्यदि निद्राया किं तस्य जप पूजने ॥
सर्वं तस्य वृथा देवि अरण्ये रोदनं यथा ।
रहस्यानेन चार्वङ्गि त्यक्तनिद्रा सनातनी ॥

**निद्राभङ्गमन्त्रः**

आदौकामकलाबीजं स्वमन्त्रान्तेऽपि तद् जपेत् ।
प्रायश्चित्तमिदं देवि कृत्वा मन्त्रं जपेद्यदि ।
किं तस्य दक्षिणो वायुस्तस्य निद्रातुरेण किम् ॥

---

ईश्वर कहने लगे—हे देवि ! तुम मुझ से जो पूछ रही हो, वह सुनो । हे प्रिये ! इड़ा नाड़ी में वायु के गमन करने पर शक्ति मन्त्र का जप करना । रात्रि में एकबार जप के द्वारा ही चण्डिका वरदा होतीं हैं । रुद्रयामलतन्त्र में कहा गया है—हे प्रिये ! पिङ्गला नाड़ी में वायु के गमन करने पर मनुष्य निद्रातुर होता है एवं इड़ा नाड़ी में भी वायु गमन करने पर निद्रातुर होता है । हे प्रिये ! हे देवि ! निद्रा का यह लक्षण कहा गया है । यदि निद्रावस्था में कोई मन्त्र जप करता है, तब उसका जप-पूजा का फल क्या है ? हे देवि ! अरण्य में ( जङ्गल ) रोदन के समान उसका सभी कार्य व्यर्थ है । हे चार्वङ्गि ! यह रहस्य मन्त्र के द्वारा सनातनी देवी त्यक्त-निद्रा होती है अर्थात् निद्रा-त्याग करते हैं ।

निद्रा भङ्ग मन्त्र

पहले कामकलाबीज ( ईं ) का जप करना । स्व मन्त्रान्त में भी अर्थात् इष्ट मन्त्र जप के अन्त में भी उस कामकलाबीज का जप करना । हे देवि ! यह प्रायश्चित्त करके यदि मन्त्र जप किया जाता है, तब उसके दक्षिण वायु में प्रयोजन क्या एवं निद्रातुर होने पर भी क्या क्षति है ? अर्थात् निद्रातुर होने पर भी हानि नहीं है ।

## मन्त्रविद्यालक्षणम्

विश्वसारे—

मन्त्राः पुंदैवता ज्ञेया विद्या स्त्रीदैवता स्मृता ।
पुंमन्त्रा हूंफडन्ताः स्युर्द्विठान्ताः स्युः स्त्रियो मताः ।
नपुंसका नमोऽताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा ॥

## दीपनी लक्षणम्

दीपनीमाह तन्त्रे—

योनिमन्त्रं मनोर्दत्त्वा चाद्यन्ते परमेश्वरि ।
सप्तवारं जपेत्तं तु दीपनीयं प्रकीर्तिता ॥

योनिमन्त्र ईङ्कारः । ताभ्यां पुटितं मूलं सप्तवारं जपेदित्यर्थः ।

तन्त्रे—

योनिमन्त्रेणाऽवयं सकलं तु विभावयेत् ।

स्वकीयात्मानं कामकलां विभाव्य जपपूजादिकं कार्यम् ।

तथाचोक्तम्—

ध्यात्वा कामकलां देहे विद्याजापं समाचरेत् ।

---

### मन्त्रविद्या लक्षण

विश्वसार तन्त्र में कहा गया है—'पुंदेवत अर्थात् जिस मन्त्र के देवता पुरुष हों उन सबको 'मन्त्र' जानना । स्त्री दैवत मन्त्र 'विद्या' कहकर कहा गया है । पुं मन्त्र हुं फड़न्त होगा अर्थात् अन्त में 'हुं फट्' रहेगा । स्त्री मन्त्र स्वाहान्त होगा । नमोऽन्त अर्थात् जिस मन्त्र के अन्त में 'नमः' रहता है, वह' नपुंसका' है । इस तरह तीन प्रकार के मन्त्र कहे गये हैं ।

### दीपनी लक्षण

तन्त्र में दीपनी कह रहे हैं—हे परमेश्वरि ! मन्त्र के आदि में तथा अन्त में योनिमन्त्र ( ईं ) देकर सातबार उस मन्त्र को जप करना । यह 'दीपनी' कहकर कीर्त्तित हुआ है । योनिमन्त्र ईंकार है । उस ईंकार दोनों के द्वारा पुटित मूलमन्त्र को सातबार जप करना । तन्त्र में कहा गया है—'योनिमन्त्र' के द्वारा सभी अवयव अर्थात् देवता का अवयव तथा अपना अवयव परिव्याप्त चिन्तन करना । अपने आत्मा को कामकला-स्वरूप चिन्ता करके जप पूजा आदि करना । यही मन्त्र में कहा गया है । यथा—देह में कामकला का चिन्तन करके विद्या जप का अनुष्ठान करना । आत्मा

ध्यात्वा कामकलारूप मात्मानं चिन्तयेत्सदा ॥

तन्त्रे—ऊर्ध्वं विन्द्वात्मकं वक्त्रमधोविन्दुस्तनद्वयम् ।
हकारार्द्धं कामपुरं तथात्मनं विचिन्तयेत् ॥
एतत्कामकलाध्यानं गुह्याद्गुह्यतमं महत् ।
नाऽशिष्याय प्रवक्तव्यं नामक्ताय कदाचन ॥
लोमान्महोच्च देवेशि यत्र कुत्र प्रकाशयेत् ।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति शस्त्राघातविषादिभिः ॥

## योनिमन्त्रः

योनिमन्त्रमाह यामले—
तूर्यस्वरो विन्दुयुतो नादेन परिभूषितः ।
कामकला महामन्त्रो महाकालेन कीर्त्तितः ।
तस्यात्स्वकीयमात्मानं ध्यायेद्देव्याः स्वरूपकम् ॥

इतिपरिव्राचकाचार्य परमहंसतीथावधूत श्रीमद्ब्रह्मनन्द-
गिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां मुखशोधन
निर्णयो एकादशोल्लासः ॥ ११ ॥

---

को कामकला रूप ध्यान करके सर्वदा चिन्तन करना । तन्त्र में कहा गया है—वक्त्र के ( मुख के ) ऊर्द्ध स्थित विन्दुस्वरूप, स्तनद्वय को दोनों अधोविन्दु स्वरूव एवं अपने आत्मा को कामपुर हकारार्द्ध स्वरूप चिन्तन करना। इस कामकला का ध्यान गुह्य से भी गुह्यतम एवं महत् है । अशिष्य अथवा अभक्त को कभी भी यह मत बताना । हे देवेशि! जो व्यक्ति लोभ अथवा मोह बशतः जहाँ तहाँ इसका प्रकाशन करता है, वह शस्त्र आघात तथा विषादि के द्वारा शीघ्र ही पञ्चत्व को प्राप्त होता है ।

## योनिमन्त्र

यामल तन्त्र में योनिमन्त्र कह रहे हैं—चतुर्थ स्वर विन्दुयुक्त एवं नाद के द्वारा विभूषित होकर कामकला का महामन्त्र होता है । वह महाकाल कर्तृक कीर्त्तित हुआ है । अतएव अपने आत्मा का देवी-स्वरूप चिन्तन करना ।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतं शाक्तानन्दतरङ्गिणी के मुखशोधन निर्णय
नामक एकादश उल्लासः समाप्त ।

# द्वादशोल्लासः

### पुरश्चरणलक्षणम्

पुरश्चरणलक्षणमाह हंसमाहेश्वरे—

जपो होमस्तर्पणञ्च सेको ब्राह्मणभोजनम् ।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमिष्यते ॥

यामले—

पञ्चाङ्गोपासनं लोके शाक्तवैष्णव भेदतः ।
पुरश्चरणमित्युक्तं शिवेन परमात्मना ॥

### पुरश्चरण प्रयोजनम्

यामले—

जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसुन क्षमः ।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ।
तस्मादौ स्वयं कुर्याद् गुरुं वा कारयेद् बुधः ॥

रुद्रयामले—पुरश्चरण सम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः ।

---

### पुरश्चरण-लक्षण

पुरश्चरण के लक्षण—हंस माहेश्वर तन्त्र में पुरश्चरण के लक्षण कह रहे हैं—'जप, होम, तर्पण, अभिषेक तथा ब्राह्मण भोजन—यह पञ्चाङ्ग उपासना लोकों में 'पुरश्चरण' कहा गया है ।

### पुरश्चरण प्रयोजन

"यामलतन्त्र में कहा गया है—'इह लोक में शाक्त तथा वैष्णव भेद से पञ्चाङ्ग उपासना 'पुरश्चरण' कहकर परमात्मा शिव कर्तृक कहा गया है । यामलतन्त्र में पुरश्चरण का नित्यत्व कह रहे हैं—'जीव (आत्मा अथवा प्राण) हीन देही अर्थात् देह जिस प्रकार सभी कर्मों में असमर्थ है, पुरश्चरण-रहित मन्त्र भी उसी प्रकार अर्थात् फलदान से असमर्थ कहकर कीर्त्तित हुआ है । अतएव पहले स्वयं पुरश्चरण करें अथवा गुरु के द्वारा करावें ।

रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—'मन्त्र पुरश्चरण सम्पन्न होने से ही फलदायक होगा । अतएव सिद्धि की आकांक्षा में मन्त्रविद् दीक्षित साधक

ततः पुरस्क्रियां कुर्याद् मन्त्रवित् सिद्धिकांक्षया ॥
किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यास विस्तरैः ।
रहस्यानाञ्च मन्त्राणां यदि न स्यात्पुरस्क्रिया ।
पुरस्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानो जीव (बीजमु) उच्यते ॥

## पुरश्चरणपूर्वदिनकृत्यम्

हविष्येनैव भोक्तव्यं कृत्वा देहविशोधनम् ।
प्रातः स्नात्वा तु सावित्रीं जपेत्पञ्चसहस्रकम् ॥
त्रिसहस्रं सहस्रं वा जपेदष्टोत्तरं शुचिः ।
ज्ञाताज्ञातस्य पापस्य क्षयार्थं प्रथमं ततः ।
विप्रान्सन्तोषयेदन्नभोजनाच्छादनासनैः ॥

तत्रादौ भूमिपरिग्रहः कार्यः । तदुक्तं वैशम्पायन संहितायाम्—

आदावमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये ।
मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिध्यतामिति ॥
भूमेः परिग्रहं कुर्यात् परिमाणाच्च सर्वशः ।
ग्रामे क्रोशमितं स्थानं नद्यादौ स्वेच्छया मितम् ॥

---

( मन्त्र का ) पुरश्चरण करे । मन्त्र का यदि पुरश्चरण नहीं होता है, तब हवन में क्या फल है ? जप में ही क्या फल है ? और मन्त्र के न्यास बाहुल्य में ही क्या फल है ? अर्थात् इन सभी से कोई फल नहीं है । क्योंकि पुरश्चरण ही मन्त्र का प्रधान जीव ( मुख्य प्राण ) है ऐसा कहा गया है ।

### पुरश्चरण के पुर्वदिन का कृत्य

देह शुद्ध करके हविष्य के द्वारा ही भोजन करें । प्रातःकाल में स्नान करके शुचि होकर पहले ज्ञात तथा अज्ञात पापों के क्षय के लिये पाँच हजार, तीन हजार, एक हजार अथवा १०८ बार सावित्री ( गायत्री ) का जप करें । उसके बाद अन्न, भोजन, आच्छादान तथा आसन के द्वारा विप्रगण को सन्तुष्ट करें । पुरश्चरण के पहले स्थान ग्रहण कर्त्तव्य है । यही वैशम्पायन-संहिता में कहा गया है । यथा—"पहले अमुक मन्त्र के पुरश्चरण सिद्धि के लिये मेरे द्वारा यह भूमि गृहीत हो रही है । मेरा मन्त्र सिद्ध हो" । सभी दिशा से परिमाणानुसार से भूमि ग्रहण करें । गाँव में क्रोश ( कोस ) परिमित स्थान, नदी आदि के किनारे में स्वेच्छानुसार अर्थात् इच्छानुरूप,

नगरादा वपि क्रोशं क्रोशयुग्ममथापि वा ।
आहारादिविहारार्थं तवतीं भूमिमाश्रयेत् ।
दीपस्थानं समाश्रित्य कृतं कर्म फलप्रदम् ॥

## दीपस्थानम्

दीप्यते पुरुषो यत्र दीपस्थान तदुच्यते ।
चतुरस्रां भुवं भित्त्वा कोष्ठानां नवकं लिखेत् ॥
पूर्वकोष्ठादिषु लिखेत्सप्तवर्गाननुक्रमात् ।
लक्ष्मीशे लिखेन्मन्त्री स्वरन्यासक्रमं श्रृणु ॥
पुनरेवं मध्यकोष्ठं नवधा विभजेत्सुधीः ।
मध्य पूर्वादिकोष्ठेषु स्वरान्युग्मक्रमाल्लिखेत् ॥
यत्र पूर्वादिकोष्ठेषु ग्रामाद्याक्षर संस्थितिः ।
मुखन्तु तस्य जानीयाद् हस्तावुभयतः स्थितौ ॥

---

स्थान, नगर आदि में एक कोस अथवा दो कोस परिमित स्थान ग्रहण करें। आहारादि तथा भ्रमण के लिये उसी प्रकार परिमाण अर्थात् पुरश्चरण के लिये जहाँ जितना परिमित भूमि लें, उसी परिमाण में भूमि आहार-विहारादि के लिए ग्रहण करें। दीप-स्थान आश्रय करके कर्म (पुरश्चरण) करने पर वह कर्म फलप्रद होगा।

## दीपस्थान

जहाँ पुरुष दीप्यमान होता है, उसे दीपस्थान कहते हैं। भूमि का चतुष्कोण विभाग करके अर्थात् चतुष्कोण मण्डल करके नौ कोष्ठ (घर) का निर्माण करें। दीक्षित साधक पूर्व दिशा के कोष्ठ से आरम्भ करके सात कोष्ठों में यथा में यथाक्रम से सात वर्ण एवं ईशान कोण में क्त तथा क्ष वर्ण लिखें। अब स्वरवर्ण विन्यास का क्रम सुनो। सुधी साधक मध्य कोष्ठ को पुनः बन कोष्ठों (नौ घरों) में विभाग करें। पूर्वादि कोष्ठ से आरम्भ करके मध्यकोष्ठ में युग्मक्रम से अर्थात् दोनों करके स्वरवर्णों को लिखें। पूर्वादि कोष्ठ के जहाँ ग्राम का आद्य अक्षर अवस्थान करता है, उसी स्थान को उसका (कूर्मचक्र का) मुख जानना चाहिए। उभयतः अर्थात् मुख के दोनों पार्श्व के दोनों कोष्ठों में कोष्ठ रूप दोनों हाथ अवस्थान कर रहे हैं। अपर (दूसरे) हस्तद्वय के निम्नस्थित दोनों कोष्ठ (कूर्म) के दोनों कुक्षि है; दूसरे (दोनों कुक्षि कोष्ठ के निम्नस्थित) दोनों कोष्ठ दोनों पद है;

कोष्ठे कुक्षी उभे पादौ द्वे शिष्टं पुच्छमीरितम् ।
मुखस्थो लभते सिद्धिं करस्थः स्वल्पजीवनः ॥
उदासीनः कुक्षिसंस्थः पादस्थो दुःखमाप्नुयात् ।
पुच्छस्थः पीडयते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः ॥
कूर्मचक्रमिदं प्रोक्तं मन्त्रिणां सिद्धिदायकम् ।
निर्माय विधिवत्कुर्याद् जपं तत्र शुभे दिने ॥
चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।
आरभेत पुरश्चर्यां हरौ सुप्ते न चाचरेत् ॥

हरौ सुप्ते दक्षिणायने इत्यर्थः। तेन यद्दक्षिणायनं निषिद्धमुक्तं, तद्विष्णुविषयम् । शक्तिविषये दक्षिणायनेऽपि पुरश्चरणं कर्त्तव्यम् । तथाचोक्तं यामले—

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्मिन्पक्षे विशेषेण पुरश्चरण माचरेत् ॥

अन्यत्रापि—

शरत्काले चतुर्थ्यादिनवमान्तं विशेषतः ।

---

अवशिष्ट ( निम्नस्थित ) कोष्ठ कूर्म को पुच्छ कहा गया है । दीक्षित व्यक्ति कूर्म के मुखांश में अर्थात् जिस तरफ कूर्म का मुख है, उसी तरफ बैठकर ( जप करने पर ) सिद्धिलाभ करता है, करस्थ अर्थात् जिस तरफ हाथ, उस तरफ उपविष्ट होकर जप करने से अल्पायुः होता है; कुक्षि में उपविष्ट होकर जप करने से उदासीन, पैर में उपविष्ट होकर जप करने पर दुःख लाभ होता है । पुच्छ में उपविष्ट होने से साधक बन्धन तथा उच्चाटनादि के द्वारा पीड़ित होता है । दीक्षित साधक गणों के लिये सिद्धिप्रद यह कूर्मचक्र कहा गया है ।

शुभ दिन में विधिपूर्वक कूर्मचक्र निर्माण करके, उसी पक्ष में तथा शुभ दिन मेंही पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिए । हरि शयन में पुरश्चरण न करें । 'हरौ सुप्ते' अर्थात्-दक्षिणायने । सुतरां 'दक्षिणायन' पुरश्चरण में निषिद्ध है । यह जो कहा गया है, वह विष्णु के विषय में समझना अर्थात् दक्षिणायन में विष्णु मन्त्र का पुरश्चरण नहीं होगा । शक्ति के विषय में दक्षिणायन में भी पुरश्चरण कर्त्तव्य है । यामल तन्त्र में यही कहा गया है । यथा—"शरद् काल में जो वार्षिकी महापूजा अनुष्ठित होता है, उस पक्ष में विशेषरूप से पुरश्चरण करना चाहिए । अन्यत्र भी कहा गया है—'शरद् काल में चतुर्थी

भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ चाष्टसहस्त्रकम् ।
एकाकी निर्जने देशे जपेश्च तिमिरालये ॥

अष्टसहस्त्रकमिति । अष्टाधिकसहस्त्रं प्रत्यहं जपेदित्यर्थः । तिमिरालये अन्धकारवद् गृहे, न त्वालोक युक्ते इत्यर्थः । केचित्तु 'तिमिरालये' रात्राविति वदन्ति । तदसत् 'रात्रौ चाष्टसहस्त्रकमिति' रात्रेः पूर्वं प्राप्तत्वादिति दिक् ॥

## अथ पुरश्चरणदिन-कृत्यम्

बहुभिः वस्त्रभूषाभिः सम्पूज्य गुरुमात्मनः ।
आरभेत् जपं पश्चात् तदनुज्ञापुरः सरम् ॥
प्रातः स्नात्वा महेशानि कीलानादाय साधकः ।
कुटीनिकट मागत्य कुर्यात्तन्त्रोदितां क्रियाम् ॥
क्षीरिवृक्षोद्भवान् कीलानस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान् ।
निखनेद्दशदिग्भागे तेष्वस्त्रश्च प्रपूजयेत् ॥

---

आदि तिथि से नवमी तिथि तक विशेषरूप से विधिपूर्वक पूजा करके रात को एकाकी ( अकेला ) निर्जन देश में तिमिरालय में अर्थात् अन्धकार गृह में अष्टसहस्र अर्थात् एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करें । 'अष्टसहस्र'' अर्थात् १००८ बार प्रतिदिन मन्त्र जप करें । तिमिरालये अर्थात्-अंधेरा पूर्ण घर में । परन्तु प्रकाश युक्त घर में नहीं । कोई कोई कहते हैं–तिमिरालय अर्थात-रात्रि को । यह ठीक नहीं हैं क्योंकि ''रात्रौ चाष्ट सहस्रकम्''–इस वचन के पूर्व में ही रात की प्राप्ति हुई है अर्थात् 'रात्रौ' शब्द के पूर्व में ही रात को जप विहित हुआ है; तिमिरालय पद का रात्रि अर्थ होने से पुनरुक्ति होगी ।

### पुरश्चरणदिन का कृत्य

अपने गुरु की बहु वस्त्र तथा अलङ्कार के द्वारा पूजा करके बाद में उनके आज्ञानुसार से जप के पुरश्चरण का आरम्भ करें । हे महेशानि ! प्रातः स्नान करके सभी कील ( गोंज ) लेकर कुटिया के समीप उपस्थित होकर तन्त्रोक्त कर्म को करें । क्षीरवृक्ष ( बरगद ), अवश्वत्थ ( पीपल ), गूलर आदि वृक्ष से प्रस्तुत एवं अस्त्र मन्त्र के द्वारा ( 'ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' मन्त्र से ) अभिमन्त्रित उस कील ( गोंज ) समूहों को पूर्वादि दशों दिशाओं में प्रोथित ( गाड़ना ) करें । एवं उन कील समूहों में 'ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' मन्त्र से सुदर्शन की पूजा करना ।

क्षेत्रे तु कीलिते मन्त्री न विघ्नैः परिभूयते।
अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षवटाश्च क्षीरिशाखिनः॥
क्षेत्रपालान्पूजयित्वा बलिं दद्याद्विधानतः।
दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा ततः क्षेत्रं समाश्रयेत्॥

क्षेत्रपालमन्त्रमाह तन्त्रे—

वर्णान्त औ विन्दुयुतः क्षेत्रपालाय हृन्मनुः।
ताराद्यो वसुवर्णोऽयं क्षेत्रपालस्य कीर्त्तितः॥

मन्त्रः—ॐ क्षौं क्षेत्रपालाय नमः।

षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गन्यास माचरेत्।

नीलाञ्जनाद्रिनिभ मूर्द्धपिशङ्ग केशं वृत्तोग्रलोचनमुपात्त गदाकपालम्।
आशाम्बरं भुजगभूषणमुग्रदंष्ट्रं क्षेत्रेशमन्दुतमहं प्रणमामि देवम्॥

इति ध्यात्वा क्षेत्रपालमावाह्य अष्टदलपद्मे पूजयेत्।

अनलाक्षमग्निकेशं करालं तदनन्तरम्।
घण्टाखं महा (क्रोधं) कोपं पिशिताशनमप्यथ॥
पिङ्गलाक्षमूर्द्धकेशं पत्रेषु पूर्वतोऽर्चयेत्।

---

क्षेत्र (भूमि) कीलित होने पर दीक्षित साधक विघ्नसमूहों के द्वारा अभिभूत नहीं होता है। पीपल, गूलर, प्लक्ष (पाकुड़), बरगद-ये सभी क्षीरिवृक्ष है। बाद में विधिपूर्वक क्षेत्रपाल की पूजा करके बलि दे। दिक्पतिगणों को बलि देकर बाद में भूमि अर्थात् जप के लिये स्थान ग्रहण करना चाहिए।

तन्त्रों में क्षेत्रपाल मन्त्र कह रहे हैं-"औ एवं विन्दू ( ँ ) युक्त वर्णान्त (क्ष) उसके बाद 'क्षेत्रपालाय' बाद में हृन्मनु (नमः) है। प्रणवादि यह आठों वर्ण क्षेत्रपाल के मन्त्र कहकर कीर्त्तित हुये हैं। मन्त्र यथा-ॐ क्षौं क्षेत्रपालाय नमः। छह प्रकार के दीर्घस्वरयुक्त बीज के द्वारा षडङ्गन्यास करें। 'नीलाद्रि के न्याय नीलवर्ण, मस्तक पर पिङ्गलवर्ण केशजाल मण्डित, वृत्ताकार (गोल) उग्र लोचनविशिष्ट, गदा एवं कपालधारी, दिगम्बर, सर्पभूषित, उग्र दंष्ट्रायुक्त, अद्भुत देवता क्षेत्रपाल को मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार से ध्यान करके क्षेत्रपाल का आवाहन करके अष्टदल-पद्म में पूजा करें। उसके बाद पूर्व दिशा के पत्र से आरम्भ करके सभी पत्रों में यथाक्रम से अनलाक्ष, अग्निकेश, कराल, घण्टाख, महाकोप, पिशितासन, पिङ्गलाक्ष तथा ऊर्ध्वकेश की अर्चना करना चाहिए। इन्द्रादि

लोकपालांस्तदस्त्राणि यथापूर्वं प्रपूजयेत् ॥

ततो माषभक्तबलिं दद्यात् ॥

मन्त्रमाह शारदायाम्—

पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद् विदु(द्वि)षि स्यात्सुरद्वयम् ।
भञ्जय द्वितयं भूयो तर्जय द्वितयं ततः ॥
ततो विघ्नपदद्वन्द्वं महाभैरव तत्परम् ।
क्षेत्रपालबलिं गृह्णद्वयं पावकसुन्दरि ।
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वकामफलप्रदः ॥

बद्धाञ्जलि—

ॐ तीक्षणदंष्ट्र महाका(ल)य कल्पान्त दहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इत्यनुज्ञां लब्ध्वा इन्द्रादिदिक्पालान्पूजयित्वा माषभक्तबलिं दद्यात् ।

शारदायाम्—कुटीनिकटमागत्य सामान्यार्घं विधाय च ।
द्वारपूजां विधायाथ जपस्थानं विशोधयेत् ॥
वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण प्रोक्षणं मतम् ॥

---

लोकपाल गणों के एवं उनके अस्त्रसमूहों को पूर्वादिक्रम से पूजा करें। उसके बादमाषभक्त ( ऊरद ) की बलि देना चाहिए।

शारदातिलक के मन्त्र कह रहे हैं—"पहले दो 'एहि' पद, अनन्तर 'विदुषि' पद, उसके बाद दोनों 'सुरु' पद, दोनों 'भञ्जय' पद, पुनः दोनों 'तर्जय' पद, उसके बाद दोनों 'विघ्न' पद, उसके बाद 'महाभैरव' पद, उसके बाद 'क्षेत्र-पाल बलिं' यह पद, उसके बाद दोनों 'गृह्ण' पद, उसके बाद पावकसुन्दरी अर्थात् 'स्वाहा' यही है समस्त काम्य फलों के दाता क्षेत्रपाल के बलिमन्त्र। बद्धाञ्जलि अर्थात् हाथ जोड़ करके—हे तीक्षणदंष्ट्र ! हे महाकाय ! हे प्रलयाग्नि-तुल्य तेजस्विन् ! हे भैरव ! तुम्हें नमस्कार है। मुझे अनुज्ञा दान करिये। इस मन्त्र से अनुज्ञा ग्रहण करके इन्द्रादि दिक्पाल गणों की पूजा करके माषभक्त की बलि दें। शारदातिलक में कहा गया है-कुटीर अर्थात् पुरश्चरण मण्डप के समीप आकर सामान्यार्घ्य स्थापन करके द्वार पूजा करके अनन्तर जपस्थान का शोधन करना। मूलमन्त्र के द्वारा वीक्षण (दर्शन) एवं शरमन्त्र (फट् मन्त्र) से प्रोक्षण शिष्टगणों के द्वारा सम्मत है। दर्भ गुच्छ के द्वारा उस फट् मन्त्र से ताडन तथा वर्म बीज (हूँ) द्वारा अभ्युक्षण सभी लोगों के द्वारा सम्मत है।

## पुरश्चरण संकल्प

सनत्कुमारसंहितायाम्—

प्रणवं तत्सदद्येति मासपक्षतिथीरपि।
अमुकगोत्रोऽमुकोऽहं मूलमुच्चार्य तत्परम् ॥
सिद्धिकामोऽस्य मन्त्रस्य इयत्संख्यजपं ततः।
दशांशं हवनं होमाद्दशांशं तर्पणं ततः ॥
दशांशं मार्जनं तस्याद्दशांशं विप्रभोजनम्।
पुरश्चरणमेवं हि करिष्ये प्रागुदङ्मुखः ॥
भूतशुद्धिं विधायादौ प्राणायामं समाचरेत्।
ऋष्यादिकं ततः कृत्वा कल्पोक्तन्यासमाचरेत् ॥
ततः पूजादिकं कृत्वा यथाविधि जपं चरेत्।
शनैः शनैरविस्पष्टं न द्रुतं न विलम्बितम् ॥
क्रमेणोच्चारयेद्वर्णानाद्यन्त क्रमयोगतः।
देवतां चित्तगां कुर्यात्कुर्याच्च हृदयः स्थिरम्।
प्रातःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि ॥

---

### पुरश्चरण संकल्प

सनत्कुमार संहिता में कहा गया है—'पहले प्रणव ( ॐ ) बाद में 'तत्सदद्य' यह पद, उसके बाद सप्तमी विभक्तियुक्त मास, पक्ष, तिथि एवं 'अमुकगोत्रऽमुकोऽहं'—यह पद, उसके बाद मूलमन्त्र का उच्चारण करके ( इत्पस्य ) मन्त्रस्य सिद्धि-कामाः' यह पद तथा 'इयत्संख्यजपं' यह पद उसके बाद 'तद् दशांशं हवनं' एवं होमाद् दशांशं तर्पणं' यह पद उसके बाद 'तद्दशांशं मार्जनं' एवं 'तस्माद्दशांशं विप्रभोजनं पुरश्चरणमेवं करिष्ये' यह पद कहें। बाद में पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर भूतशुद्धि करके पहले प्राणायाम करें। अनन्तर ऋष्यादिन्यास करके कल्पोक्त न्यास करें। उसके बाद पूजा आदि करके विधिपूर्वक जप करें। धीरे धीरे अविस्पष्टरूप से आद्यन्त-क्रमानुसार से अर्थात् मन्त्र के आदि से अन्त तक यथाक्रम से मन्त्र वर्णों का उच्चारण करें। देवता को हृदयवर्त्तिनी अर्थात् हृदय में ध्यान करें एवं चित्त को स्थित करें। प्रातःकाल से प्रारम्भ करके मध्याह्न काल तक जप करें।

कुलार्णवे—

यत्संख्या समारब्धं तज्जप्तव्यं दिने दिने ।
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्य मासमाप्तं कदाचन ॥
न्यूनातिरिक्त कर्माणि न फलन्ति कदाचन ।
यथाविधि कृतान्येव तत्कर्माणि फलन्ति हि ॥
स्नानं त्रिसवनं प्रोक्तमशक्तौ द्विःसकृच्च वा ।
मन्त्रं साधयमानस्तु त्रिसन्ध्यं देवमर्चयेत् ॥
द्विकालमेककालं वा न मन्त्रं केवलं जपेत् ।
उपचारै यथाशक्ति देवतामन्वहं यजेत् ॥
न क्षुज्जृम्भणहिक्कादि विकलीकृतमानसः ।
मन्त्रसिद्धिमवाप्नोति तस्माद्यत्नपरो भवेत् ॥

यदि दैवाद् जृम्भणादिकं भवति, तदा आचम्य प्राणायामं षडङ्गन्यासं च कृत्वा शेष जपेत् । सूर्यं दृष्ट्वा वा जपेत् । तथा च

---

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है—'जिस संख्या में जप आरम्भ हुआ है, प्रतिदिन वही अर्थात् उसी संख्या से जप करना कर्त्तव्य है । समाप्ति तक कभी भी न्यून ( कम ) अथवा अधिक जप न करें । न्यूनातिरिक्त कर्म अर्थात् प्रात्यहिक ( प्रतिदिन का ) कर्त्तव्य कर्म के अधिक अथवा कम कर्म कभी भी फलदान नहीं करता है । वे कर्मसमूह यथाविधि अनुष्ठित होने पर ही फलदान करते हैं । पुरश्चरणकारी का त्रिसवण त्रैकालिका तीन समय स्नान कहा गया है । अशक्त होने पर दो बार अथवा एकबार स्नान करना कर्त्तव्य है यह कहा गहा है । मन्त्र साधनकारी व्यक्ति त्रिसन्ध्या में देवता की पूजा करें । अशक्त होने पर दो काल में ( जप के आदि में एवं अन्त में ) अथवा एककाल में ( जप के आदि में अथवा अन्त में ) देवता की पूजा करें । केवल ( पूजा व्यतीत ) मन्त्र जप न करें । यथाशक्ति उपचार के द्वारा प्रतिदिन पूजा करें ।

क्षुधा ( भूख ), जृम्भण ( अङ्गड़ाई ) छींक, हिक्का के द्वारा चञ्चल चित्त व्यक्ति मन्त्रसिद्धि लाभ नहीं करता, सुतरां यत्न-पर ( स्थिरचित्त ) होना । दैवात् यदि जृम्भणादि उठना आदि होता है, तब उसी समय आचमन करके प्राणायाम तथा षडङ्गन्यास करके अवशिष्ट मन्त्र जप करें अथवा सूर्य को देखकर जप करें ।

**योगिनी हृदये—**

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे कृते ।
क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥
तथाचम्य च तत्प्राप्तौ प्राणायामं षडङ्गकम् ।
कृत्वा सम्यग्जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादि दर्शनम् ॥

कृत्वा जपेदिति परेणान्वयः । आदिपदाद्देव ब्राह्मणादीनां परिग्रहः ॥

शयीत दर्भशय्यायां विन्यस्य भुवि चात्मनः ।
तद्वासः क्षालयेन्नित्यमन्यथा विघ्नमा (वहेत्) पतेत् ।
न दिवा शयनं कुर्यात्कुकुरादीन्न संस्पृशेत् ॥
न सेवेत स्त्रियं मांसं मधु वा साधकोत्तमः ।
एतानि सेवमानस्य न सिध्यन्ति पुरस्क्रियाः ॥

## भक्ष्यादि नियमः

कुलार्णवे—भुञ्जानो वा हविष्यान्नं शाकं यावकमेव वा ।
पयो मूलं फलं वापि यत्र यच्चोपलभ्यते ॥

---

योगिनी-हृदय में यही कहा गया है। यथा—'पतित तथा अन्त्यज व्यक्तियों के दर्शन में भी उन लोगों के साथ आलाप ( बातचीत ) करने पर छींक होने पर, अधोवायु निःसृत होने पर अथवा उठने पर जप को त्याग करें। यह सभी उपस्थित होने पर, पुनर्वार आचमन करके यथा-विधि प्राणायाम तथा षडङ्गन्यास करके अथवा सूर्य का दर्शन करके अवशिष्ट मन्त्र का जप करें। 'कृत्वा जपेत्' यह वाक्य बाद में अर्थात् 'सूर्यादि दर्शनं' इस पद के साथ अन्वित होगा। आदि पद के द्वारा देवता अथवा ब्राह्मण आदि गृहीत होगा अर्थात् सूर्य के समान देवता अथवा ब्राह्मण आदि को देखकर भी अवशिष्ट मन्त्र का जप किया जा सकता है।

भूमि पर अपनी कुश-शय्या बिछा कर उसमें शयन करना एवं अपनी शय्या एवं परिधेय ( पहनने का ) वस्त्र प्रतिदिन धोना; अन्यथा विघ्न उपस्थित होगी। उत्तम साधक दिन में शयन न करें, कुत्ता आदि को स्पर्श न करें, स्त्री सम्भोग न करें एवं मधु तथा मांस का भक्षण न करें। जो यह सभी करते हैं, उनका पुरश्चरण सिद्ध नहीं होगा।

### भक्ष्यादि नियम

हविष्यान्न आदि विहित शाक्, यावक ( या उ ) दूध, कन्दमूल एवं जहाँ केला आदि जो फल उपलब्ध हो वही खाकर अथवा भिक्षाशी अर्थात

भिक्षाशी वा जपेद् यद्वा कृच्छ्रचान्द्रायणादिकृत् ।
आम्रमामलकञ्चैव फलं केशरिसम्भवम् ॥
रम्भाफलं तिन्तिडीकं कमला नागरङ्गकम् ।
फलान्येतानि भोज्यानि तदन्यानि विवर्जयेत् ॥

विहितशाकं यथा—

कलायं कालशाकञ्चवास्तुकं हिलमोचिका ॥

## हविष्यान्न लक्षणम्

हविष्यान्नं यथा—

हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यमुद्गास्तिला यवाः ।
कलायकं गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥
यष्टिका कालशाकञ्च मूलकं केमुकेतवत् ।
लवणे सैन्धव सामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥
पयोऽनुद्धृतसारञ्च पनसाम्रहरीतकी ।
पिप्पली जीरकञ्चैव नागरङ्गञ्च तिन्तिडी ॥
कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् ।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते ॥

---

भिक्षालब्ध मात्र अन्न खाकर कृच्छ चान्द्रायणादि व्रत करके जप (पुरश्चरण) करें। आम, आमला, केशरिजात फल (केशुर) केला, तिन्तिड़ी (इमली) सन्तरा, नारङ्गी, यह सभी फल भक्ष्य हैं; अन्य सभी फलों का त्याग करें। विहित शाक है यथा—कलाय ( मटर ) शाग्, कालाशाग्, वास्तुक शाग् ( वेथूया शाग् ) तथा हिलाञ्च शाग् है।

### हविष्यान्न लक्षण

हविष्यान्न इस प्रकार है—अस्विन्न अर्थात् ( असिद्ध बिना पकाया हुआ ) शुक्लवर्ण हैमन्तिकधान, मूँग, तिल, यव, कलाय ( छोटा मटर ), कंगु ( काउन अथवा कंगुनी ) नीवार ( एक प्रकार का धान ) वेथूया शाग्, हिलञ्चा शाग्, यष्टिका (एक प्रकार का धान) शाटिया, कालाशाग, केउ-बिना मूल कन्द, सैन्धव तथा समुद्रजात नमक, गव्य (गाय के दुध का घी) दधि, घृत, सार ( मक्खन ) नहीं उठाया गया गाय का दुध, कटहल, आम, हररे, पिप्पली, जीरा, नारङ्गी, इमली, केला, लवली ( एक फल विशेष ) धात्री यह सभी फल, गुड़, को छोड़कर गन्ने के रस से बना हुआ अन्य वस्तु एवं अतैल पक्व बिना तेल से पका हुआ वस्तु को मुनिगण हविष्यान्न कहते हैं।

मूलं केमुक केन्दूनां वर्जयेद्विहितं मुने।
घृतं दधि फलं वापि नारिकेलं यथोचितम् ॥
हविष्यान्नं तथाऽश्नीयाच्छक्तुं यव समुद्भवम्।
नेन्द्रियाणां यथा वृद्धिस्तथा भुञ्जीत साधकः ॥
गृहस्थानां वदान्यानां भिक्षाशिनोऽग्रजन्मनाम्।
पुरश्चरण मध्ये तु यदिस्यान्मृतसूतकम् ॥
तथापि कृतसङ्कल्पो जपं नैव परित्यजेत्।
स्वकल्पोक्त क्रमेणैव जपं कृत्वा वरानने ॥
होमयेत्तद्दशांशेन तद्दशांशेन तर्पणम्।
तर्पणस्य दशांशेन चाभिषिञ्चेज्जगन्मयीम ॥
अभिषेक दशांशेन कुर्याद् ब्राह्मण भोजनम्।
गुरवे दक्षिणां दत्वा दीनान्धकृपणान् बहून् ॥
ज्ञातीन्द्विजान्परान्भक्त्या भोजयेच्च यथेप्सितान्।
एवं कृतपुरश्चर्यः साधयेदिष्टमात्मनः ॥

---

हे मुने ! केमुक तथा केन्दुर मूल को छोड़कर अन्य विहित मूल भक्षण करें। घृत, दहि, नारियल, विहित फल, हविष्यान्न एवं यव से बना हुआ सत्तु भक्षण करें। इन्द्रियों की जिससे वृद्धि ( उत्तेजना ) न हो, साधक उसी प्रकार भक्षण करें। यदि पुरश्चरणकारी भिक्षा भोजी होते हैं, तब वे लोग वदान्य ( श्रेष्ठ ) ब्राह्मण गृहस्थों के द्वारा प्रदत्त भिक्षा ही भोजन करें।

पुरश्चरण के बीच यदि मृत सूतक हो जाता है, तब भी किया हुआ सङ्कल्प व्यक्ति जप का परित्याग न करें। हे वरानने ! अपने कल्पोक्त क्रम से ही जप करके जप की दशांश संख्या में हवन, हवन के दशांश संख्या में तर्पण, तर्पण के दशांश संख्या में जगन्मयी का अभिषेक करें। अभिषेक का दशांश संख्या में ब्राह्मण भोजन कराये। गुरु को दक्षिणा देकर बहुसंख्यक दीन, अन्ध कृपण, ज्ञाति, द्विज तथा अन्यान्य प्रिय व्यक्तियों को भोजन कराये। इस प्रकार पुरश्चरण अनुष्ठित होने पर साधक अपने अभिलषित फल का लाभ करता है।

## होमादि नियमः

गौतमीये—जपान्ते प्रत्यहं मन्त्री होमये त्तद्दशांशतः ।
तर्पणं चाभिषेकञ्च तत्तद्दशांशतो मुने ॥
प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् न्यूनाधिक्यप्रशान्तये ।
अथवा सर्वसम्पूर्त्तौ होमादिकमथाचरेत् ॥
अथवा हेमपत्रादौ यन्त्रं कृत्वा ततः परम् ।
पूजयित्वा तत्र देवीं परिवार समन्विताम् ॥

## तर्पण विधिः

तर्पयेत्तां परां देवीं तत्प्रकारमिहोच्यते ।
तर्पयित्वा गुरूनादौ मूलदेवीञ्च तर्पयेत् ॥
मूलान्ते नाम चोच्चार्य तर्पयामि ततः परम् ।
स्वाहाऽन्ते तर्पयेन्मन्त्री यथासंख्यं विधानतः ॥
योगिनी हृदये—तर्पणञ्च प्रकुर्वीत द्वितीयान्तमथोच्चरन् ।
एकैकमञ्जलिं दत्वा तर्पयेद्रश्मिवृन्दकम् ॥

---

### होमादि नियम

गौतमीये तन्त्र में कहा गया है–'हे मुनि ! दीक्षित साधक प्रतिदिन जप के अन्त में जप का दशांश हवन करें, तत् तत् दशांश अर्थात् हवन के दशांश तर्पण एवं तर्पण के दशांश से अभिषेक करें। जप के न्यूनाधिक्य दोष की शान्ति के लिये प्रतिदिन ब्राह्मण भोजन कराये अथवा सभी अङ्गों की परिसमाप्ति के लिये हवन आदि करना अथवा सोने के पात्र आदि में यन्त्र निर्माण करके उसके बाद उस यन्त्र पर परिवार गणों के साथ देवी की पूजा करके उस परादेवी ( इष्ट देवता ) का तर्पण करें। उस तर्पण के प्रकार यहाँ कथित हो रहे हैं।

### तर्पणविधि

दीक्षित साधक पहले गुरुवर्ग को तर्पण करके मूलदेवी को तर्पण करें। मूलमन्त्र के अन्त में द्वितीय विभक्तियुक्त देवता का नाम उच्चारण करके 'तर्पयामि' यह पद, उसके बाद 'स्वाहा' कहकर यथा संख्या के विधान से अर्थात् इष्ट देवता के मन्त्र के पुरश्चरणविधि विहित संख्या में तर्पण करें।

योगिनी हृदय में कहा गया है–'अनन्तर द्वितीया विभक्तियुक्त इष्ट देवता का नाम उच्चारण करके तर्पण करें। एक-एक अञ्जलि जल देकर रश्मिवृन्द ( परिवार देवताओं ) को तर्पण करें।

## तर्पणद्रव्यम्

तर्पणद्रव्यमाह विशुद्धेश्वरे—

तर्पणं चेन्दुमत्तोयैस्तीर्थतोयैस्तथा पुनः ।
गुरूपदिष्ट विधिना मधुना वाथ तर्पयेत् ॥
तन्त्रान्तरे—
तीर्थतोयेन दुग्धेन सर्पिषा मधुनाऽपि वा ।
गन्धोदकेन वा कुर्यात्सर्वत्र साधकोत्तमः ॥
कालागुरुद्रवैरेव वशयेज्जगदादिकम् ।
सचन्दनेन तोयेन सौभाग्यं लभते नरः ॥
तोयैः कुंकममिश्रैश्च स्तम्भयेदखिलं जगत् ।
सितमिश्रिततोयेन बृहस्पति समो भवेत् ॥
कर्पूराक्त जलेनैव सुरान्नाकर्षयेन्नरः ।
रोचनायुत तोयेन सर्वविघ्नात्प्रमुच्यते ॥
ध्यात्वा देवीं मुखे तस्यास्तर्पणञ्च समाचरेत् ।
सर्वशास्त्रेषु कथितं तर्पणं शुभदायकम् ॥
एतत्तु तर्पणं कृत्वाऽभिषेकं तद्दशांशतः ।
आत्मानं देवबुद्धया तु सम्पूज्य तन्मयः सुधीः ॥

---

### तर्पणद्रव्य

विशुद्धेश्वर तन्त्र में तर्पण द्रव्य कह रहे हैं—'कर्पूरयुक्त जल के द्वारा गुरु कर्तृक उपदिष्ट विधि के अनुसार तर्पण कर्त्तव्य है अथवा तीर्थ जल के द्वारा अथवा मधु द्वारा तर्पण करें। तन्त्रान्तरों में कहा गया है—'साधक श्रेष्ठ तीर्थजल के द्वारा दुग्ध के द्वारा, घृत के द्वारा, मधु द्वारा अथवा गन्धोदक के द्वारा सर्वत्र तर्पण करें। कृष्णागुरु चन्दन के द्वारा तर्पण करने पर ही जगत् आदि को वश किया जा सकता है। मानव चन्दनयुक्त जल के द्वारा तर्पण करने से सौभाग्य लाभ करता है कुंकुम मिश्रित जल के द्वारा तर्पण करने पर जगत् को स्तम्भित किया जा सकता है। शर्करा मिश्रित जल के द्वारा तर्वण करने पर बृहस्पति के समान पण्डित होता है। कर्पूर मिश्रित जल के द्वारा तर्पण करने पर मनुष्य देवतागणों को भी आकर्षित कर सकता है। रोचनायुक्त जल के द्वारा तर्पण करने पर समस्त विघ्नों से मुक्ति मिलती है। देवी का ध्यान करके उनके मुख में तर्पण करें। सभी शास्त्रों में तर्पण शुभप्रद कथित है। इस तर्पण को करके उसको दशांश से अभिषेक करें। सुधी साधक अपनी आत्मा को देवबुद्धि में अर्थात् देवता

मूलविद्यां समुच्चार्याऽमन्तां च देवताभिधाम् ।
तदन्ते चाभिषिश्चामि नमोऽन्तेनाऽभिषेचयेत् ॥
इति मन्त्री स्वकं मन्त्रं चिन्तयित्वा स्वमूर्द्धनि ।
अभिषेकं स्वीयसंख्यं विदध्यात् तदनन्तरम् ॥
तत्र सश्चिन्तयेद्देवीं साङ्गावरणदेवताम् ।
क्षिपेत्तोयं यथासंख्यं गणान्सिञ्चेत्सकृत्सकृत् ॥
अभिषेकं समाप्यैवमभिषेक दशांशतः ।
ब्राह्मणान् देवबुद्धया च भोजयेत्साधकोत्तमः ॥
यामले—ब्राह्मणान् भोजयेद्देवि तथैव च कुमारिकाः ।
साधकः पशुतामेति कुमारी भोजनाहृते ॥
ततो मन्त्रयुतान्विप्रान् भोजयेद्देवताधिया ।
ततः सम्पूजयेद्भक्त्या सम्भारै विविधैर्गुरुम् ॥
दक्षिणां गुरवे दद्याद्यथा विभवविस्तरैः ।
दत्वा च साधक श्रेष्ठोमहापुजां समाचरेत् ।
सिद्धमन्त्रो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥

---

के साथ अभेद भाव से पूजा करके तन्मय अर्थात् देवमय होकर मूलविद्या एवं अमन्त अर्थात् द्वितीया विभक्ति युक्त देवता का नाम उच्चारण करके उसके बाद–'अभिषिञ्चामि' तथा अन्त में 'नमः' उच्चारण करके अभिषेक करें। दीक्षित साधक इस प्रकार अभिषेक मन्त्र का चिन्तन करके अभिषेक के संख्यानुसार अपने मस्तक पर अभिषेक करें। उसके बाद उसी समय में अङ्गदेवता तथा आवरण देवता के साथ देवी का ध्यान करें। विहित संख्या के अनुसार जलनिक्षेप ( तर्पण ) करें एवं परिवारगणों को एक एक बार तर्पण करें। साधक श्रेष्ठ अभिषेक समाप्त करके देवबुद्धि से अभिषेक का दशांश ब्राह्मण भोजन करावें।

यामल तन्त्र में कहा गया है–हे देवि ! ब्राह्मण को तथा कुमारीगण को भोजन करावें। साधक कुमारी भोजन न करावें तो पशुत्व को प्राप्त होता है। उसके बाद देवबुद्धि से दीक्षित ब्राह्मणों को भोजन करावें। उसके बाद विविध उपचार के द्वारा भक्तिपूर्वक गुरु की पूजा करें एवं ऐश्वर्य के अनुसार पर्याप्त धनरत्न आदि के द्वारा गुरु को दक्षिणा देकर साधक श्रेष्ठ महापूजा करें। इससे साधक (मन्त्र जप करने वाला) को सिद्धमन्त्र मिलती है। इसमें विचार करना कर्त्तव्य नहीं है।

तन्त्रे—

विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्त(रैः)रम् ।
नैतत्फलमवाप्नोति देवद्रोहो स उच्यते ॥

## अङ्गहोनेजपविधिः

मुण्डमालायाम्—

यद्यदङ्गविहीनं स्यात्तत्संख्याद्विगुणो जपः ।
कर्त्तव्यः साङ्गसिद्धयर्थं तदशक्तेन भक्तितः ॥

रुद्रयामले—

होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः ।
इतरेषान्तु वर्णानां त्रिगुणादिक ईरितः ॥

योगिनी हृदये—

होमाशक्तौ जपं कुर्याद् होमस्य द्विगुणो बुधः ।
ब्राह्मणादित्रिवर्णानां स्त्रीणां संख्या विधीयते ॥
यं वर्णमाश्रितः शूद्रो दीक्षां कुर्याद्यथेप्सिताम् ।
तस्यस्त्रीनान्तु या संख्या सा संख्या तस्य विद्यते ।

---

तन्त्र में कहा गया है—जो व्यक्ति ऐश्वर्यवान ( सम्पन्न ) रहकर भी मोहवशतः विस्तृत विधि के द्वारा पुरश्चरण नहीं करता, वह पुरश्चरण का फल नहीं पाता, उसे देव द्रोह कहा जाता है ।

### अङ्गहोन में जपविधि

मुण्डमाला तन्त्र में कहा गया है—जो अङ्गविहीन होगा अर्थात् अनुष्ठित नहीं होगा, उस अङ्गकार्य के अनुष्ठान में असमर्थ व्यक्ति के द्वारा भक्तिपूर्वक अङ्गकार्य के साथ प्रधान कर्म की सिद्धि के लिये उस अङ्गकार्य की संख्या का द्विगुण जप करना कर्त्तव्य है । रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—हवन कार्य में अशक्त ब्राह्मण का दिगुण जप, अन्य वर्ण समूहों के त्रिगुण, चतुर्गुण आदि जप विहित हुआ है ।

योगिनी हृदय में कहा गया है—विद्वान व्यक्ति हवन में अशक्त होने पर हवन का द्विगुण जप करें । ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णों के स्त्रीगणों के जप संख्या का विधान किया गया है । जिस वर्ण को आश्रय करके अर्थात् जिस वर्ण के भृत्यरूप में रहकर शूद्र इच्छानुरूप दीक्षा ग्रहण करते हैं; उस आश्रय वर्ण के स्त्रीगणों की जो संख्या है, वह संख्या उस शूद्र की जप संख्या है ।

शूद्रस्य यादृशी संख्या द्विगुणा सा स्त्रियः प्रिये ॥

अन्यत्रापि—

यं वर्णमाश्रितः शूद्रः स च तस्य विधिं चरेत् ।
अनाश्रितस्य शूद्रस्य दिक्संख्याकः समीरितः ॥
शूद्रस्य विप्रभृत्यस्य तत्पत्नयाः सदृशो जपः ।
होमशून्यस्य विप्रस्य यो जपः स तु तत्स्त्रियः ।
इतरेषान्तु वर्णानां सर्वेषां त्रिगुणादिकः ॥

त्रिगुणादिक इति होमसंख्या त्रिगुण जपः क्षत्रियेण कार्यः । वैश्येन चतुर्गुणः शूद्रेण च पञ्चगुणो बोध्यः । शूद्रस्य द्विगुणः शक्ति-विषये ज्ञेयः । वैष्णवानां चतुवर्णानां चतुर्गुणषड्गुणाष्टदशगुणो बोद्धव्यः । अन्यथा कुत्रापि द्विगुणादिक कुत्रापि चतुर्गुणादि इति विरोधापत्तेः ।

तथाचोक्तं गौतमीये—

होमाभावे जपः कार्यो होमसंख्या चतुर्गुणः ।
विप्राणां क्षत्रियाणाञ्च रससंख्यागुणः स्मृतः ।

---

हे प्रिये ! शूद्रों की जो जपसंख्या है, उस संख्या के द्विगुण ( साधारण ) स्त्री की जपसंख्या है । अन्यत्र भी कहा गया है—"शूद्र जिस वर्ण को आश्रय करके रहता है, वह शूद्र उस वर्ण के जप-नियम का पालन करें । अनाश्रित शूद्र की दिक् संख्या ( दशगुण ) में जप कहा गया है । विप्र के भृत्य शूद्र का विप्रपत्नी के समान जप विहित हुआ है । हवन के बिना विप्र का अर्थात् जो विप्र हवन नहीं किया है, उसकी जो जप संख्या है, वह उनके पत्नी की जपसंख्या होगी । अन्य सभी वर्णों के त्रिगुणादि अर्थात् मन्त्र के जितने संख्यक पुरश्चरण कर्त्तव्य है, हवन में अशक्त होने पर उसका त्रिगुण, चतुर्गुण आदि जप विहित ( निश्चित ) हुआ है । "त्रिगुणादिक" अर्थात्—क्षत्रिय के द्वारा हवन संख्या का त्रिगुण जप कर्त्तव्य है, वैश्य के द्वारा चतुर्गुण एवं शूद्र के द्वारा पञ्चगुण जप करना कर्त्तव्य है, ऐसा जानना ।

परन्तु शक्ति के विषय में शूद्र का द्विगुण जप जानना । वैष्णव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के यथाक्रम से चार गुण, छ गुण, आठ गुण तथा दश गुण जानना । अन्यथा किसी स्थान पर, द्विगुणादि एवं किसी स्थलों पर चतुर्गुणादि जप विहित होने से विरोध की आपत्ति होती है ।

गौतमीय तन्त्र में यही कहा गया है—यथा "हवन के अभाव में विप्रगण के हवन संख्या का चार गुण जप करना कर्त्तव्य है, क्षत्रियगणों के लिये छ

वैश्यानां वसुसंख्याक एषां स्त्रीणामयं विधिः ॥ इति ।

यामले—

यदि होमे न शक्तः स्यात्पूजायां तर्पणेऽपि वा ।
तावत्संख्यजपेनैव सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥

यामले—

कुत्रापि यदि हीनं स्याद्दशकस्याऽङ्गकर्मणि ।
तत्तद्दशैव कर्याणि दशन्यूनं न कारयेत् ॥

यामले—

लक्षमेकं जपेद्विद्वान् हविष्याशी सदा शुचिः ।
ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्धविषा प्रिये ॥
तर्पयेत्तद्दशांशेन तीर्थतोयेन पार्वति ।
चाभिषिञ्चेत्ततस्तोयैस्तर्पणस्य दशांशतः ॥
तद्दशांशं हविष्यान्नैर्भक्तितो भोजयेद् द्विजान् ।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्यथा विभवविस्तरैः ।
पाशवः कथितः कल्पः शृणु वीरमतः परम् ॥

---

गुण एवं वैश्यों के लिये आठगुण जप करना कर्त्तव्य है। इन लोगों के स्त्रीगणों के लिये भी यही विधि है।" यामल तन्त्र में कहा गया है–"यदि हवन में, पूजा में एवं तर्पण में भी असमर्थता होती है, तब तावत् (उतना) संख्यक अर्थात् हवन आदि के संख्यक जप के द्वारा सभी प्रकार की सिद्धि होती है। यामल तन्त्र में कहा गया है–किसी स्थल में हवन आदि अङ्ग कार्य में दशक अर्थात् दशगुणित यदि कोई कार्य हीन होता है, तब उन उन (गुण्य) कार्य को दशबार करें। दस से कम न करें।

यामल तन्त्र में कहा गया है–विद्वान् व्यक्ति हविष्याशी होकर सर्वदा शुचि भाव से एकलक्ष जप करें। हे प्रिये! उसके बाद घृत द्वारा उस जप का दशांश हवन करें। हे पार्वति! तीर्थ जल के द्वारा उस हवन का दशांश तर्पण करें। जल के द्वारा तर्पण के दशांश से अभिषेक करें। हविष्यान्न के द्वारा उसके दशांश विप्रगण को अर्थात् दीक्षित विद्वान् ब्राह्मणगणों को भोजन करावें। विभवानुसार (सम्पन्नता के अनुसार) प्रचुर धन के द्वारा गुरु को दक्षिणा दें। यह पशुकल्प कथित हुआ है। इसके अनन्तर से वीरकल्प का श्रवण करो।

## वीरकल्पः

मुण्डमालायां--

मत्स्यमांसाशने शक्तः कुर्यान्मन्त्रपुरस्क्रियाम् ।
रात्रौ प्रागास्यः शय्यायां प्रजपेल्लक्षमानतः ॥
ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्धविषानले ।
दशांशं तर्पयेद् द्रव्यैर्मांसमिश्रैः सुसाधकः ॥
तर्पणस्य दशांशेन चाभिषिञ्चेज्जगन्मयीम् ।
दशांशं भोजयेद्देवि साधकं देवताप्रियम् ॥
मधुमांसश्च मत्स्यश्च चर्वणश्च प्रदापयेत् ।
ततस्तु तोषयेद्भक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये ।
एतत्कल्पद्वयाद्देवि मन्त्रः सिध्यति निश्चतम् ॥

अत्र लक्षपदं स्वस्वकल्पोक्तसंख्यापरम् । तथाचोक्तं कुमारीतन्त्रे–

तस्मिन्काले साधकेन्द्रः स्वकल्पोक्तं जपं चरेत् ।

तस्मिन्काले पुरश्चरणकाले । यत्तु कुमारीतन्त्रे--

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।

---

वीरकल्प

मुण्डमाला तन्त्र में कहा गया है–'मत्स्य तथा मांस भोजन में समर्थ व्यक्ति मन्त्र का पुरश्चरण करें। रात्रि में पूर्वमुख होकर शय्या पर लक्ष संख्यक मन्त्र का जप करें। उसके बाद उसके दशांश हविः (घृत) द्वारा अग्नि में आहुति दें। श्रेष्ठ साधक मांस मिश्रित द्रव्य के द्वारा उसके दशांश तर्पण को करें। तर्पण के दशांश द्वारा जगन्मयी का अभिषेक करें।

हे देवि ! अभिषेक दशांश देवभक्त साधक को भोजन करावें। मधु, मांस, मत्स्य तथा चणकादि चर्वण पदार्थ प्रदान करें। हे प्रिये ! उसके बाद भक्तिपूर्वक स्वर्ण आदि के द्वारा गुरु को सन्तुष्ट करें। हे देवि ! इन दोनों कल्प ( पशुकल्प तथा वीरकल्प ) से निश्चय ही मन्त्र सिद्ध होगा।

"प्रजयेत् लक्षमानतः" इस स्थल में लक्ष शब्द स्व स्व कल्पोक्त संख्या-परक है अर्थात् जिन देवता के जिन मन्त्रों का जितना संख्यक पुरश्चरण कर्त्तव्य है, वह संख्या उक्त लक्ष शब्द के द्वारा समझा रहे हैं। कुमारी तन्त्र में यही कहा गया है। यथा–'उस काल में साधक श्रेष्ठ स्व कल्पोक्त जप करें। 'तस्मिन काले' अर्थात् पुरश्चरण काल में कुमारी तन्त्र में कहा गया है–"शुचि व्यक्ति हविष्याशी होकर दिन में एक लक्ष मन्त्र का जप करें

रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः।
एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन मन्त्रवित्॥

इति वचनाद्विशिष्ट पुरश्चरणे लक्षद्वयजप इति वदन्ति। तन्त्र मनोरमम्। यद्दिने हविष्याशी, तद्दिने मत्स्याद्यशने हविष्यान्न-व्याघातान् नानाचारस्य प्रसक्तेश्च। तथाचोक्तं यामले—

नानाचारो न कर्त्तव्यो नानाचाररतो यतः। इति वचनात्। तस्मात्कुमारी तन्त्रोक्त वचनस्य पुरश्चरणद्वये तात्पर्यम्। एतत्कल्प-द्वयं दिव्यवीरयोः पर्यायेण कर्त्तव्यम्। दिव्येन तु एतत्कल्पद्वयं युग-पत्कर्त्तुमपि शक्यम्। यतः स तत्त्वज्ञानी सन् मानसक्रियावान्, अतो नास्य मानसकियया वाह्यकियाया विरोधः। वीरस्तु अतत्त्वज्ञानी सन्बाह्यान्तरोभयक्रियावान्। अस्यैतत्कल्पद्वययौगपद्यं नास्ति, उद्धत-मानसत्वात्, आचारसाङ्कर्यापाताच्चेति सर्वमवदातम्। तथाचोक्तं तन्त्रे--दिव्यस्तु देववत्प्रायो वीरश्चोद्धतमानसः।

---

एवं रात में ताम्बूल पूर्ण मुख से विस्तर पर लक्ष संख्यक जप करें। मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार लक्षद्वय जप करके उसके दशांश के द्वारा हवन करें। इस वचन के अनुसार विशिष्ट पुरश्चरण में लक्षद्वय जप कर्त्तव्य है, यह जो ( कोई कोई कहते है ) कहते है; वह मनोरम नहीं है क्योंकि जिस दिन में साधक हविष्याशी होता है, उस दिन मत्स्यादि भोजन करने पर हविष्य का व्याघात होता है एवं विभिन्न आचार से प्रसक्ति होता है क्योंकि यामलतन्त्र के वचन में यही कहा गया है। यथा—"नानाचार ( विभिन्न आचार ) कर्त्तव्य नहीं है; जैसे कि विभिन्न आचारवान् व्यक्ति" इत्यादि। सुतरां कुमारी तन्त्रोक्त वचन का दोनों पुरश्चरण में तात्पर्य है। यह दोनों कल्प पर्यायक्रम से दिव्य तथा वीर कर्त्तव्य है। परन्तु दिव्यभाव से साधक यह कल्पद्वय युगपत् भी कर सकते है; जैसे कि वे तत्त्वज्ञानी होकर मानस क्रिया का अनुष्ठाता है। सुतरां इनके मानस-क्रिया के साथ बाह्य क्रिया का विरोध नहीं है। परन्तु वीरभाव के साधक तत्त्वज्ञानी नहीं हैं। वे बाह्य एवं आन्तर दोनों क्रिया के अनुष्ठाता हैं। उनके यह कल्पद्वय के यौगपद्य नहीं हैं, अर्थात् युगपत् दोनों कल्प के अनुष्ठान नहीं कर सकते; क्योंकि उद्धत-चित्त विरुद्ध आचार से साङ्कर्य को उपस्थित करता है। इस प्रकार सभी अवदात ( सामञ्जस्य ) होता है। तन्त्र में भी यही कहा गया है। यथा—'दिव्य भाव के साधक प्रायः देवता के समान है। बीर साधक चित्त है।

योगिनीहृदये--

सर्वहिंसा विनिर्मुक्तः सर्वप्राणिहिते रतः ।
कामक्रोधलोभमोहरागद्वेष विवर्जितः ॥
पूजापमाने सन्तुष्टोऽप्यधिकारी स एव हि ।
सोऽस्मिन् शास्त्रेऽधिकारी स्यात्तदन्यो भ्रष्टसाधकः ॥

पशुस्तु संशयज्ञानी सन्क्रियावान् । मत्स्यमांसादिकं न ग्राह्यम्, न स्त्रियं मनसाऽपि स्मरेत्, न ताम्बूल भक्षयेत्, किन्तु हविष्यान्नं भक्षयेत् । ऋतुकालं बिना न स्त्रियमपि गच्छेत् । दक्षिणमार्गेण पूजा कर्त्तव्या । तथाचोक्तं यामले--

यो दाक्षिण्यं विना देवि महा मायां समर्चति ।
स पापः सर्वलोकेभ्यश्च्युतो भवति नान्यथा ॥

अनेन यद्दिवाविधानं, तद्दिव्यवीर विषयेऽपि बोद्धव्यम् । तथाचोक्तं यामले--

दिवा दक्षिणमार्गेण वामेन च तथा निशि ।
यदि तूर्णं फलावाप्तौ युष्माकं मतमेव च ॥ इति वचनात् ॥

---

योगिनी हृदय में कहा गया है--जो व्यक्ति सभी प्रकार के हिंसा से निवृत्त है, और समस्त प्राणी के कल्याण के लिये नियुक्त है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग तथा द्वेष रहित, सम्मान में तथा अपमान में सन्तुष्ट रहता है; वही व्यक्ति ही इस कर्म में अधिकारी है एवं वही व्यक्ति शास्त्र में अधिकारी है; तद्भिन्न सभी भ्रष्ट साधक हैं ।

परन्तु पशुभाव के साधक संशयज्ञानी होकर क्रिया के अनुष्ठाता हैं । मत्स्य तथा मांसादि का ग्रहण न करें । स्त्री को मन के द्वारा स्मरण न करें । ताम्बूल भक्षण न करें । किन्तु हविष्यान्न भक्षण करें । ऋतुकाल व्यतीत स्त्री पर उपगत न होवें । दक्षिण मार्ग में आचार से पूजा करना कर्त्तव्य है । यामल तन्त्र में यही कहा गया है । यथा--'हे देवि ! जो व्यक्ति दक्षिणाचार के बिना महामाया की अर्चना करता है, वह पापी सभी लोकों से भ्रष्ट होता है । अन्यथा अर्थात् दक्षिणाचार से पूजा करने पर ऐसा नहीं होगा । पूर्वोक्त श्लोक के द्वारा दिवाभाग में जो पुरश्चरण विहित (निश्चित) हुआ है, वह दिव्य एवं वीर सम्बन्ध में भी जानना क्योंकि रुद्रयामल तन्त्र के वचन में यही कहा गया है । यथा--'यदि शीघ्र फलप्राप्ति में तुम लोगों की इच्छा होती है, तब दिन में दक्षिण मार्ग से एवं रात्रि में वाम मार्ग से महामाया की अर्चना करें ।

## अथ ग्रहणपुरश्चरण

श्रीबीजार्णवतन्त्रे षोडश पटले देवीं प्रतिशिववाक्यम्--

एकदा परमेशानी कामाख्यायां महेश्वरी ।
दृष्ट्वोपरागं यत्कार्यं तत् पृच्छति महेश्वरम् ।
ये नैव विधिना देव सिद्धो भवति नान्यथा ॥

श्रीशिव उवाच--

कुतः स्नानं कुतः सन्ध्या प्राणायामः कुतः प्रिये ।
भूतशुद्धिः कुतो भद्रे कुतः पूजा वरानने ॥
कालातीतभयाद्देवि सर्वं सन्त्यज्य कामिनि ।
सङ्कल्पं मानसं कृत्वा जपं कुर्याद्वरानने ॥
पञ्चाङ्ग विधिना देवि सिद्धो भवति नान्यथा ।
मन्त्रो विद्या महेशानि कवचं स्तव एव वा ॥
ध्यानं वा परमेशानि न्यासो वा कमलेक्षणे ।
एकोच्चारेण देवेशि भवन्ति दशकोटयः ॥
असंख्यस्तज्जपो देवि ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

---

### ग्रहण पुरश्चरण

श्रीबीजार्णव तन्त्र के षोडश पटल में देवी के प्रति शिव के वाक्य हैं– परमेशानी महेश्वरी कामाख्या में एक समय उपराग ( ग्रहण ) देखकर, उस समय जो कर्त्तव्य है, वह शङ्कर से पूछने लगीं। हे देव ! जिस विधि के द्वारा मन्त्र सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होता है, उस विधि को कहिये। श्रीशिव कहने लगे–हे प्रिये ! स्नान किस प्रकार होगा ? सन्ध्या किस प्रकार होगी ? प्राणायाम किस प्रकार होगा ? भूतशुद्धि किस प्रकार होगा ? और पूजा भी किस प्रकार होगी ? हे भद्रे ! हे वरानने ! हे देवि ! हे कामिनि ! ग्रहण काल अतीत होने के भय से सभी कार्य परित्याग करके मानस सङ्कल्प करके जप करें। हे वरानने ! हे देवि ! पञ्चाङ्ग विधि के द्वारा सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं। हे महेशानि ! हे परमेशानि ! हे देवेशि ! हे कमलेक्षणे ! ग्रहण के समय मन्त्र, विद्या, कवच, स्तव, ध्यान अथवा न्यास मात्र एक बार के उच्चारण से ही दशकोटि अर्थात् दशकोटि बार के उच्चारण के समान हो जाता है। हे देवि ! चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण में मात्र एक बार जप असंख्य जप के समान होता है।

तत् कथं परमेशानि जपसंख्या विधीयते ॥
अतएव महेशानि होमो नास्ति शुचिस्मिते ।
अभिषेकश्च देवेशि तथा च तर्पणादिकम् ॥
भोजनं च महेशानि नास्ति वै कमलानने ।
सूर्यचन्द्रग्रहे देवि पञ्चाङ्गं नास्ति कामिनि ॥
पञ्चाङ्गेन विहीनोऽपि सिद्धो भवति नान्यथा ।
सङ्कल्पं विद्धि देवेशि मानसं यद्युपस्थितम् ॥
तत्सङ्कल्पं विजानीयाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
तस्मात्तु चञ्चलापाङ्गि सङ्कल्पं नैव कारयेत् ॥
सङ्कल्पो मानसो देवि चतुर्वर्गफलप्रदः ।
अतएव महेशानि सङ्कल्पो मानसः स्मृतः ॥
स्थूलो हि परमेशानि सङ्कल्पो व्यर्थ उच्यते ।
सङ्कल्पेन विना देवि यत्किञ्चित्कुरुते सुधीः ।
व्यर्थमेव हि देवशि तत्सर्वं मानसो न हि ॥

---

अतएव हे परमेशानि ! किस प्रकार जपसंख्या विहित ( निश्चित ) हो सकता है ? हे महेशानि ! हे शुचिस्मिते ! हे देवेशि ! इसी लिये ही अर्थात् ग्रहण काल अतीत होने के भय से ही, हवन नहीं, अभिषेक नहीं एवं तर्पणादि भी नहीं है। हे कमलानने ! हे महेशानि ! ( ब्राह्मण ) भोजन भी नहीं है। हे देवि ! हे कामिनि ! सूर्य एवं चन्द्र के ग्रहण में मात्र जप को छोड़कर पञ्चाङ्ग उपासना भी नहीं है। पञ्चाङ्ग के द्वारा विहीन होने पर भी मन्त्र सिद्ध होगा; अन्यथा नहीं।

हे देवेशि ! मानस अर्थात् मन में जो उपस्थित होता है, वह मानस सङ्कल्प जानना चाहिए। चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण में वही सङ्कल्प है ऐसा जानना। अतएव हे चञ्चलापाङ्गि ! बाह्य सङ्कल्प मत करना। हे देवि ! मानस सङ्कल्प चतुर्वर्ग फल को प्रदान करता है। हे महेशानि ! इसलिये ग्रहण में मानस सङ्कल्प कहा गया है। हे परमेशानि ! स्थूल ( कुशतिलादि योग में ) सङ्कल्प व्यर्थ है ऐसा कहा गया है। हे देवि ! हे देवेशि ! सुधी व्यक्ति सङ्कल्प के बिना जो कुछ करता है, वह सभी व्यर्थ है; परन्तु मानस सङ्कल्प व्यर्थ नहीं है।

### ग्रहणे भोजनकालः

प्रथमप्रहरे भद्रे चन्द्रग्रासो यदा भवेत् ।
तदैव दिवसे भुक्त्वा सत्वरं नरकं व्रजेत् ॥
निशीथे च महेशानि यदैव ग्रहणं भवेत् ।
तदैव दिवसे भुक्त्वा पीत्वानन्दमयो भवेत् ॥
चन्द्रग्रहणकाले तु जपयज्ञादिकं चरेत् ।
दिवसे च यदा भद्रे भास्करग्रहणं भवेत् ।
रात्रौ भुक्त्वा च पीत्वा च जपयज्ञादिकं चरेत् ॥
सौरेषु (सर्वेषु) विष्णुमन्त्रेषु शैवे (सौरे) गाणपत्यौ तथा ।
शक्तिमन्त्रो महेशानि प्रशस्तः सततं जपेत् ।
इति बीजार्णवे तन्त्रे शिवेनैव प्रकीर्त्तितम् ॥

एतत्सर्वं ज्ञानिनामेव कर्त्तव्यम् । आज्ञानिनामपि पशूनां कर्त्तव्यमाह

गन्धर्वतन्त्रे--

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः ॥

---

### भोजनकाल

हे भद्रे ! जिस दिन ( रात के ) प्रथम प्रहर में चन्द्र ग्रहण होता है, उस दिन को दिन में भोजन करके मनुष्य शीघ्र ही नरक को गमन करता है। हे महेशानि ! जिस दिन रात को ग्रहण होता है, उस दिन में भोजन करके तथा पान करके आनन्दमय होता है। चन्द्र ग्रहण काल में जप यज्ञ आदि कर्म करना चाहिए। हे भद्रे ! जिस दिन दिन में सूर्यग्रहण होगा, उस दिन रात्रि में पान-भोजन करके जप-यज्ञादि का अनुष्ठान करना चाहिए। हे महेशानि ! सौर, वैष्णव, शैव, गाणपत्य मन्त्र साधक गणों के लिये भी शक्तिमन्त्र प्रशस्त है; सदा सर्वदा वह जप करना चाहिए। बीजार्णव तन्त्र में यह शिव के द्वारा प्रकाशित हुआ है।

यह सभी कार्य ज्ञानीगणों के लिये ही कर्त्तव्य है, गन्धर्वतन्त्र में अज्ञानी पशुगणों के कर्त्तव्य भी कह रहे हैं--'अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण विहित हो रहा है। सूर्य अथवा चन्द्र के ग्रहण में शुचि व्यक्ति पूर्वदिन में उपवास

नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः ।
ग्रहणादि विमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥

सनत्कुमारतन्त्रे--

दृष्ट्वा स्नात्वा सुसङ्कल्पो विमोक्षान्तं जपं चरेत् ।
जपस्य च दशांशेन होमं कुर्याद्यथाविधि ॥
हामार्थं द्विगुणं वापि जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
होमस्य तु दशांशेन तर्पणं समुपाचरेत् ॥
तर्पणस्य दशांशेन त्वभिषेकं समाचरेत् ।
अभिषेक-दशांशेन कुर्याद् ब्राह्मण भोजनम् ॥
तदन्ते महतीं पूजां कुर्यात्साधक सत्तमः ।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्भक्त्या विप्रान्प्रतर्पयेत् ॥

श्यामाविद्यायां विशेषमाह कालीतन्त्रे--

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव ग्रासावधिविमुक्तितः ।
यावत्संख्यं मनुं जप्त्वा तावद् होमादिकं चरेत् ॥

---

करके ग्रहण के दिन में समुद्र गामिनी नदी में नाभितक जल में खड़े होकर समाहित होकर ग्रहण आरम्भ से मुक्ति तक मन्त्र जप करें ।

सनत्कुमार तन्त्र में भी कहा गया है कि–ग्रहण दर्शन एवं स्नान करके सङ्कल्प पूर्वक ग्रहण के आरम्भ से मुक्ति पर्यन्त जप करना चाहिए । यथा-विधि जप के दशांश से हवन करना अथवा हवन में अशक्त होने पर हवन निर्वाह के लिये समाहित होकर द्विगुण मन्त्र का जप करना चाहिए । हवन के दशांश से तर्पण करना चाहिए । तर्पण के दशांश से अभिषेक करना । अभिषेक के दशांश से ब्राह्मण भोजन करावें । साधक श्रेष्ठ उसके बाद महती ( आडम्बर से ) पूजा करें । गुरु को दक्षिणा देना एव भक्ति के द्वारा ब्राह्मणगणों को सन्तुष्ट करना चाहिए । कालीतन्त्र में श्यामाविद्या के सम्बन्ध में विशेष कह रहे हैं–"अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण विहित हो रहा है । चन्द्रग्रहण में तथा सूर्य ग्रहण में ग्रहण आरम्भ से मुक्ति तक जितने संख्यक मन्त्र जप करें, उतने संख्यक में हवन भी करें ।

यदि नक्रादिदूषिता नदी भवति समुद्रगामिनी वा न भवति, तदा किं कर्त्तव्यं तदाह रुद्रयामले--

यद्वा शुद्धोदकैः स्नात्वा शुचौ देशे समाहितः।
ग्रहणान्मुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
इति कृत्वा न सन्देहो जपस्य फल भाग्भवेत् ॥

ये तु ग्रहणपूर्वदिने उपवासाशक्त्या हविष्यान्नं फलं दुग्धं वा भुञ्जीतेति वदन्ति। तन्न मनोरमम्, प्रमाणाभावात्, उपवासस्यावश्यकत्त्वाच्च ॥

## जपप्राधान्यम्

ये तु वदन्ति--

अत्र श्राद्धमकुर्वाणः पङ्के गौरव सीदति।

इति निन्दावाद--

श्रवणात् श्राद्धस्यावश्यकत्वं, न जपस्येति तत तथाऽह।

सनत्कुमारतन्त्रे--

श्राद्धादेरनुरोधन यदि जाप्यं त्यजेन्नरः।

---

यदि नदी मगर आदि के द्वारा पूर्ण होती है अथवा समुद्र गामिनी नहीं होती है, तब ऐसा होने पर भी जो कर्त्तव्य है, वह रुद्रयामल में कह रहे हैं—'अथवा शुद्ध जल में स्नान करके पवित्र स्थान में समाहित होकर अनन्यचित्त होकर ग्रहण आरम्भ से समाप्ति तक मन्त्र जप करना चाहिए। यह करके जप के फल का भागी होगा, इसमें सन्देह नहीं है। जो लोग कहते हैं-ग्रहण के पूर्वदिन में उपवास में अशक्त व्यक्ति हविष्यान्न, फल अथवा दुध खा सकते हैं, यह समीचीन नहीं है क्योंकि प्रमाण नहीं है अर्थात् उपवास में असमर्थ व्यक्ति के लिए इस प्रकार के भोजन का कोई प्रमाण नहीं है और उस दिन उपवास करें, अवश्यक है अर्थात् ग्रहण के दिन में उपवास करना कर्त्तव्य है।

## जपप्राधान्य

जो लोग कहते हैं—'ग्रहण काल में श्राद्ध न करने पर पङ्क ( गहरी कीचड़ ) में गाय के फंस जाने के समान अधः पतन होता है, इस वचन में निन्दा उक्त होने पर भी ग्रहण काल में श्राद्ध की आवश्यकता है, जप की नहीं, यह ठीक नहीं है; क्योंकि सनत्कुमार तन्त्र में कहा गया है—श्राद्धादि के अनुरोध से यदि कोई व्यक्ति मन्त्र जप का परित्याग करता है, तब वह

स भवेद् देवताद्रोही पितृन्सप्त नयत्यधः ॥

महिषमर्दिनीतन्त्रे--

चन्द्रसूर्यग्रहे जप्त्वा कैवल्यं प्राप्नुयान्नरः ।
अकृत्वा मन्त्रजापं च सत्वरं नरकं व्रजेत् ॥

गुप्तदीक्षातन्त्रे--

चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु सम्यग् जापं न चाचरेत् ।
स दु(भ्र)ष्टः स च पापिष्ठः सहसा शूकरो भवेत् ॥
तस्यान्नमुदकं देवि मूत्रशोणित विट्समम् ।
जायते नात्र सन्देहो मम वाक्याद्वरानने ॥

अन्यत्रापि--

जपयज्ञं विना देवि यः करोत्यान्यचिन्तनम् ।
स भवेद् रौरवे मग्नो यावदाहूत संप्लवम् ॥
रौरवात्पुनरागत्य पापयोनिषु जायते ।
निष्कृतिर्नास्ति चार्वङ्गि तस्यापि च कदाचन ॥
तस्मात्सर्वं परित्यज्य चन्द्रपर्वणि संजपेत् ।
सूर्यपर्व यथा देवि चन्द्रपर्व तथा प्रिये ।

---

देवताद्रोही होता है एवं सात पीढ़ी तक पितृगणों को अधः पतित करता है। महिषमर्द्दिनी तन्त्र में कहा गया है–'चन्द्र ग्रहण तथा सूर्य ग्रहण में मन्त्र जप करके मानव कैवल्य को प्राप्त होता है, मन्त्र जप न करने पर शीघ्र ही नरक में गमन करता है।

गुप्तदीक्षा तन्त्र में कहा गया है–'जो व्यक्ति चन्द्र ग्रहण एवं सूर्यग्रहण में सम्यग् रूप से मन्त्र जप नहीं करता है, वह दुष्ट है, उस पापिष्ठ का सहसा ( एकाएक ) मृत्यु के पश्चात में शूकर योनि में जन्म होता है। हे देवि ! हे वरानने ! उसका अन्न एवं जल, मूत्र, श्रोणित अथवा विष्ठा के तुल्य हो जाता है। अन्यत्र भी कहा गया है–'हे देवि ! जपयज्ञ छोड़कर जो व्यक्ति अन्य चिन्ता करता है, वह प्रलयकाल तक रौरव नामक नरक में डुबा ( मग्न ) रहता है। रौरव नामक नरक से उठकर पुनः पापयोनि में जन्म ग्रहण करता है। हे चार्वङ्गि ! उसकी कभी भी निष्कृति नहीं है। अतएव सब कुछ परित्याग करके चन्द्र ग्रहण में जप करना चाहिए। हे महेशानि ! सूर्यग्रहण जिस प्रकार है, चन्द्र ग्रहण भी उसी प्रकार है;

सर्वं त्यक्त्वा महेशानि जपयज्ञं समाचरेत् ॥

इत्यादि नानातन्त्र वचनेभ्यो जपं विना कार्यान्तरस्य निन्दाश्रुतेर्जपस्यैवावश्यकत्वम् ॥ राश्या दिगणनायां दोषमाह

यामले—

अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्राश्यादिगणनां चरेत् ।
विचार्य चञ्चलापाङ्गि न पश्येद् ग्रहणं यदि ।
पूर्वजन्मार्जितं पुण्यं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

कामधेनुतन्त्रे—

चन्द्रपर्वं सर्यपर्वं न विचार्यं कदाचन ।
सूर्यपर्वं वरारोहेन पश्येद्यदि पामरः ।
अस्तु तावत्परोधर्मः पूर्वधर्मो विनश्यति ॥

यामले—

जन्म सप्ताष्ट—ऋष्फाङ्कदशमस्थे निशाकरे ।
दृष्टाऽरिष्टप्रदो राहुर्जपपूजां विना भवेत् ॥

---

जिसमें सब कुछ परित्याग करके जपयज्ञ करना चाहिए । इत्यादि नानातन्त्र वचनों में जप को छोड़कर कार्यान्तरों की निन्दा श्रुत होने से जप की ही आवश्यकता है अर्थात् जप करना कर्त्तव्य है ।

यामल तन्त्र में राश्यादि गणना का दोष कह रहे हैं—हे चञ्चलापाङ्गि ! अज्ञान अथवा मोहवशतः यदि कोई विचार करके राश्यादि गणना करता है एवं यदि ग्रहण दर्शन नहीं करता है, तब पूर्वजन्मार्जित पुण्य उसी क्षण ही नष्ट हो जाता है । कामधेनु तन्त्र में कहा गया है—"चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण में कभी भी भेद ( विचार्य ) नहीं है । हे चञ्चलापाङ्गि ! यदि कोई विचार करके सूर्य ग्रहण नहीं देखता है, तब उसके पर धर्म तो दूर हैं—परन्तु पूर्वजन्मार्जित पुण्य भी उसी क्षण में ही नष्ट हो जाता है । "यामल तन्त्र में कहा गया है—जन्मस्थान में, लग्न के सप्तम, अष्टम, ऋष्फ ( द्वादश ) अङ्क ( नवम ) तथा दशम स्थान में चन्द्र के अवस्थान कालीन राहु दृष्ट होने पर जप पूजा व्यतीत ( छोड़कर ) अरिष्ट प्रद होता है ।

## कवच पुरश्चरणम्

भैरवतन्त्रे--

अथ वक्ष्ये महेशानि कवचानां पुरस्क्रियाम् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पुरश्चार्यां समाचरेत् ॥
दशांशतोऽङ्गकर्माणि होमादीनि पृथक् पृथक् ।
ततश्च सिद्धकवचः पुण्यात्मा मदनोपमः ॥

स्वयमशक्तौ प्रतिनिधिद्वारा कर्त्तव्यम् । ज्ञानप्रदीपे--

विदधीत पुरश्चर्यां गुरुणा तादृशेन वा ॥

इति परिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूत श्रीमद्ब्रह्मानन्द
गिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां पुरश्चरण-
निर्णयो नाम द्वादशोल्लासः ॥ १२ ॥

---

### कवच पुरश्चरण

भैरव तन्त्र में कहा गया है–हे महेशानि ! इसके अनन्तर कवच के पुरश्चरण कहा रहा हूँ। अष्टोत्तर शतमन्त्र जप करके पुरश्चरण करना चाहिए। दश दश भाग में हवन आदि तथा अङ्ग कर्म समूह अलग अलग करना चाहिए। पुण्यात्मा व्यक्ति उसमें से सिद्धकवच होकर मदन के समान होता है। स्वयं पुरश्चरण करने में असमर्थ होने पर प्रतिनिधि के द्वारा ही करावें। ज्ञान प्रदीप में कहा गया है–'गुरु अथवा तत्तुल्य कोई व्यक्ति के द्वारा पुरश्चरण श्ररण कराना चाहिए।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतं शाक्तानन्दतरङ्गिणी के पुरश्चरण निर्णय
नामक द्वादश उल्लासः समाप्त ।

# त्रयोदशोल्लासः

## यन्त्र-संस्कारः

विना यन्त्रेण पूजायां देवता न प्रसीदति ।
सर्वेषामपि देवानां यन्त्रे पूजा प्रशस्यते ॥
सुवर्णं रजतं ताम्रं श्रेष्ठं मध्यमथाधमम् ।
ताम्रं लक्षगुणं प्रोक्तं रौप्यं कोटिगुणं भवेत् ॥
स्वर्णं त्वनन्तफलदं स्फाटिकञ्च तथा भवेत् ।
एकतोलं द्वितोलं वा त्रितोलं पञ्चतोलकम् ॥
रसतोलं चतुस्तोलं सप्ततोलं पलं तु वा ।
साधकस्य मनुं ज्ञात्वा कृत्वा पीठेषु साधकः ॥
अथवा प्रतिमां कृत्वा निजदेवस्वरूपिणीम् ॥ पूजयेदिति शेषः ॥

सम्मोहनतन्त्रे--

मूलमुच्चरयन्सम्यगालिखेद्यन्त्रमुत्तमम् ।

---

### यन्त्र संस्कार

यन्त्र-संस्कार—यन्त्र के बिना पूजा से देवता प्रसन्न नहीं होते हैं । समस्त देवताओं के ही यन्त्रों में पूजा प्रशस्त है । सुवर्ण, रजत तथा ताम्र में यन्त्र यथा क्रम से उत्तम मध्यम तथा अधम है । ताम्र लक्षगुण है अर्थात् ताम्रपात्र में यन्त्र लक्षगुण फलप्रद कहा गया है । रौप्य ( चाँदी ) अर्थात् चाँदी में निर्मित यन्त्र कोटिगुण फलप्रद है, सुवर्ण से निर्मित यन्त्र अनन्त फल के दाता हैं, स्फटिक पात्र में यन्त्र भी उसी प्रकार फलप्रद होता है । सामर्थ्य के अनुसार एक तोला, अथवा दो तोला, तीन तोला, चार तोला, पाँच तोला, छय तोला, सात तोला अथवा पल मात्र सुवर्ण आदि ग्राह्य है । साधक का मन्त्र जानकर पीठ में यन्त्र निर्माण करके अथवा यन्त्रपीठ में अपने देवता की स्वरूप प्रतिमा का निर्माण करके पूजा करना चाहिए । इस वचन में 'पूजयेत्' क्रिया न रहने से उसे उह्य करना चाहिए ।

सम्मोहन तन्त्र में कहा गया है—'मूलमन्त्र का उच्चारण करके सम्यक् रूप से उत्तम यन्त्र को लिखना ( निर्माण करना ) चाहिए ।

तन्त्रे—

तन्मध्ये विलिखेद्यन्त्रं सुवर्णन कुशेन वा।

ऊर्ध्वाम्नायतन्त्रो—

प्राणनाथ! जगन्नाथ! ब्रह्मविष्णुप्रपूजित्।
इदानीं चक्रराजस्य प्रतिष्ठा कर्म मे वद्॥

श्रीईश्वर उवाच—

यथा मन्त्रस्य संस्कारं तथा यन्त्रस्य कल्पयेत्।
असंस्कृतौ यन्त्रमन्त्रौ रोगशोकभयप्रदौ॥
कथितो मन्त्रसंस्कारो दशधा सर्वतन्त्रके।
यन्त्रसंस्कार मधुना शृणु देवि समाहिता॥

**यन्त्रसंस्कार सङ्कल्पः**

चक्रराजं विनिर्माय ततः संस्कार माचरेत्।
प्रतिष्ठा द्विविधा देवि मध्यमा चोत्तमा तथा॥
स्नात्वा सङ्कल्पयेन्मन्त्री गुरोर्वाक्येन चादरात्।
प्रणवं तत्सदद्येति मासपक्षतिथीरपि॥
अमुकोऽमुकगोत्रान्तेऽमुकदेव्याश्च प्रीतये।

---

अन्य तन्त्रों में कहा गया है—'तन्मध्ये अर्थात् यन्त्रपीठ में सुवर्णशलाका द्वारा अथवा कुशकण्टक के द्वारायन्त्र को लिखना चाहिए।

उर्ध्वाम्नायतन्त्र में कहा गया है—हे प्राणनाथ! हे जगन्नाथ! हे ब्रह्मा-विष्णु पूजित! सम्प्रति चक्र (यन्त्र) राज की प्रतिष्ठा कार्य मुझे कहिए। श्रीईश्वर कहने लगे—'मन्त्र के संस्कार करें जैसे कर्त्तव्य है, उसी प्रकार यन्त्र का भी संस्कार करना है। असंस्कृत यन्त्र तथा मन्त्र रोग, शोक एवं भयप्रद होता है। समस्त तन्त्र में मन्त्रों के संस्कार दश प्रकार के कहे गये हैं। हे देवि! स्थिरचित्त होकर सम्प्रति यन्त्रों के संस्कार बता रहा हूँ सुनो।

यन्त्र संस्कार-संकल्प

चक्रराज अर्थात् उत्तर चक्र का निर्माण करके उसके ऊपर संस्कार करना चाहिए। हे देवि! प्रतिष्ठा दो प्रकार की है—मध्यम तथा उतम। मन्त्री (दीक्षित साधक) स्नान करके गुरु के वाक्यानुसार श्रद्धा पूर्वक सङ्कल्प करें। साधक पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर पहले 'प्रणव' एवं 'तत्सदद्य'—यह पद एवं सप्तमीविभक्ति युक्त मास, पक्ष एवं तिथि कहकर, अमुक गोत्र नाम, गोत्र के अन्त में अमुक (अपना नाम) कहकर "अमुक देव्याः

चक्रेऽस्मिन्नमुकदेव्याः प्राणजीवेन्द्रियेति च ॥
प्रतिष्ठाकर्मशब्दान्ते करिष्ये प्रागुदङ्मुखः ।
ततो गुरुञ्च वृणुयाद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ॥
भूतशुद्धयादिकान्न्यासान्विन्यसेत्तदनन्तरम् ।
पञ्चगव्यं निजैर्मन्त्रैः शिवमन्त्रेण मन्त्रितम् ॥
तस्मिन् चक्रं क्षिपेन्मन्त्री प्रणवेन विलोकयेत् ।
ततश्चक्रं समुद्धृत्य स्थापयेच्चक्रभाजने ॥

## यन्त्रस्नानम्

शङ्खतोयेन देवेशि तथा पुष्पोदकेन च ।
वारिणा चन्दनेनाऽपि स्नापयेत्परमेश्वरीम् ॥
नारिकेलोदकैश्चैव सर्वौषधिजलैरपि ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयेत्परमेश्वरीम् ॥
तप्तं शीतं जलं वर्ज्यं किञ्चिदुष्णेन स्नापयेत् ।
अत्युष्णे वज्रपातः स्यात्तस्मात्तपरिवर्जयेत् ॥

पञ्चामृतमाहयामले--

धृतं दधि तथा क्षीरं शर्करा मधुसंयुतम् ।

---

प्रीतये" यह कहकर "अस्मिन् चक्रे अमुक देव्याः प्राण जीवेन्द्रिय" कहकर "प्रतिष्ठाकर्म" शब्द के अन्त में 'करिष्ये' कहना चाहिए। अनन्तर वस्त्र, अलङ्कार तथा चन्दन के द्वारा गुरु का वरण करना चाहिए। उसके बाद भूतशुद्धि आदि न्यासों को करना चाहिए। साधक पञ्चगव्य मन्त्र तथा शिवमन्त्र के द्वारा पञ्चगव्य को मन्त्रित करें एवं उसमें चक्र को निक्षेप करें एवं प्रणव के द्वारा उसे देखें। उसके बाद चक्र को उत्तोलन करके चक्रस्थापन पात्र में उसे स्थापित करें।

### यन्त्रस्नान

हे देवेशि ! शङ्खस्थित जल, पुष्पनिश्रित जल अथवा चन्दनयुक्त जल के द्वारा परमेश्वरी को स्नान करावें। नारियल का जल, सर्वौविधि जल, पञ्चामृत तथा पञ्चगव्य के द्वारा परमेश्वरि को स्नान करावें। गर्म तथा शीतल जल का त्याग करें। किञ्चित् उष्णा ( थोड़ा सा गरम ) जल के द्वारा स्नान करावें। अति उष्णा गरम जल से स्नान कराने से वज्रपात होता है, अतः वह परित्याग करना चाहिए। यामल तन्त्र में पञ्चामृत कह रहे हैं—मधु ( शहद ) संयुक्त घृत, दधि, क्षीर, शर्करा यह पाँचों द्रव्य

पञ्चामृतमिदं ख्यातं प्रत्येकन्तु पलं पलम् ॥

## पञ्चगव्यपरिमाणम्

पञ्चगव्यपरिमाणमाह तन्त्रे--

पलमात्रं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते ।
घृतञ्च पलमात्रं स्याद् गोमयं तोलकद्वयम् ॥
दधि प्रसृतिमात्रं स्यात्पञ्चगव्यमिति स्मृतम् ।
अथवा पञ्चगव्यातां समानो भाग इष्यते ॥
अतिक्रान्तं तु षड्रात्रं दधि स्नाने विवर्जयेत् ।
संवत्सरात्परं त्वाज्यं षण्मासान्ते च माक्षिकम् ।
गुडञ्च शर्करां चैव सर्वं ब्रीहिञ्च वत्सरात् ॥

विवर्जयेदिति पूर्वेणान्वयः । एतानि न दद्यादित्यर्थः ॥

देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यङ्गक्षमा भवेत् ।
पलानि तत्र देयानि श्रद्धया सप्तविंशतिः ॥

---

'पञ्चामृत' नाम से प्रसिद्ध है । प्रत्येक द्रव्य एक एक पल परिमित मात्र में लेना चाहिए ।

### पञ्चगव्यपरिमाण

तन्त्र में पञ्चगव्य के परिमाण कह रहे हैं–'दूध एक पल मात्र परिमाण होगा, गोमूत्र भी वही एक पल कहा गया है । घृत पल मात्र होगा, गोमय (गोबर) दो तोला परिमित, दही आदि अपने हाथ के एक चोल मात्र होगा । यह 'पञ्चगव्य' कहकर कहा गया है अथवा पञ्चगव्य के प्रत्येक द्रव्य समान भाग में भी देने का विधान कहा गया है ।

जो दही छ रात अतिक्रम कर गया हो अर्थात् छ दिन का वासी हो उस दही को स्नान के कार्य में प्रयोग न करें । एक साल का पुराना घृत, छ मास पुराना माक्षिक मधु एवं एक साल का पुराना गुड़, शर्करा तथा सभी प्रकार ब्रीहि ( धान्य विशेष ) का पूजा कार्य में परित्याग करना चाहिए । 'विवर्जयेत्'–यह सभी क्रिया पूर्व में कहे गये वाक्य के साथ अन्वय होगा । अर्थात् यह सभी द्रव्य उक्त समय अतिवाहित होने पर (पुराना हो जाने पर) प्रयोग न करें ।

देवता की प्रतिमा जहाँ घृताभ्यङ्ग ( अर्थात् घृतमर्द्दन ) योग्य हो, वहाँ कम से कम तीन पल घृत दें । श्रद्धा एवं शक्ति पूर्वक सत्ताइस पल

अष्टोत्तरशतपलं स्नाने देयञ्च सर्वदा।
द्वे सहस्रे पलानान्तु महास्नाने तु संख्यया॥
पलं तु लौकिकैर्मानैः साष्टरत्ति द्विमासकम्।
तोलकत्रितयं ज्ञेयं ज्योतिज्ञैः स्मृतिसम्मतम्॥
पलं पलं पञ्चगव्यं नित्यस्नाने तदर्द्धकम्।
अशक्तानां विधिं वक्ष्ये कृच्छ्राणां परमेश्वरि॥
गुणतोलकहीनं च न दद्यात् स्नानकर्मणि।
स्नानं समाप्य तां देवीं स्थापयेत् स्वर्णपीठके॥
तस्मादुद्धृत्य मतिमान्नाभेरूर्ध्वं निवेशयेत्।
तत्रैव पीठं सम्पूज्य चार्घपात्रादिकं चरेत्।
स्पृष्ट्वा यन्त्रं कुशाग्रेण गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्॥

गायत्रीमाह--

प्रणवं यन्त्रराजाय विद्महे तदनन्तरम्।
महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्।

---

भी दिया जा सकता है। सभी समय में स्नान के कार्य में १०८ पल घृत दें। महास्नान में पल के दो सहस्र अर्थात् दो हजार पल घृत दें। लौकिक मान व्यवहार में पल है—आठ रत्ति दो मासा। स्मृति शास्त्र सम्मत तथा ज्योतिर्विद् सम्मत पल है—तीन तोला। काम्य स्नान में एक एक पल परिमाण पञ्चगव्य दें। नित्य स्नान में उसका आधा देना चाहिए।

हे परमेश्वरि ! दरिद्र तथा अशक्तगणों के लिए स्नानविधि कह रहा हूँ। गुण (तीन) लोता से न्यून (काम) पञ्चगव्य स्नान के कार्य में नहीं देना चाहिए। स्नान समाप्त करके स्वर्णपीठ में उस देवी की स्थापन करें। उस स्वर्णपीठ से देवी को उठाकर अपने नाभि की अपेक्षा अर्द्ध देश में (वेदी पर) स्थापन करें। वहीं पर पीठ पूजा करके अर्घ्यपात्रादि की भी स्थापन करें। कुशाग्र के द्वारा यन्त्र को स्पर्श करके गायत्री मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करें।

यन्त्र गायत्री मन्त्र को कह रहे है—"पहले प्रणव बाद में "यन्त्रराजाय विद्महे" यह पद, उसके बाद 'महायन्त्राय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' यही है यन्त्र की गायत्री।

आवाह्य पञ्चमुद्राभिः प्राणस्थापनमाचरेत् ॥

ज्ञानार्णवे--

अनामिकामूलपर्वसंसक्तांगुष्ठयुग्मकम् ।
उत्तानं हस्तयुगलं योजयेत् साधकाग्रणोः ॥
ऊर्ध्वाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत् ।
इयं तु विपरीता स्यान्मुद्रा स्थापनकर्मणि ॥
युक्तोच्छ्रितांगुष्ठमुष्टी मुद्रा स्यात्सन्निधापनी ।
अंगुष्ठगर्भिणी सैव मुद्रा स्यात्सन्निरोधिनी ॥
उत्तानमुष्टियुगला सम्मुखीकरणी मता ।
देवतांगे षडङ्गानां न्यासः स्यत् सकलीकृतिः ॥
करावेकत्र संयोज्य अधोभूताविव प्रिये ।
परमीकरणं नाम मुद्रेयन्तु ततः परम् ।
वं बीजेनामृतीकुर्यात् मुद्रया धेनुसंज्ञया ॥

---

आवाहनादि पञ्चमुद्रा के द्वारा आवाहन करके प्राण-प्रतिष्ठा करना चाहिए। ज्ञानार्णव तन्त्र में मुद्रा कह रहे हैं—"साधक श्रेष्ठ अनामिका के मूल पर्व दोनों अंगुष्ठ से संयुक्त करें। उत्तान हस्त दोनों को संयुक्त करके अर्थात् अञ्जलि करना एवं ऊर्ध्व स्थित अञ्जलि को नीचे करके अर्थात् उस अञ्जलि को ऊपर नीच करें। यह है आवाहनी मुद्रा। यह आवाहनी मुद्रा विपरीता ( उल्टा ) होने पर ही स्थापन कर्म में मुद्रा होती है अर्थात् "स्थापनी" मुद्रा होती है। उच्छ्रित ( अन्नत, ऊँचा ) अंगुष्ठ विशिष्ट संयुक्त मुष्टि द्वय अर्थात् दोनों मुट्ठी को संयुक्त ( मिलाकर ) करके अंगुष्ठ दोनों को अन्नत करने से ही "सन्निधापनी" मुद्रा होती है। उस सन्निधापनी मुद्रा अंगुष्ठ-गर्भिणी अर्थात् अंगुष्ठ दोनों को मुट्ठी के भीतर छिपा देने से "सन्निरोधनी" मुद्रा होगी। दोनों मुट्ठियों को उत्तान ( चित् ) करने से 'सम्मुखीकरणी' मुद्रा होगी। देवताओं के अङ्ग में षडङ्गन्यास 'सकलीकरण' नाम में अभिहित हुआ है। हे प्रिये ! दोनों हाथ अधोभूत के समान एकत्र करके अर्थात् दोनों हाथों के तल भाग संयुक्त करके उल्टा होकर बाँये अंगुष्ठ के ऊपर दक्षिण अंगुष्ठ आड़ करके रखने से ही 'परमीकरण' नामक मुद्रा होती है। धेनु नामक मुद्रा के द्वारा 'वं' बीज में अमृतीकरण करना चाहिए।

अन्योन्याभिमुखे श्लिष्टे कनिष्ठानामिके पुनः।
तथैव तर्जनीमध्ये धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥
धेनुमुद्रा महादेवी अमृतीकरणे भवेत्।
प्रतिष्ठाप्याऽर्चयेद् देवीमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥

प्रतिष्ठाप्येति—यन्त्रे प्रतिमायां वा प्राणप्रतिष्ठां विधायेत्यर्थः ॥
प्राणमन्त्रमाह यामले—

उच्चार्य भुवनेशानीं पाशांकुशपुटां ततः।
याद्याः सप्तमृताङ्काट्या व्योम सत्येन्दुसंयुतम् ॥
व्योम विन्दुसमायुक्तं सर्गावान् भृगुरित्ययम्।
नाम्ना देव्यास्ततः प्राणा इह प्राणास्ततः प्रिये ॥
पुनर्मन्त्रं पुरस्कृत्य तथैव साधकोत्तमः।

---

कनिष्ठा एवं अनामिका अंगुलिद्वय को परस्पर अभिमुख तथा संयुक्त करके अर्थात् एक हाथ की अंगुलि के फाँक के मध्य में दूसरे हाथ की अंगुलि भितर करके दक्षिण अनामिका के अग्र में वाम कनिष्ठा एवं बाम अनामिका के अग्र में दक्षिण कनिष्ठा को संयुक्त करें। तर्जनी तथा मध्यमा पुनराय उसी प्रकार अर्थात् बाँये मध्यमा के अग्र में दक्षिण तर्जनी एवं दक्षिण मध्यमा के अग्र में वाम तर्जनी को संयुक्त करना चाहिए। यह 'धेनुमुद्रा' नाम से कीर्त्तित है।

हे महादेवि ! अमृतीकरण में धेनु मुद्रा आवश्यक है। प्राण प्रतिष्ठा करके देवी की अर्चना करें। अन्यथा कर्म निष्फल होगा। 'प्रतिष्ठाप्य' इस पद का अर्थ है—यन्त्र में अथवा प्रतिमा में प्राणप्रतिष्ठा करना।

यामल तन्त्र में प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र कह रहे हैं—हे प्रिये ! पाशबीज ( आँ ) तथा अंकुशबीज ( क्रों ) पुटित भुवनेशानी बीज ( ह्रीं ) अर्थात् आँ ह्रीं क्रों उच्चारण करके बाद में मृगाङ्क ( ँ ) युक्त यादि सप्तवर्ण ( य र ल व श ष स ), सत्य ( ओ ) एवं इन्दु ( ँ ) युक्त व्योम ( ह ) अर्थात् ह्रों, विन्दु संयुक्त व्योम ( ह ) एवं सर्ग ( : ) युक्त भृगु ( स ) अर्थात् हंसः—यह वर्ण, उसके बाद षष्ठी विभक्तियुक्त देवता के नाम के साथ अर्थात् 'अमुक देवतायाः' इस पद के साथ 'प्राणा इह प्राणाः' उसके बाद पुनः एक बार मन्त्र अर्थात् 'आँ ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं ह्रों हंसः' पहले कह कर साधक प्रवर उसी प्रकार ही देवता के नाम के साथ अर्थात् 'अमुक-

नाम्ना च देवतायास्तु ततो जीव इह स्थितः ॥
तथैव देवदेवेशि ! उक्त्वा सर्वेन्द्रियाणि च ।
वाङ्मनश्चक्षुरित्यन्ते श्रोत्रघ्राणपदं ततः ॥
ततः प्राणा इहागत्य सुखमुक्त्वा चिरं पठेत् ।
तिष्ठन्तु वह्निजायान्तः प्राणमन्त्र उदाहृतः ॥
स्व स्व नाम्ना महेशानि मन्त्रोऽयं सर्वदैवतः ।
इति प्राणान् प्रतिष्ठाप्य ततः पूजां समारभेत् ॥
स्वकल्पोक्त विधानेन मुद्रां प्रदर्श्य साधकः ।
उपचारैः षोडशभिर्देवीं प्रपूजयेद् क्रमात् ॥
देव्याज्ञया परीवारान्पूजयेत् परमेश्वरि ।
ततो जपेत् सहस्रं तु शतमष्टोत्तरं प्रिये ॥
बलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेच्चक्रराजकम् ।
शतमष्टोत्तरं होमं कुर्याच्च साधकोत्तमः ॥
निजमन्त्रेण देवेशि जुहुयाच्चक्रसिद्धये ।
आहुत्यन्ते चक्रराजे हुतशेषं विनिक्षिपेत् ॥

---

देवतायाः' पद के बाद 'जीव इह स्थितः' पद। हे देवदेवेशि ! बाद में उसी प्रकार अर्थात् आँ ह्रीं आदि से 'देवतायाः' पर्यन्त समस्त (पूरामन्त्र) कहकर 'सर्वेन्दुयाणि वाङ्मनश्चक्षुः उसके बाद 'श्रोत्रघ्राण' पद उसके बाद 'प्राणा इहागत्य सुखं' कहकर चिरं पद कहना, उसके बाद वह्निजायान्त 'तिष्ठन्तु' अर्थात् 'तिष्ठन्तु स्वाहा' कहना। यह प्राण मन्त्र कहा गया है। हे महेशानि ! यह मन्त्र स्व स्व नामों में अर्थात् पूज्य देवता के नाम योग से सभी देवताओं का प्राण मन्त्र होगा।

इस प्राण मन्त्र से प्राण प्रतिष्ठा करके उसके बाद पूजा आरम्भ करें। साधक स्वकल्पोक्त विधि के अनुसार से मुद्रा दिखाकर यथाक्रम से षोडश उपचार के द्वारा देवी की पूजा करें। हे परमेश्वरि ! उसके बाद देवी से अनुज्ञा लेकर परिवार गणों की पूजा करना चाहिए। हे प्रिये ! उसके बाद अष्टोत्तर शत अथवा सहस्र मन्त्र जप करना चाहिए। उसके बाद बलिदान करके यन्त्रराज को प्रणाम करें। साधक प्रवर अष्टोत्तरशत हवन करें। हे देवेशि ! मन्त्रसिद्धि के लिये अपने मन्त्र के द्वारा हवन करें। आहुति के

पुर्णान् दत्वा तु होमान्ते तज्जलैरभिषेचयेत् ।
मन्त्राभिषिक्तं चक्रं तत्सर्वेषां सिद्धिदायकम् ॥
गुरुवे दक्षिणां दद्याद् गां च दद्यात्पयस्विनीम् ।
भूमिं वृत्तिकरीं दद्यात् पुत्रपौत्रानुयायिनीम् ॥
संहारमुद्रया देव्या विसर्जनमतःपरम् ।
प्रतिष्ठयेच्चक्रराजमनेन विधिना यदि ॥
पुरश्चर्याफलं तस्य सर्वसिद्धियु तस्य च ।
गुरोराज्ञां प्रमाणेन यन्त्रं मूर्ध्नि निधापयेत् ॥
गृहीतं यन्त्रमेवेदं क्वापि नैव प्रकाशयेत् ।
यन्त्र मन्त्र प्रकाशे तु क्रुद्धा भवति पार्वती ॥
निजमन्त्राभिषिक्तश्च गुरोरपि न दर्शयेत् ।
यन्त्रग्रहणकाले च यदि स्यात् मेघगर्जनम् ॥
उल्लुलुध्वनिराकस्मादथवा शङ्ख निस्वनः ।
तदा मन्त्री झटित्येव सिद्धकार्यो न संशयः ॥
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
ग्रहणं यन्त्रमन्त्राणां शुभद तत् प्रकीर्त्तितम् ॥

---

अन्त में हुतशेष यन्त्रराज में निक्षेप करें। हवन के अन्त में पूर्णाहुति देकर उसे जल के द्वारा अभिषेक करें। मन्त्राभिषिक्त यह चक्र सभी के लिये ही सिद्धिप्रद है। गुरु को दक्षिणा दें, दुग्धवती गाय दें, पुत्रपौत्रादि क्रम से वृत्तिकारी भूमि दें। इसके बाद संहार मुद्रा के द्वारा देवी का विसर्जन करें। इस विधि के द्वारा यदि साधक चक्रराज की प्रतिष्ठा करता है, तब सर्वविध सिद्धि प्राप्त साधक के पुरश्चरण का फल शुभ होगा।

गुरु की आज्ञानुसार माथे पर यन्त्र का स्थापन करें। इस प्रकार गृहीत इस यन्त्र के किसी स्थल का प्रकाश न करें। यन्त्र तथा मन्त्र के प्रकाश हो जाने से पार्वती क्रुद्धा हो जाती हैं। अपने इष्ट मन्त्र के द्वारा अभिषक्ति मन्त्र गुरु को भी नहीं दिखाना। यन्त्र धारण के समय में यदि मेघ गर्जन होता है; अथवा अकस्मात् उल्लु ध्वनि अथवा शङ्ख ध्वनि होती है। तब शीघ्र ही सिद्ध कार्य होता है; इसमें संशय नहीं है। अयन में, विषुव संक्रान्ति में, चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण में यन्त्र तथा मन्त्र का ग्रहण अधिक शुभप्रद कहा गया है।

## अथ बलिदानम्

**मुण्डमालायाम्—**

नरश्छागस्तथा मेषो महिषः शशकस्तथा ।
शल्लकी शूकरश्चैव बलयः परिकीर्तिताः ॥

**नरबलिस्तु राज्ञामेव—**

राजा नरबलिं दद्यान्नान्यो हि परमेश्वरि ।
सिंहव्याघ्र नरान्दत्त्वा ब्राह्मणो रौरवं व्रजेत् ॥
युवानं व्याधिहीनं च सुश्रीकं लक्षणान्वितम् ।
सर्वावयव सम्पन्नं बलिं दद्यात् सुशोभनम् ॥
तरुणं सुन्दरं कृष्णं क्षतादिदोषवर्जितम् ।
स्नापयित्वा बलिं तत्र भूषयेत् पुष्पचन्दनैः ॥
भूषयेद् रक्तमाल्येन सिन्दूरेण विषेशतः ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ॥
समानीय स्ववामे च मूलेन प्रोक्षणं चरेत् ।
संप्रोक्षणं विधायैव बलिं सम्पूजयेदथ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे च ब्रह्माणं तन्नासायाञ्च मेदिनीम् ।
कर्णयोश्च तथाकाशं जिह्वायां सर्वतोमुखम् ॥

---

बलिदान

**बलिदान—**मुण्डमाला तन्त्र में कहा गया है—'नर, छाग, मेष, महिष, शशक, शल्लकी ( शजारु ) तथा शूकर-बलि कह कर कीर्त्तित हुये हैं। नरबलि परन्तु नृपतियों के लिये ही देने के योग्य है क्योंकि वचन मिलता है कि हे परमेश्वरि ! राजा नरबलि देगा, अन्य कोई भी न दें। ब्राह्मण सिंह, व्याघ्र तथा नरबलि देकर रौरव नामक नरक में गमन करता है। युवक, व्याधिहीन, सुश्री सुलक्षणाक्रान्त, सभी अवयवयुक्त, सुशोभन युक्त बलि को दें। तरुण, सुन्दर, कृष्णवर्ण, क्षतादि दोष रहित बलि को स्नान कराकर उसी स्थान में फूल तथा चन्दन के द्वारा बलि को भूषित करें ( सजावें )। रक्त माल्य के द्वारा, विशेषरूप से सिन्दूर के द्वारा बलि को सजावें। स्वयं उत्तराभिमुख होकर पूर्वमुख में बलि को अपने बायें तरफ लाकर मूलमन्त्र से प्रोक्षण करें। अनन्तर भलीभाँति संप्रोक्षण कराकर ही बलि की पूजा करें। पहले सामान्य पूजा करें, बलि के ब्रह्मरन्ध्र में 'ब्रह्मणे नमः' मन्त्र से ब्रह्मा का, बलि के नाक पर 'मेदिन्यै नमः' मन्त्र से मेदिनी का, दोनों कान में

ज्योतींषि नेत्रयोर्विष्णुं वदने परिपूजयेत् ।
ललाटे पूजयेच्चन्द्रं शक्रं दक्षिणगण्डतः ॥
वामगण्डे तथा वह्निं ग्रीवायां समवर्त्तनम् ।
रोमकूपे धृतिं चैव भ्रुवोर्मध्ये प्रचेतसम् ॥
नासामूले च श्वसनं स्कन्धे चैव महेश्वरम् ।
हृदये सर्पराजेन्द्रं पूजयित्वा पठेदिदम् ॥
महातपोभिर्ज्ञानैश्च यज्ञैर्यत्साध्यते नृभिः ।
तन्मे देहि महाभाग ! सत्वरं चाप्नुयां श्रियम् ॥
शिवबुद्ध्या च सम्पूज्य उत्सृजेच्च ततः परम् ।
ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ॥
इत्युत्सृज्य बलिं पश्चात् करवालं प्रपूजयेत् ।
खड्गमग्रे पूजयेन्मन्त्री ब्रह्म-वागीश्वरीं तथा ॥
मध्ये च पूजयेद्देवि ! लक्ष्मीनारायणावपि ।
मूले च पूजयेन्मन्त्री उमया च महेश्वरम् ॥

---

'आकाशाय नमः' मन्त्र से आकाश का, जिह्वा में 'सर्वतोमुखाय नमः' मन्त्र से सर्वतोमुख को नेत्रद्वय में 'ज्योतिर्भ्यां नमः' मन्त्र से ज्योतिद्वय का एवं वदन में ( पूरे शरीर में ) विष्णु की पूजा करें। ललाट में चन्द्रमा का, दक्षिण गण्ड ( गाल ) में शक्र का, बायें गाल पर अग्नि का ग्रीव में समवर्त्तन का, रोमकूप में धृति का, भ्रूद्वय के मध्य में प्रचेता का, नाक के मूल में श्वासन का, स्कन्ध में महेश्वर का, हृदय में सर्पराजेन्द्र (अनन्त नाम) की पूजा करके ही यह 'महातपो भिर्ज्ञानैश्च' इत्यादि मन्त्र को पढ़ें। उक्त मन्त्रार्थ है—मनुष्य गणों के द्वारा महातपस्या, ज्ञान तथा यज्ञ समूहों के द्वारा जो कुछ साधित होता है; हे महाभाग ! वह मुझे दान कीजिए। मैं शीघ्र ही जिस प्रकार से ही हो श्री ( ऐश्वर्य ) प्राप्त कर सकूँ। उसके बाद शिवबुद्धि से अर्थात् बलि को शिव के साथ अभिन्न ज्ञान करके पूजा करके उसके बाद देवी को उद्देश्य करके एवं अपने कामनायों का उल्लेख करके उन्हें उत्सर्ग करना चाहिए। इस प्रकार बलि का उत्सर्ग करने के बाद करबाल ( खड़ग् ) की पूजा करें।

मन्त्री खड्ग के आग्रभाग में ब्रह्म-वागीश्वरी की पूजा करें। हे देवि ! खड्ग के मध्य में लक्ष्मीनारायण की पूजा करें एवं खड्ग के मूल में उमा-महेश्वर

एवं विधानैः सम्पूज्य नमस्कुर्यात् प्रयत्नतः ।
खड्ग त्वं शिवरूपोऽसि क्रोधभैरव संज्ञकः ॥
दुर्गा प्रीतिकरो नित्यं कालीशक्तेरिवाऽपरा ।
खड्गाय खरशानाय शक्तिकार्यार्थ तत्पर ! ॥
पशुच्छेद्यस्त्वया शीघ्रं खड्गनाथ ! नमोऽस्तुते ।
एवं सम्पूज्य तं खड्गमुत्तोल्य साधकोत्तमः ॥
छेत्ता पूर्वमुखो भूत्वा बलिमुत्तरवक्त्रकम् । (?)
आं हुं फट् इति मन्त्रेण छेदयित्वा ततः पशुम् ॥
ततो बलीनां रुधिरं तोयसैन्धवसत्फलैः ।
मधुभिर्गन्धपुष्पैश्च स्वधिवास्य प्रयत्नतः ॥
गन्धपुष्पोक्षितं कृत्वा चोत्सृजेन्मूलमुच्चरन् ।
प्रणवं वाग्भवं लक्ष्मीं ततः कौशिकीं शब्दतः ॥
रुधिरेण ततः पश्चादाप्यायतां समुच्चरेत् ।
निवेद्य रुधिरं देवि ! शिवे दद्यात् प्रदीपकम् ।
ततो निवेदयेन्मन्त्री ताम्बूलं सुमनोहरम् ॥

---

की पूजा करें। इस प्रकार विधान के द्वारा पूजा करके यत्न पूर्वक खड्गत्वं शिवरूपोऽसि" इत्यादि मन्त्र से नमस्कार करें। मन्त्रार्थ है–हे खड्ग ! तुम शिवरूप एवं तुम ही क्रोधभैरव संज्ञक हो अर्थात् तुम्हारी संज्ञा ( नाम ) क्रोधभैरव है। तुम नित्य दुर्गा के प्रीतिकारण हो एवं तुम कालीशक्ति की ही एक अपरामूर्त्ति हो। तेज धार खरशान खड्गरूपी तुम्हें नमस्कार है। हे खड्गनाख हे शक्ति के कार्यार्थ में तत्पर ! तुम शीघ्र ही पशु का छेदन करो। साधक श्रेष्ठ घातक इस प्रकार से पूजा करके उस खड्ग को उठाकर पूर्वमुख होकर उत्तर मुखबलि को "आं हुं फट्" इस मन्त्र के द्वारा छेदन करके उसके बाद पशु का छेदन करें। उसके बाद बलि समूह के रुधिर के जल को सैन्धव ( सेंधा नमक ) तथा सत्फल ( जायफल ) के द्वारा एवं मधु तथा गन्धपुष्प के द्वारा यत्नपूर्वक अधिवासित करके गन्धपुष्प के द्वारा प्रोक्षित करके मूलमन्त्र का उच्चारण करते करते उत्सर्ग करें। प्रणव, वाग्भव ( ऐं ) तथा लक्ष्मी ( श्रीं ) उसके बाद 'कौशिकी' शब्द के अन्त में 'रुधिरेण' पद उसके बाद 'आप्यायताम्' पद का उच्चारण करें। हे देवि ! पूर्वोक्त 'ॐ ऐं श्रीं कौशिकी रुधिरेण आप्यायताम्' इस मन्त्र से रुधिर को निवेदन करके बलि के मस्तके पर प्रदीप लगा दें। उसके बाद मनोहर ताम्बूल निवेदन करें।

## रुधिर-मस्तक स्थानपन क्रमः

रुधिरमस्तक स्थापनक्रममाह तन्त्रे—

नारं सव्ये शिरोरक्तं देव्याः सम्यग्नियोजयेत् ।
छागं तु वामतो दद्यान्माहिषं वितरेत् पुरः ।
दक्षिणे वा मतो दद्यादग्रतो देहशोणितम् ॥

यामले—यदा कटकटाशब्दो दन्तानां श्रूयते क्वचित् ।
तदा तु मरणं विद्याद्धानिं तत्र विनिर्दिशेत् ।
यदाश्रु दृश्यते नेत्रे तदा हानिं विनिर्दिशेत् ॥

## बलिमस्तकपतन फलम्

पूर्वोत्तरे च दिग्भागे पतते यदि मस्तकम् ।
सर्वसम्पत्करं विद्याद् राज्ञां राज्यं विनिर्द्दिशेत् ॥
ईशानाग्न्योर्मध्यभागे पतते यदि मस्तकम् ।
ततः स्वल्पेन कालेन सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥
यदि वायव्यदिग्भागे नैर्ऋते दक्षिणेऽपि वा ।
मस्तकं पतते जातु तस्य हानिं विनिर्द्दिशेत् ॥

---

### रुधिर मस्तक स्थापन क्रम

तन्त्रों में रुधिर तथा मस्तक स्थापन का क्रम कह रहे हैं—"मनुष्यों के शिर का रक्त देवी के बायें तरफ सम्यग् रूप से स्थापन करें। छाग पशु का शिरोरक्त बायें तरफ दें। महिष के शिर का खून सामने दें। दक्षिण भाग में एवं वामभाग एवं अग्रभाग में देह (शरीर) के शोणित को दें।

यामल में कहा गया है—किसी समय यदि दाँत का कट कट शब्द सुनाई देता है, तब मरण जानना तथा उसी समय में हानि, क्षति, निर्देश सूचित करता है। जब दोनों आँखों में आंसू दिखाई पड़ता है, तब वह हानि निर्देश करता है।

### बलिमस्तक पतन-फल

पूर्व अथवा उत्तर दिग् भाग में यदि बलि का मस्तक गिरता है तब वह फल सर्वसम्पत्कर जानना चाहिए। वह राजाओं के लिये राज्य प्राप्ति का निर्देश अर्थात् सूचना करता है। ईशान तथा अग्निकोण के मध्यभाग में यदि मस्तक पतित होता है, तब अति अल्पकाल में ही निश्चय ही सर्वसिद्धि होगी। यदि वायव्य दिग्भाग में, नैर्ऋत कोण में अथवा दक्षिण में भी यदि कभी मस्तक गिरता है, तब वह यजमान की हानि का निर्देश करता है।

## बलिमस्तके दीपदानम्

यामले—

ग्रहाणां कच्छपानाञ्च गोधानाञ्च विशेषतः ।
मत्स्यानां पक्षिणां चैव न दोषं दापयेच्छिरे ॥
शीर्षोपरि ज्वलद्दीपो यावत्कालं प्रवर्त्तते ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे तस्माद्यत्नेन दापयेत् ॥

रुद्रयामले—

लोमदाहोद्भवं गन्धं घ्रत्वा देवी प्रसीदति ।
तस्मात्समर्पयेद्दीपं तस्य पात्रं विवर्जयेत् ।
विधिवद्बलिदानेन चतुर्वर्गफलं भवेत् ॥

## अवैध हिंसायां दोषः

अविधानेन हिंसायां दोषमाह कुलार्णवे—

अविधानेन यो हन्यादात्मार्थं प्राणिनः प्रिये ।
निवसेन्नरके घोरे युगानि पशुलोमभिः ॥
स रक्तबिन्दुपाती च तिर्यग्योनौ प्रजायते ।

---

### बलि मस्तक में दीपदान

कुम्भीर ( मगर ), कच्छप, विशेषतः गोसाप समूहों के, मत्स्य तथा पक्षिसमूहों के मस्तक पर प्रदीप नहीं करना चाहिए। मस्तक के उपरिभाग में जब तक प्रज्ज्वलित दीप वर्त्तमान रहता है, तब तक काल स्वर्ग में वास करता है। अतः एव यत्न पूर्वक दीप दान करें। रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—'लोमदाहोत्पन्न गन्ध का आघ्राण करके देवी अति प्रसन्न होती है। सुतरां बलिमस्तक पर दीप समर्पण करें। दीपपात्र न दें अर्थात् दीपाधार में दीप न दें। विधिपूर्वक बलिदान के द्वारा चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति होती है।

### अवैधहिंसा में दोष

कुलार्णव तन्त्र में अविधिपूर्वक हिंसा में दोष कह रहे हैं—"हे प्रिये! जो व्यक्ति आत्मार्थ अर्थात् मात्र अपने उदर पूरण के लिये अवैधरूप से प्राणिगणों की हत्या करता है, वह पशुलोम परिमित युग तक अर्थात् जितने संख्या में उस पशु के शरीर में रोम हैं उतने युग तक घोर नरक में वास करता है। उस रक्त विन्दु से क्षरणकारी व्यक्ति पापयोनि में जन्म ग्रहण

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता खादिताऽष्टौ च घातकाः॥

रुद्रयामले—

धनेन क्रयिको हन्ता खादिता चोपभोगतः।
घातको वधतश्चैव त्रिविधो वधवान् ध्रुवम्॥

यामले—

पितृदैवतयज्ञेषु वैधहिंसा विधीयते।

अन्यत्रापि—

अहिंसा परमो धर्मोनास्त्यहिंसा परं सुखम्।
विधिना या भवेत् हिंसा सा त्वहिंसा प्रकीर्तिता॥
भूतहिंसा न कर्त्तव्या पशुहिंसा विशेषतः।
बलिदानं विना देवि हिंसां सर्वत्र वर्जयेत्॥

यामले—

हन्यान्मन्त्रेण चानेन त्वभिमन्त्र्य पशुं शिवे।
गन्धपुष्पाक्षतैः पूज्य त्वन्यथा नरकं व्रजेत्॥

---

करता है। अनुमोदक ( हत्या के आज्ञाकारी ) विशसिता ( हाथ पैर आदि के छेदक ), निहन्ता, क्रयी तथा विक्रयी, संस्कारक ( पाचक ), उपहर्त्ता ( परिवेषक ) तथा खादक—यह आठ व्यक्ति घातक हैं। रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है—क्रयी धन के द्वारा घातक होता है, भोजनकारी भोग के द्वारा होता है, घातक वध के द्वारा घातक होता है—इस प्रकार वधवान् ( घातक ) निश्चय ही तीन प्रकार का होता है।

यामल तन्त्र में कहा गया है—'पितृयज्ञ अथवा देवयज्ञों में वैध हिंसा विहित है। अन्यत्र भी कहा गया है—'अहिंसा परम-धर्म। अहिंसा व्यतीत सुख नहीं है। विधिपूर्वक जो हिंसा होती है, उसे अहिंसा कहा गया है। प्राणिहिंसा विशेषतः पशु हिंसा कर्त्तव्य नहीं है। हे देवि ! बलिदान को छोड़कर हिंसा का सर्वत्र ही परित्याग करें। यामल तन्त्र में कहा गया है—हे शिवे ! इस मन्त्र के द्वारा पशु को अभिमन्त्रित करके एवं गन्ध पुष्प तथा अक्षत के द्वारा पूजा करके उसका छेदन करें; अन्यथा वह नरक में गमन

पापोपजनिका हिंसा तत्कथं स्वर्गसाधनम् ।
अश्वमेधादियज्ञेषु वाजिहत्यां कथं चरेत् ॥

दृष्टान्तमाह यामले—

येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः ।
तेनैव विषखण्डेन भिषग्नाशयते विषम् ॥

तस्मादविधिना हिंसा पापजनिका, विधिबोधिता हिंसा स्वर्गजनिका इति निर्गलितार्थः ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूत श्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरि कृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां यन्त्रप्रतिष्ठादि निर्णयो नाम त्रयोदशोल्लासः ॥ १३ ॥

---

करेगा। हिंसा पाप का जनक है; सुतरां वह स्वर्ग का साधन किस प्रकार होगा? अश्वमेधादि यज्ञ में क्यों अश्ववध करता है? यामल तन्त्र में उसके उत्तर प्रसङ्ग में दृष्टान्त कह रहे हैं—"जिस विष खण्ड के द्वारा समस्त जन्तु प्राणत्याग करते हैं, उस विषखण्ड के द्वारा ही वैद्य विषनाश करता है।" सुतरां अविधिपूर्वक हिंसा पाप का जनक है, वैधहिंसा स्वर्ग का जनक है—यही तात्पर्यार्य है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत
शाक्तानन्दतरङ्गिणी यन्त्रप्रतिष्ठादि निर्णय
नामक त्रयोदश उल्लास समाप्त।

# चतुर्दशोल्लासः

## उपचारविधिः

उपचारं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति ! सादरम् ।
विनोपचारैर्या पूजा सा पूजा न प्रसीदति ॥
अष्टादशोपचारास्तु सर्वेषामुत्तमाः प्रिये ।
षोडशेति प्रधानाश्च दशधास्तदनु स्मृताः ।
पञ्चधास्तदनु प्रोक्ताः कर्त्तव्या भूतिमिच्छता ॥

फेत्कारिणीतन्त्रे—

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा ।
स्नानं वासश्चोपवीतं भूषणानि च सर्वशः ॥
गन्धपुष्प धूपदीपौ तथान्नं चापि दर्पणम् ।
माल्यानुलेपनं चैव नमस्कार विसर्जनम् ।
अष्टादशोपचारैस्तु मन्त्री पूजां समाचरेत् ॥

तन्त्रे—आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च ॥

---

### उपचार विधिः

हे पार्वति ! उपचार विधि कहा रहा हूँ श्रद्धापूर्वक तुम सुनो। उपचार कि हीन पूजा कभी भी प्रीतिप्रद नहीं होती है। हे प्रिये ! सभी उपचारों में अष्टादश उपचार उत्तम है। षोडशोपचार प्रधान है, तदपेक्षा दशोपचार न्यून है, ऐसा कहा गया है। पञ्चोपचार उससे अधिक न्यून है यह कहा गया है। साधक ऐश्वर्यकामी होकर चतुर्विध ( अष्टादश, षोडश, दस एवं पञ्च उपचार ) जिस किसी भी उपचार के द्वारा पूजा करें।

फेत्कारिणी तन्त्र में कहा गया है—'आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, सर्व प्रकार के अलङ्कार, गन्ध, पुष्प, दीप, अन्न, दर्पण, माल्यानुलेपन तथा नमस्कार इस अष्टादश उपचार के द्वारा मन्त्री पूजा करें। तन्त्र में कहा गया है—'आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, अलङ्कार,

गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यवदनं तथा ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश ॥
पाद्यार्घ्याचमनीयं च मधुपर्काचमं तथा ।
गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश स्मृताः ॥
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।
प्रदद्यात् परमेशानि ! पञ्च पूजोपचारकान् ॥

**पाद्यादिनिरूपणम्**

पाद्यार्थमुदकं पाद्यं चन्दनागुरु संयुतम् ।
एतच्छ्यामाकदूर्वाब्ज विष्णुक्रान्तामितीरितम् ॥
पाद्यं पात्रे प्रदातव्यमर्घ्यं चैवार्घ्यपात्रके ।
रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वातिलैर्जलैः ॥
सामान्यः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकल्पितः ।
अभावे दधिदुग्धाद्यैर्मानसं परिकल्पयेत् ॥
अन्तःशून्यां त्रिपत्राञ्च दूर्वां चार्घेन निक्षिपेत् ।
जातीलवङ्गकक्कोलैर्दद्यादाचमनीयकम् ॥

---

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वन्दन—ये सोलह प्रकार के उपचार पूजा के समय क्रमशः नियोग करें। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन एवं गन्ध आदि नैवेद्य पर्यन्त यह पाँच प्रकार के उपचार समूह दशोपचार नाम से कथित हुये हैं। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य पूजा में यह पाँच उपचार प्रदान करें।

पाद्यनिरूपण

पाद्यर्थ अर्थात् पाद प्रक्षालन के लिये श्वेत चन्दन तथा अगुरु संयुक्त जलरूप पाद्य देना चाहिए। श्यामाघास, दूर्वा, पद्म (कमल) तथा अपराजित ( कौयाठोरी, विष्णुक्रान्ता ) पुष्प संयुक्त होने पर वह पाद्य कहकर कथित हुये है। पाद्यपात्र में पाद्य एवं अर्घ्यपात्र में अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। रक्तचन्दन, बिल्वपत्र, अक्षत, पुष्प, दधि, दूर्वा, तिल तथा जल के द्वारा जो अर्घ्य होता है, वह समस्त देवताओं के लिये सामान्य अर्थात् साधारण कहकर कीर्त्तित हुआ है। उक्त द्रव्य के अभाव होने पर दधि दुग्धादि के द्वारा मानस अर्घ्य की कल्पना करना चाहिए।

अन्तःशून्य (अर्थात् कोंक फेका गया) त्रिपत्र दूर्वा अर्घ्य में नहीं देना चाहिए। जातिफल (जायफल) लवङ्ग, कक्कोल के साथ आचमन में देना चाहिए।

तत् तैजसेन पात्रेण शंखेन वा प्रदापयेत् ।
उदकं दीयते यद्यत्सुगन्धं फेनवर्जितम् ॥
आचमनीयकं देव्यै तदाचमन मुच्यते ।
दद्यादाचमीयं तु सुगन्धसलिलैः शुभैः ॥

## मधुपर्कनिरूपणम्

बृहत्श्रीक्रमे— नारिकेलोदकं स्वल्पं सिता दधि घृतं समम् ।
सर्वेषामधिकं क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत् ॥
आज्यं दधि मधून्मिश्रं मधुपर्कं विदुर्बुधाः ।
तद्द्यात्कांस्यपात्रेण शोभनेन विशेषतः ॥

इति वचनात् कांस्यपात्रेण मधुपर्के नारिकेलोदकदाने दोषाभावः । यथा ताम्रपात्रेण चरुपाके दोषाभावस्तद्वत् । तथाचोक्तम्—

ततश्च संस्कृते वह्नौ गोक्षीरेण चरुं पचेत् ।
अस्त्रेण क्षालिते पात्रे नवे ताम्रमयादिके ॥
पयोऽनुद्धृतसारश्च ताम्रपात्रे न दुष्यति । इति वचनात् ।
पात्रपरिमाणमाह—वस्वंगुलन्यूनमानं न पात्रं कारयेद् बधः ॥

---

वह तैजस पात्र मे दें अथवा शङ्ख में दें । सुगन्ध तथा फेन शून्य आचमनीय जो फल देवी के उद्देश्य में दिया जाता है, वह आचमन कहा गया है । शुभ अर्थात् निर्मल सुगन्धयुक्त जल के द्वारा आचमन देना चाहिए ।

### मधुपर्क निरूपण

बृहत् श्रीक्रम में कहा गया है—"स्वल्प नारियल के जल, शर्करा, दही तथा घी समपरिमाण में तथा इन सभी द्रव्य की अपेक्षा अधिक क्षौद्र ( मधु ) मधुपर्क में प्रदान करें । घृत, दधि, मधु के द्वारा मिश्रित होने पर पण्डितगण उसे मधुपर्क कहते हैं । वह विशेषरूप से सुन्दर कांस्य पात्र में प्रदान करें । इस वचन के अनुसार कांस्य पात्र में मधुपर्क के साथ नारियल का जल देने पर किसी प्रकार का दोष नहीं होता है, जैसे—ताम्रपात्र में चरुपाक करने पर दोष नहीं होता ऐसा कहा गया है—'उसके बाद संस्कृत वह्नि में 'फट्' मन्त्र से प्रक्षालित नूतन ताम्रादि धातु पात्र में गोदुग्ध के द्वारा चरुपाक करना चाहिए । क्योंकि ऐसा कहा गया है । कि—अनुद्धतसार ( मक्खन न निकाला गया ) दुग्ध ताम्र पात्र में पकाने से दुग्ध हानिकारक नहीं होता है । अब मधुपर्क पात्र के परिमाण कह रहे हैं—पण्डित व्यक्ति मधुपर्क पात्र अपने आठ अंगुल से कम परिमाण न करें ।

## गन्धकथनम्

सर्वेषां गन्धजातीनां प्रकृष्टौ मलयोद्भवः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ॥
मध्यमानामिकाग्राभ्यामंगुष्ठाग्रेण पार्वति ।
दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण साधकः ॥

## पुष्पप्रकरणम्

सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तं शस्तं वरानने ! ।
देवी प्रीतिकरं प्राज्ञे ! सर्वकामफलप्रदम् ॥
रक्तपुष्पश्च देवेशि ! तथा स्वर्णादि निर्मितम् ।
रक्तपद्मं च वज्रश्च कृष्णा तु चापराजिता ॥
पञ्चदेवमयं पुष्पं करवीरं मनोहरम् ।
विष्णुर्लम्बोदरः सूर्यो ब्रह्मा च कालिका तथा ॥
पञ्चदेवाः पञ्चदले सदा तिष्ठन्ति नान्यथा ।
जवापुष्पं महेशानि ! करवीरापराजिते ॥
महादेव्यै निवेद्यैव कोटिपूजाफलं लभेत् ।

---

### गन्धकथन

सभी गन्धजातियों में से प्रलयोत्पन्न गन्ध ही उत्कष्ट है। अतः सभी प्रकार के प्रयत्नों से सदा सर्वदा मलयजात (हवा से उत्पन्न) गन्ध प्रदान करें।

हे पार्वति ! साधक मध्यमा तथा अनामिका के साथ अंगुष्ठ के अग्रभाग द्वारा मूलमन्त्र का पाठ करके विमल गन्ध प्रदान करें।

### पुष्पप्रकरण

हे वरानने ! समस्त पुष्पजाति में से रक्त पुष्प अधिक प्रशस्त है। हे प्राज्ञे ! हे देवेशि ! रक्त पुष्प ( लालफूल ), स्वर्णादि निर्मित पुष्प, रक्तपद्म वज्र ( हीरक निर्मित पुष्प ), कृष्णवर्ण के अपराजिता एवं मनोहर पञ्चदेवमय करवीर पुष्प देवी को प्रीतिकर है एवं समस्त काम्पफल के दाता हैं। विष्णु, लम्बोदर, सूर्य, ब्रह्मा तथा कालिका—ये पाँच देवता पाँचों दलों में सर्वदा अवस्थान करते हैं, यह अन्यथा नहीं है। हे महेशानि ! जवापुष्प ( अड़ौल का फूल ), करवीर पुष्प तथा अपराजिता महादेवी को अर्पण करके ही कोटि पूजा का फूल प्राप्त होता है।

एषां मध्ये वसेद् ब्रह्मा एषां मूले जनार्दनः ।
एषामग्रे वसेद् रुद्रः सर्वे देवाः स्थिता दले ॥

एषां करवीरापराजिताजवापुष्पाणम् इत्यर्थः ।

वृक्षे विकसिते काले देवतादिग्विनिर्णयः ।
पश्चिमस्थदले विष्णुः उत्तरे गणनायकः ॥
ऐशान्यां सूर्यदेवश्च पूर्वे ब्रह्मा प्रकीर्त्तितः ।
दक्षिणे कालिका देवी या तु मुक्तिप्रदायिनी ॥
करवीरं यथा देवि ! जवापुष्पं तथैव हि ।
यथा शुभ्रं तथा रक्तं हरितं कृष्णमेव च ॥
गङ्गादि सर्वतीर्थानि तिष्ठन्ति विन्दुगह्वरे ।
तन्मध्ये शिवलिङ्गञ्च महाकुण्डलिनीयुतम् ॥
गह्वरं विन्दुरूपं च कैवल्यपदमुत्तमम् ।
शिवशक्तिमयं पुष्पं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥

---

इन पुष्प समूहों के मध्यभाग में ब्रह्मा, इन पुष्प समूहों के मूल में विष्णु, तथा इनके अग्रभाग में रुद्र वास करते हैं। समस्त देवतागण दलों में अवस्थान करते हैं। मूलोक्त 'एषां' का पदार्थ है—करवीर, अपराजिता तथा जवा ( अड़ौल ) पुष्प । वृक्षों में यथा समय पुष्प विकसित होने पर देवताओं के दिक् अर्थात् कौन देवता कौन से दिक् में रहते हैं उसका निर्णय होता है। पश्चिमदिक् स्थित दल पर विष्णु, उत्तरदिक् के दल पर गणनायक, ईशान दिक् के दल पर सूर्य, पूर्वदिक् के दल पर ब्रह्मा हैं यह कहा गया है। जो मुक्तिदायिनी है, वह कालिका देवी दक्षिण दल में अवस्थान करती है।

हे देवि ! करवीर का जिस प्रकार महत्व है, जवापुष्प (अड़ौल का फूल) भी उसी प्रकार शुभ है। करवीर अथवा अपराजिता जिस प्रकार प्रशस्त हैं, रक्त, हरित् एवं कृष्णवर्ण भी उसी प्रकार प्रशस्त हैं।

गङ्गादि समस्त तीर्थ विन्दुरूप गह्वर मध्य में अवस्थान करते हैं। उसके मध्यभाग में महाकुलिनीयुक्त शिवलिङ्ग अवस्थान करते है। विन्दुरूप गह्वर उत्तम कैवल्य पद स्वरूप है।

सम्पूर्ण पुष्प शिवशक्ति स्वरूप है एवं चतुर्वर्ग फल दाता है।

सर्वंपुष्पाणि चैकत्र जवाब्जपारिजातकैः ।
न समानि भवन्त्येव लक्षकोटि शतान्यपि ॥
यत्राऽपराजितापुष्पं करवीरं जवापि च ।
तिष्ठन्ति तत्र वै देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ॥
गङ्गादि सर्वतीर्थानि तन्मूले निवसन्ति वै ।
तन्मूलं सिञ्चितं तेन पूजितास्तेन देवताः ॥
अपराजितामाहात्म्यं वक्तुं न शक्यते मया ।
मल्लिकामुत्पलं रम्यं शमीं पुन्नागचम्पके ॥
अशोकं कर्णिकारञ्च द्रोणपुष्पं तथैव च ।
करवीरं जवापुष्पं कुंकुमं नागकेशरम् ॥
यः प्रयच्छति दुर्गायै स गच्छेत् परमं पदम् ।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये जनार्दनः ॥
पुष्पाग्रे च वसेद्रुद्रः सर्वे देवाः स्थिता दले ।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्पवशाः स्मृताः ॥
सर्वदेवमयं पुष्पं तस्माद्देव्यै समर्पयेत् ॥
पुष्पैररण्यसम्भूतैः पत्रैर्गिरिसमुद्भवैः ।
अपर्युषितनिश्छद्रैः प्रोक्षितर्जलवर्जितैः ॥

---

लक्षकोटिशत समस्त पुष्प एकत्र होने पर भी जवा पद्म तथा अपराजिता के समान नहीं होता है। जहाँ अपराजिता, करवीर तथा जवापुष्प रहते हैं, वहाँ पर ही देवता—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर अवस्थान करते हैं।

गङ्गादि सभी तीर्थ उसके मूल में वास करते हैं। उसका मूल जो व्यक्ति कर्तृक सिञ्चित करता है, उसके द्वारा समस्त देवता पूजित होते हैं। मैं अपराजिता का माहात्म्य कहने में असमर्थ हूँ। जो व्यक्ति दुर्गा को मल्लिका—पुष्प, मनोहर उत्पल (कमल) शमी पुष्प, पुन्नाग, चम्पक, अशोक, कर्णिकार, द्रोणपुष्प, करवीर, जवापुष्प, कुंकुम, तथा नागकेशर प्रदान करता है। वह परम पद को प्राप्त होता है। पुष्प के मूल में ब्रह्मा, पुष्प के मध्य में जनार्दन, पुष्प के अग्रभाग में रुद्र वास करते हैं। सभी देवता दल में अवस्थान करते हैं। चराचर सभी सर्वदा पुष्प के वशवर्त्ती कहकर कीर्त्तित हुए हैं। सभी पुष्प देवमय है, अतएव देवी को प्रदान करें।

अपर्युसित (सद्यः प्रस्फुटित), निश्छिद्र (अविकृत) प्रोक्षित, अथ च जल शून्य अरण्यसम्भूत पुष्पसमूहों के द्वारा, गिरिसम्भूत, पत्रसमूहों के द्वारा अथवा

आत्मारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः सम्पूजयेच्छिवाम् ।
पारोपित वृक्षेभ्यः पुष्पाण्यानीय योऽर्चयेत् ।
अविज्ञाप्यैव तस्यैव निष्फलं तस्य पूजनम् ॥

इति तु साक्षात्स्वामिपरम् ।

देवार्थे कुसुमस्तेयमस्तेयं मनुरब्रवीत् । इति वचनात् ॥

**पुष्पादीनां पर्युषितकालः**

सर्वं पर्युषितं वर्ज्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
अवर्ज्यं जाह्नवीतोयमवर्ज्यं तुलसीदलम् ॥
अवर्ज्यं बिल्वपत्रं स्यादवर्ज्यं जलजं तथा ।
पुष्पैः पर्युषितैर्देवि ! नार्चयेत् स्वर्णजैरपि ॥
बिल्वपत्रं च माध्यश्च तमालामलकीदलम् ।
कह्लारं तुलसीपत्रं पद्मञ्च मुनिपुष्पकम् ॥
एतं पर्युषितं न स्यात् यच्चान्यत् कलिकात्मकम् ।
तिष्ठेद्दिनत्रयं शुद्धं पद्ममामलकं तथा ॥

---

आत्मारामोद्भव अर्थात् आत्मरूपआराम के उपवन में उत्पन्न अर्थात् मनः कल्पित पुष्प समूहों के द्वारा शिव की पूजा करनी चाहिए। जो व्यक्ति दूसरे के द्वारा आरोपित वृक्ष से उसे न बताकर पुष्प समूह लाकर पूजा करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है। यह वचन साक्षात् स्वामी पर है अर्थात् वृक्ष के ( स्वामी ) उपस्थित रहने पर उसे न बताकर पुष्पचयन करना कर्त्तव्य नहीं है, पूर्वोक्त वचन का तात्पर्य यही है। क्योंकि वचन मिलता है–'मनु कह गये हैं–देवताओं के लिये पुष्प अपहरण मात्र अपहरण ही नहीं है।

पुष्पों का पर्युषित काल

पत्र, पुष्प, फल जल–सभी पर्युषित होने पर उनका वर्जन करना चाहिए। परन्तु गङ्गाजल एवं तुलसी पत्र अवर्जनीय है। विल्वपत्र अवर्जनीय है एवं जलज पुष्प कमल आदि भी अवर्जनीय है। हे देवि ! पर्युसित पुष्प समूहों के द्वारा पर्युसित स्वर्ण निर्मित पुष्प के द्वारा भी पूजा नहीं करना चाहिए। विल्वपत्र, मांध्य ( कुन्द ) तमाल, आमलकी पत्र, कह्लार ( श्वेत पद्म ), तुलसी पत्र, पद्म, मुनिपुष्प ( वक फूल )–यह कभी पर्युसित नहीं होता है। और कलिका के स्वरूप अर्थात् कलि के समान जो पुष्प है, वह भी पर्युसित नहीं होता है। तीन दिन तक कमल तथा आमलक शुद्ध रहता है।

दिनैकं करवीराणि योग्यानि च तपोधन।
पद्मानि सितरक्तानि कुमुदान्युत्पलानि च ॥
एषां पर्युषिता शंका कार्या पञ्चदिनोर्ध्वतः।
अन्येषां कुसुमानां च यावद् गन्धविपर्ययः ॥
पुष्पं च पञ्चगव्यं च उपचारांस्तथाऽपरान्।
घ्रात्वा निवेद्य देवेशि ! नरो नरकमाप्नुयात् ॥
अंग संस्पृष्टमाघ्रातं त्याज्यं पर्युषितं बुधैः।
केशकीटापविद्धानि शीर्णपर्युषितानि च ॥
स्वयं पतितपुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च।
शेफाली बकुलं चैव स्वयं शीर्णं न दूष्यति ॥
सर्वं भूमिगतं त्याज्यं शेफालीबकुलं विना।
कृमिभक्ष्याणि भग्नानि वर्ज्यानि पतितं भुवि ॥
तमालस्य च पद्मस्य छिन्नभिन्नं न दूष्यति।
विष्णुक्रान्ता-जवा-नागकेशरं नागवल्लभम् ॥
बन्धूकं चैव मन्दा(कह्ला)र सवृन्तं शस्तमर्चने।
स्वयं विकसितं पुष्पं त्याज्यञ्च पतितं भुवि ॥

---

हे तपोधन ! एक दिन मात्र स्थिति योग्य करवीर पुष्प एक दिन ही रहता है। श्वेतकमल तथा रक्त, लालकमल, कुमुद, उत्पल इन पर पाँच दिन के बाद पर्युसित शङ्का किया जा सकता है। अन्य सभी पुष्पों के गन्ध विकृत होने तक पर्युसित शङ्का नहीं करनी चाहिए।

हे देवेशि ! मनुष्य पुष्प, पञ्चगव्य तथा अन्य सभी उपचार को सूंघ कर निवेदन करके नरक को प्राप्त होता है। पण्डितगण कर्तृक अङ्गसंस्पृष्ट, आघ्रात तथा पर्युसित पुष्प सर्वदा त्याज्य है कहा गया है। केशयुक्त, कीटदष्ट ( कीड़ा काटा हुआ ) शीर्ण, पर्युसित, स्वयं पतित तथा उपहृत (छिन्नभिन्न) पुष्प समूह का त्याग करना चाहिए। शेफाली तथा बकुल पुष्प स्वयं शीर्ण होने पर भी दुष्ट नहीं होता है। शेफाली तथा बकुल को छोड़कर सभी पुष्प जमीन पर गिर जाने से त्याग करना चाहिए। कीटदष्ट, भग्न (छिन्नभिन्न) तथा जमीन पर गिरा हुआ पुष्प समूह वर्जनीय है। तमाल तथा पद्म पुष्प छिन्नभिन्न होने पर दुष्ट नहीं होता है। विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) जवा, नागकेशर, नागचम्पक, बन्धूक तथा मन्दार ( कह्लार ) वृन्तयुक्त ( उष्ठल सहित ) यह पुष्प समूह पूजा के प्रशस्त हैं। स्वयं विकशित तथा जमीन पर गिरा हुआ पुष्प का त्याग करना चाहिए।

नागवल्लभं नागचम्पकमित्यर्थः। स्वयं विकसितं पुरुषेण विकसित मित्यर्थः॥

माघमासे तु देवेशि ! पूज्यपुष्पाणि द्वादश।
कुन्दं कुरुवकं झिण्टीं केतकं निचुलं तथा॥
नीलञ्च विकटं शीर्षं भृङ्गराजं च क्षुद्रकम्।
बकुलं रञ्जनं चैव नान्यमासे यजेत् क्वचित्॥
नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुं न तुलस्या विनायकम्।
न दूर्वया यजेद् दुर्गां विल्वपत्रैर्दिवाकरम्॥

दूर्वा निषिद्धेति यदुक्तं, तत् श्वेतदूर्वापरम्। तथोचोक्तं यामले—

रक्तमाघ्यं श्वेतदूर्वां नीलकण्ठं कुरुण्टकम्।
न दद्याच्च महादेव्यै यदीच्छेच्छुभमात्मनः॥
पुष्पाभावे यजेद् पत्रैः पत्राभावे तु तत्फलैः।
अक्षतैर्वा जलैर्वापि न पूजां व्यतिलङ्घयेत्॥

---

'नागवल्लभ' शब्द का अर्थ है—नागचम्पक। 'स्वयं विकसित शब्द का अर्थ है—पुरुष के द्वारा विकसित।

हे देवेशि ! माघ के मास में पूजा के योग्य बारह पुष्प हैं। कुन्द कुरुवक ( लालझिन्टी ) झिन्टी केतक, निचुल ( वेतफूल ), नील ( नीलझिन्टी ) बिकट, शीर्ष ( कृष्ण गुरु पुष्प ) भृङ्गराज, क्षुद्रक ( कण्टकारि फूल ) बकुल तथा रञ्जन—माघ मास छोड़कर अन्य महीनों में कभी भी देवी को अर्पण नहीं करना चाहिए। अक्षत के द्वारा विष्णु की पूजा मत करना। तुलसी के द्वारा गणेश को, दूर्वा के द्वारा दुर्गा का एवं बेल पत्ता के द्वारा सूर्य की पूजा नहीं करना चाहिए। दुर्गा पूजा में दूर्वा निषिद्ध है इस लिये कहा गया है। दुर्गा पूजा में श्वेतदूर्वा निषिद्ध है।

यामल तन्त्र में यही कहा गया है—'यदि मानव अपनी शुभ इच्छा करता है, तब रक्तवर्ण ( लाल ) कुन्द, श्वेत दूब एवं नील कुरुन्टक (झिण्टी) महादेवी को प्रदान न करें। पुष्प के अभाव में पत्र समूहों के द्वारा, पत्र के अभाव में उसके फल के द्वारा, फल के अभाव में अक्षत के द्वारा, उसके अभाव में जल के द्वारा पूजा न करें। किन्तु पूजा का कभी भी लङ्घन न करें ( अर्थात् नहीं छोड़ना )।

शिवे विवर्जयेत् कुन्दमुन्मत्तञ्च हरेस्तथा ।
देवीनामर्कमन्दारौ सूर्यस्य तगरं तथा ॥

देवीनामिति आद्येतरदेवीनामित्यर्थः । अर्कपुष्पैराद्यापूजायाः प्राशस्त्यकथनात्, "सहस्रं त्वर्काणामिति" कर्पूरादिस्तवाच्च । तगरं काष्ठतगरमित्यर्थः ॥

शिवपूजायां यामले—

बकुलं मालतीं जातीं कुन्दं शेफालिकां जवाम् ।
न दद्याच्च महादेवे यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥
मालती मल्लिका जाती यूथिका माधवी तथा ।
तगरं कर्णिकारश्च द्रोणश्चोत्पलचम्पकौ ॥
अशोकः कुमुदश्चैव शेफालिकाकदम्बकौ ।
केतकी वनमाला च कुसुम्भकिंशुकौ तथा ॥
कह्लारबकुलं चैव लवङ्ग नागकेशरौ ।
एतान्यपि प्रियाणि स्युर्न पत्रैरर्चयेच्छिवाम् ॥
जवाभिश्चैव गन्धाढ्यैर्दूर्वया श्रीफलच्छदैः ।
विना वै दूर्वया देवीपूजा नास्ति च कर्हिचित् ॥

---

शिव के पूजा में कुन्द, हरि के पूजा में उन्मत्त धत्तूरा ( धुस्तूर ), देवी के पूजा में अर्क तथा मन्दार, सूर्य के पूजा में तगर पुष्प का वर्जन करना अर्थात् उन सभी पुष्पों के द्वारा उन उन देवता की पूजा मत करना। 'देवीनां' यह वाक्य आद्या भिन्न देवी परक अर्थात् आद्या भिन्न देवी पूजा में अर्क तथा मन्दार पुष्प वर्जनीय है। क्योंकि अर्क पुष्पों के द्वारा आद्या की पूजा का प्राशस्त्य कहा गया है। 'सहस्रं त्वर्काणां' इत्यादि कर्पूरादि स्तव में भी अर्कपुष्प के द्वारा ही पूजा कही गयी है। 'तगरं अर्थात्—काष्ठतगर है।

शिवपूजा के सम्बन्ध में यामल तन्त्र में कहा गया है—'यदि अपनी शुभ इच्छा करते हो, तब बकुल, मालती, जाती, कुन्द, शेफालिका, जवा पुष्प महादेव को मत देना। मालती, मल्लिका, जाती, यूथिका, माधवी, तगर, कर्णिकार, द्रोणपुष्प, उत्पल, चम्पक, अशोक, कुमुद, शेफालिका, कदम्ब, केतकी, वनमाला, कुसुम्भ, किंशुक, कह्लार, बकुल, लवङ्ग, नागकेशर इन सभी पुष्प भी देवी को प्रिय है। पत्र समूहों के द्वारा शिव की पूजा मत करना। परन्तु गन्धयुक्त जवापुष्प, दूर्वा अथवा श्रीफल पत्र ( बेलपत्र ) के द्वारा पूजा करना चाहिए। दूर्वा को छोड़कर किसी भी स्थल में देवी की

तस्माद दूर्वा ग्रहीतव्या सर्वपुष्पमयी हि सा।
देवेभ्यः सर्वगन्धाढ्यमभावे तुलसीदलम् ॥
लस्या पूजयेद् देवान् नात्र कार्या विचारणा।
विना तुलस्या स्नानादि श्राद्धं यज्ञश्च न प्रिये ॥
सर्वञ्च निष्फलं प्राहुः सर्वत्रैवं विनिश्चितम्।
दूर्वा वा तुलसी तस्मात् ग्रहीतव्या च साधकैः ॥
सुन्दरी भैरवीकाली ब्रह्मविघ्न विवस्वताम्।
तुलसीर्वाजता पूजा सा पूजाऽविफला भवेत् ॥

**तुलसीपत्रैः शक्तेरर्चनम्**

शक्तिविषये यामले—
सावित्रीं च भवानीं च दुर्गादेवीं सरस्वतीम्।
योऽर्चयेत् तुलसीपत्रैः सर्वकामैः समृध्यते ॥

यामले—
रात्रावासां तु पूजायां तुलसीं वर्जयेत् सदा।
तुलसीघ्राणमात्रेण क्रुद्धा भवति चण्डिका ॥
तुलसी ब्रह्मरूपा च सर्वदेवमयी शुभा।

---

पूजा नहीं होती है। अतएव पूजा में दूर्वा का ग्रहण करना चाहिए। इसलिये कि वह सभी पुष्पों का स्वरूप है। इस सभी के अभाव होने पर समस्त गन्धयुक्त तुलसीदल देवताओं को देना चाहिए। तुलसी के द्वारा देवताओं की पूजा करना; इस स्थल पर विचार नहीं करना चाहिए। हे प्रिये ! तुलसी को छोड़कर स्नानादि कार्य, श्राद्ध तथा यज्ञ नहीं होता है। यह सभी ही निष्फल हैं ऐसा पण्डितगण कहते हैं। सर्वत्र ही इसी प्रकार निश्चित हुआ है। अतएव कर्तृक पूजा में दूर्वा अथवा तुलसीपत्र ग्रहणीय है। सुन्दरी, भैरवी, काली, ब्रह्मा, विघ्न तथा सूर्य को तुलसी वर्जित जो पूजा है, वह पूजा सफल होती है। यामल तन्त्र में शक्ति के विषय में कहा गया है–'जो व्यक्ति सावित्री, भवानी, दुर्गा देवी तथा सरस्वती की तुलसीपत्र के द्वारा अर्चना करता है, वह अपने सभी काम्यफल के द्वारा समृद्ध होता है।

यामल तन्त्र में कहा गया है–'रात्रि में किन्तु इन देवताओं की पूजा में सर्वदा तुलसी पत्र का वर्जन करना चाहिए। तुलसी के आघ्राण मात्र से ही चण्डिका क्रुद्धा होती है। शुभदायिनी तुलसी ब्रह्मस्वरूपा तथा सर्वदेवमयी है।

सर्वदेवमयो सा तु गणेशस्य प्रिया नहि ॥
लक्ष्मीदेव्याश्चाप्रिया हि तारादेव्यास्तथैव च ।
अंगुष्ठतर्जनी योगैर्दक्षिणे पुष्पपातनम् ॥
पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् ॥
दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पयेत् ।
पुष्पाञ्जलिं विना देवि ! तथोत्पन्नं तथार्पयेत् ॥

## पुष्पादिचयनकालः

यामले—

स्नानं कृत्वा तु ये केचिद् पुष्पं गृह्णन्ति वै द्विजाः ।
देवतास्तन्न गृह्णन्ति न चापि पितरस्तथा ॥

एतत् तु मध्याह्नस्नान परम् । प्रातःस्नानान्तरं तु पुष्पादिचयनं कर्तव्यमिति साम्प्रदायिकाः । तन्त्रे—

स्नात्वा मध्याह्नसमये न छिन्द्यात् कुसुमं बुधः ।
तत्पुष्पैरर्चयन्देवीं निरये परिपच्यते ॥

---

सर्वदेवमयी होने पर भी वह गणेश को प्रिय नहीं है । लक्ष्मीदेवी एवं तारा देवी को भी प्रिय नहीं है ।

अगुष्ठ तथा तर्जनी अंगुलि के द्वारा देवता के दक्षिण में पुष्प दान करें । पुष्प, पत्र अथवा फल अधोमुख इष्ट नहीं है अर्थात् अधोमुख में मत देना; अधोमुख देने से दुःखप्रद कहा गया है । पुष्पादि जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार से अर्पण करें । हे देवि ! पुष्पाञ्जलि को छोड़कर पत्र पुष्पादि जिस प्रकार उत्पन्न होता है, उसी प्रकार से अर्पित करें ।

### पुष्पों का चयन

यामल तन्त्र में कहा गया है—'जो कोई द्विज स्नान करके यदि पुष्प चयन करते हैं, तब देवता वह पुष्प ग्रहण नहीं करते हैं, एवं पितृगण भी वह पुष्प ग्रहण नहीं करते ।' इस वचन में स्नान शब्द मध्याह्न स्नान परक है अर्थात् मध्याह्न स्नान तात्पर्य में प्रयुक्त हुआ है । साम्प्रदायिकगण कहते हैं—प्रातः स्नान के बाद पुष्प चयन किया जा सकता है । तन्त्रों में कहा गया है—'पण्डित व्यक्ति मध्याह्न काल में स्नान करके पुष्प चयन न करें । वह पुष्प अर्थात् मध्याह्न स्नान के बाद चयित पुष्प के द्वारा देवी की अर्चना करके

देवीत्युपलक्षणम् । नान्यदेवानपि यजेदिति ।

प्रातःस्नानादिकं कृत्वा पुष्पाण्यपि समाहरेत् ।
तत्पुष्पैरर्चयन्देवीं स पापैर्मुच्यते क्षणात् ॥

देवीत्युपलक्षणमन्यदेवानपि अर्चयेदिति ।

न पुष्पच्छेदनं कुर्याद्देवार्थं वामहस्ततः ।
न दद्यात्तेन तेभ्यो वा संस्थाप्य वामहस्ततः ॥

## धूपप्रकरणम्

अगुरूशीरगुग्गुलुशर्करामधुचन्दनैः ।
सामान्यः सर्वदेवानां धूपोऽयं परिकीर्तितः ॥
सर्वेषामेव धूपानां दुर्गायाः गुग्गुलुः प्रियः ।
घृतयुक्तो विशेषेण सततं प्रीतिवर्धनः ॥
धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याऽभ्यर्च्य हृदाणुना ।
अस्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन् गुग्गुलुं दहेत् ॥
धूपस्थानं समभ्यर्च्य तर्जन्या वामया स्पृशन् ।

---

नरक में पुनः पुवः गमन करेगा । "देवी" यह पद उपलक्षण है अर्थात् अन्य देवता की भी उस पुष्प के द्वारा अर्चना न करें । वह साधक जो प्रातः स्नानादि करके यदि पुष्प समूह संग्रह करता है और उस पुष्प के द्वारा देवी की अर्चना करता है, तब तत्क्षणात् वह पापों से मुक्त हो जाता है । यह 'देवी' पद उपलक्षण है, अर्थात् अन्य देवताओं की भी उस पुष्प के द्वारा अर्चना करें । देवताओं के लिये बाँये हाथ के द्वारा पुष्प चयन न करें, एवं बाँये हाथ के द्वारा उन देवताओं को पुष्प नहीं देना चाहिए । बाँये हाथ में पुष्प रखकर दक्षिणहस्त के द्वारा भी नहीं देना चाहिए ।

### धूपप्रकरण

अगुरु, उशीर ( बेना का मूल ), गुग्गुलु, शर्करा, मधु तथा चन्दन द्वारा जो षडङ्ग धूप होता है—वह समस्त देवताओं के लिये साधारण धूप कहकर कीर्त्तित हुआ है । सभी धूप द्रव्य के मध्य में दुर्गा को गुग्गुलु अत्यन्त प्रिय है । विशेषतः वह घृतयुक्त होने पर सदा सर्वदा प्रीतिवर्द्धक होता है । धूप के पात्र को अस्त्र मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण करके 'नमः' मन्त्र के द्वारा अर्चना करके अस्त्र ( फट् ) मन्त्र के द्वारा पूजित घण्टा को बजाते बजाते गुग्गुलु को जलाना चाहिए । उसके बाद धूपपात्र की अर्चना करके बाँये हाथ के

जयध्वनि ततो मन्त्रमातः स्वाहेत्युदीरयन् ॥
अभ्यर्च्य वादयन् घण्टां तैर्धूपैर्धूपयेत्ततः ।
मध्यमानामिकाभ्याञ्च मध्यपर्वणि देशिकः ॥
अंगुष्ठाग्रेण देवेशि ! धृत्वा धूपं निवेदयेत् ।
उत्तोल्य मूर्ध्नि पर्यन्तं घण्टावादेन धूपकम् ॥
धूपयेदाज्यसंमिश्रं नीचैर्देवस्य देशिकः ।
न भूमौ वितरेद् धूपं नासेन न घटे तथा ॥
यथा तथाधारगतं धृत्वा तं विनिवेदयेत् ।
राशीकृतैर्न चैवात्र त्वेतैर्धूपैर्विधूपयेत् ॥
तुषाग्निवत् तथा कृत्वा न तत्फलमवाप्नुयात् ।

## दीपप्रकरणम्

न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपस्नेहघृतादिकान् ।
दत्त्वा मिश्रीकृतं स्नेहं तमिस्रं नरकं व्रजेत् ॥

---

तर्जनी अंगुलि के द्वारा घण्टा को स्पर्श करके 'जयध्वनि मन्त्र मातः स्वाहा' इसका उच्चारण करके पूजा करें और घण्टा बजाते बजाते उन धूपों के द्वारा देवी को धूपित करें ।

हे देवेशि ! उसके बाद साधक मध्यमा, अनामिका तथा अंगुष्ठ के द्वारा मध्यपर्व में धूप धारण करके निवेदन करें । साधक घण्टावाद्य के साथ देवता के मस्तक तक घृतयुक्त धूप को उत्तोलन करके पुनः देवता के नीचे लाकर धूपित करें । जमीन पर धूप न दें किंवा आसन में अथवा घट में भी धूप न दें । सुतरां जिस किसी प्रकार आधार में ही धूप को स्थापित करके निवेदन करें । देवता के निकट राशीकृत इन सभी धूपों के द्वारा अर्थात् एक साथ बहु धूप जलाकर धूपित न करें चाहिए । उसी प्रकार तुषाग्नि के समान करके भी अर्थात् अति धीरे जिससे धूप जलता है इस प्रकार करके भी धूप नहीं देना चाहिए । इससे धूपदान का फल नहीं मिलता है ।

## दीपप्रकरण

दीप स्नेह घृत आदि द्रव्य को एक साथ नहीं मिलाना चाहिए । तैल आदि स्नेह द्रव्य मिश्रित करके दान करने पर तमिस्र नामक नरक में गमन

वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा।
आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशालिनः॥
उच्चैरिति देवस्य मस्तकपर्यन्तमित्यर्थः।
उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्रीमूलयोगतः।
ततो नोराजनं कुर्याद्दशवारं तु दीपकैः॥
दातव्यः पात्रे दीपस्तु न तु भूमौ कदाचन।
कुर्वन्तं पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः॥
तमिस्रं नरकं घोरं प्राप्नोत्येव न संशयः।
सर्वंसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम्॥
अकार्यपादघातं च दीपतापं तथैव च।
तस्मात्कुर्वीत पृथिवीतापं नाप्नोति वै यथा॥
नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम्।
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्।
न तेन व्यवहारोऽपि कर्त्तव्यः साधकोत्तमैः॥

## नैवेद्यप्रकरणम्

नैवेद्यमाह—कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं घृतसंयुक्त पायसम्।

---

होता है। कर्पूर गर्भित वत्ती में घृत अथवा तिल तैल के द्वारा दीप को जलाकर उस सुगन्ध दीपसमूह को ऊपर की ओर दिखायें। 'उच्चैः' अर्थात् देवता के मस्तक तक। उसके बाद तीन प्रकार अर्थात् तीनबार उत्तोलन ( उठा ) करके गायत्री तथा मूलमन्त्र का योग करके दीपमाला के द्वारा दस बार नीराजन करना चाहिए। किसी एक पात्र में ही दीपदान करें; परन्तु जमीन पर कभी भी दीप मत रखें। जो मनुष्य पृथिवी का ताप सृष्टि करके दीप को उत्सर्ग करता है, वह घोर तमिस्र ( अन्धकार ) मय नरक को प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। सर्वंसहा वसुमती—अकारण पादघात एवं दीपपात यह दोनों ही सहन नहीं करती। सुतरां अतः पृथिवी को जिससे ताप न हो, उसी प्रकार कार्य करें। देवता के उद्देश्य से प्रदत्त दीप को कभी भी निर्वापित न करें अर्थात् न बुझावें। दीप को चुराने वाला अन्ध होता है, दीप को बुझाने वाला काना होता है। उसके साथ साधकोत्तम का व्यवहार कभी भी कर्त्तव्य नहीं है।

## नैवेद्यप्रकरण

नैवेद्य कह रहे हैं—कन्दुपक्व, घृतादि स्नेहपक्व, घृतसंयुक्त खीर, पयास

मनःप्रियश्च नैवेद्यं दद्याद्देव्यै पुनः पुनः ॥
कन्दुपक्वमिति मृष्टतण्डुल पृथुकादीनि देयानीत्यर्थः ।
यद्यद् हि वाञ्छितं वस्तु दद्द्यात्देवपूजने ।
बलप्रियं च नैवेद्यं दत्वा देवीं प्रपूजयेत् ॥
आत्माऽप्रियं च नैवेद्यं न दद्याद्देवपूजने ।
स्त्रीणां प्रीतिकरं यच्च तच्चापि विनिवेदयेत् ।
ताम्बूलस्य प्रदानेन देवी प्रीतिमती भवेत् ॥

**प्रदक्षिणविधिः**

शङ्खहस्तेन सर्वत्र सकृद् द्विर्वा प्रदक्षिणम् ।
वेष्टनश्च ततः कृत्वा प्रणमेद्दण्डवद् भुवि ॥
तथा त्रिधाचरेत् सम्यक् देवतायाः प्रदक्षिणम् ।
एकं चण्डयां रवौ सप्ते त्रीणि कुर्याद्विनायके ॥
चत्वारि केशवे कुर्याच्छिवे चार्द्धप्रदक्षिणम् ।
दक्षिणाद्वायवीं गत्वा दिशस्तस्याश्च शाम्भवीम् ॥

---

तथा मनः सन्तोष कर अन्य नैवेद्य देवी को बार बार देना चाहिए । 'कन्दूपक्वम' अर्थात् भूँना हुआ चावल अर्थात् भूँना चावल, भूँना चूड़ा आदि देवी को देना चाहिए। जो जो वस्तु उपलब्ध वाञ्छित निर्देशित होगा, देव पूजा में वह देना चाहिए ।

बालकों को प्रिय अर्थात् जो समस्त वस्तु शिशुओं को पसन्द है, उन सभी वस्तुओं का नैवेद्य देकर देवी की पूजा करना चाहिए। जो वस्तु अपने को अप्रिय लगता है, वह देवपूजा के नैवेद्य रूप में नहीं देना चाहिए। जो वस्तु स्त्रियों के लिये प्रीतिकारक है, वह भी निवेदन करना चाहिए। ताम्बूल दान के द्वारा देवी सन्तुष्ट होती हैं ।

प्रदक्षिण विधि

सभी स्थल में ही शङ्ख को हाथ में लेकर एक बार अथवा दो बार प्रदक्षिण करें। उसके बाद वेष्टन करके भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करें। इस प्रकार देवता का प्रदक्षिण सम्यग्रूप से तीन बार करें। यह साधारण नियम है। विशेष नियम इस प्रकार है—चण्डी के समीप एक बार, सूर्य के निकट सात बार, गणेश के निकट तीन बार, विष्णु के निकट चार बार तथा शिव के निकट अर्द्ध बार प्रदक्षिण करना चाहिए। दक्षिण देश से वायु कोण तक जाकर, उस वायुकोण से शाम्भवी दिग् अर्थात् उत्तर दिग् तक

ततोऽपि दक्षिणां गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत् ।
त्रिकोणोऽयं नमस्कारस्त्रिपुराप्रोतिवर्द्धनः ॥
नतिस्त्रिकोणाकारा च तारादेव्याः समीरिता ।
दर्शयन्दक्षिणं हस्तं मनसापि च दक्षिणः ॥
स च प्रदक्षिणो ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टये ।
पश्चात्कृत्वा तु यो देवं भ्रमित्वा प्रणमेन्नरः ।
तस्येह च फलं नास्ति न परत्र दुरात्मनः ॥

**प्रणामविधिः**

नमनं मानसं प्रोक्तं वाचिकं कायिकं तथा ।
त्रिविधश्च नमस्कारः कायिकश्चोत्तमः स्मृतः ॥
कायिकैश्च नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति नित्यशः ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा शिरसा स्पृश्य मेदिनीम् ॥
क्रियते यो नमस्कार उत्तमः कायिकः स्मृतः ।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ॥
वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ।

---

जाकर तथा वहाँ से दक्षिण दिग् में जाकर त्रिकोणाकार नमस्कार (प्रदक्षिण) करना कर्त्तव्य है। इस त्रिकोण नमस्कार ( प्रदक्षिण ) त्रिपुरा का प्रीतिवर्द्धक है। तारा देवी का भी त्रिकोणाकार नमस्कार विहित हुआ है। सभी देववृन्दों के सन्तोष के लिए मन ही मन दक्षिण अर्थात् उदार होकर दाहिने हाँथ को दिखाकर वेष्टन करें। इसी को प्रदक्षिण कहकर जानना चाहिए। जो व्यक्ति देवता को पीछे करके घूमकर प्रणाम करता है, उस दुरात्मा व्यक्ति को इहलोक एवं परलोक में कोई भी फल नहीं मिलता है।

**प्राणम विधि**

मानस, वाचिक तथा कायिक त्रिविध प्रकार का नमस्कार कहा गया है। नमस्कार तीन प्रकार का है, उनमें से कायिक नमस्कार उत्तम है। कायिका नमस्कार के द्वारा देवतागण सर्वदा ही तुष्ट सन्तुष्ट होते हैं। जानुद्वय के द्वारा भूमि को स्पर्श करके तथा मस्तक के द्वारा पृथिवी को स्पर्श करके जो नमस्कार किया जाता है; वह उत्तम कायिक नमस्कार कहा गया है।

दोनों पैर दोनों हाथ, दोनों जङ्घा, माथा, चक्षुः, वाक् एवं मनके द्वारा जो प्रणाम है, वह अष्टाङ्ग प्रणाम कहा गया है। दोनों पैर,

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसाऽपि च ॥
पञ्चाङ्गोऽसौ नमकस्कारः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ।
पुटीकृत्य करौ शीर्षे दीयते च यथा तथा ॥
अस्पृष्ट्वा शीर्षजानुभ्यां क्षितिं सोऽप्यधम स्मृतः ।
कायिकस्त्रिविधः प्रोक्तो ह्यष्टाङ्गादिविभेदतः ॥
अष्टाङ्ग उत्तमः प्रोक्तः पञ्चाङ्गो मध्यमः स्मृतः ।
अधमं करशीर्षाभ्यां नमस्कारं विवर्जयेत् ॥
अयमेव नमस्कारो दण्डवदिति नामतः ।
प्रणाम इति विज्ञेयः स पूर्वं प्रतिमादितः ॥
या स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्कृतिः ।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकी तूत्तमा स्मृता ॥
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्या क्रियते नतिः ।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद्वाचनिकः सदा ॥
यत्तु मानुषवाक्येन नमनं क्रियते सदा ।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारस्तु पार्वति ! ॥

---

दोनों हथेली, जानुद्वय, वक्षः तथा मस्तक के द्वारा जो प्रणाम है, वह पञ्चाङ्ग प्रणाम है। सभी स्थलों में प्रणामों की यह विधि कही गयी है। मस्तक तथा जानु के द्वारा भमि को स्पर्श न करके पुटित ( युक्त ) करद्वय मस्तक पर जैसे तैसे रूप में ठिकाने लगाने पर जो प्रणाम होता है, वह अधम कहा गया है। अष्टाङ्गादि भेदों में कायिक प्रणाम त्रिविध प्रकार का कहा गया है। तन्मध्य में अष्टाङ्ग प्रणाम सर्वोत्तम कहा गया है। पञ्चाङ्ग प्रणाम मध्यम है। मस्तक तथा हस्त के द्वारा अधम नमस्कार का त्याग करना चाहिए। यह नमस्कार 'दण्डवत्' तथा 'प्रणाम' इस नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा जानना चाहिए। यह प्रणाम प्रतिमादि के पूर्व में (सामने) करना चाहिए। कर्त्तव्य है। भक्तिभाव से गद्य पद्य घटित वाक्यों के द्वारा जो नमस्कार किया जाता है, वह वाचिक प्रणाम के बीच वह उत्तम कहा गया है। पौराणिक अथवा वैदिक मन्त्रों के द्वारा जो नमस्कार किया जाता है, वह वाचनिक नमस्कार सर्वदा मध्यम नमस्कार है। मनुष्यों के वाक्य के द्वारा जो नमस्कार अर्थात् मनुष्य रचित स्तोत्रादि के द्वारा जो नमस्कार किया जाता है, हे पार्वति ! उस वाचनिक नमस्कार को सर्वदा अधम कहकर जानना चाहिए।

## उपचारप्रकरणम्

अथोपचारान्कुर्वीत तन्त्रोक्तानासनादिकान् ।
आसनं कुसुमं दद्यात् स्वागतं कुशलं वदेत् ॥
देवस्य वामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम् ।
पौष्पं दारुमयं वास्त्रं चार्मं कौशं च तैजसम् ॥
षड्विद्यं चासनं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ।
नमोऽन्तं पादयोः पाद्यं शिरोमन्त्रेण देशिकः ॥
अर्घ्यं दद्यात्ततो मूर्ध्नि स्वधेत्याचमनं मुखे ।
स्वधेत्याचमनीयञ्च त्रिवारं मुखपङ्कजे ॥
स्वधान्तेनैव मनुना मधुपर्कं मुखाम्बुजे ।
स्नानं गन्धं हृदा दद्यात् पुष्पाणि वौषडित्यपि ॥
स्नानार्थमुदकं दद्यात्सर्वाङ्गे परमेश्वरि ! ।
तायेन प्रोक्षणं कृत्वा दुकूलं विनिवेदयेत् ॥
स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ।
सर्वालङ्करणं दद्याद्यत्र यत् तु विराजते ॥

---

### उपचार प्रकरण

इसके अनन्तर तन्त्रोक्त आसनादि उपचार समूहों का आयोजन करना चाहिए। कुसुमरूप आसन देना चाहिए। कुशल प्रश्नरूप स्वागत सम्भाषण करना चाहिए। देवता के वामभाग में मूलमन्त्र के द्वारा आसन देना चाहिए। पुष्पनिर्मित, काष्ठनिर्मित, वस्त्रनिर्मित, मृगचर्मनिर्मित, कुशनिर्मित तथा रजतादि धातुनिर्मित, देवता के प्रीतिकारक यह छ प्रकार के आसन कहे गये हैं। उपासक 'नमोऽस्तु' मन्त्र से पादद्वय में पाद्य को निवेदन करें। उसके बाद शिरोमन्त्र से अर्थात् 'स्वाहान्त' मन्त्र से मस्तक पर अर्घ्य दें। उसके बाद मुख में 'स्वधान्त' मन्त्र से आचमन दें। मुखपद्म में स्वधान्त मन्त्र से तीन बार आचमन दें। उसके बाद स्वधान्त मन्त्र से मुख में मधुपर्क दें। स्नानीय जल तथा गन्ध नमोऽस्तु मन्त्र से एवं पुष्प वौषडन्त मन्त्र से निवेदन करें।

हे परमेश्वरि ! स्नानार्थ जल सर्वाङ्ग में दान करें। जल के द्वारा वस्त्र प्रोक्षण करके निवेदन करें। स्नानीय जल, वस्त्र तथा नैवेद्य प्रदत्त होने पर आचमन दें। शरीर में जो अलङ्कार जहाँ शोभा पाता है, सर्वाङ्ग में उन

प्रतिमादौ यथायोग्यं गात्रे दद्यात्तु तत्वगः।
सर्वाङ्गे चन्दनं दद्यात्पुष्पं दद्याच्छिरोपरि ॥
नमोऽन्तकौ धूपदीपौ सव्यदक्षक्रमेण तु।
दद्यात्तु योग्यं पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम् ॥
नैवेद्यञ्च सुधान्तं हि कल्पयामि नमो वदेत्।
निवेदयामि नैवेद्यं यद्द्रव्यैः परिकल्पितम्।
ततो निवेदयामीति सर्वं दद्यान्महेश्वरि ॥

## नैवेद्यादीनामाच्छादनावश्यकत्वम्

गान्धर्वे—

सुनैवेद्यादिकं यत्तु गन्धपुष्पादिकञ्च यत्।
सर्वस्याच्छादनं कार्यं यावदावाहयेत्पराम् ॥
राक्षसाः प्रतिगृह्णन्ति निराच्छादनकं यतः।
देव्या नैवेद्यदान्ते तु यो विधिः स तु कथ्यते।
असंस्कृतं न दातव्यं देवताभिर्न गृह्यते ॥

---

सभी अलङ्कारों को दें। तत्त्वदर्शी साकक प्रतिमाओं आदि के अङ्गों में यथा योग्य स्थान में अलङ्कारों को प्रदान करें। सर्वाङ्ग में चन्दन दें तथा मस्तक पर पुष्प दें। देवता के बामभाग तथा दक्षिण में नमोऽन्त मन्त्र से यथाक्रम से धूप तथा दीप दें। देवता के सामने भक्ष्य भोज्यादि तथा उपयुक्त नैवेद्य को निवेदन करें। सुधा ( वं ) मन्त्र के अन्त में 'नैवेद्यं कल्पयामि नमः' कहना चाहिए। अथवा जो द्रव्य समूहों के द्वारा नैवेद्य परिकल्पित होगा, वह 'नैवेद्यं निवेदयामि' मन्त्र से निवेदन करें। हे महेश्वरि ! उसके बाद अन्य सभी उपचार द्रव्य 'निवेदयामि' इस मन्त्र से निवेदन करें।

### नैवेद्य आदि को ढकने की आवश्यकता

गन्धर्व तन्त्र में कहा गया है—उत्तम जो नैवेद्य आदि अथवा उत्तम जो गन्ध पुष्पादि देवताओं के आवाहन तक इन सभी वस्तुओं का आच्छादन (ढक्कन) कर्त्तव्य है, क्योंकि आच्छादन शून्य वस्तु को राक्षसगण ग्रहण करते हैं। देवता के नैवेद्य दान में जो विधि है, वह कहा जा रहा है। असंस्कृत नैवेद्य देवता को नहीं देना चाहिए, देवतागण वह ग्रहण नहीं करते हैं।

## नैवेद्यदानविधिः

संस्कारमाह यामले—

आनीय देवीपुरतः संप्रोक्ष्य चार्घ्यवारिणा।
अस्त्रमन्त्रेण चाभ्युक्ष्य धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्॥
तस्योपरि मूलमन्त्रमष्टवारं जपेत् सुधीः।
चक्रमुद्रां विधायैव चिन्तयेत्तत्सुरक्षितम्॥
यं मन्त्रैः शोषयेद् दोषं रं मन्त्रैर्दाहयेच्च तम्।
वं मन्त्रैश्चामृतं भाव्यं ठं मन्त्रैः प्लावयेच्च तत्॥
सर्वत्र भक्ष्यद्रव्येषु एवं संस्कारमाचरेत्।
अमृतोऽपस्तरणमसि स्वाहेति जलमर्पयेत्॥
'अमुकीदेव्यै एतज्जलं ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'

इति मन्त्रेण दद्यात्।

आपोशानं जलं दत्त्वा महादेव्यै निवेदयेत्।
इदमन्नं सोपकरणं महादेव्यै स्व(सु) धाति च॥

प्रणवाद्यैरुक्तमन्त्रैर्देवीवक्त्रे हुनेत् गुरुः॥ गुरुरित्युपलक्षणम्

---

### नैवेद्यदान विधि

यामल तन्त्र में नैवेद्य का संस्कार कह रहे हैं—देवता के सम्मुख नैवेद्य लाकर अर्घ्य जल के द्वारा उसे प्रोक्षण करके अस्त्र ( फट् ) मन्त्र के द्वारा अभ्युक्षण करके धेनुमुद्रा दिखाना चाहिए। सुधी साधक उस नैवेद्य के ऊपर आठबार मूलमन्त्र का जप करें। चक्रमुद्रा दिखाकर उस नैवेद्य को सुरक्षित करके चिन्ता करना चाहिए। 'यं' मन्त्र से दोष का शोषण करें, 'रं' मन्त्र के द्वारा उस दोष को दग्ध करें। 'वं' मन्त्र से उस नैवेद्य को अमृत-स्वरूप में भावना करें। 'ठं' मन्त्र से उस नैवेद्य में अमृत प्लावित भावना करना चाहिए। सभी भक्ष्य-द्रव्यों का इस प्रकार संस्कार करना चाहिए। उसके बाद 'अमृतोऽपस्तरणमसि स्वाहा' इस मन्त्र से जल देना चाहिए। 'अमुकी देव्यै एतज्जलं ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' इस मन्त्र से जल देना चाहिए। आपोशान जल देकर महादेवी को सोपकरण अन्न निवेदन करें। "इदमन्नं सोपकरणं महादेव्यै स्वधा"—प्रणवादि उक्त मन्त्र में गुरु देवी के मुख आहुति निवेदन करें। 'गुरु' यह जो पद साधक उपासकों के लिये उपलक्षण अर्थात् गुरु पद यहाँ उपासक तात्पर्य में प्रयुक्त हुआ है।

अग्रे देवस्य हस्ताभ्यामुत्थाप्य मुखसन्निधौ ।
जगन्मातर्जगद्धात्र्यमुकि देवि ततः परम् ॥
निवेदयामि यत्किञ्चिद् जुषा(गृहा)णेदं हविर्मम ।
अनेन मनुना देवि ! निवेद्य प्रणवादिना ॥
वामे वा दक्षिणे वापि पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत् ।
अंगुल्यः कुटिलीभूता विरलाग्राः परस्परम् ।
ग्रासमुद्रा समाख्याता सव्ये पाणौ नियोजयेत् ॥

## प्राणादिमुद्रा

प्राणापान समानाश्चोदानव्यानौ च वायवः ।
समानः पञ्चमो ज्ञेयः प्राणाः पञ्च समीरिताः ॥
प्राणमुद्रा समाख्याता प्राणे हवनकर्मणि ।
तर्जनी मध्यमांगुष्ठैस्त्रिभिरेकीकृतं यदि ॥
स्यादपानाहुतौ मुद्रा तथाऽनामिकमध्यमे ।
कनिष्ठेन समायुक्ता नियुक्ता व्यानहोमके ॥
निष्कनिष्ठेन या मुद्रा सोदान हवने स्मृता ।

---

हे देवि ! देवता के सामने मुख के समीप अपने दोनों हाथों से नैवेद्य को उठाकर 'जगन्मात जगद्धात्रि ! अमुकि देवि ! निवेदयामि यत् किञ्चिद् जुषाणेदं हविर्मम' प्रणवादि इस मन्त्र से वामभाग में अथवा दक्षिण भाग में नैवेद्य को निवेदन करके पञ्चप्राणमुद्रा को दिखाना चाहिए। वक्राकार तथा अग्रभाग में परस्पर असंलग्न अंगुलि समूहों को ग्रासमुद्रा कहा गया है। वाम हाथ में इस ग्रासमुद्रा को दिखाना चाहिए।

## प्राणादिमुद्रा

प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—यह पाँच प्रकार के प्राणवायु कहे गये हैं। उसमें से समान वायु को पञ्चम वायु जानना चाहिए। प्राणवायु में आहुति कार्य में प्राणमुद्रा कहा गया है। तर्जनी, मध्यमा तथा अंगुष्ठ—ये तीन यदि एकत्र होते हैं, तब प्राणमुद्रा होता है। अनामिका तथा मध्यमा उसी प्रकार अर्थात् अंगुष्ठ संयुक्त होने से अपानाहुति मुद्रा होता है अर्थात् अपानाहुति में अपान मुद्रा को दिखाना चाहिए। अनामिका तथा अंगुष्ठ कनिष्ठा संयुक्त तीनों से व्यान होम मुद्रा होती है। कनिष्ठा रहित जो मुद्रा है,

सर्वाभिः संस्कृता मुद्रा समानाहुतिकर्मणि ॥
क्षणं विलम्ब्य देव्या तु स्वीकृतं तद् विभावयेत् ।
यावद् भुङ्क्ते हविर्देवि ! तावन्मूलं जपेत्सुधीः ॥
ततो मूलेन सलिलं दत्त्वा हवींषि साधकः ।
तस्मात्तेजः समुन्नत्यै दत्त्वाऽपोशानमुत्तरम् ॥

'एतज्जलम् अमृतापिधानमसि स्वाहेति दद्यात् ।

ततः आचमनं तोयं दद्याच्च मुखवासनम् ।
स्थानं विशोध्य तन्मन्त्री ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥
उक्तेष्वेतेषु द्रव्येषु यत्किञ्चिद् दुर्लभं यदि ।
तत्कल्पनीयं देवेशि मनसा भावनेन तु ।
सर्वत्रैव जलं देयमुप चारान्तरान्तरे ॥

### द्रव्याणां निर्माल्यताकालः

द्रव्यविशेषाणां निर्माल्यतानियममाह योगिनीहृदये—

मणिमुक्तासुवर्णानि देवे दत्तानि यानि वै ।
न निर्माल्यं द्वादशाब्दं ताम्रपात्रं तथैव च ॥

---

वह उदान होम मुद्रा कहा गया है । समस्त अंगुलियों के योग से जो मुद्रा रचित होती है, उसे समानाहुति मुद्रा कहा गया है । अर्थात् समानाहुति में समानमुद्रा को दिखाना चाहिए । कुछ समय बाद देवी के द्वारा वह नैवेद्य गृहीत हुआ है, इस प्रकार की चिन्ता करना चाहिए ।

हे देवि ! देवता जब तक हविः ( नैवेद्य ) का भोजन करते हैं, सुधी साधक तब तक मूलमन्त्र का जप करें । उसके बाद साधक मूलमन्त्र से जल तथा हविः देकर उसमें से तेजः वृद्धि के लिये बाद में आपोशान जल देकर 'एतज्जलम् अमृतापिधानमसि स्वाहा' इस मन्त्र से जल दें । उसके बाद आचमनीय जल तथा मुखवास ताम्बूल दें । मन्त्री उस स्थान को विशुद्ध ( साफ ) करके ताम्बूल निवेदन करें ।

हे देवेशि ! कहे गये इन सभी द्रव्यों में से यदि कोई द्रव्य दुर्लभ होता है, तब मन के द्वारा भावना से ही उस द्रव्य की कल्पना करनी चाहिए । सभी स्थलों में ही एक एक उपचार दान के बीच बीच में जल देना चाहिए ।

### द्रव्यों के निर्माल्यता का कालनियम

योगिनी हृदय तन्त्र में द्रव्य विशेष के निर्माल्यता का नियम कह रहे हैं— 'देवता को जो मणि, मुक्ता तथा सुवर्ण आदि प्रदत्त हुये हैं, वह बारह वर्ष

पटी शाटी च षन्मासं नैवेद्यं दत्तमात्रतः ।
मोदकं कृषरं चैव यामार्द्धेन च सुन्दरि ॥
पट्टवस्त्रं त्रिमासाच्च यज्ञसूत्रं त्वहः स्मृतम् ।
यावदुष्णं भवेदन्नं परमान्नं तथैव च ॥
मस्तकं रुधिरं चैव अहोरात्रेण पार्वति ! ।
मुहूर्त्तं दधि दुग्धं च त्वाज्यं यामेन शङ्करि ! ॥
करवीरमहोरात्रं बिल्वपत्रं तथैव च ।
जवारक्तं च निर्माल्यं भवेत् सार्द्धैकयामके ॥
यामार्द्धेनाप ईशानि ! ताम्बूलं दत्तमात्रतः ।
न निर्माल्यश्च दाडिम्बं तथा बिल्वफलं प्रिये ! ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां मुपचारादि निर्णयो नाम चतुर्दशोल्लासः ॥ १४ ॥

---

तक निर्माल्य नहीं होता है । ताम्रपत्र भी उसी प्रकार अर्थात् बाहर संवत्सर तक निर्माल्य नहीं होता है । पटी ( वस्त्र, कपड़ा ) तथा शाटी छह मास तक निर्माल्य नहीं होता है । नैवेद्य देने पर ही निर्माल्य होता है ।

हे सुन्दरी ! मोदक तथा कृषर ( खिचड़ी ) यामार्द्ध में ही निर्माल्य होता है । पट्टवस्त्र तीन मास के बाद निर्माल्य होता है । यज्ञसूत्र एक दिन मात्र अनिर्माल्य कहा गया है । अन्न जब तक उष्णा ( गरम ) रहता है, तब तक अनिर्माल्य है । परमान्न भी उस प्रकार है ।

हे पार्वति ! मस्तक तथा रुधिर अहोरात्र तक ( एक दिन रात ) तक अनिर्माल्य रहता है । हे शङ्करि ! एक मुहूर्त्त तक दधि तथा दुग्ध एवं एक याम ( प्रहर ) तक आज्य ( घृत ) अनिर्माल्य रहता है । करवीर पुष्प तथा बेलपत्ता अहोरात्र तक अनिर्माल्य रहता है । लाल अड़ौल डेढ़ प्रहर में निर्माल्य हो जाता है । हे ईशानि ! आधा प्रहर में जल निर्माल्य होता है । ताम्बूल दान मात्र में ही निर्माल्य होता है । हे प्रिये ! दाड़िम्ब निर्माल्य नहीं होता । बेल का फल भी उसी प्रकार अर्थात् निर्माल्य नहीं होता है ।

श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत शाक्तानन्दतरङ्गिणी के मुपचारादि निर्णय नामक चतुर्दशो उल्लासः समाप्त ।

# पञ्चदशोल्लासः

## अथ शाक्ताचारः

कुलचूडामणौ—देव्युवाच:

श्रृणुपुत्र ! रहस्यं मे समयाचार सम्भवम् ।
येन हीनां न सिद्धयन्ति जन्मकोटिशतैरपि ॥
अनित्यकर्म संत्यागी नित्यानुष्ठान तत्परः ।
परस्यां देवतायान्तु सर्वकर्म निवेदयेत् ॥
वृथा न कालं गमयेद्युत क्रीडादिना सुधोः ।
नयेत् तु देवतापूजाजपयज्ञादिकर्मभिः ॥
अन्तः शाक्ता वहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः ।
सर्वदा विष्णु भावस्तु भवेत् साधकपुङ्गवः ॥
यदिपश्येत् कुलतरु प्रणमेत् साधकस्तदा ॥

---

### अथ शाक्ताचार

शाक्ताचार कुलचूड़ामणि तन्त्र में कहा गया है—'देवी बोलीं—हे पुत्र ! मेरे पास समयाचार सम्भूत रहस्य है उसे श्रवण करो। जिस समयाचार के रहित होने पर साधक शतकोटि जन्म में भी सिद्ध नहीं पाता। अनित्य अर्थात् काम्य कर्म के त्यागी एवं नित्य कर्म के अनुष्ठान में तत्पर साधक पर देवता में अपने समस्त कर्म को निवेदन करें। सुधी साधक द्यूतक्रीड़ादि के द्वारा वृथा समय को नष्ट न करें। किन्तु देवता की पूजा, जप तथा यज्ञादि कर्म के द्वारा काल को अतिवाहित ( व्यतीत ) करें। साधक श्रेष्ठ अन्तर में शाक्तभावापन्न एवं बाहर में शैवभावापन्न, सभा में वैष्णवभावापन्न कहकर कीर्तित हुआ है। सर्वदा अन्तर में विष्णुभाव परायण होना चाहिए। साधक यदि कुलवृक्ष को देखता है, तभी उसे प्रणाम करें।

## कुलवृक्षाः

कुलवृक्षमाहतन्त्रे—

अशोकः केशरो बिल्वःकर्णिकारश्चूतस्तथा ।
नमेरुस्तथा प्रियालश्च सिन्धुवार कदम्बकौ ।
मरुवकश्चम्पकश्च बिल्वश्च द्वादश स्मृताः ॥

नमेरु रुद्राक्षः । पियालो वृक्षविशेषः । सिन्धुवारो निशुन्दाख्यया-ख्यातः । मरुवको झिण्टिका । एते द्वादश कुलवृक्षा ज्ञातव्याः ।

अन्यत्रापि—

श्लेष्माकः करञ्जाख्यो निम्बाश्वत्थ कदम्बकाः ।
बिल्वोऽशोकश्चम्पकश्च इत्यष्टौ कुलपादपाः ॥

श्लेष्मांतको बहेडावृक्ष इतिख्यातः ।

तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः सर्वेष्वेतेषु सर्वदा ।
न स्वपेत् कुलवृक्षाधोन चोपद्रवमाचरेत् ॥

यामले—

आरामे पर्वते चैव निर्जने शून्यमण्डपे ।
चतुष्पथे कलामध्ये यदि दैवाद् गतिर्भवेत् ॥

---

## कुलवृक्ष

तन्त्र में कुलवृक्ष कह रहे हैं—'अशोक, केशर ( नागकेशर ), विल्व, कर्णिकार ( सोंदाल ), आम, नमेरु, पियाम, सिन्धुवार, ( निर्गुण्डो, नील शेफालिका ), कदम्ब, मरुबक ( झिण्टी ) चम्पक तथा विल्व ( बेल )—ये बारह प्रकार के कुलवृक्ष कहे गये हैं ।

नमेरु-अर्थात् रुद्राक्ष, पियाल-एक प्रकार का वृक्ष, सिन्धुवार-विशुन्दा, मरुवक-झिण्टिका, ये बाहर प्रकार के कुल वृक्ष हैं । अन्यत्र भी कहा गया है—'श्लेष्मातक ( बहेड़ा ) करञ्ज, निम्ब ( नीम ) अश्वत्थ ( पीपल ) कदम्ब, बेल, अशोक तथा चम्पक—ये आठ प्रकार के कुलवृक्ष हैं । श्लेष्मातक अर्थात्-बहेड़ा का वृक्ष । कुलयोगिनीगण सर्वदा इन सभी वृक्षों में वास करते हैं । कुलवृक्ष के नीचे कभी नहीं सोना एवं वृक्ष का किसी प्रकार अनिष्ट नहीं करना चाहिए ।

यामल तन्त्र में कहा गया है—'आराम से उपवन-बगीचे में पर्वत पर, निर्जन प्रदेश में, शून्यमण्डप में चतुष्पथ पर अथवा कला ( स्त्रियों के )

क्षणं स्थि(ध्या)त्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद् यथासुखम्
चतुष्पथे देव्याः पीठे इत्यर्थः ।

तथाचोक्तं यामले—

चतुष्पथः स विज्ञेयो यत्र स्यात् तारिणी शुभा ।

तरणकर्तृत्वात् तारिणीत्यर्थः ॥

## पीठनिरूपणम्

पीठमाह गान्धर्वे—

कामरूपं महापीठं वाराणसीं ततः परम् ।
नेपालश्च महापीठं पौण्ड्रवर्द्धनकं तथा ॥
पुरस्थिरं महादेवि ! चरस्थिरमतः परम् ।
पूर्णशैलं महापीठं अर्बुदं च ततः परम् ॥
काश्मीरश्च तथा पीठं कान्यकुब्जमथो भवेत् ।
आम्रात केश्वरं पीठमेकाम्रश्च तथा शिवे ! ॥
तिस्रोत पीठमुद्दिष्टं कामकोटिमतः परम् ।
कैलासं भूतनगरं केदारं पीठमुत्तमम् ॥
श्रीपीठश्च तथोङ्कारं जालन्धरमतः परम् ।
मालवश्च कलान्तश्च देवमातृक मेव च ॥

---

मध्य में यदि दैवात् 'हठात्' गमन करता है, तब कुछ काल वहाँ अवस्थान करके मन्त्र का जप करके प्रणाम करके यथा सुख से अर्थात् इच्छानुसार सुख से गमन करना चाहिए। 'चतुष्पथ' अर्थात् देवी के पीठ स्थान पर। यामल तन्त्र में यही कहा गया है। यथा—'जहाँ शुभप्रदायिनी तारिणी अवस्थान करती हैं, वह चतुष्पथ है, ऐसा जानना चाहिए। तारिणी अर्थात् वह तरण उद्धार करती है, इसलिये तारिणी हैं।

### पीठनिरूपण

गन्धर्व तन्त्र में पीठ कह रहे हैं—हे महादेवी ! महापीठ कामरूप, वाराणसी, नेपाल, पौण्ड्रवर्द्धनक, पुरस्थिर, चरस्थिर, उसके बाद महापीठ पूर्णशैल, अर्बुद उसके बाद काश्मीर अनन्तर कान्यकुब्ज पीठ, आम्रातकेश्वर, एकाम्र—ये सभी पीठ हैं। हे शिवे ! त्रिस्रोतः भी पीठ कहे गये हैं। हे देवि ! उसके बाद कैलास, भूतनगर, मनोहर के द्वार पीठ, श्रीपीठ, ॐकारपीठ, अनन्तर जालन्धर, मालव, कुलान्तक तथा देवमातृका,

गोकर्णश्च तथा देवि ! मारुतेश्वर मेव च ।
अट्टहासं च विरजं राजगिरिमतः परम् ॥
पीठं कोल्वगिरिञ्चैव एलापुरमतः परम् ।
कालेश्वरं महापीठं प्रणवश्च जयन्तिकाम् ॥
पीठमुज्जयिनीं चैव क्षीरिकापीठमेव च ।
हस्तिनापुरकं पीठं पीठमुड्डीशमेव च ॥
प्रयागं चैव षष्ठीशं मायापुरजलेश्वरौ ।
मलयश्च महापीठं श्रीशैलं च तथा प्रिये ॥
मेरुगिरिं मेहेन्द्रश्च वामनश्च महेश्वरि ।
हिरण्यपुरकं पीठं महालक्ष्मीपुरं तथा ॥
उड्डीयानं महापीठं छायापुर (पीठ)मतः परम् ।
(पीठान्येतानि देवेशि ! शस्तानि जपकर्मसु ॥)

## पीठस्थानजपफलम्

फलमाह योगिनी हृदये—
वाराणस्यां सदापूजा सम्पूर्णफलदायिनी ।
ततस्त द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तम सन्निधौ ॥
ततऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारावत्यां विशेषतः ।
सर्वक्षेत्रेषु तीर्थेषु पूजा द्वाराबतीसमा ॥

---

गोकर्ण, मारुतेश्वर, अट्टहास, विरजा, राजगिरि, उसके बाद कोल्वगिरि, एलापुर, उसके बाद महापीठ कालेश्वर, प्रणव, जयन्तिका, उजयिनीपीठ, क्षीरिकापीठ हस्तिनापुरपीठ, उड्डीशपीठ, प्रयाग, षष्ठीश, मायापुर, जलेश्वर, महापीठ, मलय, श्रीशैल हे प्रिये ! हे महेश्वरि ! उसके बाद मेरुगिरि, महेन्द्र, वामन हिरण्यपुर पीठ, महालक्ष्मीपुर पीठ, उड्डीयान, छायापुर इन सभी को पीठस्थान जानना चाहिए। हे देवेशि ! जपकर्म में से सभी पीठ प्रशस्त हैं।

### पीठस्थान में जपफल

योगिनी हृदय में पीठस्थान का फल कह रहे हैं—वाराणसी पीठ में नित्य पूजा सम्पूर्ण फल को दान करता है। पुरुषोत्तम के समीप पूजा द्विगुण फलप्रद कहा गया है। विशेषतः द्वारावती क्षेत्र में उसका भी द्विगुण फल होता है यह कहा गया है। सभी तीर्थों में जो पूजा है, वह द्वारावती के

विन्ध्योशतगुणा प्रोक्तागङ्गायामपि तत्समा ।
आर्यावर्त्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्त्ते तथैव च ॥
विन्ध्यवत् फलदा प्रोक्ता प्रयागे पुष्करे तथा ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोया नदीतटे ॥
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता नदीकुण्डे च भैरवे ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता वाल्मीकीश्वर सन्निधौ ॥
तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदकुण्डके ॥
तत्समा कामरूपेतु सर्वत्रैव जले स्थले ।
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ॥
देवीक्षेत्रं कामरूपे विद्यतेऽन्यन्न तत्समम् ।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ॥
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता नदीकुण्डस्य मस्तके ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता दारुके शिवलिङ्गके ॥
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शैलपुत्र्याः स्वयोनिषु ।
ततःशतगुणं प्रोक्तं कामाख्या योनिमण्डलम् ॥

---

समान अर्थात् द्वारावती क्षेत्र में पूजा के समान है । विन्ध्य पर्वत में पूजा शतगुण फलप्रदा है, गङ्गा में भी पूजा तत् तुल्य (उसके समान) फलप्रदा है । आर्यावर्त्त में, मध्यप्रदेश तथा ब्रह्मावर्त्त में पूजा विन्ध्य पर्वत में पूजा के समान फलप्रदा है यह कहा गया है । प्रयाग में तथा पुष्कर क्षेत्र में उसके चारगुण फलप्रद कहे गये हैं । नदीकुण्ड में तथा भैरवकुण्ड में उसके चतुर्गुण हैं, वाल्मीकीश्वर के समीप एवं वहाँ के सिद्धेश्वरी योनि में पूजा करने से उससे भी द्विगुण फलप्रदा हैं यह कहा गया है । लौहित्य नद के कुण्ड में पूजा उससे भी द्विगुण फलप्रदा हैं । कामरूप में पूजा उसके समान है । देवभूमि कामरूप में जल और स्थलों में सर्वत्र ही देवीपूजा करना अत्यन्त प्रशस्त है । कामरूप देवी का क्षेत्र है, उसके तुल्य दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है । अन्यत्र देवी विरला अर्थात् किसी किसी स्थानों में ही रहतीं हैं, किन्तु कामरूप में प्रत्येक घर में रहती हैं । नदीकुण्ड के मस्तक पर पूजा करने से वह चतुर्गुण फलप्रदा है यह कहा गया है । दारुक क्षेत्र में शिवलिङ्ग के समीप पूजा द्विगुण फलप्रद कहा गया है । शैलपुत्री के अपने योनिक्षेत्र में पूजा से भी वह द्विगुण फलप्रद कहा गया है । कामाख्या योनिमण्डल में पूजा उससे

कामाख्यायां महामाया पूजां यदि सकृच्चरेत् ।
स चेहलभते कामं परत्र शिवरूपताम् ॥
एषु स्थानेषु देवेशि ! यदि दैवाद् गतिर्भवेत् ।
तदा पूजादिकं कृत्वा नत्वा गच्छेद् यथा सुखम् ॥

कलामध्ये कला प्रकृतिस्तस्याः समूहमध्ये गत्वा पूजादिकं कृत्वा नत्वा सुखं गच्छेदित्यर्थः ।

तथाचोक्तं समयातन्त्रे—

स्त्रीसमीपे कृता पूजा जपश्च परमेश्वरि ! ।
कामरूपाच्छतगुणोऽव्ययश्च समुदीरितः ॥

कुलार्णवेऽपि—

एकलिङ्गे श्मशानञ्च समूहं योषितामपि ।
नारीञ्च रक्तवसनां दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः ॥
गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं जम्बुकीं यमदूतिकाम् ।
कृष्णमार्जारभूकाकौ श्येनं क्षेमङ्करी तथा ॥
कुररञ्च नमस्कुर्यादिदं मन्त्रं पठेन्नरः ।

---

भी शतगुण फलप्रद कहा गया है। कामाख्या में साधक यदि एक बार भी महामाया का पूजा करता है, तब वह इस लोक के काम्यफल तथा परलोक के शिवरूपता ( शिव-सायुज्य ) को प्राप्त करता है। हे देवेशि ! इन सभी स्थानों में यदि दैवात् ( हठात् ) जाना हो, तब पूजा आदि करके प्रणाम करके सुख से अपने अभिलषित स्थानों में गमन करें।

"कलामध्ये" अर्थात्-कला है प्रकृति, उन सभी के बीच। "यदि दैवात् गतिर्भवेत्" इत्यादि वाक्यों का अर्थ है—वहाँ जाकर पूजादि करके प्रणाम करके सुख से गमन करें। समयातन्त्र में यही कहा गया है। यथा—हे महेश्वरि ! स्त्रीगणों के समीप अनुष्ठित पूजा तथा जप कामरूप से शतगुण अधिक फलप्रद तथा अव्यय ( खर्च न होने वाला ) कहा गया है।

कुलार्णव तन्त्र में भी कहा गया है—'मानव एकलिङ्ग श्मशान, स्त्रीवृन्द समूह एवं रक्तवसना ( लाल कपड़ा पहना हुआ ) नारी को देखकर भक्ति के साथ उसकी स्तुति करें। गृध्र, महाकाली, जम्बुकी (शृगाली), यमदूतीका ( काकी ) काले रंग के बिल्ली भूकाक ( क्षुद्र कौआ, दाँड़ कौआ, बड़ी आकृति का घोर काला कौआ ) श्येन, क्षेमङ्करी देवी तथा कुरर ( पक्षी ) को देखकर यह मन्त्र अर्थात् 'कृशोदरि' इत्यादि निम्नोलिखित मन्त्र का पाठ

कृशोदरि ! महाचण्डे ! मुक्तकेशि ! बलिप्रिये ! ।
कुलाचारप्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये ॥
पितृभूमिं व्यसुं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् ।
प्रणम्याऽनेन मनुना मन्त्रीसुखमवाप्नुयात् ॥
ॐ घोरदंष्ट्रे ! करालास्ये ! किटिशब्द वि(प्र)नादिनि ! ।
गुरुघोररवास्फाले ! नमस्ते चितिवासिनि ॥
रक्तवस्त्रं तथा पुष्पं विलोक्यं त्रिपुराम्बिकाम् ।
प्रणमेद्दण्डवद् भूमाविमं मन्त्रं पठेन्नरः ॥
ॐ वन्धूकपुष्पसङ्काशे त्रिपुरेभयनाशिनि ।
भाग्योदय समुत्पन्ने ! नमस्ते वरवर्णिनि ॥
कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रक(रुष)म् ।
हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपुरुषान् ॥
महिषे कुलदेवं च दृष्ट्वा महिषमर्द्दिनोम् ।
प्रणमेद् जयदुर्गां च स च विघ्नैर्न लिप्यते ॥

---

करते करते नमस्कार करें। मन्त्रार्थ है—हे कृशोदरि ! हे महाचण्डे ! हे मुक्त-केशि ! हे वलिप्रिये ! हे कुलाचार प्रफुल बदने। हे शङ्करप्रिये, तुम्हें नमस्कार है। साधक पितृभूमि ( श्मशान ) तथा व्यसुक में ( विगत प्राण-शव को ) देखकर प्रदक्षिण करके इस मन्त्र से अर्थात् निम्नोक्त–'घोरद्रंष्ट्रे' इत्यादि मन्त्र से नमस्कार करके सुख को प्राप्त होता है। उक्त मन्त्र का अर्थ है—हे घोरद्रंष्ट्रे ! हे भयङ्कर वदने ! हे किटिशब्दोच्चारणकारिणि ! हे घोर-शब्द से आस्फालनकारिणि ! हे चिति ( चिता में ) वासकारिणि ! तुम्हें नमस्कार है। साधक नर लाल वस्त्र, लाल पुष्प तथा त्रिपुरा देवी को देख-कर यह मन्त्र अर्थात् मूलोक्त "बन्धूक-पुष्प सङ्काशे०" इत्यादि मन्त्र का पाठ करते करते भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करें। मन्त्रार्थ है—हे बन्धूक पुष्प के समान दीप्तियुक्त ! हे त्रिपुरे ! हे भयनाशिनी ! हे भाग्योदय समुत्पन्ने ! ( सौभाग्यवशे मूर्त्तिधारिणि ! ) हे वरवर्णिनि ! तुम्हें नमस्कार है। जो व्यक्ति काला कपड़ा, तथा काला पुष्प, राजा एवं राजपुत्र, हाथी, अश्व ( घोड़ा ) रथ, शस्त्र, फलक, वीर पुरुष, महिष, कुल देवता तथा महिष मर्द्दिनी जयदुर्गा को देखकर निम्मोक्त 'जयदेवि !' इत्यादि मन्त्र का पाठ करते करते प्रणाम करता है, वह विघ्न समूहों के द्वारा अभिभूत (आक्रान्त)

फलकोनट इति ख्याताः । ॐ जयदेवि ! जगद्धात्रि ! त्रिपुराद्ये ! त्रिदैवते !

भक्तेभ्यो वरदे देवि ! महिषघ्नि ! नमोऽस्तुते ।
मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मासं वरस्त्रियम् ॥
दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणमेद्विमृशन् मनुम् ।
ॐ घोरविघ्न विनाशाय कुलाचार समृद्धये ॥
नमामि वरदे ! देवि ! मुण्डमाला विभूषिते ।
रक्तधारा समाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहम् ॥
सर्वविघ्नहरे देवि ! नमस्ते हरवल्लभे ! ।
यः शिवारुदितं श्रुत्वा शिवदूतीं शुभप्रदाम् ॥
प्रणमेत् साधको भक्त्या तस्य कामःकरे स्थितः ।
एतेषां दर्शनेनैव यदि नैवं प्रकुर्वते ॥
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते ।
एतेषां मारणोच्चाट हिंसनं वागुरादिभिः ॥
कुरुते यदि पापत्मा स मद्भक्तः कथं भवेत् ।
एतत् कर्त्तुं प्रसक्तोयस्यार्थं तमसा लिखेत् ॥

---

नहीं होता है । 'फलक' यह शब्द नट अर्थ में प्रसिद्ध है । उक्त मन्त्र काअर्थ है- हे देवि ! जय हो ! हे जगद्धात्रि ! हे चण्डे ! हे त्रिपुराद्ये ! हे त्रिदैवते ! हे भक्तों के प्रति वरदे ! हे देवि महिषघ्नि ! तुम्हें नमस्कार है । मद्यभाण्ड, मत्स्य, मांस, श्रेष्ठ रमणी तथा देवी भैरवी को देखकर निम्नोक्त मन्त्र अर्थात् 'घोरविघ्नविनाशाय' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र का पाठ करते करते प्रणाम करें । उक्त मन्त्र के अर्थ हैं—'हे देवि ! हे वरदे ! हे मुण्डमालाविभूषिते ! घोर विघ्न विनाश के लिये एवं कुलाचार के समृद्धि के लिये तुम्हें नमस्कार करता हूँ । हे रक्तधारा से समाकीर्ण वदने ! तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ । हे सर्वविघ्न-विनाशिनि ! हे देवि ! हे वल्लभे ! तुम्हें नमस्कार है । जो व्यक्ति शिवाध्वनि (सियार के आवाज) को सुनकर शुभदायिनी शिवदूती को भक्ति के साथ प्रणाम करता है, उसके सभी काम्यफल हस्तस्थित होते हैं । इन सभी के दर्शन से यदि शक्तिमन्त्र के पाठ करके इस प्रकार प्रणामादि न किया जाय, तब उसकी सिद्धि नहीं होती है । गुरुवाक् द्वारा यदि इन सबका बध, उच्चाटन अथवा हिंसा करता है, तब वह मेरा भक्त किस प्रकार होगा ? जो व्यक्ति इन सबको करने में प्रवृत्त होता है, उसका अर्थ ( फल ) अन्धकार में लिखित होता है, अर्थात् उसकी सिद्धि अन्धकारवृत्त होकर ही रहती है-प्रकाशित नहीं होती है।

## नित्यसंकेतः स्तवः

कुलचूडामणौ नित्यसंकेतस्तवमाह—
श्रीदेव्युवाच—

ॐ त्रिपुरा त्रिपुरेशो च सुन्दरी पुरसुन्दरी।
श्रीमालिनी च सिद्धाम्बा महात्रिपुरसुन्दरी ॥
प्रकटाख्या तथा निद्रा गुप्ता गुप्तरापरा।
सम्प्रदायकुला कौलरहस्यातिरहस्यगा ॥
परापररहस्या च तथा कामेश्वरी शुभा।
भगमाला तथा क्लिन्ना भेरुण्डा वह्निसुन्दरी ॥
महाविद्येश्वरी दूती त्वरिता कुलसुन्दरी।
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला ॥
ज्वालांशुमालिनी चित्रा वशिनी शुभगा कुला।
पूर्णाख्या च तथा वत्स ! कामेशी मोदिनी तथा ॥
विमला अरुणा देवी जयन्ती कुलभैरवी।
सर्वेश्वरी तथा कौली वागिशी सर्वकामिनी ॥
सिद्धेश्वरी तथा चोग्रा दुर्गा महिषमर्द्दिनी।
स्वप्नावती शूलिनी च मातङ्गी सुरसुन्दरी ॥
महाकाली महोग्रा च चित्ररूपा महोदरी।
प्राणविद्या तथैकाक्षी चैकपादा महांकुशा ॥
वामा शिवा तथा ज्येष्ठा सुरूपा चारुहासिनी।
त्रिखण्डा त्रिशिरासौरी गौरी विन्ध्यनिवासिनी ॥
क्षोभिणी नादिनी भद्रा ललिता बहुरूपिका।
सर्वसम्पत्करी तारा भावानो विश्ववासिनी ॥
कूटेश्वरी महाविद्या कथिता तव भैरव !।
उपासकान् महादेव ! शृणु चैकमनाः स्वयम् ॥
मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च मन्मथस्तदनन्तरम्।
लोपामुद्रापति(मुनि)र्नन्दी शत्रुः स्कन्दः शिवस्तथा ॥
क्रोधभट्टारकश्चैव शक्तिर्नाम प्रकीर्त्तिता।

---

ॐ नित्यसंकेतस्तव का सम्पूर्ण अनुवाद अनावश्यक है क्योंकि इस स्तव का पाठ करना ही अत्यन्त कल्याणकारी है।

दुर्वासा व्यासमूर्यौ च वशिष्ठश्च पराशरः ॥
और्वो वह्निर्यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ।
वायुर्विष्णुः स्वयम्भूश्च भैरवो गणकस्तथा ॥
अनिरुद्धो भरद्वाजो दक्षिणामूर्त्ति रेव च ।
गणपाः कुलापाश्चैव लक्ष्मीर्गङ्गा सरस्वती ॥
धात्री शेषः प्रमत्तश्च उन्मत्तः कुलभैरवः ।
क्षेत्रपालो हनूमांश्च दक्षो गरुड एव च ॥
शुकदेवः प्रह्लादश्च रामो रावण एव च ।
काश्यपः कौत्सकुम्भौ च जमदग्निर्भृगुस्तथा ॥
बृहस्पतिर्यदुश्रेष्ठौ दत्तात्रेयो युधिष्ठिरः ।
अर्जुनो भीमसेनश्च द्रोणाचायर्णो वृषाकपिः ॥
दुर्योधनस्तथा कुन्ती सीता च रुक्मिणी तथा ।
सत्यभामा द्रौपदी च उर्वशी च तिलोत्तमा ॥
पुष्पदन्तो महाबुद्धो बालः कालश्च मन्दरः ।
कैलासः क्षीरसिन्धुश्च उदधिर्हिमवांस्तथा ॥
नारदश्च महावीराः कथिता वीरसाधकाः ।
महाविद्याप्रसादेन स्वस्वकर्म समाहिताः ॥
एतेषां वत्स ! नामानि नित्यविद्योपसेविनाम् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा यः पठेत् प्रयतात्मवान् ॥
पूजाकाले शुचिर्भूत्वा प्रपठेत् स्तोत्रमुत्तमम् ।
अशुचिर्वा निरालम्बामालम्ब्य च कुलान्तिके ॥
नित्यपूजाफलं तस्य ददामि वरमीप्सितम् ।
चक्रसंकेतकं चैव गुरुसंकेतकं तथा ॥

---

हे वत्स ! प्रातःकाल में शौच शुद्ध होकर जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर नित्य प्रति विद्या का अनुशीलनकारी इन महापुरुषगणों के नामों का भी उच्चारण करता है एवं पूजाकाल में शुचि होकर इस उत्तम स्तोत्र का पाठ करता है, अशुचि होकर भी कुलान्तिक में निरालम्बा देवी का अवलम्बना ( ध्यान ) करके इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे मैं पूजा का फल तथा ईप्सित वर दान करती हूँ। चक्र संकेत, गुरु संकेत, नाम संकेत तथा समयाचार

मन्त्र संकेतकञ्चैव नामसंकेतकं तथा ।
समयाचार संकेतं न ज्ञात्वा योऽत्र वर्त्तते ॥
जपपूजार्चना होमस्त्वभिचाराय कल्पते ।
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु भवेत् संकेतवान् ध्रुवम् ॥
इति कुलचूडामणौ नित्यसंकेतस्तवराजः समाप्त ।
देहपातेऽपि मोक्षः स्यात् समयाचार पालनात् ।
इति फलश्रुतेः काम्यमपि ॥

**अथ शिवाबलिः**

विश्वसारे—शिवाबलिं निवेद्याथ तोषयेद् जगदम्बिकाम् ।
न ददाति बलिं यस्तु शिवायाः शिवताप्तये ॥
स पापिष्ठो न सह्यते कुलदेव्याः प्रपूजयेन । इति यामल वचनात्
तथा च यामले—
पशुरूपां शिवां देवीं यो नाऽर्चयति निर्जने ।
शिवारावेण तस्याऽशु सर्वं नश्यति निश्चितम् ॥
जपपूजा विधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानिच ।
गृहीत्वा शायमादाय शिवा रोदिति निर्जने ॥

---

संकेत को न जानकर जो व्यक्ति भूमण्डल में अवस्थान करता है, उसका जप, पूजा ( नित्यपूजा ), अर्चना तथा होम अभिचार के निमित्त होता है। इस स्तोत्र का पाठ करके निश्चय ही मनुष्य संकेतवान् होता है। 'समयाचार पालन में देहपात होने पर ही मोक्ष प्रप्ता करता है'—इस प्रकार की फलश्रुति रहने से वह काम्य भी है।

शिवाबलि

शिवाबलि—विश्वसार तन्त्र में कहा गया है—"अनन्तर इसके बाद शिवाबलि का निवेदन करके जगदम्बिका को सन्तुष्ट करें। क्योंकि यामल तन्त्र का वचन है—जो व्यक्ति शिवत्व प्राप्ति के निमित्त शिवाबलि प्रदान नहीं करता है, वह पापिष्ठ कुलदेवी की पूजा में समर्थ नहीं होता है"। यामल तन्त्र में भी यही कहा गया है। यथा—'जो व्यक्ति निर्जन में देवी स्वरूपिणी पशुरूपा शिवा की अर्चना नहीं करता है, शिवा के शब्द से बुलाता है उसका समस्त शीघ्र ही नष्ट हो जाता है—यह निश्चित है। उसका जप, पूजा, तथा अन्यान्य सभी कर्म एवं जो कुछ सुकृत—( सत् कर्म ) सभी शिवा ग्रहण करके शाप प्रदान करके निर्जन में रोदन करती है।

तन्त्रे—कालिकानीति वक्तव्ये तत्रोमा शिवरूपिणी ।
शिवारूपधराऽऽयाति परिवारगणैः सह ।
अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम् ॥

## शिवाबलेर्नित्यत्वम्

नित्यश्राद्धे यथा सन्ध्या—वन्दने पितृतर्पणे ।
तथैव बलिदानेऽपि नित्यता कुलपूजनम् ॥

यामले—

बिल्वमूले नदीतीरे श्मशाने वापि साधकः ।
मांसप्रधानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ॥

## शिवबलिदानमन्त्रः

बलिमन्त्रमाह—

ॐ गृह्य देवि ! महाभागे ! शिवे ! कालाग्निरूपिणि ! ।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहिगृह्य बलिं तव ॥
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलजनैः प्रिये ! ।
एकया भुज्यते यत्र साधकानां हिताय च ॥

---

तन्त्र में कहा गया है—"कालि ! कालि !" यह कहने पर ही शिवस्वरूपिणी उमा शिवारूप धारण करके परिवारगणों के साथ वहाँ आ जाती हैं । नित्य प्रतिदिन अन्नदान के द्वारा शिवा को अवश्य ही सन्तुष्ट करना चाहिए । नित्यश्राद्ध में सन्ध्यावन्दन में एवं पितृतर्पण में जिस प्रकार नित्यता नियमितता है, अर्थात्—उन सभी कर्म जैसे अवश्य कर्त्तव्य करणीय हैं ।

### शिवाबलि की नित्यता

बलिदान में एवं कुलपूजा में भी उसी प्रकार नित्यता नियमितता हैं ।

यामल तन्त्र में कहा गया है—'साधक सन्ध्याकाल में बेल के मूल में, नदी के किनारे अथवा श्मशान में मांस प्रधान नैवेद्य का निवेदन करें ।

### शिवाबलिदानमन्त्र

बलि मन्त्र कह रहे हैं—'हे महाभागे ! हे शिवे ! हे कालाग्निरूपिणी ! हे देवि ! तुम अपनी बलि ग्रहण करो एवं मेरे शुभाशुभ स्पष्ट करके बोलो कहो' ।

हे प्रिये ! कुलजन के द्वारा यह यन्त्र उच्चारण करके बलिदान करना कर्त्तव्य है । साधकों के कल्याण के लिये जहाँ एक भी शिवाबलि भोजन

तदैव सर्वशक्तीनां प्रीतिः परमदुर्लभा।
भुक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सुस्वरम् ॥
तदैव मङ्गलं देवि ! नान्यथा भवति ध्रुवम्।
यदा न गृह्यते न्यूनं तदा नैव शुभं भवेत् ॥
एवं ज्ञात्वा महेशानि ! शान्तिस्वस्त्यनं चरेत्।
पशुशक्तिः पक्षिशक्तिर्नरशक्तिर्यथाक्रमात् ॥
पूजनाद्विगुणं कर्मसगुणं साधयेद्यतः।
तेन सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं पूजनं महत् ॥

## शिवापूजादिफलम्

पूजाजपादेः फलमाह—

दहेत् तृणं यथा वह्निस्तथा शत्रून् जयेत् सदा।
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयं रुद्रो न संशयः ॥
अन्ते निरामयं ब्रह्म मन्त्री भवति नान्यथा।
या नारी प्रजपेद्विद्यां सा भवेत् परमेश्वरी ॥

---

करता है, उसी समय ही समस्त सभी शक्तियों की परम दुर्लभ प्रीति होती है। हे देवि ! शिवा भोजन करके ईशान कोण में मुख उठाकर जब सुस्वर से रव ( आवाज ) करता है, तभी मङ्गल जानना चाहिए। अन्यथा निश्चय ही अमङ्गल होगा। यदि कुछ भी (थोड़ा सा भी) ग्रहण नहीं करता है, तब निश्चय ही शुभ नहीं होगा। हे महेशानि ! इस प्रकार से यह जानकर शान्ति स्तवन करना चाहिए। पशुशक्ति (शिवा आदि), पक्षिशक्ति ( काक आदि ) तथा नरशक्ति ( कुमारी, सधवा आदि ) सभी पूजा के द्वारा विगुण कर्म को भी सगुण कर सकती है। अतएव सर्व प्रकार के प्रयत्न से अर्थात् एकान्त यत्न के साथ उन लोगों की महापूजा करना कर्त्तव्य है।

### शिवा-पूजा का फल

पूजाजप आदि का फल कह रहे हैं–'वह्नि जिस प्रकार तृण को दग्ध करता है, साधक भी उसी प्रकार पूजादि के द्वारा सर्वदा शत्रु को जय करता है। वह स्वयं ब्रह्मा, स्वयं विष्णु तथा स्वयं रुद्रस्वरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। अन्त में अर्थात् देहान्त में निरामय ब्रह्मस्वरूप होता है– यह अन्यथा नहीं है। जो नारी विद्या जप करती है, वह परमेश्वरी होती है।

काकबन्ध्या च या नारी बन्ध्या वा मृतपुत्रिणी ।
पूजयित्वा लभेत् पुत्रं सत्यं सुचिरजीविनम् ॥
स्वामिनो दुर्लभा सा स्याद् धनधान्यसमन्विता ।
अन्ते न जायते गौरी सत्यं सत्यं न संशयः ॥

योगिनीहृदये—

महाविद्यां जपेन्नित्यं स्मरेद्वापि समाहितः ।
तस्य गेहे वसेल्लक्ष्मीर्जिह्वायां च सरस्वती ॥
हृदये च वसेद्देवा नारायण इति श्रुतिः ।
ब्रह्माऽस्ति कण्ठदेशे च अहं तिष्ठामि सन्मुखे ॥
एकीभूय समस्तैश्च देवी रक्षति साधकम् ।
लक्षमेकं जपन्मन्त्री महापापात् प्रमुच्यते ॥
लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मकृतान्यपि ।
हन्ति लक्षत्रयेणैव जन्म साहस्रिकाण्यपि ॥
चतुर्लक्षजपान्मन्त्री वागीश्वरसमो भवेत् ।
पञ्चलक्षाद्दरिद्रोऽपि साक्षाद् वैश्रवणो भवेत् ॥

---

जो नारी काक-बन्ध्या, ( बन्ध्या अथवा मृतपुत्रिणी हो, वह देवी की पूजा करके ) सत्य ही सुचिरजीवी पुत्र की लाभ करती है। वह स्वामी के लिए दुर्लभ अर्थात् भाग्यवश ही उसे स्त्रीरूप में मिल सकती है एवं वह धनधान्य-शालिनी होती है। देहान्त में गौरी होकर जन्म लेती है। यह सत्य ही सत्य है इसमें कोई भी संशय नहीं है।

योगिनी हृदय में कहा गया है—समाहित होकर जो नित्य महाविद्या का जप करेगा अथवा स्मरण करेगा, उसके घर में लक्ष्मी तथा जिह्वा में सरस्वती वास करती है एवं हृदय में देवनारायण वास करते हैं—यह श्रुति है अर्थात् यह शास्त्र में कहा गया है। ब्रह्मा कण्ठ देश में रहते हैं एवं मैं सम्मुख में अवस्थान करता हूँ।

सभी के साथ मिलकर देवी साधक की रक्षा करती है। साधक एक लाख जप करके महापापों से मुक्त होता है। दो लाख जप के द्वारा सप्त-जन्मकृत पापों का विनाश करता है। तीन लाख जप के द्वारा सहस्र जन्म-कृत पापों को नाश करता है। चार लाख जप के द्वारा साधक वागीश्वर के तुल्य होकर रहता है। पाँच लाख जप के द्वारा दरिद्र भी साक्षात् कुबेर के समान होता है।

जप्त्वा षडलक्षकं देवि महाविद्याधरो भवेत् ।
प्रजपन्सप्तलक्षाणि खेचरीसिद्धिभाग् भवेत् ॥
अष्टलक्षप्रणाणान्तु जप्त्वा विद्यां महेश्वरि ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीशो जायते नात्र संशयः ॥
नवलक्षजपाद्देवि ! रुद्रमूर्त्तिरिवाऽपरः ।
कर्त्ता हर्त्ता महादेवि ! लोकेऽप्रतिहतः प्रभुः ।
दशलक्षफलं देवि ! वर्णितुं नैव शाक्यते ॥

श्रीक्रमेऽपि—

मन्त्रपाशेन देवेशि ! देवतामानयेद् ध्रुवम् ।
साधकस्य कार्यसिद्धिं कृत्वा देवी गमिष्यति ॥

## अथ देवीप्रणामफलम्

अष्टोत्तरशतं कुर्यात् कालिकायाः प्रदक्षिणम् ।
सर्वकामं समासाद्य पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥

अत्र पूर्वापरार्द्धयोर्यथाक्रमं यः स इति योज्यम् ।

ये नमन्ति नरा दुर्गां श्रद्धया परयाऽन्विताः ।
अश्वमेधफलं प्राप्य दुर्गालोकं व्रजन्ति ते ॥

---

हे देवि ! छह लाख जप करके साधक महाविद्याधर होता है। सात लाख जप करके खेचरी सिद्धिलाभ करता है। हे महेश्वरि ! आठ लाख परिमित विद्या मन्त्र का जप करके अणिमादि अष्ट सिद्धि का अधिपति होता है, इसमें सन्देह नहीं है। देवि ! हे महादेवि ! नौ लाख जप के द्वारा द्वितीय रुद्र मूर्त्ति के समान लोक में अप्रतिहत प्रभु एवं कर्त्ता होता है। हे देवि ! दस लाख विद्या मन्त्र जप के फल को मैं कह नहीं सकता है। श्रीक्रम तन्त्र में भी कहा गया है—हे देवेशि ! साधक मन्त्ररूप पाशों के द्वारा निश्चय ही देवता का आनयन ( आकर्षण ) करता है। देवी साधक का कार्यसिद्धि करके स्वस्थान में गमन करती हैं।

### देवी को प्रणाम का फल

जो साधक एक शत आठ बार कालिका की प्रदक्षिणा करता है, वह अपने सभी काम्यफलों का लाभ करके बाद में अर्थात् देहान्त में मोक्षलाभ करता है। श्लोक के पूर्वार्द्ध में एवं परार्द्ध में यथाक्रम से 'यः' तथा 'सः' अर्थात् जो तथा सो योग करना होगा। जो मानव अत्यन्त श्रद्धान्वित होकर दुर्गा को नमस्कार करता है, वे लोग अश्वमेध यज्ञ का फललाभ करके दुर्गालोक में

शाठ्येनापि नमस्कारं यः करोति सकृन्नरः ।
भगवत्यै तथाऽभक्त्या स गच्छति सुरालयम् ॥
सर्वयज्ञोपवासेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं लभते लोकः प्रणम्य शिरसा सतीम् ॥
संप्रसारितदेहो यो दण्डवत् पतितो भुवि ।
चण्डिकापुरतो भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥

श्रीमद्भागवते दशमःस्कन्धे रुक्मिणीवचनम्—

कात्यायनि ! महामाये ! महायोगिन्यधीश्वरि ! ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरुते नमः ॥

हे कात्यायनि ! कात्यायनमुनिनिमित्तप्रादुर्भूते । हे महामाये ! महती चासौ माया चेति महामाया ब्रह्मविष्णुशिवादीनामपि मोहहेतुत्वात् महामाया ।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥

इति मार्कण्डेय पुराणात् । हे महायोगिनि ! महायोगो

---

गमन करते हैं । जो मनुष्य शठता अथवा छल से अर्थात् ताच्छिल्य तुच्छ भाव से अथवा अभक्ति के साथ भगवती के उद्देश्य से एक बार भी प्रणाम करता है, वह भी सुरलोक ( देवलोक ) मे गमन करता है । सभी यज्ञों में, उपवास में अथवा सभी तीर्थों में जो फल मिलता है, मानव सतीदेवी को मस्तक के द्वारा प्रणाम कर वही फल प्राप्त करता है । जो व्यक्ति चण्डिका के सम्मुख में भक्तिपूर्वक अपने शरीर को प्रसारित ( फैलाकर ) कर दण्डवत् भूमि पर पतित होता है, वह परम गति को प्राप्त होता है । श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में रुक्मिणी का वाक्य है—हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे अधिश्वरि ! हे देवि ! नन्दगोप पुत्र श्रीकृष्ण को मेरा पति बनाओ । तुम्हें नमस्कार !' श्लोकोक्त 'कात्यायनि' शब्द का अर्थ है—कात्यायन मुनि निमित्त प्रादुर्भूते ! अर्थात् जो कात्यायन मुनि के लिये जगत् में आविर्भूत हुई थी । 'महामाये' अर्थात्-महती ऐसी जो माया, वे ही महामाया । ब्रह्मा, विष्ण एवं महेश्वर का भी मोहजनक है इसलिये वे महामाया है, क्योंकि मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है—जैसे कि तुमने ही मुझे अर्थात् ब्रह्मा को एवं ईशान को भी शरीर ग्रहण कराया है, अतएव तुम्हारा स्तव करने में कौन समर्थ होगा ? 'महायोगिनि' अर्थात्-महायोग

जगत्सृष्ट्यादिकारणत्रिगुणात्मकमाया विद्यते यस्याः सा महा-योगिनी। हे अधीश्वरि! ईश्वराणां शिवभक्तिब्रह्मणामीश्वरा। "सैव सर्वेश्वरेश्वरी"ति मार्कण्डेयवचनात्। नन्दगोपसुतं नन्द-नन्दनत्वेनाभिमतं परमेश्वरं श्रीकृष्णं तथैव देवतारूपं मे मम पतिं पाणिग्रहीतारं कुरु। त्वत्प्रसादं विना किमपि कार्यं न सिद्ध्येदतस्ते तुभ्यं नमः। कायिकवाचनिकमानसिको नमस्कारः॥

इति परिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्द-
गिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां जपादिफल-
निर्णयो नाम पञ्चदशोल्लासः॥ १५॥

---

अर्थात् जगत् सृष्टयादि के कारण त्रिगुणात्मक माया जिनकी है, वे ही महायोगिनी हैं। 'अधिश्वरि' अर्थात्-ईश्वरगणों के एवं शिव-भक्ति तथा ब्रह्मा की ईश्वरी हैं, क्योंकि मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि–वे ही सर्वेश्वरी (नियन्त्री) है। 'नन्दगोपसुतं' अर्थात्-नन्दनन्दन नाम से प्रसिद्ध उस देवतारूप परमेश्वर श्रीकृष्ण को। 'मे' अर्थात् मेरा, 'पति' अर्थात् पाणिग्रहीता (स्वामी) करो। तुम्हारे अनुग्रह के बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता, अतएव 'ते' अर्थात् तुम्हें 'नमः' अर्थात् कायिक, वाचिक और मानसिक नमस्कार है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत
शाक्तानन्दतरङ्गिणी का जपादिफलनिर्णय नामक
पञ्चदश उल्लास समाप्त।

# षोडशोल्लासः

## जपादिफलाभावहेतुनिर्णयः

महिषमर्दिनीतन्त्रे—श्रीदेव्युवाच

केन वा जप्यते विद्या केन वा न प्रजप्यते ।
फलाभावश्च नियतः कथं नाथ प्रजायते ॥

**श्रीमहादेव उवाच**

तवैव विदितं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
तथापि श्रृणु चार्वङ्गि ! रहस्यं परमेश्वरि ! ॥

**संसर्गदोषः**

कलिकाले महेशानि ! पाषण्डा बह्वो जनाः ।
सङ्गदोषान् महेशानि ! तत्क्षणाद्धानितां व्रजेत् ॥
तस्मात्प्रयत्नतो देवि ! संसर्गं वर्जयेत् सुधीः ।
वरं चाण्डाल संस्पर्शं कुर्यात् तु साधकोत्तमः ॥
तथाप्यसिद्धिजनकं सर्वदा तं परित्यजेत् ।
दूषिताः कलिकालेषु भारते विविधाः प्रजाः ॥

---

### जपादिफलाभाव निर्णय

महिषमर्द्दिनी तन्त्र में श्रीदेवी कह रही हैं–हे नाथ ! कोई विद्या जप करता है और कोई विद्या जप नहीं करता है तो सदा सर्वदा फलाभाव अर्थात् सिद्धि की हानि कैसे होती है ।

श्रीमहादेव कहने लगे–हे चार्वङ्गि ! हे महेश्वरि ! यह चराचर जगत्-सभी तुमसे विदित ज्ञात है । तथापि इस रहस्य को सुनो ।

### संसर्गदोष

हे महेशानि ! हे देवि ! कलिकाल में अनेक पाषण्ड व्यक्ति सङ्गदोष से उसी क्षण में ही हानिता अर्थात् अधःपतन को प्राप्त होते है । अतएव सुधी साधक यत्नपूर्वक कुसंसर्ग को छोड़ दें । उत्तम साधक श्रेष्ठ चाण्डल से संसर्ग करें, तथापि असिद्धि के जनक अर्थात् सिद्धि हानिकर उस पापी के संसर्ग कार्वदा त्याग करना चाहिए । हे महेशानि ! कलिकाल में भारतवर्ष

अतएव महेशानि ! सर्वं संसर्गदूषिताः ।
घटकं ब्राह्मणं देवि ! संस्पर्शे यत्नतस्त्यजेत् ॥
भारते बहवो दोषाः कलिकाले सुरार्चिते ! ।
ब्राह्मणाः कलिकाले तु शूद्रगेहे वराङ्गने ! ॥
पुराणवाचनासक्ता दम्भमात्सर्यतत्पराः ।
पापिष्ठा ब्राह्मणास्ते तु चाण्डालसदृशाः प्रिये ! ॥
न तूच्चरेत् पुराणानि कलौ शूद्रगृहे द्विजः ।
शूद्रगेहे महेशानि ! पुराणं प्रपठेद्यदि ॥
एतस्य सङ्गमात्रेण सर्वावस्था भवन्ति हि ।
संसर्गात् सिद्धिहानिः स्यात् न सिध्यन्ति कदाचन ॥
कलौ च भारते देवि ! निन्दका बहवो जनाः ।
शिवनिन्दापराः केचिद् विष्णुनिन्दापराःपरे ॥
सर्वषां देवतानाञ्च देवीनाञ्च तथैव च ।
सततं कुर्वते निन्दां नात्र कुर्यु विचारणाम् ॥
परस्त्रीसङ्गमाच्चैव पुत्रमुत्पादयन्ति च ।

---

में बहु प्रकार के प्रजा विभिन्न दोषों से दूषित ( कलुषित ) हैं । अतएव सभी मनुष्य संसर्गदोष से दूषित हैं । हे देवि ! संसर्ग में घटक ब्राह्मण को अर्थात् घटक ब्राह्मण के संसर्ग का यत्नपूर्वक त्याग करना । हे सुरार्च्चिते ! कलिकाल में भारतवर्ष में अनेक दोष है । हे वरानने ! ब्राह्मण कलिकाल में दम्भ तथा मात्सर्य परायण होकर शूद्र के गृह में पुराण के पाठ में आसक्त होगा । हे प्रिये ! वे पापिष्ठ ब्राह्मणगण चण्डाल सदृश हैं । कलिकाल में ब्राह्मणगणों को शूद्र के गृह में पुराण उच्चारण नहीं करना चाहिए । हे महेशानि ! शूद्र के घर में ब्राह्मण यदि पुराण पाठ करता है, तब वह निश्चय ही उसके सङ्ग मात्र से ही सर्वावस्थ अर्थात् हीनावस्था को प्राप्त हो जाता है । संसर्ग के द्वारा सिद्धि की हानि होती है—कभी भी सिद्धिलाभ नहीं होता । हे देवि ! कलिकाल में भारतवर्ष में बहुत व्यक्ति निन्दापरायण होते है । कोई कोई शिवनिन्दा में तत्पर है और कोई कोई विष्णु निन्दा में तत्पर हैं और कोई कोई समस्त देवता एवं समस्त देवी की ही सर्वदा निन्दा किया करता है । इस विषय में कोई विचार नहीं करता है । परस्त्री सहवास के द्वारा पुत्र

आत्मानं वैष्णवं मत्वा अधमा भारते कलौ ॥
कर्णे कण्ठे तथा हस्ते हृदये नगनन्दिनि ! ।
विधृत्य तुलसीमालां तिलकं हरिमन्दिरम् ॥
गृह्णीयुर्हरिनामानि सुस्वराणि गृहे गृहे ।
अन्यस्य सञ्चयं कुर्युः पाषण्डा मानवाधमाः ॥
तेषां पापं महेशानि ! वर्णितुं नैव शक्यते ।
अधर्मनिरतो भूत्वा हरेर्नाम वदेद्यदि ॥
तदा पापान्यशेषाणि नाशयत्येव निश्चितम् ।
विहाय सन्ध्यां गायत्रीं हरिनाम स्मरेद्यदि ॥
यान्यक्षराणि नाम्न्येव वसन्ति च शुचिस्मिते ! ।
तावत् संख्यान्यनेकानि पापानि च पदे पदे ॥
अन्नं जलं तथा पुष्पं यद्दत्तं विष्णवे प्रिये ! ।
अन्नं विष्ठासमं तस्य जलं मूत्रसमं स्मृतम् ॥
गेहे गेहे महेशानि ! वैष्णवी वैष्णवा जनाः ।
सङ्कुश वैष्णवा यत्र स देशः पतितः सदा ॥

---

उत्पादन करता है। हे नगनन्दिनि ! कलिकाल में भारतवर्ष में अधम व्यक्तिगण अपने को वैष्णव मानकर कान में, कण्ठ में, हाथ में तथा हृदय में तुलसी की माला, तिलक तथा हरिमन्दिर धारण करके घर घर सुस्वर ( मधुर स्वर से ) हरिनाम ग्रहण अर्थात् गान करता है। पाषण्ड मानवाधमगण हरिनाम करके अन्न का सञ्चय अर्थात् भिक्षादि करते हैं।

हे महेशानि ! उन लोगों के पाप का मैं वर्णन भी नहीं कर सकता। स्वधर्म परायण होकर यदि कोई व्यक्ति हरिनाम का उच्चारण करता है, तब उसी समय में वह निश्चय ही अपने बहुविध ( विभिन्न प्रकार ) पापों को नाश करता है। सन्ध्या तथा गायत्री का परित्याग करके यदि कोई हरिनाम का स्मरण करता है तो हे शुचिस्मिते ! उस नाम में जितने अक्षर रहते हैं, पद पद में ( जन्म जन्म में ) उसको उतना संख्यक बहुपाप होता है। हे प्रिये ! अन्न, जल तथा पुष्प—जो विष्णु को अर्पित होता है, उसके द्वारा दत्त अन्न विष्ठातुल्य है, जल मूल तुल्य कहा गया है।

हे महेशानि ! घर घर में वैष्वणी तथा वैष्णव लोग विद्यमान हैं। जिस देश में सङ्कर वैष्णव वास करता है, वह देश सर्वदा पतित है।

गीतमत्ता वाद्यमत्ता ब्राह्मणा नृत्यतत्पराः ।
गीतेषु जायते भावो ब्राह्मणानां गृहे गृहे ॥
सद्भावो नहि चार्वङ्गि ! नरकस्य पदं ध्रुवम् ।
भारते ब्राह्मणाः सर्वे पृथिव्यां पादताडनम् ॥
ये करिष्यन्ति चार्वङ्गि ! विष्णोरग्रे द्विजाधमाः ।
पादताडनसंख्यातांस्तत्पूर्वपुरुषान् बहून् ॥
स्वर्गाच्च नरकं देवि ! पातयन्ति न चान्यथा ।
पूजाकाले तु चार्वङ्गि ! ध्यानानन्दो भवेद्यदि ॥
तदैव गीतं नृत्यं च ये कुर्वन्ति द्विजातयः ।
विष्णुदुर्गाशिवाग्रे तु तदा पापं विनश्यति ॥
गीतभावमयो भूत्वा यदि नृत्यं करोति हि ।
कोटिवंश्यान् समादाय स द्विजो नरकं व्रजेत् ॥
कलिकाले भारते या ब्राह्मण्यो गीततत्पराः ।
तथा वाद्यरता भूत्वा नृत्यन्ति चाधमा द्विजाः ॥
तासां संसर्गमात्रेण सर्वं च हानितामियात् ।
तस्मात् तु यत्नतो देवि ! संसर्गं तैर्न कारयेत् ॥

---

ब्राह्मणगण गीतमत्त, वाद्यमत्त तथा नृत्यपरायण हैं। किसी का भी सद्भाव (सत् सङ्ग) नहीं है—यसलिये नरक का पद (स्थान) निश्चित है। हे चार्वङ्गि ! भारतवर्ष में सभी ब्राह्मण पृथ्वी पर पाद ताड़न (पदाघात) करते है। हे चार्वङ्गि ! जो जो द्विजाधमगण विष्णु के सामने (पृथ्वी पर) पदाघात करते है, हे देवि ! उस पदाघात के समसंख्यक उसके अनेक पूर्वपुरुषगणों को स्वर्ग से नरक में पातित करता है—इसमें अन्यथा नहीं है।

हे चार्वङ्गि ! पूर्वकाल में कोई व्यक्ति यदि ध्यान में आनन्दमय होता है, उस समय में दुर्गा एवं शिव के सामने (सम्मुख) जो जो द्विजातिगण गीत तथा नृत्य करते हैं, तब तत्काल ही उन लोगों का पाप नष्ट होता है। गीत भावमय होकर अर्थात् देवी के ध्यान में मग्न न होकर कोई ब्राह्मण यदि नृत्य करता है, तब वह ब्राह्मण कोटि वंश के पुरुषों को लेकर नरक में गमन करता है। कलिकाल में भारतवर्ष में जो जो ब्राह्मणीगण गीतपरायण है, उसी प्रकार जो जो अधम द्विजगण वाद्यरत होकर नृत्य करते हैं, उन लोगों के संसर्गमात्र से ही सब कुछ क्षय को प्राप्त होता है। अतएव हे देवि ! यत्न सहकार से उन लोगों में साथ संसर्ग मत करना। हे चार्वङ्गि !

कलौ तु भारते वर्षे संसर्गान्नहि सिध्यति ।
यदि सिध्यति चार्वङ्गि ! तदा बहुदिने गते ॥
भारतं कलिकाले च सर्वदोषमयं यतः ।
तत्रैकं चञ्चलापाङ्गि ! वर्त्तते मोक्षसाधनम् ॥
महामाये ! महाविद्यामेकधा यदि चोच्चरेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो महामोक्षं स गच्छति ॥
वर्णसङ्करजातीनां वैष्णवानां सह प्रिये ।
शाक्तः शैवो वैष्णवश्च संसर्गं यत्नतस्त्यजेत् ॥

## अथ प्रायश्चित्तम्

पापमात्रनाशकं कर्म प्रायश्चित्तम् । यथाह तन्त्रे—
देहस्थसर्वपापस्य नाशनं यदि चेच्छति ।
कामं मायां तथा देवि ! मन्मथं परमेश्वरि ! ॥
विद्यामेतां जपेद् देवि ! तत्पापस्यापनुत्तये ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तस्मात् पापाद् विमुच्यते ॥

---

कलिकाल में भारतवर्ष में संसर्ग के द्वारा सिद्धिलाभ नहीं होता है । यदि होता भी है तो बहुत दिन व्यतीत होने पर क्योंकि भारतवर्ष कलिकाल में सभी दोषों का आकर स्वरूप है ।

हे चञ्चलापाङ्गि ! उस भारतवर्ष में एक मोक्ष का साधन है । हे महामाये ! यदि कोई एक बार भी महाविद्या का उच्चारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर महामोक्ष का लाभ करता है । हे प्रिये ! शाक्त, शैव तथा वैष्णव वर्ण सङ्कर जातीय वैष्णवगणों के साथ यत्नपूर्वक संसर्ग का त्याग करें ।

### प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्त–पाप मात्र के नाशक मर्म को प्रायश्चित्त कहते हैं । तन्त्र में जैसे कह रहे है–हे प्रिये ! हे परमेशानि ! देहस्थित समस्त पापों का यदि नाश करने की कामना करते हो, तो उस पाप की निवृत्ति के लिये काम ( क्लीं ), माया ( ह्रीं ) तथा मन्मथ ( क्लीं ) इस विद्या का जप करना चाहिए । उससे पाप से मुक्ति होती है ।

यामले च—

जाम्बूनदस्य मालिन्यं परिशुद्धं यथाऽग्निना ।
अनाचारस्य कलुष प्रायश्चित्ताग्निना तथा ॥
प्रायश्चित्तं तु पापानां मूलमष्टसहस्रकम् ।
गायत्रीं वा जपेद् देवि ! सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥

अष्टसहस्रकमिति अष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः । गायत्रीं वैदिक-गायत्रीम् ! शूद्रस्य तत्राऽनधिकाराद् मूलमष्टोत्तरसहस्रं तान्त्रिक-गायत्रीं वा जपेत् । स्त्रीणान्तु शूद्रतुल्यत्वात् अथैवाचारः ॥

## अथ धृतकवचनाश-प्रायश्चित्तम्

यामले—

विधृतं कवचं देवि ! यदि नश्यति कर्हिचित् ।
तदुपायं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ॥
उपविश्य तथाचम्य भूतशुद्धिमथा चरेत् ।
षट्चक्राणि विचिन्त्याऽथ गुरुं शिरसि चिन्तयेत् ॥
अनुलोम-विलोमाभ्यां मातृकाबीजसंपुटम् ।

---

यामल तन्त्र में कहा गया है—'अग्नि के द्वारा जैसे स्वर्ण का मालिन्य (मलिनता) परिशुद्ध होता है, अनाचार का कलुष पाप भी उसी प्रकार प्रायश्चित्तरूप अग्नि के द्वारा परिशुद्ध होता है। हे देवि ! अष्टोत्तर-शत मूलमन्त्र अथवा अष्टोत्तर सहस्र (१००८) बार सर्वपापनाशिनी गायत्री का जप करना चाहिए। गायत्री अर्थात्—वैदिकी गायत्री। शूद्रों को वैदिक गायत्री के जप में अधिकार न रहने से शूद्रगण अष्टोत्तरशत मूलमन्त्र का अथवा तान्त्रिकी गायत्री का जप करें। शूद्रतुल्य स्त्रीगण भी है इसलिये वे भी उसी प्रकार अर्थात् शूद्रों के समान आचरण करें ।

### धृतकवचनाश-प्रायश्चित्त

यामल तन्त्र में कहा गया है—हे देवि ! हे कमलानने ! यदि किसी समय का धृत (धारण किया हुआ) कवच नष्ट होता है, तब उसके उद्धार का उपाय कह रहा हूँ सुनो। आसन में बैठकर आचमन करके अनन्तर भूतशुद्धि करना चाहिए। बाद में षट्चक्र की चिन्ता करके मस्तक पर गुरु का स्मरण करना चाहिए। हे देवि ! अनुलोम एवं विलोम में मातृका

कवचं तत्पठेद् देवि ! ह्यर्कावृत्तमनुक्रमात् ॥
ततो जपेन् महाविद्यां सहस्रं वा शतं क्रमात् ।
विलिख्य कवचं देवि ! रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ॥
स्वर्णेनाऽपि पुनर्देवि ! वेष्टयेत् तत् सुदुर्लभम् ।
वेष्टयित्वा महादेवि ! स्वर्णैः परमदुर्लभम् ।
धारयेतत् त्प्रतिष्ठाप्यं नूतनं कवचं ततः ॥

**नष्टकवचप्रतिष्ठाक्रमः**

प्रतिष्ठाक्रममाह—

पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा शुभेऽहनि ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणास्तत्र निवेशयेत् ॥
सम्पूज्य देवतारूपं कवचं सर्वकामदम् ।
ततो जपेन्महाविद्यां सहस्रं वा शतं क्रमात् ।
धारयेत् तन्महादेवि ! यथास्थानेषु साधकः ॥

इति कवचनाशप्रायश्चित्तम् ।

**अथ यन्त्रनाशप्रायश्चितम्**

नवरत्नेश्वरे—

यदि प्रतिष्ठतं यन्त्रं दैवाद् देवि ! विनश्यति ।

---

बीज को पुटित करके उस कवच का यथाक्रम से द्वादश बार पाठ करना चाहिए। उसके बाद यथाक्रम से सहस्रबार अथवा शतबार महाविद्या का जप करना चाहिए। हे देवि ! कवच को लिखकर रक्तसूत्र के द्वारा वेष्टन करना चाहिए। हे देवि ! पुनः उस सुदुर्लभ कवच को स्वर्ण के द्वारा भी वेष्टन करना चाहिए। हे महादेवि ! परम सुदुर्लभ नूतन कवच को स्वर्ण के द्वारा वेष्टन करके उस कवच की प्रतिष्ठा करके बाद में धारण करना चाहिए।

**प्रतिष्ठाक्रम**

प्रतिष्ठा का क्रम कह रहे हैं—शुभ दिन में पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत के द्वारा स्नान कराकर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र के द्वारा उस यन्त्र में प्राण का निबेश ( प्रतिष्ठा ) करें। सभी काम्यफलों के दाता देवतारूप उस कवच की पूजा करके बाद में यथाक्रम से सहस्र अथवा शतबार महाविद्या का जप करें। हे महादेवि ! बाद में साधक यथास्थान में उस कवच को धारण करें।

**यन्त्रनाश का प्रायश्चित्त**

यन्त्रनाश का प्रायश्चित्त नवरलेश्वर में कहा गया है—हे देवि ! यदि

उपोषणमहोरात्रमादरेण समाचरेत् ॥
येन स्वर्णादिना यन्त्रं द्रव्येण परिनिर्मितम् ।
विलिख्य यन्त्रं तत्पत्रे देवतां परिपूजयेत् ॥
उपचारैः षोडशभिः शक्तितः सुसमाहितः ।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं पूजयित्वा यथाविधि ॥
मन्त्री विलोड्य तत्तोयं पीत्वा भक्षणमाचरेत् ।
तावत् कालं ब्रह्मचर्यं यावद्यन्त्रं न कारयेत् ॥
पुनर्यन्त्रं नवं रम्यमाहरेच्छुद्धयाऽन्वितः ।
आहृत्य च नवं यन्त्रं प्रतिष्ठां तस्य कारयेत् ।
ततः प्रतिष्ठिते तस्मिन् पूर्ववत् पूजनं चरेत् ॥

## अथ पूजाकाले यन्त्रादिपतनप्रायश्चित्तम्

यन्त्रं यदि पतेद् देवि ! पूजाकाले कदाचन ॥
लिङ्गं वापि शिवो वापि तत्फलं शृणु पार्वति ।
आयुर्हानिर्धनग्लानिर्बन्धुनाशस्तथैव च ॥
भवतीति विनिश्चित्य प्रायश्चित्तमथाचरेत् ।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा उपवासं समाचरेत् ॥

---

प्रतिष्ठित यन्त्र दैवात् ( हठात् ) विनष्ट होता है, तब श्रद्धा के साथ अहोरात्र उपवास करें। जिन स्वर्णादि द्रव्यों के द्वारा यन्त्र निर्मित हुआ था, उस स्वर्णादि पत्रों में यन्त्र को लिखकर सम्यग् रूप से समाहित होकर सामर्थ्य के अनुसार षोडश उपचार के द्वारा देवता की पूजा करना चाहिए। यथाविधि पूजा करके अयुत मन्त्र का जप करें। साधक उस निर्माल्य जल को आलोड़ित करके उसे पान करके बाद में भोजन करें। जब तक यन्त्र निर्माण नहीं होता, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करना कर्त्तव्य है। श्रद्धायुक्त होकर पुनः नया मनोहर यन्त्र आहरण ( संग्रह ) करें एवं नया यन्त्र आहरण करके उसकी प्रतिष्ठा करें। उसके बाद प्रतिष्ठित उस यन्त्र पर पूर्ववत् पूजा करें।

### पूजाकाल के यन्त्रादिपतन का प्रायश्चित्त

हे देवि ! हे पार्वति ! यदि कभी पूजा के समय यन्त्र पतित होता ( गिर जाता है ) है अथवा शिवलिङ्ग अथवा शिव पतित होते है, तब उसका फल सुनो। इसमें आयुहानि, धनक्षय तथा बन्धुनाश होता है।

मूलविद्यां जपेद् देवि ! सहस्रं साष्टकं तथा ।
जपापुष्पैश्च जुहुयाच्छतमष्टोत्तरं तथा ॥
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या यजेद्यन्त्रं समाहितः ।
यन्त्रमिति शिवादेरप्युपलक्षणम् ॥

## मालापतनप्रायश्चित्तम्

माला यदि पतेद्धस्तात् तथैव च विनश्यति ।
सहस्रं तत्र संजप्य ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥
भोजनं ब्राह्मणानां तु सर्वानिष्टस्य नाशनम् ।
गायत्रीं वा जपेद् देवि ! शतं साष्टं समाहितः ॥
गायत्रीं जपेदिति ! तत्तद् देवताया गायत्रीं जपेदित्यर्थः ।
ततः सम्पूज्य तां मालां गृह्णीयात् पुनरेव हि ।
एवं कृते वरारोहे ! न विघ्नैरभिभूयते ॥

## अथ मालाविनाशप्रायश्चित्तम

माला यदि विनष्टा स्यात् पूर्ववत् सकलं चरेत् ।
ततश्चाप्यपरां मालां तज्जातीयां वरानने ॥
समाहृत्य प्रतिष्ठाप्य गृह्णीयात् पुनरेव हि ।
यामले—महापातकयुक्तोऽपि गायत्रीं प्रजयेद्यदि ।

---

असमर्थ पक्ष से एक रात उपवास करें। हे देवि ! अष्टोत्तर सहस्र मूलविद्या का जप एवं अष्टोत्तरशत अड़ौल ( जवा ) पुष्प के द्वारा हवन करना चाहिए। भक्ति के साथ ब्राह्मणगणों को भोजन कराना चाहिए। ब्राह्मणगणों के भोजन समस्त प्रकार के अनिष्टों का नाशक है। अथवा हे देवि ! समाहित होकर अष्टोत्तरशत गायत्री का जप करें। 'गायत्रीं जपेत्' अर्थात्-उन उन देवताओं ( इष्टदेव ) का गायत्री जप करें। उसके बाद उस माला की पूजा करके पुनः ग्रहण धारण करें। हे वरारोहे ! इस प्रकार करने पर और विघ्न के द्वारा अभिभूत नहीं होगा।

### माला विनाश प्रायश्चित्त

यदि माला विनष्ट हो जाता है, तब पूर्ववत् सभी अनुष्ठान करें। हे वरानने ! उसके बाद तज्जातीय एक अपर ( दूसरा ) माला संग्रह करके उसकी प्रतिष्ठा करके पुनः ग्रहण करें। यामल तन्त्र में कहा गया है—

सत्यं सत्यं महादेवि ! मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥
अशुचिर्न स्पृशेन्मालां करभ्रष्टां न कारयेत् ।
शब्दे जाते भवेद्रोगः करभ्रष्टा विनाशकृत् ।
छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरो भवेत् ॥

तन्त्रान्तरे—

हस्तात् पतति चेन्माला न जप्तव्या तु सा बुधैः ।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं जप्त्वा मन्त्रं सहस्रकम् ॥

सहस्रकमिति । अष्टाधिकसहस्रमित्यर्थः ।

जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रैर्ग्रंथयित्वा शतं जपेत् ।

शतमिति—मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेदित्यर्थः ।

छिन्ना भवति चेन्माला पूजां कुर्यात् ततोऽधिकाम् ।
पुनर्ग्रंथित्वा तां मालां प्रतिष्ठां पूर्ववच्चरेत् ।
ततस्तु प्रजपेन्मालां न तत्र दोषभाग्भवेत् ॥

---

'महापापी व्यक्ति भी यदि गायत्री जप करता है, हे महादेवि ! सत्य ही वह तत्क्षणात् पाप से मुक्त होता है । अशुचि व्यक्ति माला का स्पर्श न करें । साधक माला को कर भ्रष्ट न करें ( हाथ से गिरा न दें ) । शब्द होने पर रोग होगा । कर भ्रष्ट माला बिनाशकारी होता है । सूत्र छिन्न होने पर मृत्यु होती है । अतएव जिससे इस प्रकार न हो, उस पर यत्नपरायण रहना' होगा ।

तन्त्रान्तर में कहा गया है–'हाथ से माला यदि गिर जाता है, तब विद्वान् व्यक्ति उस माला पर जप न करें । सहस्र मन्त्र जप करके प्रायश्चित्त करें । 'सहस्रकं' अर्थात् १०८ सूत्र ( धागा ) जीर्ण पुराना होने पर पुनः नये सूत्र से माला को गूँथकर शतमन्त्र जप करें । 'शत' अर्थात् अष्टोत्तर-शत मूलमन्त्र का जप करें । यदि माला छिन्न होता है, तब उससे भी अधिक अर्थात् महती पूजा करना चाहिए । पुनः उस माला को गूथँकर पूर्ववत प्रतिष्ठा करें । उसके बाद उस माला का जप करें । उसमें वह दोष भागी नहीं होगा ।

## अथ गुरुक्रोधोपशमनप्रायश्चित्तम्

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
उपवासं गुरुक्रोधे कृत्वा तं तु प्रसादयेत् ॥
यावत् प्रसादं नायाति तावद्वै भोजनं त्यजेत् ।
गुरौ प्रसन्ने भुञ्जीत एवं दोषा न जायते ॥

## अथाऽनिवेदितभोजनप्रायश्चित्तम

मत्स्यसूक्ते—

अनिवेद्य न भुञ्जीतभक्ष्य भोज्यादिकं च यत् ।
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥

विष्णुपदं स्वस्वसाध्यदेवता परम् । अन्यत्रापि—

अदत्तं नैव भोक्तव्यमभक्ष्येण समं स्मृतम् ।
पत्रं पुष्पं फलं मूलमन्नपानौषधं प्रिये ।
अनिवेद्य न भुञ्जीत भुञ्जीतैव निवेदितम् ॥

---

### गुरुक्रोध के उपशमन का प्रायश्चित्त

शिव के रुष्ट होने पर गुरु त्राणकर्त्ता है परन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई भी त्राण नहीं कर सकता । गुरु का क्रोध होने पर उपवास करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिए । जब तक गुरु की प्रसन्नता न आवें, तब तक भोजन का त्याग करें । गुरु के प्रसन्न होने पर भोजन करें । इस प्रकार करने पर दोष नहीं होगा ।

### अनिवेदित भोजन-प्रायश्चित्त

मत्स्य सूक्त में कहा गया है—'अनिवेदित भक्ष्य भोज्यादि का कुछ भी भोजन नहीं करना चाहिए । जो अन्न अथवा जल विष्णु को अनिवेदित है, वह अन्न विष्ठा तुल्य है एवं जल मूत्र तुल्य है । यहाँ विष्णु पद का अर्थ है अपने अपने उपास्य देवता के तात्पर्यार्थ में प्रयुक्त हुआ है । अन्यत्र भी कहा गया है–अदत्त अर्थात् देवता को अनिवेदित द्रव्य भक्षण मत करें । वह अभक्ष के तुल्य कथित हुआ है ।

हे प्रिये ! पत्र, पुष्प, फल, जल, मूल, अन्न पानीय तथा औषध का देवता को निवेदन किये बिना भोजन नहीं करना चाहिए । निवेदन करके ही भोजन करना चाहिए ।

कालिकापुराणे—

महाधीरो मुनिर्वापि ब्राह्मणश्चेतरोऽपि वा।
यद्यद्भक्ष्यं समर्थस्तु प्रकृष्टं स्याद्यथा तथा।
प्रदद्यादिष्टदेवेभ्यो गृह्णीयाच्च तथा स्वयम्॥

यामले—यद्यथा भक्ष्यते भक्ष्यं तत्तथैव प्रदापयेत्।
अन्यथा तत् प्रदानेन न तत् फलमवाप्नुयात्॥

यद्यद् द्रव्यं येन प्रकारेण भोक्तव्यं तद् द्रव्यमन्यथा प्रकारेण न दातव्यम्।

अनिवेद्य हरेर्भुञ्जन् सप्तजन्मनि नारकी।

हरेरित्युपलक्षणम्। तथाचोक्तं कालिकापुराणे—

फलं पुष्पं च ताम्बूलमन्नपानादिकञ्च यत्।
अदत्त्वा तन्महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन॥
अनिवेद्य न भुञ्जीत प्रायश्चित्तीभवेन्नरः।
देव्याश्चाष्टशतं मन्त्रं जप्त्वा पूतो भवेन्नरः॥

---

कालिका पुराण में कहा गया है—'महाधीर व्यक्ति, मुनि ब्राह्मण अथवा अन्य कोई भी साधक समर्थ होने पर जो जो भक्ष्य द्रव्य जैसे जैसे उत्कृष्ट होगा, वह इष्ट देवतागण को प्रदान करें एवं स्वयं उसे ग्रहण करें। यामल तन्त्र में कहा गया है—'जो भक्ष्य द्रव्य जिस प्रकार से भक्षित होता है, उस भक्ष्य द्रव्य को उसी प्रकार से ही प्रदान करना चाहिए। अन्य भिन्न प्रकार से प्रदान करने पर वह उसका फल नहीं पायेगा। तात्पर्य यह है कि—जो द्रव्य जिस जिस प्रकार का भोजन किया जाता है, वह द्रव्य अन्य प्रकार से नहीं देना चाहिए। हरि को निवेदन न करके जो भोजन करता है, वह सात जन्म तक नारकी होता है। 'हरि' यह पद उपलक्षण है, अर्थात् यहाँ हरि पद साधक के स्व स्व इष्ट देवता के तात्पर्य में प्रयुक्त हुआ है। कालिका पुराण में यही कहा गया है। यथा—'फल, पुष्प, ताम्बूल, अन्न तथा पानीय-जो भी कुछ है, वह महादेवी को बिना दिये कभी भी भोजन न करें। निवेदन किए बिना भोजन नहीं करना चाहिए। उससे मनुष्य प्रायश्चित्तार्ह होता है। मानव देवी के अष्टोत्तरशत मन्त्र का जप करके पवित्र होता है। 'देव्याः' अर्थात्—'स्व स्व अपने अपने उपास्य देवता का उपलक्षण अर्थात् अपने अपने इष्ट देवता का है' इस तात्पर्यार्थ में प्रयुक्त हुआ है।

देव्या इत्युपलक्षणं स्वस्वोपासित देवतानाम् । तथाचोक्तं यामले-

अनिवेद्य महेशानि ! भुञ्जानः पातकी भवेत् ।
इष्टमन्त्रं शतं जप्त्वा तस्मात् पापाद् विशुध्यति ॥

न च—"यो यद् देवार्चनरतः स तन्नैवेद्यभुग् भवेत् ।" इति वचनाद् देवतान्तरनैवेद्यभक्षणं न कर्त्तव्यमिति वाच्यम् । 'अग्राह्यं शिवनिर्माल्यमि'तिवचनमज्ञानिनाम्, ज्ञानिनाम् तु प्रसादभक्षणमेवावश्यकम् ।

तथा चोक्तम् यामले—

शिवदत्तं विष्णुदत्तं गिरिजादत्तमेव च ।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यमन्यथा पातकी भवेत् ॥

अग्निपुराणे—

शिवदत्तं विष्णुदत्तं पार्वतीदत्तमेव च ।
नैवेद्यमुदरे कृत्वा नरः सायुज्यमाप्नुयात् ॥

लैङ्गे—

लिङ्गं त्यक्त्वा तु नैवेद्यं भुंक्ते मोहाद्विमूढधीः ।

---

यामल तन्त्र में यही कहा गया है । यथा—'हे महेशानि ! देवता को निवेदन न करके जो भोजन करता है, वह पापी होता है । अष्टोत्तरशत इष्टमन्त्र का जप करके उस पाप से विशुद्ध होता है ।

जो व्यक्ति जिस देवता की अर्चना में रहता है, वह उन देवता का नैवेद्य भोजी होगा । इस वचन के अनुसार ही इष्ट देवता को छोड़कर अन्य देवता का नैवेद्य भक्षण करना कर्त्तव्य नहीं हैं-यह कह नहीं सकते क्योंकि 'शिवनिर्माल्य अग्राहय है' यह वचन अज्ञानीगणों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् जो लोग अज्ञानी हैं, वे ही केवल मात्र उपास्य देवता से भिन्न अन्य देवता का निर्माल्य ग्रहण न करें । परन्तु ज्ञानी लोगों के लिये प्रसाद भक्षण करना कर्त्तव्य है ।

यामल तन्त्र में यही कहा गया है । यथा—'शिव को दत्त ( निवेदित ), विष्णु को निवेदित अथवा गिरिजा ( पार्वती ) को निवेदित नैवेद्य पाने पर तत्काल ही भोजन करें; अन्यथा पातकी होगा ।

अग्निपुराण में कहा गया है—'शिवदत्त, विष्णुदत्त अथवा पार्वतीदत्त नैवेद्य उदर में भोजन करके सायुज्यलाभ करता है ।

लिङ्ग पुराण में कहा गया है कि—जो मूढ़ व्यक्ति मोहप्रयुक्त होकर

कुम्भीपाके च नरके पच्यते नात्र संशयः ॥

एतत्तु शिवमस्तकदत्तं—नैवेद्यपरम् । स्कन्दपुराणे—

बाणलिङ्गे स्वयम्भूवे स्फाटिके मृदि संस्थिते ।
अतः शतक्रतोः पुण्यं शम्भोर्नैवेद्य भक्षणात् ॥

आदित्यपुराणे—

निर्माल्यं धारयेद्यस्तु शिरसा पार्वतीपतेः ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥

तथा च लिङ्गार्चनतन्त्रे—

ब्रह्मत्वं प्राप्तवान् ब्रह्मा योगं चान्ये महर्षयः ।
विष्णुत्वमपि विष्णुश्च शिवः केन न सेव्यते ॥
निर्माल्यं सर्वपापानि शम्भोर्हरति निश्चितम् ।
निवेदितश्च नैवेद्यं भुञ्जीत नात्र संशयः ॥
न हि ये भुञ्जते मूर्खा नरकं तैः प्रपद्यते ।

---

शिवलिङ्ग में दत्त नैवेद्य भोजन करता है, वह कुम्भीपाक नामक नरक को भोग करता है, इसमें सन्देह नहीं है ।

यह वचन शिवमस्तक पर दत्त नैवेद्य के तात्पर्य में प्रयुक्त हुआ है अर्थात्—शिवमस्तक पर दत्त नैवेद्य के भोजन का निषेध ही उक्त वचन का तात्पर्य है।

स्कन्द पुराण में कहा गया है—वाणलिङ्ग, स्वयम्भू लिङ्ग, स्फटिक लिङ्ग एवं मृन्मय लिङ्ग पर दत्त नैवेद्य भक्षण न करें। एतद्भिन्न अन्य शिव के नैवेद्य भक्षण में शतयज्ञ के तुल्य पुण्य होता है ।

आदित्यपुराण में कहा गया है—जो व्यक्ति पार्वतीपति शिव का निर्माल्य मस्तक पर धारण करता है, वह राजसूय यज्ञ के श्रेष्ठ फल को प्राप्त होता है । लिङ्गार्च्चन तन्त्र में भी यही कहा गया है । यथा—'ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुये हैं । अन्य सभी महर्षिगण योग-लाभ उसी से किये है । विष्णु भी विष्णुत्व प्राप्त इसी से हुये है ।

अतः शिव की उपासना कौन नहीं करता ? अर्थात्—सभी का शिवोपासना कर्त्तव्य है । शिव का निर्माल्य पापों का नाश करता है, चरणोदक शोक नाश करता है । शम्भू का नैवेद्य निश्चितरूप से समस्त पापों को नष्ट करता है । निवेदित नैवेद्य का भोजन करना चाहिए—इस विषय में संशय नहीं है । जो मूर्ख लोग निवेदित नैवेद्य का भोजन नहीं करते, वे नरक को

नैवेद्यं चोपभुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने ।
अन्यथा नैव सिद्धिः स्यादर्चको नरकं व्रजेत् ॥

इत्यादि नानातन्त्रपुराणवचनैः निवेदितमात्रं भोक्तव्यं न तु अनिवेदितमिति निश्चयः ॥

नैवेद्यनिन्दकं दृष्ट्वा नृत्यन्ति योगिनीगणाः ।
रक्तपानोद्यतः सर्वा मांसास्थिचर्वणोद्यताः ॥
तस्मान्निवेदितं देव्यै दृष्ट्वा श्रुत्वा च मानुषः ।
न निन्देत् मनसा वाचा कुष्ठव्याधिपराङ्मुखः ॥

इति कालीकुलसर्वस्ववचनात् । कुमारीतन्त्रे—

देवतानाञ्च नैवेद्यं स्त्रीभ्यो दद्यान्न कुत्रचित् ।

तन्त्रे—स्वशक्तिभ्योऽन्यशक्तिभ्यो दत्त्वा च स्वयमाहरेत् ।

यामले—अनेकधा पशोरन्नं भुञ्जते ये च साधकाः ।
तेभ्यः प्रकुप्यते देवी तत् संसर्गं न कारयेत् ॥

---

प्राप्त होते हैं । देवता में भक्तिमान् व्यक्ति को नैवेद्य देकर तब भोजन करना चाहिए; अन्यथा वह सिद्ध नहीं होता है एवं पूजक भी नरक को गमन करता है ।"

इस प्रकार विभिन्न तन्त्रों में पुराणों के वाक्यों से यही निश्चय रूप से ज्ञात होता है कि—निवेदित द्रव्य मात्र ही भोक्तव्य है, अनिवेदित द्रव्य भोक्तव्य नहीं है ।

कालीकुलसर्वस्व तन्त्र में वचन मिलता है कि—'योगिनीगण नैवेद्य निन्दक को देखकर नृत्य करती हैं । वे सभी नैवेद्य निन्दक का रक्त पीने में एवं मांस तथा अस्थि के चर्वण ( चबाने ) में उद्यत होती हैं । अतएव कुष्ठ-व्याधि पराङ्मुख मनुष्य देवता के उद्देश्य से निवेदित अन्न को देखकर अथवा निवेदन की बात सुनकर मन के द्वारा अथवा वाक्य के द्वारा निन्दा न करें ।

कुमारी तन्त्र में कहा गया है—'देवताओं का नैवेद्य स्त्रीगणों को कभी भी मत देना । तन्त्र में कहा गया है—'अपनी शक्ति अथवा दूसरे की शक्ति को नैवेद्य देकर तब स्वयं ग्रहण करें । यामल तन्त्र में कहा गया है—'जो साधकगण अनेक प्रकार से पशु का अन्न ग्रहण करता है, देवी उन लोगों के प्रति कुपित होती हैं । अतएव उन सबों का संसर्ग न करें ।

तन्त्रे—

अनस्थिप्राणिसंघातं हत्वा च दशकं जपेत् ।
हत्वा च पक्षिणं सर्वं त्रिरेकादशकं जपेत् ॥

यामले—

पर्वण्यपूज्य देवेशीं गुरुं शक्तिञ्च शक्तितः ।
अदत्त्वा च बलिं तत्र मूलमष्टशतं जपेत् ॥
वर्णसङ्करजातीयैर्वैष्णवैस्तु सह प्रिये ! ।
शाक्तः शैवो वैष्णवश्च संसर्गं यत्नतस्त्यजेत् ॥
तेषां मुखं समालोक्य सूर्यदर्शनमाचरेत् ।
इष्टमन्त्रं शतं जप्त्वा तस्मात् पापाद्विशुध्यति ॥ इति ॥

वैदिककर्ममात्रम् इष्टदेवताप्रीत्यर्थं कार्यम् । तन्त्रे—

देवताप्रीतिकामस्तु कर्म कुर्यात् सदाशिवे ।
अन्यकामस्तु चेत्कर्म करोति विधिमोहितः ॥
फलं न जायते तस्य देवस्तस्मै प्रकुप्यति ।

अन्यच्च—

ये त्वकामा नराः सम्यग्कर्म कुर्वन्ति शोभने ! ।

---

तन्त्र में कहा गया है—'अस्थिशून्य प्राणिगण का वध करके दश बार मूलमन्त्र का जप करें। समस्त प्रकार के पक्षी का वध करके त्रिगुणित एकादश संख्यक मन्त्र जप करना चाहिए। यामल तन्त्र में कहा गया है—'सामर्थ्य के अनुसार से पर्व दिवसों में इष्टदेवी का, गुरु एवं शक्ति की पूजा न करने अथवा बलि न देने से उसी स्थान पर अष्टोत्तरशत मूलमन्त्र का जप करें। हे प्रिये ! वर्णसङ्कर जातीय वैष्णवों के साथ शाक्त, शैव अथवा वैष्णव यत्नपूर्वक संसर्ग का त्याग करें। उन लोगों का मुख देखकर सूर्य दर्शन करें। शतबार इष्टमन्त्र का जप करके उस पाप से विशुद्ध होवें।

इष्टदेवता के प्रीति के निमित्त ही वैदिक कार्यों का अनुष्ठान करें। तन्त्र में कहा गया है—'हे सदाशिवे ! देवता के प्रीतिकामी होकर वैदिक कर्म को करना चाहिए। यदि विधिमोहित अर्थात् निर्णय करने में अनभिज्ञ व्यक्ति अन्य प्रकार फलकामी होकर कर्म करता है, तब उसे किसी प्रकार का फल नहीं मिलता हैं। देवता उनके प्रति कुपित होते है, और भी कहा गया है—'हे शोभने ! जो मनुष्य कामनाशून्य होकर सम्यक् रूप से कर्म करता हैं,

तेषां ददाति विश्वेशो भगवान् मुक्तिमीश्वरः ॥

सकामानां सायुज्यादि मुक्तिः, सायुज्यं न परामुक्तिः शरीर-सम्बन्धात् । अकामानां निर्वाणमेव मुक्तिः, परमपुरुषार्थत्वात् । "न च पुनरावर्त्तते" इति श्रुतेः ।

ननु—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
मामुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥

इति वचनात् कर्ममात्रस्य भोगनाश्यत्वे बहुजन्मार्जितानन्त-कर्मणात् । भोगेन विनिवर्त्तनासम्भवाद् जीवस्य कथं मुक्तिरिति चेत् । उच्यते—

देवता प्रीतिकामस्तु कर्म कुर्यात् सदाशिवे ।
देवस्तु प्रीतिमापन्नो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥
अकामः सात्त्विको लोके यत्किञ्चिद् विनिवेदयेत् ।
स तत्स्थानमाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ।
अत्यन्तदुःखविरहो मुक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥

---

भगवान् विश्वपति ईश्वर उन लोगों को मुक्ति देते हैं । सकाम व्यक्तियों की सायुज्यादि मुक्ति होती है । परन्तु सायुज्य मुक्ति परामुक्ति नहीं है क्योंकि शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है । निष्काम व्यक्तियों की निर्वाण मुक्ति नहीं होती है क्यों वही परमपुरुषार्थ है, एवं श्रुति है कि–वह अर्थात् मुक्त पुरुष पुनरावृत नहीं होता है ।

परन्तु–'स्वोपार्ज्जित शुभ अथवा अशुभ कर्म का अवश्य ही भोग करना होगा । अभुक्त कर्म शतकल्पकोटि वत्सरों में भी क्षय नहीं होता है । इस वचन के अनुसार कर्ममात्र भोगनाश्य होने पर बहुजन्मार्ज्जित असंख्य कर्मों के भोग के द्वारा क्षय होना असम्भव है, अतः जीवों की मुक्ति किस प्रकार से होगी ? यदि यह कहा जाय, तो उसका उत्तर कह रहा हूँ–'हे सदाशिवे ! देवताओं के प्रीतिकामी होकर कर्म को करना चाहिए । देवता की प्रीति प्राप्त होने पर ही देवता भोग तथा मोक्षफल प्रदान करते हैं । इस लोक में कामनारहित सात्विक व्यक्ति देवता को जो भी कुछ निवेदन करते हैं, वही उस स्थान ( देवलोक ) को प्राप्त होते है । जहाँ जाकर वह शोक नहीं करता । पण्डितगण अत्यन्त दुःख के अभाव को मुक्ति कहते हैं ।

यामले—

धर्माधर्माविति प्रोक्तौ द्वौ पाशौ कर्मसंज्ञितै।
देवताप्रीतिकर्माणि न बन्धाय विमुक्तये।
मूर्ध्ना प्रतीच्छते देवस्तत्कामेन कृतं तु यत्॥

इत्यादिवचनात् वर्तमान—कर्मणाम् ईश्वर प्रीतिमात्रसाधकत्वेनाऽदृष्टो जनकत्वात् प्रारब्धातिरिक्तकर्मणामीश्वरप्रसादलब्ध ज्ञानेन नाशात् प्रारब्धानाञ्च भोगादेव क्षयाल्लिङ्गदेहनाशे विमुक्तिः स्यादिति॥ लिङ्गदेहमाहगान्धर्वे—

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदंशेन्द्रियसमन्वितम्।
शरीरं सप्तदशकं सूक्ष्मैतल्लिङ्गमुच्यते॥

श्रीभागवते द्वादशे—

घटे भिन्नेघटाकाशमाकाशं स्याद्यथा पुरा।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः॥

देहे मृते लिङ्गदेहे ध्वस्ते इत्यर्थः। अन्यथा पुनः पुनर्जन्ममृत्युर्भवत्येव।

---

यामल तन्त्र में कहा गया है—'कर्म नामक धर्म तथा अधर्म यह दोनों पाश ( बन्धन ) मोक्ष के प्रतिबन्धक उपाय कहे गये हैं। देवता के प्रीतिजनक कर्म समूह बन्धन के कारण नहीं हैं—परन्तु मुक्ति के हेतु हैं। देवता के प्रीति की कामना से जो अनुष्ठित होता है, देवता उसे मस्तक के द्वारा अर्थात् आदर के साथ ग्रहण करते हैं। इन सब वचनों के द्वारा ज्ञात होता है कि—वर्तमान कर्म समूह मात्र ईश्वर की प्रीति का कारण है इसलिये अदृष्ट के जनक न होने से प्रारब्ध ( वर्त्तमान देह तथा भोग का निर्वाहक ) है। कर्म को छोड़कर अन्य सभी कर्म ईश्वरानुग्रहलब्ध ज्ञान के द्वारा विनष्ट होने से एवं प्रारब्ध कर्मों के भोग के द्वारा वह क्षय होने से, लिङ्ग शरीर के नाश होने पर मुक्ति मिलती है।

गन्धर्व तन्त्र में लिङ्ग देह कह रहे हैं—'पञ्चप्राण, मन, बुद्धि तथा दसों इन्द्रिय युक्त सप्त दश अवयव विशिष्ट जो सूक्ष्म शरीर है, उस शरीर को लिङ्ग कहते हैं। श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में कहा गया है—'घट विनष्ट होने पर घटाकाश जैसे पूर्व के समान आकाश हो जाता है, उसी प्रकार देह विनष्ट होने पर जीव भी पुनः ब्रह्म हो जाता है। 'देहे मृते' अर्थात्—लिङ्ग देह के विनष्ट होने पर। अन्यथा अर्थात् यह स्वीकार न करके स्थूल देह विनष्ट होता है, कहने से पुनः पुनः जन्म-मृत्यु होता रहेगा।

तथा चोक्तं विष्णुधर्मोत्तरे—

तत्क्षणादेव गृह्णाति शरीरमातिवाहिकम् ।
केवलं तन्मनुष्याणां नान्येषां प्राणिनां क्वचित् ॥
ततः सपिण्डीकरणे बान्धवैः स कृते नरः ।
पूर्णे संवत्सरे देहमतोऽन्यं प्रतिपद्यते ॥
ततः न नरके याति स्वर्गं वा स्वेन कर्मणा ।

तत्क्षणात् मृत्युक्षणात् । प्रेतशरीरञ्च पूर्वदेहरूपमत्यन्तगतिमत् । तदाह मार्कण्डेयपुराणम्—

वायुप्रसारिते देहमतोऽन्यं प्रतिपद्यते ।
तत्प्रमाण-वयोवस्थसंस्थानं प्राग्भवं यथा ॥

इति श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरि-
कृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां संसर्गदोषादिनिर्णयो
नाम षोडशोल्लासः ॥ १६ ॥

---

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में यही कहा गया है, यथा–तत् क्षणात् ही आतिवाहिक देह को धारण करता है। वह केवल मात्र मनुष्यों का होता है, अन्य किसी प्राणी का किसी भी समय में आतिवाहिक देह नहीं होता है। एक वर्ष पूर्ण होने पर बान्धवगणों के द्वारा सपिण्डीकरण अनुष्ठित होने पर वह जीव उस देह से भिन्न अन्य एक देह को लाभ करता है। उस देह के द्वारा वह कर्म के अनुसार स्वर्ग में अथवा नरक में गमन करता है। 'तत्क्षणात्' अर्थात् मृत्यु के क्षण से। प्रेत शरीर अपने पूर्व देह के अनुरूप एवं अत्यन्त गतिमान् है। मार्कण्डेय पुराण में यही कह रहे हैं–"वायु प्रसारित अर्थात् मृत्यु होने पर पूर्वजन्म के देह के समान परिमाण, उम्र, अवस्था तथा आकृति विशिष्ट पूर्व देह से भिन्न अन्य एक देह (शरीर) को प्राप्त होता है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत
शाक्तानन्दतरङ्गिणी का ससंर्गदोषादि निर्णय
नामक नवम उल्लास समाप्त।

# सप्तदशोल्लासः

## अथ कुण्डविधिः

गोविन्दवृन्दावने—

भूमेः परिग्रहं कुर्याद्यावदायतनं भवेत् ।
गुरुराचम्य विधिवदासने उपविश्य च ॥
माषभक्तिबलिं दद्याद्यथोक्तविधिना ततः ।
ॐ स्वर्गपातालमध्ये च ये सन्ति वास्तुदेवताः ॥
गृह्णन्त्विमं बलिं दत्तं तुष्टायान्तु स्वमन्दिरम् ।
मातरो भूतवेताला ये चान्ये बलिकांक्षिणः ॥
देव्याः पारिषदा ये च ते च गृह्णन्त्विमं बलिम् ।

## मण्डपनिर्माणम्

शारदायाम्—

पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम् ।
पञ्चभिः सप्तभिर्हस्तैर्नवभिर्वा मितान्तरम् ॥

---

### कुण्डविधि

गोविन्द वृन्दावन में कहा गया है—जितने परिमाण भूमि में कुण्डक्षेत्र हो सकता है, उतने परिमाण भूमि को कुण्ड के लिये ग्रहण करना चाहिए। गुरु विधि पूर्वक आसन में उपवेशन करके तथा आचमन करके उसके बाद यथोक्त विधान से माषभक्त बलि को दें। माषभक्त बलि का मन्त्रार्थ है—'स्वर्ग तथा पाताल के बीच जितने सभी वास्तु देवता है, वे सभी इस बलि को ग्रहण करें एवं सन्तुष्ट होकर अपने मन्दिर में गमन करें। मातृगण, भूत-वेतालगण, अन्य सभी बलि के प्रार्थिगण एवं जो सब देवी के पार्षदगण हैं, वे सभी इस बलि का ग्रहण करें। इस प्रकार दो बलि देकर साधक मण्डप का निर्माण करें।

### मण्डप-निर्माण

शारदातिलक में कहा गया है—'पुण्याह वाचन करके दैर्घ्य प्रस्थ में पाँच हाथ, सात हाथ अथवा नौ हाथ, सोलह स्तम्भ युक्त शुभ, सुन्दर

षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यगाः ।
अष्टहस्तसमुच्छ्रायाः संस्थाप्य द्वादशाऽमितः ॥
चतुर्विंशांगुलं हस्तं तन्त्रवेदविदो विदुः ।
गृहादिकुण्डकरणे वेदिकामण्डपे तथा ।
मानांगुलेन कर्त्तव्यं नान्यैर्वापि कदाचन ॥

## मानांगुलिलक्षणम्

मानांगुलिमाह तन्त्रे—

कर्त्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमांगुलिपर्वणः ।
मध्यस्य दैर्घ्यमानेन मानांगुलिरुदाहृता ॥

## मण्डपस्थानपरिमाणम्

सिद्धान्तशेखरे—

स्थलादर्कांगुलोच्छ्वायं मण्डपस्थानमीरितम् ।
नारिकेलदलैर्वंशैश्छादयेन् मण्डप ततः ।
चतुर्द्वारैः समायुक्त कदलीस्तम्भसंयुतैः ॥

---

मण्डप की रचना करें । उन सोलह स्तम्भ के मध्य में आठ हाथ ऊँचा चार स्तम्भ मध्य में स्थापित करें । मध्य स्तम्भ के चतुष्पार्श्व में द्वादश स्तम्भ का स्थापन करें । तन्त्रविद्‌गण गृहादि के निर्माण में अथवा कुण्डनिर्माण में वेदिका तथा मण्डप रचना में २४ अंगुल युक्त परिमाण को एक हाथ कहते है । मानांगुल के द्वारा ही यह सब करना हैं । अन्य किसी प्रकार के परिमाण के द्वारा कभी भी नहीं करना चाहिए ।

### मानांगुलिलक्षण

तन्त्रों में मानांगुल कह रहे हैं-'कर्त्ता अर्थात् यजमान के दक्षिण हस्त के मध्यमांगुलि के मध्य पर्व के मध्य भाग के दैर्घ्य के परिमाण को मानांगुलि कहा गया है, अर्थात् मध्यमांगुलि के मध्य पर्व के मध्यभाग का जो दैर्घ्य ( लम्बाई ) परिमाण है, उसे मानांगुलि कहते हैं ।

### मण्डपस्थान परिमाण

सिद्धान्त शेखर में कहा गया है-'साधारण स्थल भाग से द्वादश अंगुल उच्च ( ऊँचा ) भूमि को मण्डप स्थान कहा गया है । उसके बाद अर्थात् मण्डप निर्माण के बाद नारियल के पत्ते तथा बाँश के द्वारा मण्डप को आच्छादित करें । केले के पेड़ के द्वारा मण्डप के चारों द्वार को शोभित

आम्रपत्रसमायुक्त रज्जुभिः परिवेष्ठितम् ।
अष्टदिक्षु ध्वजानष्टौ चतुर्दिक्पालवर्णतः ॥

## दिक्पालवर्णः

दिक्पालवर्णमाह शारदायाम्—

पीतो रक्तो सितो धूम्रः शुक्लो धूम्रः सितावुभौ ।
गौरोऽरुणः क्रमादेते वर्णतः परिकीर्तिताः ॥

## कुण्डशरीरम्

नास्ति होमो विना कुण्डं तस्मात् कुण्डं प्रशस्यते ।
कुण्डस्य रूपं जानीयात् परमं प्रकृतेर्वपुः ॥
प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहु दक्षिणसौम्ययोः ।
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ तु पश्चिमे ॥

---

होने पर एवं आम के पत्ते को रस्सी संयुक्त करके उस रस्सी के द्वारा मण्डप को परिवेष्टित करना चाहिए । आठों दिशाओं में आठ ध्वज (झण्डा) को स्थापित करना चाहिए । उन ध्वज समूहों को दिक्पाल गणों के लिये उन उन वर्णों के समान वर्ण में अनुरञ्जित करना ( रंगाना ) चाहिए ।

### दिक्पाल-वर्ण

शारदातिलक में दिक्पालों का वर्ण कह रहे हैं—पीत, रक्त, सित, धूम्र, शुक्ल, धूम्र दोनों सित और गौर तथा अरूण है—यथाक्रम से यह सभी इन्द्रादि लोकपालों का वर्ण है ।

### कुण्डशरीर

कुण्ड के बिना हवन नहीं होता है, इसलिये हवन कुण्ड प्रशस्त है । प्रकृति के सुन्दर आकृति को ही कुण्ड का रूप-स्वरूप जानना चाहिए । पूर्व दिक् को कुण्ड का शिरः कहा गया है, दक्षिण तथा सौम्य ( उत्तर ) दिक् को कुण्ड के दोनों बाहु कहे गये हैं एवं कुण्ड उदर कहा गया है । योनि तथा पादद्वय पश्चिम को कहा गया है ।

## चतुरस्त्रकुण्डलक्षणम्

पूर्वापरायतं सूत्रं विन्यसेद्धस्तमानतः ।
दक्षिणोत्तरगं सूत्रं तथैव च प्रविन्यसेत् ॥
तदग्रयोः प्रविन्यस्य तथा सूत्रचतुष्टयम् ।
चतुरस्त्रं महाकुण्डं सर्वयोग प्रकीर्तितम् ॥
मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्द्धे संप्रचक्षते ।
शतहोमेऽरत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्त्रके ॥
द्विहस्तमयुते लक्षे चतुर्हस्तमुदीरितम् ।
नियुते षट्करं प्रोक्तं कोट्यामष्टकरं स्मृतम् ॥

## खातपरिमाणम्

यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम् ।
चतुर्विंशत्यंगुलश्च यवशून्यं सहस्त्रके ॥
ततो द्विहस्तमाने तु त्रिंशदंगुलकं स्मृतम् ।
चतुर्हस्ते मध्यमानमष्टत्रिंशत्प्रकल्पितम् ॥

---

### चतुरस्त्र कुण्ड-लक्षण

पूर्वापरायत अर्थात् पूर्व से दक्षिण तक लम्बाई एक हाथ परिमित एक सूत्रपात करना ( धागा रखना )। उत्तर तथा दक्षिण दिक् में बिस्तृत उसी प्रकार अर्थात् एक हाथ परिमित लम्बाई का एक और सूत्रपात करना ( धागा को रखना ) । दोनों सूत्र के अग्रभाग में सूत्रपात करके सूत्र चतुष्टय करना चाहिए । सभी यज्ञ–याग में यही महाकुण्ड चतुरस्त्र कहा गया है । शतार्द्ध हवन में मुष्टि परिमित कुण्ड, शत हवन में अरत्नि ( कनिष्ठांगुलि को छोड़कर मुट्ठी ) मात्र कुण्ड, सहस्र हवन में हस्तपरिमित कुण्ड, अयुत हवन में दो हाथ परिमित, लक्ष हवन में चार हाथ परिमित कुण्ड विहित ( निर्देशित ) हुआ है । नियुत हवन में छह हाथ परिमित एवं कोटि हवन अष्ट हस्त परिमित कुण्ड विहित हुआ है ।

### खात परिमाण ( कुण्ड का गहराई परिमाण )

कुण्ड का जिस प्रकार विस्तार ( मध्य सूत्र ) होगा, उसी परिमाण से खनन ( खात ) गहराई भी कहा गया है । पण्डितगण द्वारा सहस्र हवन में ( एक हाथ कुण्ड का ) मध्यमान ( व्यास ) यवशून्य चौबीस मानांगुल, दो हाथ कुण्ड का मध्यमान त्रिंशत् मानांगुल कहा गया है ।

अंगुलं यवशून्यं स्याल्लक्षहोमे प्रकीर्तितम् ।
ऋतुहस्ते तथा मानं चत्वारिंशत्त्रयाधिकम् ॥
अंगुलं नियुते प्रोक्तमधिकं यवचतुष्टयम् ।
चत्वारिंशदष्टयुतं यवसप्तसमन्वितम् ।
वसुहस्ते तथा मानमंगुलं कथितं बुधैः ॥
शोभनं कमलं कुर्यात् कुण्डमध्ये सरन्ध्रकम् ।
सर्वेषामेव कुण्डानां मेखलास्तिस्र एव च ॥
एकांगुलं विहायाऽन्ते मेखलास्तस्य कारयेत् ।
अर्द्धांगुलप्रमाणेन कण्ठश्च वर्द्धयेत् क्रमात् ॥

तन्त्रान्तरे—

कोणसूत्रप्रमाणेन द्विहस्तं कुण्डमुद्धरेत् ।
एवं लक्षादिके ज्ञेयं कुण्डं तत्र विधानतः ॥

एकहस्त कुण्डस्य कोणसूत्रेण ईशानकोणसूत्रेण परितो यन्मानं तदेव पारिभाषिकं द्विहस्तादिकुण्डमानं न तु प्रकृतहस्ताद् द्वैगुण्यादिकमिति ॥

---

लक्ष हवन में चार हाथ कुण्ड का मध्यमान यवशून्य अष्टत्रिंशत् मानांगुल कहा गया है। नियुत हवन में छह हाथ कुण्ड का मध्यमान चार यव अधिक ४३ मानांगुल उक्त हुआ है। आठ हाथ कुण्ड का मध्यमान ४८ मानांगुल ७ यव कथित हुआ है।

कुण्ड के मध्य में छिद्रयुक्त सुन्दर एक पद्म (कमल) तैयार करना चाहिए। सभी कुण्ड के तीन ही मेखला होगें। कुण्ड के अन्त में अंगुल छोड़कर अर्थात् कुण्ड के प्रान्त (किनारे) में चारों ओर एक अंगुल परिमित परिमाण कण्ठस्थान छोड़कर मेखला तैयार कराना चाहिए। यथाक्रम से अर्द्धांगुल परिमाण कण्ठ को वर्द्धित करना (बढ़ाना)। तन्त्रान्तर में कहा गया है—'कोण को सूत्र के परिमाणानुसार दो हाथ कुण्ड का उद्धार (निर्माण) करना चाहिए। लक्षादि हवन में भी इसी प्रकार के विधान से सभी स्थल में कुण्ड निर्माण करना चाहिए। एक हाथ कुण्ड के कोण को सूत्र से अर्थात् कुण्ड के ईशान कोण में सूत्र को परित अर्थात् आद्यन्त भाग का जो परिमाण है, वही पारिभाषिक द्विहस्त कुण्ड परिमाण है। वास्तविक हस्त का द्विगुण परिमाण किन्तु उसका परिमाण नहीं है।

## मेखलानिरूपणम्

इदानीं मेखलादीनां मानं तस्य निगद्यते ।
कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानाञ्च तादृशम् ॥
कुण्डानां मेखलास्तिस्रो मुष्टिमात्रे तु ताः क्रमात् ।
उत्सेधायामतो ज्ञेया द्वयेकार्द्धांगुलिसम्मिताः ॥
युगांगुलं योनिमानं योन्यग्रमेकमंगुलम् ।
युगांगुलं नाभिपद्मं शतार्द्धे संप्रचक्षते ॥
अरत्निमात्रकुण्डे तास्त्रिद्वयेकांगुलिकात्मिकाः ।
कर्त्तव्या मेखला योनिश्चतुरंगुलसम्मिता ॥
एकांगुलं तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् ।
अंगुलित्रितयं चैव नाभिपद्मं सुशोभनम् ॥
एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनयनांगुलाः ।
कर्त्तव्या मेखला योनिं कुर्याच्चैव षडंगुलम् ॥
वेदांगुलं नाभिपद्मं योन्यग्रं कांगुलं स्मृतम् ।
कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया रसवेदगुणांगुलाः ॥

---

### मेखला निरूपण

सम्प्रति उस कुण्ड के मेखला आदि का परिमाण कहा जा रहा है। कुण्ड का जिस प्रकार रूप अर्थात् आकार होगा, मेखला का भी रूप उसी प्रकार और आकार का होगा। कुण्ड की तीन मेखलाएं होती है। मुष्टि मात्र (मुट्ठी भर) परिमित कुण्ड में उन तीनों मेखला के उच्चता में तथा विस्तार में यथाक्रम से दो अंगुल, एक अंगुल तथा अर्द्ध अंगुल परिमित जानना। शतार्द्ध हवन में कुण्ड की योनि का परिमाण दो अंगुल होगा, योनि का अग्रभाग एक अंगुल एवं नाभिपद्म दो अंगुल का कहा गया है। अरत्निमात्र कुण्ड में उन मेखलाओं को यथाक्रम से तीन अंगुल, दो अंगुल तथा एक अंगुल परिमित करना चाहिए। योनि को चार अंगुल परिमित करना चाहिए। योनि का अग्रभाग एक अंगुल परिमित तथा ईषत् अधोमुख का करना चाहिए। सुशोभन नाभिपद्म तीन अंगुल परिमित होगा। एक हाथ परिमित कुण्ड में मेखलाओं को यथाक्रम से चार अंगुल, तीन अंगुल तथा दो अंगुल परिमित करना चाहिए। योनि छह अंगुल परिमित करना चाहिए। नाभिपद्म चार अंगुल का करना चाहिए। योनि का अग्रभाग एक अंगुल का कहा गया है। दो हाथ परिमित कुण्ड पर मेखलाओं को यथाक्रम से छह अंगुलि, चार अंगुलि तथा तीन अंगुलि परिमित करना चाहिए।

योनिः सप्तांगुलोपेता योन्यग्रं चांगुलिद्वयम् ।
पञ्चांगुलं नाभिपद्मं कुर्याच्चैव मनोहरम् ॥
चतुर्हस्तमिते कुण्डे वसुतर्कयुगांगुलाः ।
कर्त्तव्या मेखलास्तिस्रो योन्यग्रं चांगुलित्रयम् ॥
योनिरष्टांगुलोपेता नाभिपद्मं षडंगुलम् ।
कुण्डे रसकरे ताः स्युर्दशाष्टत्वंगुलान्विताः ॥
योनिर्नवांगुलोपेता योन्यग्रं चतुरंगुलम् ।
सप्तांगुलं नाभिपद्मं कुर्याच्च सुमनोहरम् ॥
अष्टहस्तमिते कुण्डे भानुपंक्त्यष्टकांगुलाः ।
योनिर्दशांगुलोपेता कर्त्तव्याऽधोमुखी तथा ॥
पञ्चांगुलं तु योन्यग्रं कुर्यादष्टांगुलं तथा ।
नाभिपद्मं लक्षहोमे तन्त्रवित् परिकल्पितम् ॥
होतुरग्रे तु तां योनिं मेखलानां परिस्थिताम् ।
गजकुम्भवदाकारां कुर्यादीषदधोमुखीम् ॥

---

योनि सात अंगुल परिमित होगा। योनि का अग्रभाग दो अंगुल परिमित करना चाहिए। मनोहर नाभिपद्म पञ्चांगुलि परिमित करना चाहिए। चार हाथ परिमित कुण्ड पर तीन मेखला यथाक्रम से वसु ( आठ ) अंगुल, तर्क ( छह ) अंगुल एवं युग ( चार ) अंगुल परिमित करना चाहिए। अष्ट अंगुल परिमित योनि, अंगुलित्रय परिमित योनि का अग्रभाग एवं छह अंगुल परिमित नाभिपद्म का निर्माण करना चाहिए। छह हाथ परिमित कुण्ड पर उस मेखलायें यथाक्रम से दस अंगुल, आठ अंगुल तथा छह अंगुल परिमित होगीं। नौ अंगुल परिमित योनि चार अंगुल परिमित योनि का अग्रभाग एवं सात अंगुल परिमित सुमनोहर नाभिपद्म का निर्माण करना चाहिए। लक्ष हवन में आठ हाथ परिमित सुमनोहर नाभिपद्म का निर्माण करना चाहिए। लक्ष हवन में आठ हाथ परिमित कुण्ड पर मेखलाएँ यथाक्रम से बारह अंगुल तथा दस अंगुल तथा आठ अंगुल परिमित होगीं। दस अंगुल परिमित अधोमुखी योनि तैयार करना चाहिए। उसी प्रकार पाँच अंगुलि परिमित योनि के अग्रभाग एवं आठ अंगुलि परिमित नाभिपद्म का निर्माण करना चाहिए। यह परिमाण तन्त्रविद् कर्तृक परिकल्पित है। होता के सम्मुख मेखला के उपरिभाग में गजकुम्भ के समान आकार विशिष्ट ईषत् अधोमुखी योनि का निर्माण करना चाहिए।

पश्चिमाभिमुखीं योनिं कुण्डकोणेषु नार्पयेत् ।
एवं समस्तकुण्डानां व्यवस्थेयं प्रकीर्तिता ॥

## नालनिरूपणम्

स्थलादारम्य नालं स्याद्योन्या मध्ये सरन्ध्रकम् ।

सरन्ध्रकमित्युभयत्र सम्बध्यते । तथा चोक्तं रुद्रयामले—

योन्या मध्ये बिलं कुर्यात् तदाज्यग्राहिसंज्ञकम् ।

स्थलनियममाह क्रियासारे—

होमस्थानाद् बहिःस्थानं स्थलमित्यभिधीयते ।

गौतमीये—

सूक्ष्माग्रं स्थूलमूलश्च सरन्ध्रकं नालमिष्यते ।

सम्मोहनतन्त्रे—

मूलं मध्यं तथा चाग्रं क्रमाच्च षट्चतुस्त्रिकम् ।

तथा च त्रयोदशांगुलीदीर्घं नालमित्यर्थः ।

---

कुण्ड के कोणभाग में पश्चिमाभिमुखी योनि की स्थापना मत करना। समस्त कुण्ड की इसी प्रकार की व्यवस्था कही गयी है ।

### नाल निरूपण

स्थल से आरम्भ करके योनि का नाल होगा। वह मध्य में जिससे रन्ध्र ( छिद्र ) विशिष्ट युक्त होता है, उसी प्रकार का होगा। 'सरन्ध्रकम्' अर्थात् यह दोनों स्थलों में अन्वित होगा । रुद्रयामल तन्त्र में यही कहा गया है। यथा—'योनि के मध्य में बिल ( रन्ध्र ) छिद्र करना चाहिए। वह 'आज्यग्राही' नाम से प्रसिद्ध है अर्थात् उसके मध्य से कुण्डमध्य में घृताहुति दिया जाता है। क्रियासार में स्थलनियम कह रहे हैं—'हवन स्थान ही वह्निस्थान स्थल नाम से अभिहित है।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है—'नाल सूक्ष्माग्र, मूलभाग स्थूल अथच सरन्ध्र-होता है।'

सम्मोहन तन्त्र में कहा गया है—नाल का 'मूल, मध्य, तथा अग्र यथाक्रम से छह अंगुल, चार अंगुल तथा तीन अंगुल दीर्घ होगा। सुतरां—इसका अर्थ यह है कि—नाल त्रयोदश १३ अंगुल दीर्घ है ।

नालमेखलयोर्मध्ये परिधेः स्थापनाय च ।
रन्ध्रं कुर्यात्ततो विद्वान् द्वितीयमेखलोपरि ॥

## कुण्डदोषाः

कुण्डदोषमाह विश्वकर्मा—

खाताधिके भवेद् रोगी हीने चैव धनक्षयः ।
वक्रकुण्डे च सन्तापो मरणं छिन्नमेखले ॥
मेखलारहिते शोको ह्यधिके वित्तसंक्षयः ।
भार्याविनाशकं कुण्डं प्रोक्तं योन्या बिना कृतम् ॥
अपत्य ध्वसनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम् ।
कुण्डमेवं विधं न स्यात् स्थण्डिलं वा समाश्रयेत् ॥

## स्थण्डिललक्षणम्

यामले—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं स्थण्डिले वा समाचरेत् ।
हस्तमात्रे तु तत्कुर्याद् बालुकाभिः सुशोभनम् ।

---

उसके बाद विद्वान् व्यक्ति नाल तथा मेलखा के मध्यभाग में परिधि स्थापन के लिये द्वितीय मेखला के ऊपर में एक रन्ध्र ( छिद्र ) करें ।

### कुण्डदोष

विश्वकर्मा कुण्डदोष कह रहे हैं—कुण्ड का खात ( गहराई ) अधिक होने पर रोगी, छोटा होने पर धनक्षय, कुण्ड वक्र ( टेढ़ा ) होने पर सन्ताप, मेखला छिन्न होने पर मरण होता है । मेखला हीन कुण्ड होने पर शोक होता है । मेखला अधिक होने पर धनक्षय होता है । योनि रहित कुण्ड होने पर भार्या नाशक कहा गया है । कण्ठ वर्जित कुण्ड अपत्यनाशक कहा गया है । कुण्ड यदि इस प्रकार नहीं होता है, तब स्थण्डिल का निर्माण करना चाहिए ।

### स्थण्डिल लक्षण

यामल तन्त्र में कहा गया है—'नित्य, नैमित्तिक अथवा काम्य हवन स्थण्डिल पर करना चाहिए । मात्र एक हाथ परिमित स्थान में वालु का ( वालु ) के द्वारा सुशोभन स्थण्डिल तैयार करना चाहिए ।

अंगुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥

चतुरस्रं चतुष्कोणमित्यर्थः ।

इति श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मा-
नन्दगिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां कुण्डनिर्णयो
नाम सप्तदशोल्लासः ॥ १७ ॥

---

एक अंगुल उत्सेध युक्त ( उच्चता ) कुण्ड के चारों ओर चतुरस्र ( चतुष्कोण ) होगा ।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत
शाक्तानन्दतरङ्गिणी का कुण्ड निर्णय नामक
सप्तदश उल्लास समाप्त ।

# अष्टादशोल्लासः

## अथ होमविधिः

अथाऽग्निजननं वक्ष्ये सर्वतन्त्रानुसारतः ।
गोमयेन समालिप्य कुण्डं सर्वत्र मन्त्रवित् ।
सामान्यार्घ्यं प्रकल्प्याऽथ पञ्चगव्यैर्विशोधयेत् ॥

## अष्टादशकुण्डसंस्काराः

शारदायाम्—

अष्टादशोक्ताः संस्काराः कुण्डानां तन्त्रदेशिताः ।
वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण प्रोक्षणं मतम् ॥
तेनैव ताडनं दर्भैर्वर्मणाभ्युक्षणं स्मृतम् ।
अस्त्रेण खननोद्धारौ हृन्मन्त्रेण प्रपूरणम् ।
समीकरणमस्त्रेण सेचनं वर्मणा मतम् ॥

---

### होमविधि

इसके अनन्तर समस्त तन्त्र सम्मत अग्नि जनन ( अग्नि प्रणयन तथा संस्कार ) कहूँगा । मन्त्रज्ञ साधक सभी स्थानों में गोमय ( गाय का गोबर ) के द्वारा कुण्ड लेपन करके तथा सामान्यार्घ्य का स्थापन कर बाद में पञ्चगव्य के द्वारा कुण्ड का शोधन करें ।

### अष्टादश कुण्डसंस्कार

शारदातिलक में कहा गया है—"कुण्ड समूह का तन्त्रोक्त संस्कार अष्टादश प्रकार का कहा गया है । मूलमन्त्र के द्वारा वीक्षण, शर ( फट् ) मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण विहित हुआ है । उस शर ( फट् ) मन्त्र से दर्भ के द्वारा ताड़न तथा वर्म ( हुं ) मन्त्र के द्वारा अभ्युक्षण कहा गया है । अस्त्र ( फट् ) द्वारा खनन तथा खात मृत्तिका मिट्टी का उद्धार ( उत्तोलन उठाना ), हृत् ( नमः ) मन्त्र से ( अन्य मिट्टी के द्वारा ) पूरण, अस्त्र ( फट् ) मन्त्र के द्वारा समीकरण, ( हुं ) मन्त्र से सेचन ( अभ्युक्षण ) कहा गया है ।

कुट्टनं हेतिमन्त्रेण वर्ममन्त्रेण मार्जनम् ।
विलेपनं कलारूपकल्पनं तदनन्तरम् ॥
त्रिसूत्रीकरणं पश्चाद् हृदयेनाऽर्चनं मतम् ।
अस्त्रेण वज्रीकरणं हृन्मन्त्रेण कुशैः शुभैः ॥
चतुष्पथं तनुत्रेण तनुयादक्षपाटनम् ।
यागे कुण्डानि संस्कुर्यात् संस्कारैरेभिरीरितैः ॥

अस्यार्थः—कुट्टनं दृढीकरणम् । विलेपनं गोमयोदकेन । कलारूपकल्पनं सोमसूर्याग्निकलात्मकचिन्तनम् । त्रिसूत्रीकरणं रक्तसूत्रेण त्रिःपरिवेष्टनम् । वज्रीकरणं वज्ररूपेण चिन्तनम् । चतुष्पथं चतुरस्रीकरणम् । अक्षपाटनमिन्द्रियोद्घाटनम् इति ।

## प्रकारान्तरसंस्कारः

अथवा तानि संस्कुर्याच्चतुर्भिर्वीक्षणादिभिः ।
तिस्रस्तिस्रो लिखेल्लेखा हृदा प्रागुदगग्रिकाः ।
प्रागग्राणां स्मृता देवा मुकुन्देशपुरन्दराः ॥

---

हेति ( फट् ) मन्त्र से कुट्टन, वर्म मन्त्र से मार्जन, विलेपन, सोम, सूर्य तथा अग्निरूप कलात्रय की कल्पना तथा बाद में त्रिसूत्रीकरण, अनन्तर हृदय ( नमः ) मन्त्र से अर्चन विहित हुआ है । अस्त्र मन्त्र के द्वारा वज्रीकरण अर्थात् वज्र के समान दृढ़ चिन्तन, पवित्र कुश के द्वारा हृन्मन्त्र से चतुष्पथ तथा तनुत्र (हुं ) मन्त्र के द्वारा अक्षपाटन करना चाहिए । पूर्वोक्त इन सभी संस्कार के द्वारा यज्ञ में कुण्ड का संस्कार करें कुट्टन का अर्थ दृढ़ीकरण । विलेपन—गाय के गोबर और जल के द्वारा लेपन । कलारूप कल्पन अर्थात् सोम, सूर्य तथा अग्निकला-स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए । त्रिसूत्रीकरण अर्थात् लाल सूत के द्वारा तीन बार वेष्टन करना ( बाँधना ) । चतुष्पथ का अर्थ है चतुस्रीकरण । अक्षपाटह अर्थात् इन्द्रियोद्घाटन करना चाहिए ।

## प्रकारान्तर संस्कार

अथवा असमर्थ व्यक्ति को वीक्षणादि चार प्रकार के संस्कारो द्वारा कुण्डों का संस्कार करना चाहिए । अनन्तर नमः मन्त्र से प्रागग्र भाग में (पूर्व दिक् में अग्रभाग करके) तीन एवं उदगग्र भाग में ( उत्तरदिक् में अग्रभाग करके ) तीन-रेखा का विन्यास करना ( तानना ) । मुकुन्द, ईश तथा पुरन्दर यथाक्रम से प्रागग्र तीनों रेखाओं के देवता कहे गये हैं ।

रेखाणामुदगग्राणां ब्रह्मवैवस्वतेन्दवः ॥
अथवा त्रिकोणं तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिरष्टदलपद्मं परिकल्पयेत् ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं वा वह्निमण्डलम् ।
कुण्डस्योत्तरभागे च त्रिरेखा हस्तमानतः ॥
दक्षिणोत्तरतस्तद्वल्लिखेद्रेखात्रयं शुभम् ।
अर्घ्याद्भिः प्रोक्ष्य सर्वं हि पञ्चशुद्धिं समाचरेत् ॥
सर्वाणि तारेणाऽभ्युक्ष्येति शेषः ॥

## पञ्चशुद्धिः

पञ्चशुद्धिमाह शारदायाम्—
वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण प्रोक्षणं मतम् ।
ताडनं हेतिमन्त्रेण कवचेनाऽथ लेपयेत् ॥
अस्त्रेण रक्षणं कृत्वा ततः संस्कारमाचरेत् ।
ततो वह्नेर्योगपीठमर्चयेत् कर्णिकोपरि ।
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यमग्नितो यजेत् ॥

---

ब्रह्म, वैवस्वत तथा इन्दु यथाक्रम से उदगग्र तीनों रेखाओं के देवता हैं ।

अथवा त्रिकोण, उसके बाहरी भाग में षट्कोण, उसके बहिर्भाग में अष्टदल पद्म का विन्यास करना करना चाहिए । इस प्रकार चतुरस्र तथा चतुर्द्वार-विशिष्ट वह्निमण्डल तैयार करना चाहिए । कुण्ड के उत्तर भाग में एक हाथ प्रमाण के तीन रेखायें खींचना । दक्षिण तथा उत्तर भाग में भी उसी प्रकार के पवित्र तीन रेखायें बनाना । अर्घ्य जल के द्वारा सभी रेखाओं को प्रोक्षण करके पञ्चशुद्धि करना अर्थात्-प्रणव मन्त्र के द्वारा सभी रेखाओं का अभ्युक्षण करके । यह बात पूर्वोक्त श्लोक के साथ योग करना होगा ।

### पञ्चशुद्धि

शारदातिलक में पञ्चशुद्धि कह रहे हैं—मूलमन्त्र के द्वारा वीक्षण करके, शर ( फट् ) मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण विहित है । हेति ( फट् ) मन्त्र के द्वारा ताड़न करके, कवच ( हुं ) मन्त्र के द्वारा लेपन तथा अस्त्र मन्त्र के द्वारा रक्षा कर बाद में संस्कार करना चाहिए । उसके बाद कर्णिका के ऊपर में वह्नि के योगपीठ की अर्चना करना चाहिए । पूर्व आदि दिकों में अग्निकोण से आरम्भ करके धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य एवं अपूर्व धर्म आदि की

पूर्वादि दिक्षु चापूर्वानथ धर्मादिकान यजेत् ।
मध्ये च पूजयेद्वह्नेर्नवशक्तीर्विधानवित् ॥
पीता श्वेताऽरुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा स्फुलिङ्गिनी ॥
रुचिरा ज्वालिनी प्रोक्ता क्रमशो नव शक्तयः ।
पूजयेन्मण्डलं तेषां कलाभिः सहमन्त्रवित् ॥
अं अर्कमण्डलं ङेन्तं तथा उं सोममण्डलम् ।
मं वह्निमण्डलं तद्वदर्चयेद् गन्धपुष्पकैः ॥
वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरसन्निभाम् ।
वागीश्वरेण सहितामुपचारैः समर्चयेत् ॥

## अग्निप्रणयनम्

विहिताग्निमाह तन्त्रे—

सूर्यकान्तादिसम्भूतं यद्वा श्रोत्रियगेहजम् ।

अग्निप्रणयनमाह—

पात्रान्तरेण पिहिते ताम्रपात्रादिके शुभे ।
अग्निप्रणयनं कुर्याच्छरावे वापि तादृशे ॥

---

अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य की पूजा करना चाहिए। विधिज्ञ साधक मध्य में वह्नि के नौ प्रकार की शक्तियों की पूजा करें। पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा तथा ज्वालिनी—यथाक्रम से ये नौ प्रकार की अग्नि की शक्तियाँ है। इस प्रकार ङेन्त ( चतुर्थी विभक्ति युक्त ) अर्कमण्डल का अर्थात् 'अं अर्कमण्डलाय नमः' मन्त्र से, 'उं सोममण्डलाय नमः' मन्त्र से सोममण्डल का एवं 'मं वह्निमण्डलाय नमः' मन्त्र से वह्निमण्डल का गन्ध पुष्पों के द्वारा पूजा करें। नील इन्दीवर ( नीलोत्पल ) के समान ऋतुस्नाता वागीश्वरी के साथ उपचार के द्वारा पूजा करें।

### अग्निप्रणयन्

तन्त्र में विहित अग्नि कह रहे हैं—'सूर्यकान्त अथवा अरणि-सम्भूत अथवा साग्निक श्रोत्रिय ब्राह्मणों के गृहजात अग्नि को विहित अग्नि कहते हैं। अग्नि प्रणयन कह रहे हैं—'पात्रान्तर अर्थात् दूसरे पात्र के द्वारा आच्छादित, पवित्र, नूतन ताम्रादि पात्रों में अथवा तादृश अर्थात् पात्रान्तर के द्वारा आच्छादित करके नूतन शराब में अग्नि प्रणयन करना चाहिए।

यत्तु स्मृतिसारे—

शरावे भिन्नपात्रे वा कपाले वोल्मुकेऽपि वा ।
नाग्निप्रणयनं कुयाद् व्याधिहानि-भयावहेम ॥ इति ॥

तस्य—मुख्यपात्रसम्भवे शरावो न ग्राह्य इत्यत्र तात्पर्यम् ।

आनीयास्त्रेण नैर्ऋत्यां क्रव्यादांशं परित्यजेत् ।
अस्त्रेणैव च तत्काष्ठं नैर्ऋत्यां वर्जयेत् प्रिये ॥

शारदायाम्—

संस्कुर्यात् तं यथान्यायं देशिको वीक्षणादिभिः ।
ओदर्यं वैन्दवाग्निभ्यां भौमस्यैकं स्मरन् वसोः ॥
योजयेद्वह्निबीजेन चैतन्यं पावके तदा ।
तारेण मन्त्रितं कृत्वा धेनुमुद्रामृतीकृतम् ॥
अस्त्रेण रक्षितं पश्चात् तनुत्रेणाऽवगुण्ठितम् ।
अर्चितं त्रिःपरिभ्राम्य कुण्डस्योपरि देशिकः ।
प्रदक्षिणं तदा तारमन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥

---

स्मृतिसार में कहा गया है—'शरावे अर्थात् भिन्न भग्न पात्र में, कपाल अर्थात् ( टूटे हुए तसली में ) तथा उल्मूक अर्थात् ज्वलन्त काष्ठ खण्ड में ( जलती हुई लकड़ी में ) व्याधि, हानि तथा भयकारक अग्नि प्रणयन ( स्थापनार्थ आनयन ) मत करना। उसके-मुख्य पात्र में उपस्थित रहने से शराब अग्नि प्रणयनार्थ ग्रहणीय नहीं है, यह तात्पर्य जानना चाहिए। अस्त्र के द्वारा अग्नि को लाकर नैर्ऋत कोण में क्रव्यादांश छोड़ना। हे प्रिये अस्त्र मन्त्र के द्वारा उस काष्ठखण्ड को भी नैर्ऋत कोण में छोड़ दें।

शारदातिलक में भी कहा गया है—'देशिक ( दीक्षित साधक ) उस विहित अग्नि को न्यायानुसार ( नियमानुसार ) से अर्थात् विधानानुसार से बीक्षणादि के द्वारा संस्कार करें। उस समय में औदर्य्य वह्नि (जाठराग्नि) तथा वैन्दव वह्नि का सहस्रार पद्मस्थित परमात्मस्वरूप बिन्दुसम्भूत वह्नि के साथ भौमवह्नि के ऐक्य की चिन्ता करके वह्निबीज के द्वारा रं वह्निचैतन्यं कल्पयामि' मन्त्र से वह्नि में चैतन्य का योग करना चाहिए। दीक्षित साधक अग्नि को तार के द्वारा मन्त्रित करके धेनुमुद्रा के द्वारा अमृतीकृत, अस्त्र के द्वारा रक्षित, तनुत्र ( कवच-हुं ) द्वारा अवगुण्ठित तथा अर्चित करके, प्रदक्षिण क्रमों में दक्षिणावर्त्त में कुण्ड के ऊपर में तीन बार

आत्मनोऽभिमुखं वह्निं जानुस्पृष्टमहीतलः ।
शिवबीजधिया देव्या योनावेनं विनिक्षिपेत् ॥

समयातन्त्रे—

कुशेनाच्छाद्य तद्योनिं चतुष्कोणं पटं न्यसेत् ।
ततो देवाय देव्यै च दद्यादाचमनीयकम् ।
गर्भनाड्या धृतं ध्यायेद्वह्निरूपं हरिं गुरुः ॥

हरिरित्युपलक्षणं स्वस्वेष्टदेवानाम् । समयातन्त्रे—

देव्या वामकरे दद्याद्रक्षार्थं दर्भकङ्कणम् ।
भूषाभिर्भूषयेद्देवीं त्रैलोक्योत्पत्तिमातृकाम् ॥

## जिह्वामन्त्रः

रेफवाय्वर्घीशैर्युक्ता नादबिन्दुविभूषिताः ।
सादियान्ताश्च जिह्वानां मनवः परिकीर्त्तिताः ॥
पायौ लिङ्गे च नाभौ च हृदये कण्ठमूलतः ।
लम्बिकायां भ्रुवोर्मध्ये जिह्वा ज्वालारुचो न्यसेत् ॥

---

भ्रामित करके (घूमाकर), प्रणव का उच्चारण करके, जानू के द्वारा भूमितल का स्पर्श करके शिवबीज ज्ञान से आत्माभिमुख से देवी की योनि मे उस वह्नि का निक्षेप करना चाहिए।

समयातन्त्र में कहा गया है–'उस योनि को कुश के द्वारा आच्छादन करके चतुष्कोण वस्त्र का स्थापन करें। उसके बाद देव तथा देवी को ( वागीश्वर एवं वागीश्वरी को ) आचमन देना चाहिए। गुरु वह्निरूप हरि ( वागीश्वरी ) का गर्भ नाड़ी के द्वारा धृत है यह चिन्ता करें। 'हरि' यह पद स्व स्व इष्ट देवता का उपलक्षण मात्र है।

समयातन्त्र में कहा गया है–'गर्भ रक्षार्थ देवी के वाम कर (बाँये हाथ) ( दर्भकङ्कण देना चाहिए। त्रैलोक्योत्पत्ति के मातृकास्वरूप वागीश्वरी देवी को बहु प्रकार अलङ्कार के द्वारा भूषित करें।

## जिह्वामन्त्र

रेफ ( र ), वायु ( य ) तथा अर्घीश ( ऊ ) युक्त सकारादि–यकारान्त-वर्ण ( स, ष, श, व, ल, र तथा य ) यह वर्णसमूह नाद तथा बिन्दु के द्वारा भूषित होकर अर्थात् स्त्रां इत्यादि वह्नि की जिह्वा का मन्त्र होता है, यह कहा गया है। पायु ( गुह्य ) में, लिङ्ग में, नाभि में, हृदय में, कण्ठमूल में, लम्बिका ( नासिका ) में तथा भ्रूमध्य में ज्वालारुचि ( वह्नि ) का

जिह्वास्तस्त्रिविधाः प्रोक्ता गुणभिन्नेषु कर्मसु ।
हिरण्या गगना रक्ता कृष्णाऽन्या सुप्रभा मता ॥
बहुरूपा सुवर्णान्या तृतीया भद्रलोहिता ।
लोहिताऽनन्तरं श्वेता धूमिनो च करालिका ॥
राजस्यो रसना वह्ने विहिता काम्यकर्मसु ।
विश्वमूर्त्तिस्फुलिङ्गिन्यै धूम्रवर्णा मनोजवा ॥
लोहितान्या करालास्या काली तामस्य ईरिताः ।
एताः सप्त नियुज्यन्ते क्रूरकर्मसु मन्त्रिभिः ॥

## जिह्वाधिपति देवता

अमर्त्य-पितृ-गन्धर्व-यक्ष-नाग-पिशाचकाः ।
राक्षसाः सप्त जिह्वानामीरिता ह्यधिदेवताः ॥
वह्नेरङ्गमनुं न्यस्येत तनावुक्तेन वर्त्मना ।
सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्णं उत्तिष्ठपुरुषस्तथा ॥
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इतोरिताः ।
षडङ्गमनवः प्रोक्ता जातिभिः सह संयुताः ॥

---

जिह्वान्यास करना चाहिए। सात्त्विकादि गुण भेद से विभिन्न कर्मों में अर्थात् सात्विक, राजसिक तथा तामसिक कर्मों में वह जिह्वा भी तीन प्रकार की कही गयी है। सात्विक यागकार्य समूह में हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अतिरक्ता वह्नि की सात्विक जिह्वा कही गयी है।

काम्य कर्मसमूह में पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी तथा करालिका वह्नि की राजस जिह्वा है। विश्वमूर्त्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, करालास्या तथा काली वह्नि की तामस जिह्वा है। साधकगण कर्तृक ! ये सात प्रकार के अग्नि के जिह्वा क्रूर कर्म में प्रयुक्त होते हैं।

### जिह्वाधिपति देवता

अमर्त्य ( देवता ), पितृगण, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच ये सप्तजिह्वा के अधिपति कहे गये हैं। पूर्वोक्त रीति से अर्थात् 'सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः' इस मन्त्र से अपने देह में वह्नि के अङ्गमन्त्र का न्यास करें। सहस्रार्चिः, स्वस्तिपूर्ण, उत्तिष्ठपुरुष, धूमव्यापी, सप्तजिह्वा तथा धनुर्धर–ये षडङ्ग देवता कहे गये हैं। यह छह पद शब्द जाति के अर्थात् नमः, स्वाहा, वषट्, हुँ, वौषट् तथा फट् मन्त्र के साथ युक्त होकर षडङ्ग मन्त्र होते हैं, यह कहा गया है।

## मूर्त्तिन्यासः

शारदायाम्—

मूर्त्तिरष्टौ तनौ न्यस्येद्देशिको जातवेदसः ।
मूर्ध्निस्कन्धे वामपार्श्वे कट्यन्धु कटिपार्श्वके ॥
तथा स्कन्धे च विन्यस्येत् प्रादक्षिण्यक्रमेण तु ।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः ॥
अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ।
कौमारतेजाः स्याद् विश्वमुखो देवमुखः स्मृताः ॥
ताराग्नये पदाद्योः स्युर्नत्यन्ता वह्निमूर्तयः ।
एवं विन्यस्तदेहः सन् ज्वालयेन्मनुनाऽमुना ॥

ज्वालयेदिति ज्वालिनीमुद्रां प्रदर्श्य इत्यर्थः । तल्लक्षणं राघवीये—

मणिबन्धौ समौ कृत्वा करौ तु प्रसृतांगुली ।
मध्यमे मिलिते कृत्वा अन्तरंगुष्ठकौ क्षिपेत् ।
मुद्रा सा ज्वालिनी प्रोक्ता वह्नेर्ज्वलनकर्मणि ॥ इति ॥

---

### मूर्त्तिन्यास

शारदातिलक में कहा गया है—'साधक होम काल में स्वशरीर से अग्नि के अष्टमूर्त्ति का न्यास करें। मस्तक पर, वाम-स्कन्ध पर, वाम-पार्श्व में, वाम-कटि में, लिङ्ग पर, दक्षिण-कटि पर, दक्षिण-पार्श्व में तथा दक्षिण-स्कन्ध में प्रदक्षिण क्रम से मूर्त्ति का न्यास करें। जातवेद, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख तथा देवमुख ये वह्नि की मूर्त्तियाँ कही गयी है। ये सभी वह्नि मूर्त्ति के आदि में अर्थात् उसके पहले ॐ तथा अन्त में 'अग्नये' पदविशिष्ट एवं अन्त में नति ( नमः ) युक्त—'ॐ अग्नये जातवेदसे नमः' इत्यादि रूप होगा। इस प्रकार विन्यस्तदेह होकर अर्थात् देह में न्यास करके इस वक्ष्यमाण मन्त्र के द्वारा वह्नि को प्रज्वालित करना चाहिए। ज्वालयेत्' इस पद का अर्थ है—ज्वालिनी मुद्रा दिखाकर प्रज्वालित करना चाहिए। राघवभट्ट कृत शारदातिलक की टीका में इसका विशेष लक्षण कहा गया है। यथा—मणिबन्धद्वय को समान करके दोनों हाथों को प्रसृतांगुलि अर्थात् दोनों हाथ के सभी अंगुल प्रसारित करना चाहिए। दोनों मध्यमांगुलि को मिलाकर अभ्यन्तर भाग में अंगुष्ठ द्वय को स्थापित करना चाहिए। वह्नि के प्रज्वालन कार्य में यह 'ज्वालिनी मुद्रा' कहा गया है।

### वह्निप्रज्वालनमन्त्रः

शारदायाम्—चित्पिङ्गलं हन दह पच युग्मानुदीर्य च।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः॥
अग्निं प्रज्वालितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतो मुखम्॥
उपतिष्ठेत विधिवन्मनुनाऽनेन पावकम्।
शारदायाम्—परिषिञ्चेत् ततस्तोयै विशुद्धैर्मेखलोपरि।
दर्भैः काष्ठैश्च शुद्धैश्च मूलमध्याग्रच्छादितैः॥
संस्तरेद्विधिवन्मन्त्री प्रदक्षिणावशक्ततः।
एवं संस्तरणं कुर्याद्वर्जयित्वात्मनो दिशम्॥
गणेश्वरविमर्शिन्याम्—प्रागग्रैरुदगग्रैश्च दर्भैर्वह्निं परिस्तरेत्।
यज्ञवृक्षोद्भवं तद्वत् काष्ठैश्च परिधित्रयम्॥
मध्ये तु मेखलायान्तु संस्तरेत् तन्त्रवित्तमः।
अथ चेत् स्थण्डिले मन्त्री भूमौ सर्वं परिस्तरेत्॥

---

### वह्नि-प्रज्वालन मन्त्र

शारदातिलक में कहा गया है—'चित्पिङ्गल' पद एवं 'हन हन' पदद्वय, 'दह दह' पदद्वय एवं 'पच पच' पदद्वय अर्थात् 'हन हन दह दह पच पच' पद का उच्चारण करके 'सर्वज्ञा ज्ञापय स्वाहा' कहना चाहिए। वह्नि का यह मन्त्र पूर्णाचार्यगणों द्वारा कहा गया है। उसके बाद उल्लिखित 'अग्नि प्रज्वलितं वन्दे' इत्यादि मन्त्र के द्वारा यथाविधि अग्नि की उपासना करें। उक्त मन्त्र का अर्थ है—सुवर्ण वर्ण निर्मल तेजोमय विश्वतोमुख जातवेद प्रज्वलित हुताशन अग्नि की वन्दना करता हूँ।

शारदातिलक में कहा गया है—'उसके बाद साधक विशुद्ध जल के द्वारा चतुर्दिक (चारों ओर) सेवन करें एवं मेखला के ऊपर भाग में मूल, मध्य तथा अग्र में आच्छादित दर्भ अथवा शुद्ध काष्ठों के द्वारा प्रदक्षिण क्रम से परस्पर संलग्नरूप से यथाविधि संस्तरण करें। अपने सम्मुख भाग को छोड़कर इस प्रकार संस्तरण करें।

गणेश्वर विमर्शिनी में कहा गया है—'प्रागग्र तथा उत्तराग्र दर्भ के द्वारा अग्नि का परिस्तरण करें। तन्त्रवित् साधक मेखला के मध्यभाग में यज्ञ-वृक्षोत्पन्न काष्ठ के द्वारा परिधित्रय का परिस्तरण करें। साधक यदि स्थण्डिल पर हवन करते हैं, तब भूमि पर सभी परिस्तरण करें।

## परिधिलक्षणम्

यज्ञकाष्ठसमुद्भूतः प्रादेशप्रमितः शुभः ।
परिधिः कथितः सर्वैर्देशिकैस्तन्त्रवित्तमैः ॥
निक्षेपेद्दिक्षु परिधीन् प्राचीवर्ज्यं गुरूत्तमः ।
प्रादक्षिण्येन सम्पूज्यास्तेषु ब्रह्मादिमूर्तयः ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वह्निदेवं विभावयेत् ॥

## वह्निध्यानं

वह्नेर्ध्यानं यथा—त्रिनयनमरुणाभं बद्धमौलिं तु शुक्लां
शुकमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम् ।
अभिमतवरशक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चै-
र्नमतकमलमालालंकृतांशं कृशानुम् ॥
एवं हि मनसा ध्यायेच्छान्तिकादौ गुरूत्तमः ॥
कृष्णं कृष्णगतेर्वर्णं ध्यायेन्मारणकर्मणि ।
मूर्तिरष्टौ समभ्यर्च्य षट्कोणे तु षडङ्गकम् ।
मध्ये षट्स्वपि कोणेषु जिह्वा ज्वालारुचो यजेत् ॥

---

### परिधि-लक्षण

यज्ञकाष्ठ समुत्पन्न प्रदेशद्वय परिमित पवित्र काष्ठखण्ड को तन्त्रवित् सभी साधकों के द्वारा परिधि कहा गया है। गुरुश्रेष्ठ पूर्वदिशा को छोड़कर और सभी दिशा में परिधि का निक्षेप करें। प्रदक्षिण क्रम से उन दिक् समूह में ब्रह्मादि मूर्त्ति की पूजा करें। गन्धादि के द्वारा वह्नि देव की अर्चना करके उनकी भावना करें।

### वह्नि-ध्यान

वह्नि का ध्यान है यथा—'पद्मासनोपविष्ट, शुक्लवस्त्र परिहित, अनेक प्रकार के अलङ्कारों से विभूषित, हाथों से अभिमत वर ( वरमुद्रा ), शक्ति, स्वस्तिक तथा अभीति (अभयमुद्रा) धारी, मस्तक पर जटामण्डित, स्कन्ध में कमलमालालंकृत, नयनत्रय भूषित कृशानु (वह्नि) की भावना करना चाहिए। मारण कार्य में कृष्णगति ( वह्नि ) के वर्ण ( कृष्णवर्ण ) का ध्यान करें। वह्नि की आठों मूर्त्तियों की अर्चना करके, छह कोणों में छह अङ्ग देवता की पूजा करके, कुण्ड मध्य के छह कोणों में वह्नि की जिह्वा की अर्चना करें।

केशरेषूक्तमार्गेण: पूजयेदङ्गदेवता ।
दलेषु पूजयेन्मूर्त्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणी: ।
लोकपालांस्ततो दिक्षु पूजयेदुक्तलक्षणाम् ॥

शारदायाम्—

ध्यातं वह्निं यजेन्मध्ये गन्धाद्यैर्मनुनाऽमुना ।
वैश्वानरजातवेदपदे पश्चादिहावह ॥
लोहिताक्षपदस्याऽन्ते सर्वकर्माणि साधय ।
वह्निजायावधिः प्रोक्तो मन्त्रः पावकवल्लभः ॥

कुलार्णवे—

ब्रह्माणं दक्षिणेऽभ्यर्च्य घृतस्थालीं प्रपूजयेत् ।
आज्यस्थालीं समानीय क्षालयेदस्त्रमन्त्रतः ॥
कुण्डाङ्गाराम्समुत्तोल्य न्यसेत् तत्राऽस्त्रमन्त्रतः ।
तस्यामाज्यं विनिक्षिप्य जानीयात् तपनं हि तत् ॥

---

इस रीति से केशर समूह में अङ्गदेवताओं की पूजा करना चाहिए। शक्ति तथा स्वस्तिक धारिणी वह्निमूर्त्ति समूह की दलों में पूजा करना चाहिए। उसके बाद पूर्वोक्त लक्षणाक्रान्त दिक्पालगणों के दिक्समूह की पूजा करना चाहिए।

शारदातिलक में कहा गया है—इस वक्ष्यमाण मन्त्र से गन्धादि उपचारों के द्वारा ध्यात अग्नि की पूजा करें। वह्निमन्त्र—'वैश्वानर' पद तथा 'जातवेद' पद, बाद में 'इहावह', 'लोहिताक्ष' पद के अन्त में वह्निजायावधि (स्वाहान्त) 'सर्वकर्माणि साधय' पद अर्थात् 'वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा'—'यह पावकवल्लभ (वह्नि) का मन्त्र कहा गया है।

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है—'दक्षिण में ब्रह्मा की अर्चना करके घृत-स्थाली की पूजा करें। आज्यस्थाली को अवनयन करके अस्त्र मन्त्र के द्वारा उसका छालन करें। कुण्ड के अङ्गार को उठाकर उस अङ्गार के ऊपर अस्त्र मन्त्र से आज्यस्थाली की स्थापना करें। उस आज्यस्थाली में घृत को छोड़ दें। यही तापन है ऐसा जानना चाहिए।

शारदायाम्—

तस्यामाज्यं विनिक्षिप्य संस्कृतं वीक्षणादिभिः ।
निरुह्य वायव्यऽङ्गारान् हृदा तेषु निवेशयेत् ।
इदं तापनमुद्दिष्टं देशिकैस्तन्त्रवेदिभिः ॥

अर्णवे—

प्रज्वाल्य कुशगुच्छन्तु आज्ये क्षिप्त्वाऽनले क्षिपेत् ।
अभिद्योतनमित्युक्तं सर्वत्र सर्वकर्मसु ॥

शारदायाम्—

दीप्तेन दर्भयुग्मेन भीराज्याज्यं स वर्मणा ।
अग्नौ विसर्जयेद् दर्भमभिद्योतनमीरितम् ॥
पुनः कुशान् समुज्वाल्य निक्षिपेदाज्यमध्यतः ।
मूलमन्त्रेण मतिमानाज्यसंस्कार ईरितः ॥
सन्दीप्य दर्भयुगलमाज्ये क्षिप्त्वाऽनले क्षिपेत् ।
गुरुर्हृदयमन्त्रेण पवित्रीकरणं त्विदम् ॥
अभिमन्त्र्य च मूलेन रक्षयेदस्त्रमुच्चरन् ।
प्रदर्श्य धेनुयोनी च तदाज्यममृतात्मकम् ॥

---

शारदातिलक में कहा गया है—'उस आज्यस्थाली पर वीक्षणादि के द्वारा संस्कृत आज्य का निक्षेप करके वायुकोण में उन अङ्गारों को पृथक् रूप से रखकर 'नमः' मन्त्र से उन अङ्गारों के ऊपर आज्यस्थाली को स्थापन करें। मन्त्रवित दीक्षित साधक के द्वारा यह 'तापन' कहा गया है।

अर्णव में कहा गया है—'कुशगुच्छ प्रज्ज्वलित करके घृत में निक्षेप करके अर्थात् घृत के ऊपर घुमाकर अग्नि में निक्षेप करें। सभी स्थानों में सभी कर्मों में यह 'अभिद्योतन' कहा गया है।

शारदातिलक में कहा है—'गुरु वर्म ( हुं ) मन्त्र से प्रज्ज्वलित दर्भद्वय के द्वारा घृत के चतुर्दिक में घुमाकर अग्नि में उन दोनों दर्भ को निक्षेप करें। यह 'अभिद्योतन' कहा गया है। 'मतिमान होता पुनः कुछगुच्छ प्रज्ज्वलित करके घृत के मध्य में मूलमन्त्र से निक्षेप ( भ्रामित ) करें। यह 'आज्य-संस्कार' कहा गया है। गुरु दर्भद्वय को सन्दीप्त करके ( जलाकर ) नमः मन्त्र से घृत पर निक्षेप करके अग्नि में निक्षेप करें। यह पवित्रीकरण' है। उस अमृतात्मक घृत को मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करके अस्त्रमन्त्र ( फट् ) का उच्चारण करके धेनु तथा योनि मुद्रा दिखाकर रक्षा करें।

## होमविधिः

प्रादेशमात्रं सग्रन्थिदर्भयुग्मं घृतान्तरे ।
निक्षिप्य भागौ द्वौ कृत्वा पक्षौ शुक्लेतरौ स्मरेत् ॥
वामे नाडीमिडां भागे दक्षिणे पिङ्गलां पुनः ।
सुषुम्नां मध्यतो ध्यात्वा कुर्याद्धोमं यथाविधि ॥
स्रुक् स्रुवौ च समादाय विधिना निर्मितौ गुरुः ।
पश्चादादाय पाणिभ्यां स्रुक्स्रुवौ तावधोमुखौ ॥
त्रिशः प्रतापयेद्वह्नौ दर्भानादाय देशिकः ।
तदग्रमध्यमूलानि शोधयेत् तैर्यथाक्रमम् ॥
गृहीत्वा वामहस्तेन प्रोक्षयेद्दक्षिणेन तौ ।
पुनः प्रताप्य तौ मन्त्री दर्भानग्नौ विनिक्षिपेत् ॥
स्रुवमादाय मतिमान् धारयेत् तु त्रिभागतः ।
वेदांगुलं परित्यज्य धारयेच्छङ्खमुद्रया ॥

---

### होमविधि

प्रादेश परिमित ग्रन्थियुक्त ( गांठसहित ) दर्भद्वय को घृत में निक्षेप करके उसके दो भाग करके बाँयें भाग में शुक्लपक्ष तथा दक्षिण में कृष्णपक्ष की भावना करना चाहिए। घी के अन्दर ही बाँयीं ओर इडानाड़ी एवं दक्षिण में पिङ्गला नाड़ी तथा मध्य में सुषम्ना नाड़ी का ध्यान करके यथाविधि हवन करना चाहिए।

विधिपूर्वक गुरु के द्वारा निर्मित स्रुक् तथा स्रुव का आनयन करके बाद में अर्थात् अपने बाँयें और कुशा के ऊपर प्रणीतादि का स्थापन करके दोनों हाथों के द्वारा उस स्रुक् तथा स्रुव को अधोमुख वह्नि में तीनबार सन्तापित करना चाहिए। साधक कुछ दर्भ को ग्रहण करके उस दर्भ समूहों के द्वारा यथाक्रम से अर्थात् दर्भमूल के द्वारा स्रुक् तथा स्रुव के मूल, मध्य के द्वारा स्रुक्स्रुव के मध्य में एवं अग्रभाग द्वारा स्रुक्स्रुव के अग्रभाग का शोधन करें। बाद में बाँयें हाथ में उसे ग्रहण करके दक्षिण हाथ के द्वारा प्रोक्षणी जल से प्रोक्षण करें। साधक अपने दोनों हाथों के द्वारा अधोमुख स्रुक्-तथा स्रुव को पुनः तीन बार तापित करके (तपाकर) अग्नि में दर्भ समूहों का निक्षेप करें ( फेंकें )। मतिमान साधक स्रुव को ग्रहण करके तीन भागों में उसे धारण करें अर्थात् चार अंगुल छोड़कर शङ्खमुद्रा में धारण करें।

शारदायाम्—

स्रुवेण दक्षिणाद्भागादादायाज्यं हृदा गुरुः ।
जुहुयादग्नये स्वाहेत्यग्नेर्दक्षिणलोचने ॥
वामतस्तद्वादादाय वामे वह्निविलोचने ।
जुहुयादथ सोमाय स्वाहेति हृदयाणुना ॥
मध्यादाज्यं समादाय वह्नेर्भालविलोचने ।
जुहुयदाग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति मनुना गुरुः ॥
हृन्मन्त्रेण स्रुवेनाज्यं भागादादाय दक्षिणात् ।
जुहुयादग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति तन्मुखे ॥
इत्यग्नेर्नेत्रवक्त्राणां कुर्याच्चोद्घाटनं गुरुः ।
सताराभिर्व्याहृतिभिराज्येन जुहुयात् पुनः ।
वैश्वानरेण मन्त्रेण त्रिवारं जुहुयाद् गुरुः ॥

समयातन्त्रे—

एकैकाहुतिभिः कुर्याद् गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।
क्रमेण देवदेवेशि ! स्वाहान्तमूलविद्यया ॥

---

शारदातिलक में कहा गया है—'गुरु स्रुव के द्वारा नमः मन्त्र से दक्षिण-भाग से आज्य को ग्रहण करके अग्नि के दक्षिण नेत्र में 'अग्नये स्वाहा' मन्त्र से हवन करें। उसी प्रकार अर्थात् स्रुव के द्वारा नमः मन्त्र से बायें भाग से आज्य को ग्रहण करके वह्नि के वामनेत्र में 'सोमाय स्वाहा' मन्त्र से हवन करें। बाद में गुरु हृदय ( नमः ) मन्त्र से मध्यभाग से आज्य को ग्रहण करके अग्नि के ललाटस्थित नेत्र में 'अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा', इस मन्त्र से हवन करें। स्रुव के द्वारा नमः मन्त्र से दक्षिणभाग से आज्य को ग्रहण करके अग्नि के मुख में 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्र से हवन करें। गुरु इस प्रकार अर्थात् इन चारों हवनों के द्वारा अग्नि के नेत्रत्रय तथा मुख का उद्घाटन करें। गुरु तार ( ॐ ) युक्त ( व्यस्त समस्त ) व्याहृति मन्त्र से घी के द्वारा हवन करें। गुरु पुनः अग्निमन्त्र के द्वारा तीन बार हवन करें।

समयातन्त्र में कहा गया है—'हे देवदेवेशि ! स्वाहान्त मूलमन्त्र से एक एक आहुति के द्वारा यथाक्रम से अग्नि के गर्भाधानादि संस्कारों को करें।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्म नामकृतिरुपनिष्क्रमणं तथा ॥
चूडोपनयनं भूयो वेदाध्ययनमेव च ।
गोदानं च विवाहश्च संस्काराः शुभकर्मणि ॥
ततश्च पितरौ वह्नेः सम्पूज्य हृदयं नयेत् ।
वह्निमन्त्रेण विधिवत् कुर्यादाहुतिपञ्चकम् ॥
जुहुयात् समिधः पञ्च मूलाग्रघृतसंप्लुताः ।
गुरुर्हृदयमन्त्रेण विधिवत् स्वाहया विना ॥

शारदायाम्—

मन्त्रैर्जिह्वाङ्गमूर्तीनां क्रमाद् वह्नेर्यथाविधि ।
प्रत्येकं जुहुयादेकामाहुतिं मन्त्रवित्तमः ॥
अवदाय स्रुवेणाज्यं चतुः स्रुचि पिधाय ताम् ।
स्रुवेण तिष्ठन्नेवाऽग्नौ देशिको यतमानसः ।
जुहुयाद्वह्निमन्त्रेण वौषडन्तेन सम्पदे ॥

---

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, चूड़ाकरण, उपनयन, वेदाध्ययन, गोदान तथा विवाह—ये दस शुभ कर्मों में दस संस्कार है। उसके बाद अर्थात् नामकरण के बाद वह्नि के जनक जननी की पूजा करके हृदय में स्थापन करना चाहिए। उसके बाद वह्नि मन्त्र के द्वारा विधिवत् पाँच आहुति करना चाहिए। गुरु स्वाहा के व्यतीत केवल नमः मन्त्र से विधिवत् मूल, मध्य तथा अग्रभाग में घृतप्लुत पाँच समिध का हवन करें।

शारदातिलक में कहा गया है—'मन्त्रवित् साधक जिह्वा के अङ्गमूर्त्ति के मन्त्र से अर्थात् 'स्त्रां हिरण्यायै स्वाहा' मन्त्र से न्यासोक्त क्रम के अनुसार से प्रत्येक को एक-एक आहुति का हवन करें।

संयतचित्त साधक सम्पत् कर हवन में स्रुव के द्वारा स्रुक पर चार बार घृत देकर स्रुव के द्वारा स्रुक् को आच्छादित करके दण्डायमान होकर वौषडन्त वह्निमन्त्र के द्वारा हवन करें।

माधवीयसंहितायाम्--

पलाशस्यापरा वापि यज्ञीया द्वादशांगुलाः ।
अवक्राश्च स्वयं शुष्काः सत्वचो निर्व्रणाः समाः ॥
दशांगुला वा विहिताः कनिष्ठांगुलिसम्मिताः ।
प्रादेशमात्तस्याऽलाभे होतव्याः सकला अपि ॥

गौतमीये—

महागणेशमन्त्रेण हुनेदेकादशाहुतोः ।
सामान्यं सर्वदेवानामेतदग्निमुखं स्मृतम् ॥
बहुरूपाख्यजिह्वायामाज्यञ्च परमेश्वरि ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य जुहुयात् षोडशाहुतोः ।
मूलमन्त्रेण विधिवद्वक्त्रैकीकरणं त्विदम् ॥

शारदायाम्—

ततः पीठं समभ्यर्य देवताया हुताशने ।
अर्चयेदग्निरूपां तां देवतामिष्टदायिनीम् ॥
तन्मुखे जुहुयान्मन्त्री पञ्चविंशतिसंख्यया ।
आज्येन मूलमन्त्रेण वक्त्रैकीकरणं त्विदम् ॥

---

माधवीय-संहिता में कहा गया है—'पलाश वृक्ष के अथवा अन्य यज्ञीय वृक्ष के द्वादशांगुलि परिमाण, वक्रतारहित ( अर्थात् सीधा ), स्वयं शुष्क ( अपने आप सुखा हुआ ), त्वग् विशिष्ट ( छाल लगा हुआ ), समान काष्ठ खण्ड ही समिध है। दशांगुलि परिमित अथवा कनिष्ठांगुलि परिमित समिध भी हवन में विहित है। प्रादेश परिमित समिध के अभाव होने पर पूर्वोक्त परिमित सभी समिध में ही हवन करें।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है—'महागणेश मन्त्र द्वारा एकादश आहुति हवन करें। यही सभी देवताओं का साधारण अग्निमुख कहा गया है। हे परमेश्वरि! गन्धादि के द्वारा अर्चना करके बहुरूपा नामक जिह्वा में मूलमन्त्र से विधिपूर्वक षोडशाहुति आज्य हवन करना चाहिए। यही 'वक्त्रैकीकरण' कहा गया है।

शारदातिलक में कहा गया है—'उसके बाद अग्नि में देय मन्त्र के देवता के पीठ की अर्चना करके इष्ट फल दायिनी अग्निरूपा उस इष्टदेवता की पूजा करनी चाहिए। साधक को वह्नि के मुख में मूलमन्त्र से घृत के द्वारा पचीस बार आहुति करना चाहिए। यही 'वक्त्रैकीकरण' कहा गया है।

वह्निदेवतयोरैक्यमात्मना सह भावयन् ।
मूलमन्त्रेण जुहुयादाज्येनैकादशाहुतीः ॥
नाडीसन्धानमुद्दिष्टमेतदागमवेदिभिः ।
अङ्गादिपरिवाराणामेकैकामाहुतिं हुनेत् ॥
पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा होमं कृत्वा यथाविधि ।
तिलेनाज्येन जुहुयात् सहस्रादि यथाविधि ॥
अनुक्ते तु हविर्द्रव्ये तिलाज्यं हविरुच्यते ।
अल्पं तु जुहुयाद्वह्नेः पण्डितः सर्वकर्मसु ।
तथा सम्पातयेद्भागेष्वाज्यस्यान्वाहुतिं क्रमात् ॥

विशेषमाह तन्त्रान्तरे--

अग्नौ स्वाहेति तद्भागे शेषमग्नौ विनिःक्षिपेत् ।

ॐ भूरग्नये पृथिव्यै महते च स्वाहा। ॐ भुवो वायवे अन्तरीक्षाय च दिवे महते च स्वाहा। ॐ स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा। ॐ भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा।

---

अपने आत्मा के साथ वह्नि तथा देवता की ऐक्य भावना करके मूलमन्त्र से घृत के द्वारा एकादश आहुति हवन करना चाहिए। आगमवित् साधकगणों के द्वारा यह 'नाड़ी सन्धान' कहा गया है। अङ्गादि परिवारगणों को एक एक आहुति हवन करना चाहिए। यथाविधि पुनराय व्याहृति के द्वारा हवन करके तिलयुक्त घृत के द्वारा यथाविधि सहस्रादि हवन ( सङ्कल्पित हवन ) करना चाहिए। हविः द्रव्य उक्त न होने से तिलाज्य हविः द्रव्य कहा गया है। सभी कर्मों में पण्डित व्यक्ति थोड़ा भी हवन करें अर्थात् जिस किसी कर्म में ही हवन करना कर्त्तव्य है। उसी प्रकार अन्वाहुतिक्रम से अर्थात् आहुति के बाद प्रत्याहुतिक्रम से एक भाग में अर्थात् जिस भाग से आज्याहुति गृहीत हुआ है, उस भाग में घृत का समस्त करना ( थोड़ा थोड़ा-छोड़ना ) चाहिए।

तन्त्रान्तर में विशेष कहा गया है--'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से उस भाग में आहुति दें एवं शेष अग्नि में निक्षेप करना चाहिए। उसके बाद 'भूरग्नये' इत्यादि चारों मन्त्रों से चारों का हवन करना चाहिए।

स्रुवञ्चैव समादाय घृतेनापूर्यते पुनः ।
होमद्रव्याणि निक्षिप्य नाभौ संस्थाप्यते पुनः ॥
अग्नेर्नामकृतिं कृत्वा दद्यात् पूर्णाहुतिं प्रिये ।
ब्रह्मार्पणेन न मनुना दद्यात् पूर्णाहुतिं पुनः ।
योजयेद् हृदये धाम्नि स्वेष्टं साधकसत्तमः ॥

## अग्निमुखनिरूपणम्

शारदायाम्—

यतः काष्ठं ततः श्रोत्रं यतौ धूमोऽत्र नासिका ।
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यतो भस्म ततः शिरः ।
यत्र प्रज्वलितो वह्निस्तन्मुखं जातवेदसः ॥

## श्रोत्रादिषु होमफलम्

फलमाह शारदायाम्—

वधिरत्वं कर्णहोमे नेत्र क्षतमवाप्नुयात् ।
नासिकायां मनःपीडा शिवोहोमो हि शूलदः ।
मुखे सिन्दूरबालार्क वह्नेर्होमः शुभावहः ॥

---

स्रुव आनयन करके पुनः घृत के द्वारा परिपूर्ण करना चाहिए। एवं हवन द्रव्य समूह निक्षेप करके पुनः नाभि में स्थापित करना चाहिए।

हे प्रिये ! अग्नि के नामकरण में पूर्णाहुति देना चाहिए। साधक प्रवर ब्रह्मार्पण मन्त्र से पुनः पूर्णाहुति देकर हृदय में स्वेष्ट देवता की स्थापना करें।

### अग्निमुख-निरूपण

शारदातिलक में कहा गया है—'जहाँ काष्ठ है, वहीं वह्नि का श्रोत्र है; जहाँ धूम्र है, वहाँ ही वह्नि की नासिका है। जहाँ अल्प ज्वलन ( धीरे जलना ) है, वहाँ ही वह्नि का नेत्र ( आँख ) है। जहाँ भस्म है, वहाँ वह्नि का मस्तक है। जहाँ प्रज्वलित वह्नि है, वही वह्नि का मुख है।

### श्रोत्रादि का हवन-फल

शारदातिलक में हवन का फल कह रहे हैं—अग्नि के कर्ण में हवन से वधिरता, नेत्र में हवन करने पर क्षत प्राप्त होता है। नासिका में हवन करने पर मनः पीड़ा होती है। शिरोहोम शूल ( व्यथा ) प्रद है। सिन्दूर अथवा बालसूर्य के समान वर्ण विशिष्ट वह्नि के मुख में हवन शुभजनक है।

भेरीवारिदहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभप्रदः ॥
चन्द्रचन्दनकुन्दाभो धूमः सर्वार्थसिद्धिदः ।
खरवायसवच्छब्दो वह्निः सर्वविनाशकृत् ॥
कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमानं विनाशयेत् ।
नागचम्पकपुन्नागपाटलायूथिकानिभः ॥
पद्मेन्दीवरकह्लारसर्पिर्गुग्गुलसन्निभः ।
पावकस्य शुभो गन्ध इत्युक्तस्तन्त्रवेदिभिः ॥
पूतिगन्धो हुतभुजो होतुर्दुःखप्रदो भवेत् ।
एवं विधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः ।
मूलेनाज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिकाहुतीः ॥
इति होमविधिनिर्णयः ।

## सर्वमङ्गलादिनामार्थः

सर्वमङ्गलादिनाम्नां योगार्थानाह—

मङ्गलाऽर्हसि सर्वेषां तेन त्वं सर्वमङ्गला ।
वरदाऽसि च मर्त्यानां वरदा तेन कीर्त्यसे ॥

---

भेरी, वारिद तथा हस्तीन्द्र के ध्वनि के समान अग्नि की ध्वनि शुभप्रद है। चन्द्र, चन्दन तथा कुन्द के समान वर्ण विशिष्ट वह्नि का धूम्र (धूँआ) समस्त अर्थों का सिद्धिदाता है। गर्द्दभ अथवा वायस (कौआ) के शब्द के समान शब्द विशिष्ट वह्नि समस्त विनाश करता है। कृष्णगति के वह्नि का कृष्णवर्ण यजमान का नाश करता है। नागकेशर, चम्पक, पुन्नाग, पाटली, यूथिका तुल्य एवं पद्म, इन्दीवर (नीलोत्पल), कल्हार, घृत तथा गुग्गुलु के समान वह्नि का गन्ध शुभ है। यह तन्त्रविद्गण कर्तृक कहा गया है। हुतभुक् वह्नि का पूतिगन्ध होता का दुःखप्रद होता है। साधक इस प्रकार के दोषों में प्रायश्चित्त के निमित्त मूलमन्त्र से घृत के द्वारा पचीस बार आहुति करें।

### सर्वमङ्गलादिनाम

सर्वमङ्गलादि नामों का योगार्थ कह रहे है—'तुम सभी के मङ्गल सम्पादन करो, इसीलिये तुम ही सर्वमङ्गला हो। तुम मर्त्यगणों को वरदान करती हो, इसलिये तुम वरदा कहकर कीर्त्तित होती हो।

अशेषं जयसे दुर्गं दुर्गा तेन निगद्यसे।
भक्तानां शं करोसीति शङ्करी त्वं तु गीयसे॥
संसारार्णवमग्नानां सर्वेषां प्राणिनामिह।
दुर्गैका हि परः पोतो नराणां मुक्तये सदा॥
संसारार्णवमग्नानां दुर्गैका परमं पदम्।
दुर्गैका देवताः सर्वा दुर्गैका कर्म वैदिकम्॥
दुर्गैका परमं ज्ञानं दुर्गैका परमं बलम्।
न त्वया रहितं किञ्चिद् भूतं स्थावरजङ्गमम्॥
दुर्गैका परमा देवी दुर्गैका परमं पदम्।
दुर्गैका परमं ज्ञानं दुर्गैका ज्ञानमेव च॥
दुर्गैका परमं सत्यं दुर्गैका परमा गतिः।
दुर्गैका परमं दैवं दुर्गैका परमौषधम्॥
दुर्गैका सुखमत्यन्तं दुर्गैका निर्वृतिः परा।
दुर्गैका परमा तुष्टि दुर्गैका परमं यशः॥
दुर्गैका परमं तत्वं दुर्गाभिन्नमिदं जगत्।

---

तुम सभी के दुःखों को जय करती हो, इसलिये तुम दुर्गा कहकर कथित हुई। तुम भक्तगणों के शं (कल्याण) करती हो, इसलिये तुम शङ्करी कहकर कीर्त्तित हुई हो। संसार समुद्र में मग्न सभी प्राणिगणों के एक दुर्गा ही श्रेष्ठ पोत ( जहाज ) स्वरूप है। वे ही समस्त सभी मनुष्यों की उद्धार के लिये सदा सर्वदा तत्पर रहती हैं। संसार समुद्र मग्न प्राणिगणों का एक दुर्गा ही परम पद( आश्रय ) है। एक दुर्गा ही समस्त देवता है।

वैदिक कर्म एकमात्र दुर्गा की ही मूर्त्ति है। दुर्गा ही एकमात्र परमज्ञान ( तत्त्वज्ञान ) स्वरूप है। एक दुर्गा ही परम बल है। तुमसे रहित होकर पञ्चभूत, स्थावर जङ्गम कुछ भी नहीं है। एक दुर्गा ही परमा देवी है, एक दुर्गा ही परम पद ( स्थान ) है। एक दुर्गा ही परमज्ञान (ब्रह्मज्ञान) है। एक दुर्गा ही प्रमाण जन्य वैषयिक ज्ञानस्वरूप है। एक दुर्गा ही परम सत्य है। एक दुर्गा ही परम गति ( गन्तव्यस्थान ) है। एक दुर्गा ही परम दैव है। एक दुर्गा ही परम औषध है। एक दुर्गा ही अत्यन्त सुख है। एक दुर्गा ही निर्वृति ( ब्रह्मानन्द ) है। एक दुर्गा ही परमतत्व ( ब्रह्म ) है। यह जगत्

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम् ।
दुर्गार्णवपरित्राणं दुर्गानामाक्षरद्वयम् ॥

इति श्रीपरिव्राचकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्द-
गिरिकृतायां शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां होमादिनिर्णयो
नामाष्टादशोल्लासः समाप्तः ॥ १८ ॥
समाप्तोऽयं ग्रन्थः

---

दुर्गा से अभिन्न है। दुर्गारूप अक्षरद्वय प्राण परित्याग के समय पाथेय है। संसार-व्याधि का परमौषध तथा दुःख समुद्र का निस्तार ( नौका ) है।

श्रीपरिव्राजकाचार्यपरमहंसतीर्थावधूतश्रीमद्ब्रह्मानन्दगिरिकृत
शाक्तानन्दतरङ्गिणी का होमादिनिर्णय नामक
अष्टादश उल्लास समाप्त।

ग्रन्थ समाप्त

9509

## हमारे प्रमुख प्रकाशन

१. मन्त्रमहोदधिः ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद ) मूल्य २७५/-

२. मन्त्रमहोदधि Eng. I Rs. 250/- Eng. II Rs. 300/-

३. हिन्दी मन्त्र महार्णव ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद )
देवी खण्ड २७५/-, देवता खण्ड २५०/-, मिश्र खण्ड १२५/-

४. श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् ( मूलमात्र )
पूर्वार्धम् १७५/- उतरा०प्रथम १७५/- उतरा०द्वितीय १७५/-

५. कुलार्णव तन्त्र ( मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद ) १००.००

६. नारदपाञ्चरात्रम् ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद ) मूल्य : १२५/-

७. श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् ( मूललात्र ) १५०/-

८. धनदारतिप्रिया तन्त्र ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद ) मूल्य : ५/-

९. मातृकाभेद तन्त्र ( मूल एवं संस्कृत टिप्पणी सहित ) १५/-

१०. त्रिपुरासार समुच्चय ( नागभट्टकृत एवं गोविन्दाचार्य की संस्कृत टीका ) १०/-

११. बृहत् तन्त्रसार ( मूलमात्र ) मूल्य : १००/-

१२. सप्तशतीसर्वस्वम् मूल्य : ७५/-

१३. त्रिपुरातापिन्युपनिषद् एवं त्रिपुरोपनिषद् मूल्य : ५/-

१४. हनुमद्वडवानल स्तोत्र, हनुमल्लाङ्गूलास्त्र स्तोत्र एवं हनुमान साठिका मूल्य : २/-

१५. शिवस्वरोदय ( मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित ) २०/-

१६. शनिस्तोत्रावलि ४/-

१७. वामकेश्वरीमतम् ( मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित ) १५/-

१८. कौलज्ञाननिर्णय ( मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित ) ५०/-

१९. डामर तन्त्र ( मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद ) ४५/-

२०. डामर तन्त्र ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद ) ३५/-

२१. मन्त्र रामायण ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद ) १५/-

२२. कामरत्नतन्त्रम् ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद ) मूल्य पेपर बैक ४०/- सजिल्द मूल्य ४५/-

२३. अद्भुत रामायण ( महर्षि वाल्मीकि कृत ) सजिल्द ३५.००
पेपर बैक ३०.००

२४. वङ्गसेन संहिता ( मूल हिन्दी अनुवाद एवं परिशिष्ट सहित ) मूल्य २००.००

२५. हारीत संहिता ( मूल एवं हिन्दी अनुवाद ) मूल्य : ८०/-

पुस्तकालय